मार्कण्डेय-पुराण

(प्रथम खण्ड)

सरल भाषानुवाद सहित

सम्पादक—

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट दर्शन
२० स्मृतियाँ और अठारह पुराणों के,
प्रसिद्ध भाष्यकार ।

प्रकाशक—

संस्कृति-संस्थान, बरेली

(उत्तर-प्रदेश)

प्रकाशक :

संस्कृति-संस्थान

बरेली ।



सम्पादक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य





प्रथम सस्करण

१९६७



मुद्रक

वृन्दावन शर्मा

जन जागरण प्रेस,

मथुरा ।



मूल्य—सात रुपये

भूमिका

भारतवर्ष के धार्मिक साहित्य मे पुराणो का एक विशिष्ट स्थान है। यो तो हिन्दू धर्म मे वेदो की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है और अध्यात्म की दृष्टि से उपनिषदो को समस्त ससार मे अद्वितीय माना गया है, पर लोक-प्रियता की दृष्टि से पुराणो का दर्जा बढा-चढा है। जिस प्रकार ऊँचे दर्जे का साहित्य थोडे विद्वानो द्वारा समादृत होता है, पर सामान्य कोटि की मनोरंजक, तथा रुचिकर पुस्तको का प्रचार अगणित जनता मे होता है, उसी प्रकार वेद और उपनिषदो के गूढ तत्वो का विवेचन जहाँ गिने चुने विद्वानो तथा अध्ययनशील व्यक्तियो के काम की चीज होती है, वहाँ पुराणो की कथाओ को गाँवो के अपढ लोग भी सुनते और समझते रहते है। यद्यपि कुछ कारणो से पठित समुदाय मे इनके सम्बन्ध मे कई प्रकार की भ्रातियाँ फैली हुई है और अनेक आधुनिकता का दावा करने वाले सज्जन इनको सर्वथा कल्पित भी कह देते है, पर इसका कारण यही है कि उन्होने कभी पुराणो के अध्ययन का प्रयत्न नही किया। पुराणो का उद्देश्य [illegible]चीन युगो की घटनाओ और परम्परागत ऐतिहासिक कथाओ को सरल तथा [illegible]रंजक शैली मे वर्णन करना है। इनमे से कुछ वास्तविक, कुछ अर्द्ध-वास्तविक और कुछ धर्म, पुण्य व सच्चरित्रता की प्रेरणा देने के लिये कल्पित भी होती है। [illegible]राणो मे प्रत्येक विषय को धर्म, सदाचार, नीति का पुट देकर लोक-शिक्षा का [illegible]ाध्यम बनाने की चेष्टा की गई है। इसके लिये पुराण-लेखको को घटनाओ के [illegible]र्णन मे सशोधन, परिवर्तन तथा कल्पना का आश्रय अवश्य लेना पडा है, पर [illegible]का मूल आधार प्राय ठीक ही है और यदि हम उनके रूपक, अलकार, [illegible]शयोक्ति, अर्थवाद का विश्लेषण करके अन्तराल मे झाँके तो अनेक बहुमूल्य [illegible]र कल्याणकारी मणि-मुक्ताओ की प्राप्ति हो सकती है।

दूसरी बात यह भी है कि सब पुराण एक श्रेणी के और समान महत्त्व तथा दृष्टिकोण रखने वाले भी नही है। उनमे से कुछ का उद्देश्य पाठको को अध्यात्मयोग, दर्शन, ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देना है। कुछ किसी विशेष देवता-सम्प्रदाय के महत्त्व का प्रतिपादन करके अपने अनुयायिओ की श्रद्धा को दृढ करने के उद्देश्य से रचे गये है। कई पुराणो मे सीधी-सादी धार्मिक कथाओ और दृष्टान्तो द्वारा लोगो को उपासना, पूजा, भक्ति व्रत, जप, तप, सदाचार आदि की शिक्षाये दी गई है, जिससे सामान्य मनुष्य अपने जीवन को अधिक शुद्ध, पवित्र बनाकर समाज के लिये हितकारी सिद्ध हो सके। फिर पुराणो का प्रचार और प्रभाव देखकर कुछ थोडी विद्या बुद्धि के लोगो ने छोटी-छोटी धार्मिक पुस्तक लिख कर उनके नाम मे भी 'पुराण' शब्द सम्मिलित कर दिया है। ऐसी स्थिति मे जो लोग केवल दोष-दर्शन अथवा विरोध की दृष्टि से ही पुराणो पर विचार करने लगते है उनको अपनी रुचि के अनुकूल विपरीत आलोचना, आक्षेपा, दोषारोपण का मसाला भी उनमे मिल सकता है, पर हमारी सम्मति मे उसकी न तो कोई उपयोगिता है, न प्रशसा है और न उससे उनकी विद्या और बुद्धि की उत्कृष्टता का ही कोई प्रमाण मिलता है।

यदि पुराणो का गम्भीरता तथा सहानुभूति पूर्वक अध्ययन किया जाय तो मालूम होता है कि उनका मुख्य उद्देश्य वेद, उपनिषद्, दर्शन, स्मृतियाँ आदि शास्त्र-ग्रथो मे वर्णित धर्म, अध्यात्म, सृष्टिरचना, मानव-सभ्यता के विकास-सम्बन्धी गूढ तथ्यो का इस प्रकार विस्तार और व्याख्या सहित वर्णन करना था जिससे साधारण श्रेणी के जन साधारण उनको समझ कर लाभ उठा सके। उनका दूसरा उद्देश्य उन्हे कथा के उपयोगी रूप मे बनाना भी था जिससे अनपढ लोगो, स्त्रियो और बालको के सामने उनको बाँच कर उपदेश दे सकना सभव हो। इसी लिये पुराणो को प्राय. आख्यान, उपाख्यान, दृष्टान्त, रूपक, कहानी आदि ऐसी सुगम और सरल शैली मे लिखा गया है जिससे सब प्रकार के व्यक्ति उनको प्रेम से सुन सके और उनसे अपनी बुद्धि तथा स्थिति के अनुकूल लाभ उठा सके।

पौराणिक साहित्य का एक लक्षण सर्ग (सृष्टि रचना) और प्रतिसर्ग

(सृष्टि का लय तथा विलीनता) के विषय मे विचार करना है। यद्यपि यह एक बहुत जटिल तथा विवादग्रस्त विषय है, जिसके सम्बन्ध मे ससार के बडे से बडे विद्वान् और वैज्ञानिक तरह-तरह के मतभेद प्रकट करते रहते है, पर पुराणो मे इसे देवासुर सग्राम के रूप मे ऐसा मनोरजक बना दिया है कि पाठक कहानी के द्वारा ही सृष्टि-विज्ञान के मोटे तथ्यो को जान लेता है। इसी तरह प्राचीन [illegible]-वशो का वर्णन भी पुराणकारो ने परोपकार, उदारता, त्याग, तपस्या के उदाहरण दिखाने के ढग से ही किया है। यह आवश्यक नही कि राजवशो की ऐसी नामावलियो मे प्रत्येक राजा के नाम आ ही जाये, पर उनमे से ऐसे राजाओ को छाँट कर उनका विशेष रूप से वर्णन किया गया है जिनके चरित्र और कार्यों से हम किसी प्रकार की सत्शिक्षा प्राप्त करके अपने जीवन को ऊँचा उठा सकते है।

इस दृष्टि से यदि हम कहे कि पुराण-ग्रथ भारत की प्राचीन सस्कृति, सभ्यता, इतिहास के भडार है तो इसमे कोई अनुचित बात नही है। एक विद्वान् के कथनानुसार "पुराणो मे भारत की सत्य और शाश्वत आत्मा निहित है, इन्हे पढे बिना भारत का यथार्थ चित्र सामने नही आ सकता, भारतीय-जीवन का दृष्टिकोण स्पष्ट नही हो सकता। इनमे आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक सभी विद्याओ का विशद वर्णन है। लोक-जीवन के सभी पक्ष इनमे अच्छे प्रकार प्रतिपादित है। ऐसा कोई ज्ञान-विज्ञान नही मानव मस्तिष्क की ऐसी कोई कल्पना या योजना नही, मनुष्य जीवन का ऐसा कोई अग नही, जिसका निरूपण पुराणो मे न हुआ हो। जिन विषयो को अन्य माध्यमो से समझने मे बहुत कठिनाई होती है, वे बडे रोचक ढङ्ग से, सरल भाषा मे, आख्यान आदि के रूप मे इनमे वर्णित हुए है।" एक अन्य लेखक ने कहा है कि "भारतीय धर्म, दर्शन और सस्कृति, सदाचार एव सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन से सबन्धित अनेक विषय पुराणो मे आये है। वस्तुत पुराणो की वर्णन-समृद्धि से स्तब्ध हो जाना पडता है। किन्तु इनमे सबसे महत्त्वपूर्ण अश वेदो की अध्यात्म ब्रह्मविद्या या सृष्टि विद्या है, जिसे पुराणो ने खुलकर स्वीकार किया है। 'इतिहास पुराणाभ्या वेद समुपबृंहयेत्' यह सूत्र ही मानो पुराण का रचना बीज बन गया था। इस दृष्टि से वेद-विद्या का ही लोक सुलभ अवान्तर रूप पुराण-विद्या है।"

मार्कण्डेयपुराण की विशेषता:---

महापुराणो के पाँच मुख्य लक्षण बताये गये है—सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित। यद्यपि ये लक्षण थोडे बहुत अन्तर के साथ सभी प्रसिद्ध पुराणो मे पाये जाते है, तो भी जिन पुराणो का उद्देश्य किसी विशेष देवता या सम्प्रदाय की पुष्टि करना है उनका विशेष ध्यान उसी तरफ लग जाता है और इन मूल विषयो के वर्णन को भी उसी रङ्ग मे रङ्ग दिया जाता है। पर 'मार्कण्डेय पुराण' इस बात से अधिकांश मे बचा हुआ है और उसमे मुख्य रूप से धर्म, नीति, सदाचार के प्रतिपादन को ही अपना लक्ष्य बनाया है। उसमे ब्रह्म, विष्णु शिव मे से किसी देवता को बढाने के लिये दूसरे की हीनता नही दिखलाई गई है। इसी प्रकार अग्नि, सरस्वती, सूर्य आदि का भी समान-भाव से स्तवन किया गया है। इस निष्पक्षता की भावना के फलस्वरूप इस पुराण मे विभिन्न विषयो का यथार्थ रूप मे वर्णन करने की तरफ ध्यान दिया गया है, जिससे उसकी उपयोगिता बढ गई है। इस दृष्टि से यह पुराण हिन्दू-धर्म की समन्वयवादी विचारधारा की एक बहुत उत्तम कृति है जिसने पृथक्-पृथक् सम्प्रदायो के भेदभाव को मिटाने का प्रयत्न करते हुए सब देवो की एकता पर जोर दिया है। इसका विचार क्षेत्र इतना उदार है कि केवल हिन्दू सम्प्रदायो को ही नही वरन् बौद्ध और जैन जैसे सर्वथा भिन्न समझे जाने वाले मतो के प्रति भी पृथक्त्व की भावना नही रखी है। भगवान् भास्कर की स्तुति करते हुए कहा है—

> विस्पष्टा परमा विद्या ज्योतिर्भा शाश्वती स्फुटा।
> कैवल्य ज्ञानमाविर्भू प्राकाम्य सविदेव च ॥
> बोधश्चावगतिश्चैव, स्मृतिर्विज्ञानमेव च।
> इत्येतानीह रूपाणि तस्य रूपस्य भास्वत ॥

अर्थात् 'वैदिको की पराविद्या, ब्रह्मवादियो की शाश्वत ज्योति, जैनो का कैवल्य, बौद्धो की बोधावगति, साख्यो का ज्ञान, योगियो का प्राकाम्य, वेदान्तियो

का संवित्, धर्मशास्त्रियो की स्मृति, योगाचार का विज्ञान—ये सब रूप एक ही महाज्योतिष्मान् सूर्य के विभिन्न दर्शन है।'

इसकी दूसरी विशेषता 'कर्म' को प्रधानता देना है। अन्य अनेक लेखकों ने जहाँ यज्ञ-हवन आदि को ही धर्म का साधन माना है अथवा गृह त्याग करके तपस्वी या सन्यासी बन जाने को आत्म-कल्याण का मार्ग बतलाया है, वहाँ 'मार्कण्डेय पुराण' मे 'देवत्व, इन्द्रत्व और ब्रह्मत्व तक को कर्मों का परिणाम बतलाया है। यहाँ कर्म का तात्पर्य पूजा, पाठ, जप–तप से नही वरन् परोपकार और दु खी प्राणियो के कष्ट निवारण से ग्रहण किया गया है। ऐसे कर्म की प्रशमा करते हुए पुराणकार कहते है—

"मनुष्य का जो कर्म करुणा से प्रेरित होता है और जिसमे किसी प्रकार के कपट का भाव नही होता, उससे मनुष्य को किसी प्रकार का बन्धन नही होता और उसकी आत्मा शुद्ध हो जाती है।"

बौद्ध और जैन धर्म के प्रभाव से देश मे जब भिक्षु, मुनि, श्रमण आदि की सख्या बहुत अधिक बढ गई थी और गृहस्थ-धर्म का उत्तरदायित्व पूरा किये बिना ही 'निर्वाण' और 'मोक्ष' के नाम पर कार्यक्षम व्यक्ति निकम्मा जीवन व्यतीत करने लगे थे तब मार्कंडेय ने गृहस्थ–आश्रम की श्रेष्ठता प्रतिपादित की और स्पष्ट शब्दो मे कहा कि'जो गृहस्थ धर्म का पालन करके पूर्वजो तथा समाज के प्रति अपने कर्तव्य का पालन नही करता वह गृह त्याग करके भी किसी प्रकार की सुगति किस प्रकार प्राप्त कर सकता है, इस पर जब विपक्षी यह आक्षेप करते थे कि वेद और उपनिषदो मे कर्म–मार्ग को अविद्या कहा है, तो फिर उसका अनुसरण क्यो करना चाहिये, तो मार्कण्डेय का उत्तर था कि 'वेदो का यह कथन असत्य नही है कि 'कर्म अविद्या है पर साथ ही यह भी कह दिया है कि विद्या तक पहुँचने का मार्ग अविद्या ही है। कर्तव्य-कर्म का पालन न करके जो 'सयम' का ढोग करता है वह उत्थान के बजाय अधोगति के गढ्ढे मे गिरता है :' इस सिद्धान्त का बहुत स्पष्ट समर्थन 'ईशोपनिषद्' मे मे किया गया है जिसमे विद्या और अविद्या का समन्वय करते हुए कहा है—

विद्या चाविद्या च यस्तद वेदोभय ७ सह ।
अविद्यया मृत्यु तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥

अर्थात् 'मनुष्य के लिये विद्या रूप ज्ञान तत्त्व और अविद्या रूप कर्म तत्त्व दोनो का जानना ही आवश्यक है। वह कर्मो के अनुष्ठान से मृत्यु को पारकर ज्ञान के अनुष्ठान से अमृतत्व का उपभोग करता है।' सासारिक जीवन मे सफलता प्राप्त करने के लिये कर्मो मे कुशल होने की आवश्यकता है और पारलौकिक जीवन मे सर्वश्रेष्ठ स्थिति तक पहुचने के लिये ज्ञान का होना अनिवार्य है। साथ ही यह भी निश्चित है कि कर्म की कुशलता प्राप्त किये बिना ज्ञान और मोक्ष का दावा करना एक प्रकार की मूढता है। गीता मे भी 'योग कर्मसु कौशलम्' कहकर इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। शुकदेव और दत्तात्रेय जैसे पूर्व जन्म के सिद्ध योगियो का उदाहरण तो अपवाद स्वरूप है,सामान्य मनुष्यो के लिये जीवन को सार्थक बनाने का कर्म के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नही है।

गृहस्थ धर्म के प्रतिपादन के साथ मार्कण्डेय ने नारी के महत्त्व को भी बतलाया है और सामाजिक जीवन मे उसे उचित स्थान दिये जाने का समर्थन किया है। यद्यपि बौद्ध-युग मे स्त्रियो को भी भिक्षुणी बनने का विधान था, पर गृहस्थी के रूप मे उनके दर्जे को बहुत घटा दिया था। उनके कथनानुसार नारी मोक्ष प्राप्ति मे एक बडी बाधा है इसलिये उसका त्याग और उपेक्षा ही मोक्षाभिलाषी के लिये आवश्यक है। स्वय बुद्ध भी अपनी स्त्री यशोधरा को आकस्मिक रूप से छोडकर चले आये थे इससे इस भावना को और भी अधिक बल मिला था। 'मार्कण्डेय पुराण' की इस धारणा को सर्वथा अग्राह्य बतलाकर स्त्रियो के ऐसे उपाख्यान उपस्थित किये जिनमे उनको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की पूर्ण रूप से सहायिका माना गया। मदालसा उपाख्यान (१९-६६, ७५) मे कहा गया है—

"पति को भार्य्या की सदा रक्षा और पालना करनी चाहिये। भार्य्या भर्ता की सहायिका होने पर सम्यक् प्रकार धर्म, अर्थ, काम की सिद्धि का

निमित्त होती है। भार्या और भर्ता दोनो ही जब परस्पर में अनुकूल होते है तभी धर्म की प्राप्ति होती है। धर्मादि त्रिवर्ग मे समाहित होने के कारण पुरुष जिस प्रकार भार्य्या के बिना कभी धर्म अर्थ का लाभ करने मे समर्थ नही होता उसी प्रकार भार्य्या भी स्वामी के बिना धर्म-साधन मे समर्थ नही होती। ये धर्म, अर्थ आदि दोनो के ही सम्यक् प्रकार से आश्रित रहते है। उदाहरण के लिये देवता, पितृ, भृत्य और अतिथियो का सत्कार न होने से धर्माचरण की पूर्ति नही होती। यदि पुरुष पर्याप्त धन कमा कर ले आवे पर घर मे भार्य्या न हो अथवा वह कुभार्य्या हो तो वह सब धन बिना कुछ लाभ पहुँचाये क्षय को ही प्राप्त होता है। इसलिये पुरुष और स्त्री जब समान रूप से धर्म का पालन करते है तभी त्रयी धर्म लाभ करने मे समर्थ होते है।"

मार्कण्डेय पुराण के पाँच विभाग:-

यद्यपि यह पुराण मार्कण्डेय ऋषि के नाम से प्रसिद्ध है,पर इसमे वर्णित कथा प्रसङ्गो के आधार पर ही यह प्रकट होता है कि यह कई वक्ताओ के मुख से निकल कर पूर्ण हुआ है। हम निम्न रीति से इसे ५ भागो मे विभाजित कर सकते है।

(१) अध्याय १ से ९ तक जैमिनि ने मार्कण्डेय से महाभारत सम्बन्धी शङ्काओ के चार प्रश्न पूछे है। पर मार्कण्डेय ने समयाभाव से उनका उत्तर स्वय न देकर जैमिनि को विन्ध्याचल पवत मे रहने वाले धर्म-पक्षियो के पास भेज दिया, जिन्होने उनकी शङ्काओ का पूर्ण रूप से समाधान किया।

(२) अध्याय १० से ४४ तक प्राणियो के जन्म, मरण, विकास आविर्भाव, तिरोभाव आदि के विषय मे प्रश्न किया गया। इसका उत्तर वैसे धर्म-पक्षियो ने दिया, पर इनका वास्तविक वक्ता जड सुमति है, जिसने किसी समय अपने पिता को यही कथा सुनाई थी।

(३) अध्याय ४५ से ८० तक मार्कण्डेय ने अपने शिष्य क्रोष्टुकि के प्रति इस पुराण के मूल विषय का वर्णन किया है।

(४) अध्याय ८१ से ९२ तक देवी की कथा है,जिसे मेधा ऋषि ने कहा है। यह कथा देवी भागवत से मिलती हुई है तथा अन्य पुराणो मे भी यह विस्तार के साथ पाई जाती है।

(५) अध्याय ९३ से अतिम अध्याय तक कुछ विशेष राजाओ का वर्णन किया गया है।

इस पुराण मे वर्णित आख्यानो की विविधता और कई वक्ताओ के मुख से इसका कथन देखते हुए स्वभावत यह अनुमान होता है कि मूल पुराण मे कुछ उपयोगी अश बाद मे सग्रह करके सम्मिलित किये गये है। तो भी देशी और विदेशी विद्वान् आलोचको की सम्मति के अनुसार यह अबसे सोलह-सत्रह सौ वर्ष पूव वर्तमान रूप मे आ चुका था।

'मार्कण्डेय पुराण' के मुख्य विषय—

इस पुराण का आरम्भ जैमिनि और मार्कण्डेय के सम्वाद के रूप मे होता है। जैमिनि व्यासजी के शिष्य थे और उनकी जगत् प्रसिद्ध रचना महाभारत के बहुत बडे प्रशसक थे, तो भी स्वतन्त्र चिन्तक होने के कारण उन्हे उसकी कुछ घटनाओ मे सन्देह हुआ और मार्कण्डेय जी से उन्होने उनका समाधान करने की प्रार्थना की। उनके चार प्रश्न इस प्रकार थे—(१) जगत् की सृष्टि, स्थिति, सहार करने वाले वासुदेव निर्गुण होकर भी किस कारण मनुष्यत्व (कृष्णावतार) को प्राप्त हुए ? (२) अकेली द्रौपदी किस प्रकार पाँचो पाण्डवो की महिषी हुई ? (३) महाबलशाली बलरामजी ने किस प्रकार तीर्थ-यात्रा करके ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त किया ? (४) महातेजस्वी पाण्डवो द्वारा द्रौपदी मे उत्पन्न पाँचो पुत्र किस कारण अविवाहित अवस्था मे ही मारे गये ? इन प्रश्नो पर विचार किया जाय तो प्रथम प्रश्न ही महत्त्व का है, जिसका निर्णय करने का प्रयत्न अति प्राचीनकाल से आज तक होता आया है। जबकि परमात्मा पूर्णतया अज्ञेय और निराकार है तो वह किस प्रकार सगुण बनकर ससार की रचना की व्यवस्था ही नही करता वरन् मनुष्य के रूप मे अवतार लेकर दुष्टो से इसकी रक्षा भी करता है, यह प्रश्न सदैव दार्शनिको तथा विचार-

शील लोगो के मध्य विवाद का विषय बना करता है। अन्य धर्म वालो ने भी अपने बुद्ध, तीर्थङ्कर, ईश्वर-पुत्र आदि को विशेष आत्मा के रूप मे बतलाया है, पर पौराणिक सिद्धान्त के अनुसार साक्षात् परब्रह्म का इस पृथ्वी पर अवतीर्ण होना एक ऐसी घटना है जिसका समाधान सहज मे नही किया जा सकता ? इसलिये जैमिनि ने उस युग के श्रेष्ठ ज्ञानी समझे जाने वाले मार्कण्डेय के सामने सर्वप्रथम प्रश्न यही रखा कि वे 'निर्गुण या सगुण की समस्या का ठीक ढङ्ग से निर्णय करे।'

अगले अध्याय मे उन चार धर्म-पक्षियो की कथा का वर्णन किया गया है जिनके मुख से मार्कण्डेय पुराण कहलवाया गया है। यद्यपि यह कथा मुख्यत अभिमान से हानि और अतिथि सत्कार की पराकाष्ठा दिखाने के उद्देश्य ही लिखी गई है पर उसमे स्थान–स्थान पर महत्त्वपूर्ण शिक्षाओ को सन्निवेशित किया गया है। जैसे जीवन की अस्थिरता का वर्णन करके मनुष्य को प्रत्येक अवसर निर्भय रहकर कठिनाइयो का सामना करने के सम्बन्ध मे कहा गया है–

"युद्ध मे भागने वालो तथा युद्ध मे लडने वालो का जीवन उतना ही होता है जितना विधाता द्वारा स्थिर किया रहता है। किसी का भी जीवन उसकी इच्छा के अनुसार नही होता। कोई अपने घर मे रहने पर भी मरता है, कोई भाग कर भी मरता है, कोई खाने–पीते ही मर जाता है। कोई स्वस्थ शरीर से विलास करता हुआ शस्त्रादि से बचकर भी काल के कराल गाल मे जा पडता है, कोई तपस्या मे निरत और कोई योगाभ्यास करते यमालय गया है, किन्तु अमर कोई नही हुआ। इसलिये कायरता पूर्वक युद्ध मे विमुख होना मनुष्य के लिये सर्वथा अशोभनीय है।

धर्म-पक्षियों का उपाख्यान—

तीसरे अध्याय मे एक सत्य निष्ठ सुकृष नामक मुनि का उपाख्यान है। इनकी परीक्षा लेने के लिये इन्द्र एक बुड्ढे गिद्ध का रूप धारण करके आया और उनसे अपने आहार के लिये मनुष्य का माँस माँगा। सुकृष ने पहले अपने चारो पुत्रो को बुला कर गिद्ध का आहार बनने के लिये कहा पर वे भयवश

इसके लिये तैयार न हो सके। तब पिता ने उनको पक्षी की योनि मे उत्पन्न होने का शाप दिया और स्वय गिद्ध का आहार बनने के लिये देह त्याग करने लगा। इस पर इन्द्र ने प्रकट होकर उसकी बडी प्रशसा की और इच्छानुसार वरदान दिया। इस प्रसग मे चारो पुत्रो ने मानव-शरीर की वास्तविकता का जो वर्णन किया है वह बडा भावपूर्ण और साथ ही भावित्वमय है। उन्होने कहा—

"यह मानव-देह एक नगर के समान है जो प्रज्ञा रूपी चहार दीवारी मे घिरा हुआ है। हड्डियाँ इसके खम्भे है, इसकी दीवारे चमडे से बनी है और रक्त, माँस, चर्बी आदि से लिपी है। नसो का जाल इसे चारो ओर से घेरे हुए है। इस पुरी के बहुत बडे नौ दरवाजे है जिसके भीतर चैतन्य रूपी पुरुष राज्य करता है। मन और बुद्धि राजा के दो मन्त्री है, पर आपस मे विरोध रहने के कारण वे एक दूसरे का प्रतिरोध करने के लिये प्रयत्नशील रहते है। काम, क्रोध, लोभ और मोह नामक राजा के चार शत्रु है वह सदा राजा के नाश की चेष्टा करते रहते है।"

वह राजा जिस समय नौ द्वारो को रोक कर भीतर अवस्थान करता है तब उसकी शक्ति सुरक्षित रहती है और वह निर्भय होकर रहता है। उस समय शत्रुओ का उस पर कुछ भी वश नही चलता। पर जब वह सब द्वारो को खोलकर रहता है तब 'अनुराग' नामक शत्रु नेत्रादि से आक्रमण करता है। यह शत्रु सर्वव्यापी और अत्यन्त प्रबल है। उसी समय लोभ, मोह और क्रोध रूपी तीनो शत्रु उसके पीछे-पीछे दौडते है। वह राग रूपी शत्रु इन्द्रिय रूपी दर्वाजो द्वारा पुरी मे घुस कर मन और बुद्धि के सग सयुक्त होने की अभिलाषा करता है। यह दुर्द्धर्ष राग समस्त इन्द्रियो और मन को वशीभूत करके प्रज्ञा रूपी परकोटा को भग्न करता है। बुद्धि भी मनको राग के वशीभूत देखकर तत्काल नष्ट हो जाती है। तब अमात्यहीन तथा प्रजा द्वारा त्यागा हुआ राजा अकेला रह जाता है और शत्रुगण उसको छिद्रो (निर्बल स्थानो) को जानकर उसे नष्ट कर डालते है। काम, क्रोध, मोह, लोभ रूपी चारो शत्रु स्मृति-शक्ति का नाश कर देते है। राग से क्रोध होता है, क्रोध से लोभ

उत्पन्न होता है, लोभ से मोह की उत्पत्ति और उससे स्मृति का नाश होता है। स्मृति नाश से बुद्धि नाश और बुद्धि का नाश होने से सर्वनाश होता है।

निर्गुण और सगुण ब्रह्म तथा अवतार—

जैमिनि ने प्रथम प्रश्न के उत्तर मे कि निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप क्यो और कैसे धारण करते है पक्षियो ने एक 'चतुर्व्यूहात्मक' सिद्धान्त का वर्णन किया। उन्होने कहा कि "तत्त्वदर्शी मुनियो के मतानुसार 'नार' जल को कहते है। वह 'नार' ही एकमात्र जिसका 'अयन' अर्थात् घर था उसको 'नारायण' कहा जाता है। वही अनन्त लीला निधान भगवान् विभु नारायण सगुण और निर्गुणात्मक द्विविध रूप से चार मूर्तियो मे अवस्थित है। उनकी एक मूर्ति जो अनिर्देश्य अर्थात् वाणी से अतीत है, पडित लोग जिसको शुक्ल वर्ण कहते है, जो नित्य रूपिणी मूर्ति तीनो गुणो को अतिक्रम करके दूर और निकट स्थित रहती है, उस प्रधान स्वरूप पहिली मूर्ति का नाम 'वासुदेव' मूर्ति है। इसमे ममता का लेशमात्र भी नही है। उसका रूप, वर्ण, नाम जो कुछ कहा जाता है वह सब कल्पनामय है, क्योकि योगी भी उसका वास्तविक अनुभव नही कर सकते, वह मूर्ति सब काल विराजमान परम पवित्र तथा सदा एक रूप है।

दूसरी मूर्ति 'शेष' या 'सकर्षण' के नाम से पाताल मे निवास करती है और इस पृथ्वी को मस्तक पर धारण किये हुए है। इस मूर्ति ने तामसी होने से तिर्यगयोनि अवलम्बन की है। तीसरी मूर्ति जिसके कारण सम्पूर्ण कर्म सम्यक् प्रकार साधित होते है, जिसके द्वारा प्रजा पालनादि सब कार्य सम्पादित होते है, उस सत्त्वगुण मयी मूर्ति का नाम 'प्रद्युम्न' मूर्ति है। चौथी मूर्ति पन्नग शैया पर जल मे शयन करके वास करती है, वह रजोगुण युक्त है। उसके द्वारा ही सदा सृष्टि कार्य सम्पन्न होता है, इस मूर्ति का नाम 'अनिरुद्ध' मूर्ति है। भगवान् की प्रजापालन कारिणी जो तीसरी प्रद्युम्न मूर्ति है, उसी के द्वारा पृथ्वी मे सदा धर्म-सस्थान होता है। धर्म का विनाश करने वाले उद्धत असुरगण उसी के द्वारा मरते है और उनके द्वारा ही धर्म रक्षापरायण प्राणी रक्षित होते है।

मार्कण्डेय पुराण के मतानुसार उस सृष्टिकर्ता परमेश्वर मे निर्गुण और

ा, अमूर्त और मूर्त, पर और अपर इन दोनो का समन्वय पाया जाता है। अमूर्त' और 'पर' है उसी को 'अरूप' कहा गया है, एव जो 'मूत' और र' है वही उस परम आत्मा-नारायण विष्णु का विश्व स्वरूप है। जो लोग ते है कि भगवान् केवल क्षीरसागर मे शयन कर रहे है अथवा बैकुण्ठ मे ाजमान है, या गोलोक मे लीला कर रहे है, वे अभी सत्य से दूर है। ान् तो एक सर्वव्यापी तत्व है और इस विश्व मे जहाँ जो कुछ दृष्टि गोचर ा है वह उन्ही का रूप है। इस तथ्य को 'विष्णु पुराण' मे भी अत्यन्त स्पष्ट ो मे वर्णन किया है—

न तद्योग पूजा शक्य नृप चिन्तयितु यत ।
तत स्थूल हरेरूप चिन्तयेद्विश्व गोचरम् ।।५५

हिरण्य गर्भो भगवान् वासवोऽथ प्रजापतिः ।
मारुतो वसवो रुद्रा भास्करोस्तारका ग्रहाः ।।५६

गन्धर्वयक्षा दैत्याद्या सकला देवयोनय ।
मनुष्या पशव शैला समुद्रा सरित द्रुमा ।।५७

भूत भूतान्य शेषाणि भूताना ये च हेतव ।
प्रधानादि विशेयान्त चेतना चेतनान्तकम् ।।५८

एक पाद द्विपादच वहुपादमपादकम् ।
मूर्तमेतत् हरेरूप भावनात्रितयात्मकम् ।।५८

एते सर्वमिद विश्व जगदेतच्चराचरम् ।
परब्रह्म स्वरूपस्य विष्णो शक्तिसमन्वितम् ।।५०

(६—७)

अर्थात् "ये जो विश्व मे सर्वत्र दिखलाई पड़ने वाले पदार्थ है यही विष्णु स्थूल रूप है। हिरण्यगर्भ, ब्रह्मा, भगवान् वासुदेव, प्रजापति, मरुद्गण, , रूद्र, आदित्य, नक्षत्र, गृह, गन्धर्व, यक्ष, दैत्य आदि देव-योनियाँ, मनुष्य, , पर्वत, समुद्र, नदियाँ, वृक्ष सम्पूर्ण भूत और उन भूतो के जितने कारण

प्रधान (मूल प्रकृति) से लेकर पच तन्मात्राओ तक हैं और जिसमे चेतन-अचेतन दोनो सम्मिलित है, एक पाद, द्विपाद, बहुपाद पर बिना पैरो वाले (सरीसृपादि) जितने प्राणी है वे सब विष्णु के मूर्त रूप है। इसे ही 'इद सर्वम्, या चराचर जगत् कहते है। इसकी रचना तीन प्रकार की भावनाओ से हुई है—ब्रह्मभावना, कर्मभावना और आध्यात्मिक भावना। इन्हे क्रमश सत्त्व, रज और तम भी समझा जा सकता है। परब्रह्म रूप विष्णु जब अपनी शक्ति से सयुक्त होता है तब इन्ही तीन भावो मे अपने को प्रकट करता है।"

भगवान् के निर्गुण और सगुण रूप का विवेचन करते हुए 'ब्रह्म पुराण' मे कहा गया है कि 'तत्वदर्शी मुनियो ने जल को 'नार' कहा है। वह नार पूर्व काल मे भगवान् का 'अयन' (गृह) हुआ, इस लिये वे 'नारायण' कहलाये, वे भगवान् नारायण सब को व्याप्त करके स्थित है। वे ही निर्गुण सगुण भी कहे जाते है। वे दूर भी है और समीप भी है। जिनसे लघु और जिनसे महान् दूसरा नही है, जिन अजन्मा प्रभु ने सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर रखा है जो आविर्भाव तिरोभाव, दृष्ट, अदृष्ट से विलक्षण है, सृष्टि और सहार भी जिनका रूप बतलाया जाता है, उन आदि देव परब्रह्म परमात्मा को हम प्रणाम करते है। जो एक होते हुए भी अनेक रूपो मे प्रकट होते है, स्थूल-सूक्ष्म, व्यक्त-अव्यक्त जिनके स्वरूप है, जो जगत् की सृष्टि, पालन और सहार के मूल कारण है, उन परमात्मा को नमस्कार है।"

मार्कण्डेय, विष्णु, ब्रह्म आदि सभी पुराण इस विषय मे एकमत है कि जो निर्गुण-निराकार ब्रह्म अनादि और अरूप कहा जाता है वही सगुण और साकार होकर इस चराचर विश्व को प्रकट करता है। उसको सब से पृथक् किसी अगम्य स्थान मे विराजमान मानना निरर्थक है वरन् वह विश्व के प्रत्येक छोटे से छोटे और बडे से बडे पदार्थ मे व्याप्त है और जिसे इस सर्वव्यापी ब्रह्म की अनुभूति प्राप्त हो गई है वह प्रत्येक स्थान और प्रत्येक पदार्थ मे उसके दर्शन कर सकता है। इसी रहस्य को 'रामायण' मे शिवजी ने अत्यन्त सक्षेप मे कह दिया है—

हरि व्यापक सर्वत्र समाना ।
प्रेम ते प्रकट होहि मै जाना ।।

द्रौपदी के पाँच पति और पंचेन्द्र उपाख्यान—

जैमिनि के दूसरे प्रश्न का उत्तर देते हुए पक्षियो ने कहा कि द्रौपदी कोई सामान्य नारी न थी वरन् वह अग्नि से प्रकट हुई साक्षात् शची थी जो द्रुपद की कन्या के रूप मे अवतीर्ण हुई थी। इसी प्रकार पाँचो पाण्डव भी पाँच रूपो मे इन्द्र के ही अवतार थे । इन्द्र को समझौते के विरुद्ध त्रिशिरा तथा वृत्रो के वध तथा अहिल्या का सतीत्व भग करने के अपराध मे अपनी समस्त शक्तियो धर्म, तेज, बल, और रूप से वचित हो जाना पडा था । वे ही शक्तियाँ धर्मराज, वायु, स्वय इन्द्र और अश्विनीकुमारो के द्वारा कुन्ती तथा माद्री के गर्भ से उत्पन्न हुई थी । इस प्रकार द्रौपदी वास्तव मे पाँच रूपो को प्राप्त एक मात्र इन्द्र की ही पत्नी थी ।

महाभारत मे भी पाँचो पाण्डवो को पाँच इन्द्रो का अवतार बतलाया है और कहा है कि "किसी समय वैवस्वत यम ने नैमिषारण्य मे होने वाले एक दीर्घकाल व्यापी यज्ञ मे दीक्षाली और उस समय प्रजाओ को मारने का काम बन्द कर दिया । इससे मनुष्यो की सख्या बहुत बढ गई और इससे देवताओ को डर पैदा हो गया । तब इन्द्र और अन्य देवता ब्रह्माजी के पास पहुचे और उनसे रक्षा करने की प्रार्थना की । ब्रह्माजी ने उनको वास्तविक कारण बतला कर नैमिषारण्य जाने को कहा । वहाँ पहुँचने पर उन्होने गगाजी मे एक स्त्री को रोते देखा जिसके आँसू जल मे गिरकर सोने के फूल बनते जाते है । इन्द्र ने उससे रोने का कारण पूछा । वह उनको हिमालय पर ले गई जहाँ एक तरुण तथा तरुणी बैठे हुए पासा खेल रहे थे । इन्द्र ने उनको न पहिचान कर कहा— 'मै इन्द्र हू सब भुवन मेरे वश मे है ।' इस पर शिवजी ने क्रुद्ध होकर उसे एक अधेरी गुफा मे भेज दिया जहाँ वैसे ही चार इन्द्र पहले से बन्द थे । जब उन सबने अपने छुटकारे की प्रार्थना की तो भगवान् शिव ने कहा कि तुम्हारा छुटकारा तभी होगा जब तुम पृथ्वी पर मनुष्य-जन्म लेकर पराक्रम के कार्य करके

दिखलाओगे। उस स्त्री से भी शिवजी ने इनके साथ पृथ्वी पर जन्म लेकर इनकी पत्नी बनने को कहा।"

एक और उपाख्यान भी महाभारत के आदि पर्व मे इस सम्बन्ध मे पाया जाता है, जिसमे कहा है कि एक ऋषि कन्या ने पति की प्राप्ति के लिए शिवजी की आराधना करके कठिन तप किया था और जब वे वरदान देने को उपस्थित हुए तो उसने 'पति देहि' शब्द पॉच बार कहा। शिवजी ने कहा कि तुमने पॉच बार पति के लिये कहा है इससे तुम्हारे पॉच पति होगे।

वास्तविक बात यह है कि बहु-पतित्व की प्रथा जो पजाब के पहाडी प्रदेश कुल्लू मे अभी तक चली आती है, भारत के शेष भाग मे अनैतिक मानी जाती है। इसलिये महाभारत मे द्रौपदी के पॉच पतियो का उल्लेख करने के पश्चात् उसे धर्म तथा नीतियुक्त सिद्ध करने के लिये आख्यानो के रूप मे उसका कारण समझाना पडा। आध्यात्मिक दृष्टि वाले विद्वानो ने इसका स्पष्टीकरण वैदिक साहित्य मे वर्णित 'पचेन्द्र' कल्पना के आधार पर किया है। उनका कथन है कि मानव शरीर मे स्थित पाचो इन्द्रियो का सचालन पॉच प्राणो द्वारा होता है। प्रत्येक 'प्राण' को इन्द्र कहा जाता है और उसी के कारण 'इन्द्रिय' नाम पड गया है। इन पॉचो के पीछे एक मध्य-प्राण है जो इन पॉचो को प्रदीप्त रखता है। इसको महेन्द्र कहा गया है। इस प्रकार एक मुख्य प्राण शक्ति पाच इन्द्रियो के साथ सहयोग करती है। पुराणो मे वैदिक तत्वो को उपाख्यानो के रूप मे ढाल कर समझाने की शैली अपनाई गई है उसी का परिणाम यह पॉच इन्द्रो द्वारा पाण्डवो की उत्पत्ति का कथानक है।

द्रौपदी के पॉच पतियो के इस उपाख्यान से एक नैतिक शिक्षा यह भी प्राप्त होती है कि सदाचार का त्याग करने से इन्द्र जैसा शक्तिमान् देवराज भी उसके कुपरिणाम मे नही बच सकता। परस्त्री गमन और वचन-भंग के दोष से इन्द्र का पतन हो गया और उसको नरलोक मे आकर उसका प्रायश्चित्त करना पडा।

ःचन्द्र का अमर उपाख्यान—

जैमिनि के तीसरे प्रश्न के उत्तर मे कि बलराम को ब्रह्महत्या कैसे लगी केस प्रकार उन्होने तीर्थ यात्रा करके उससे उससे छुटकारा पाया, पक्षियो छोटा-सा उपाख्यान बलराम जी के स्वभाव के सम्बन्ध मे कहा है उसमे वेशेषता नही है। पर चौथे प्रश्न "द्रौपदी के पाँचो पुत्र अविवाहित अवस्था अनाथ की तरह क्यो मार डाले गये ?" का उत्तर देते हुए पक्षियो ने हरिश्चन्द्र का जो उपाख्यान सुनाया है वह भारतीय धार्मिक-साहित्य की ामर कृति है। इसमे दिखलाया है कि मनुष्य सत्य-व्रत का पालन करते हाँ तक दृढता रख सकता है और फिर उसी के आधार पर कैसे उच्च से स्थिति प्राप्त कर सकता है।

राजा हरिश्चन्द्र की इस उपाख्यान मे जैसी घोर दुर्दशा दिखलाई है विश्वामित्र को जैसे नृशस रूप मे चित्रित किया है उससे इसमे कुछ भाविकता आ गई है और इसकी वास्तविकता मे सन्देह होने लगता है, ाखक ने इसमे करुण भाव का इतना अधिक समावेश कर दिया है कि उससे ओ की आत्मा विह्वल हो जाती है और उन्हे विचार करने की सुधि नही कि इसमे कहाँ तक वास्तविकता है और कितना अश कहानी का है। तक करोडो व्यक्ति 'सत्य हरिश्चन्द्र' के दृष्टान्त से सत्य की महिमा को ार कर चुके है। वर्तमान युग के महामानव म० गाँधी ने भी अपनी 'आत्म मे कहा है कि सबमे पहले हरिश्चन्द्र का नाटक देखने से ही उनकी हृदय- मे सत्य-प्रेम का पौधा बोया गया था जो समय और परिस्थितियो से वृद्धि ाप्त होता हुआ अन्त मे समस्त भारतीय समाज को अपनी प्राण-दायक छाया ाने मे समर्थ हुआ।

ों का स्वरूप और विवरण—

दसवे से पन्द्रहवे अध्याय तक भार्गव के पुत्र सुमति के मुख से पुर्नजन्म

स्वभाव और सब प्रकार की सुख-सामग्री की तरफ से उदासीन रहने वाला था। जब उसका उपनयन होने का अवसर आया और पिता ने उसे चारो आश्रमो के कर्तव्यो का उपदेश दिया तो उसने हँस कर कहा कि "हे पिता! आपने इस समय मुझे जो उपदेश दिया है मैने अनेक बार उसको सुना तथा उसका अभ्यास किया है। अनेक शास्त्रो तथा बहुत प्रकार के शिल्पो का भी मैंने अभ्यास किया है। मैने अनेक बार दुःख पाया, अनेक बार सुख प्राप्त किया, अनेक बार उच्च दशा का और फिर हीन अवस्था का अनुभव किया। मुझे इन सब बातो का ज्ञान है तो अब वेदाभ्यास का क्या प्रयोजन है? मेरा अनेक बार शत्रु, मित्र और सम्बन्धियो से मिलाप और वियोग हुआ है, अनेक माता तथा अनेक पिता देखे है, हजारो सुख-दुःख सहन किये है। मल-मूत्र से भरे स्त्री के जठर मे अनेक बार वास किया है, सहस्र-सहस्र रोगो की दारुण यत्रणा भोगी है। मैने कितनी बार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र पशु, कीट, मृग और पक्षी की योनि मे जन्म ग्रहण किया है। जिस प्रकार इस समय आपके घर मे उत्पन्न हुआ हू ऐसे अनेक बार राज सेवको और अनेको बार योद्धाओ के घर मे उत्पन्न हुआ हूँ। मै अनेक बार मनुष्यो का भृत्य और दास बना हूँ और अनेक बार स्वामी तथा प्रधान भी हो चुका हूँ। मैने अनेक मनुष्यो को मारा है और अनेक बार अन्य मनुष्यो द्वारा मारा गया हूँ। मैने अनेक बार दान किया है और अनेक कर औरो से ग्रहण भी किया है। हे तात! इस प्रकार सकटमय ससार चक्र मे निरन्तर भ्रमण करते हुए मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ है कि वेदो के कर्मकाण्डो के मार्ग से मै इस दुःखदायी ससार-चक्र से छुटकारा नही पा सकता। जब मै मोक्ष प्राप्ति के वास्तविक मार्ग को जान चुका हूँ तब मुझे वेदाभ्यास की क्या आवश्यकता है?"

इस प्रकार सुमति ने पुनर्जन्म के सिद्धान्त का बडे स्पष्ट रूप से वर्णन किया है और साथ ही सकाम कर्मकाण्ड के मार्ग की अपेक्षा निष्काम भाव से कर्तव्य पालन की श्रेष्ठता भी बतलाई है। साथ ही उस युग मे बौद्ध भिक्षुओ तथा हिन्दू-सन्यासियो मे ससार के सब बन्धनो को त्याग कर आत्म साक्षात्कार और ब्रह्म प्राप्ति का जो आदर्श पाया जाता है उसका भी प्रतिपादन किया है।

पर यह पुराणकार का निजी अभिमत अथवा अंतिम निर्णय नहीं है। आगे चल कर उन्होंने गृहस्थ धर्म का पालन किये बिना कर्म त्याग और संन्यास की भर्त्सना भी की है और कहा है कि जो व्यक्ति "आश्रमों के राज-मार्ग को त्याग छलाँग मार कर मुक्ति-पद पर पहुंच जाना चाहता है उसे प्रायः नीचे ही गिरना पड़ता है।"

नरकों का वर्णन प्रायः सभी पुराणों में एक-सा पाया जाता है। विभिन्न प्रकार के पापों के फल से मरणोपरान्त भयंकर कष्ट भोगने पड़ते हैं, पापियों को दण्ड प्रहार करते हुए कुश, काँटे, गड्ढे, पथरीली भूमि पर खींचकर ले जाया जाता है और बारहवें दिन भयंकर आकृति वाले यमराज के सम्मुख खड़ा किया जाता है। वहाँ "मिथ्यावादी, मिथ्या साक्षी देने वाले, मनुष्यों और अन्य प्राणियों की हत्या करने वाले, भूमि, सम्पत्ति तथा स्त्री का हरण करने वाले, अगम्या स्त्रियों से दुराचार करने वाले लोगों को रौरव नरक में डाला जाता है। वह रौरव नरक दो हजार योजन विस्तृत है और उसमें जाँघ की बराबर गहरा गढ़ा है। उस गढ़े में लाल अंगारे भरे रहते हैं जिन पर होकर पापी मनुष्य को चलना पड़ता है। उसके पैर पग-पग पर अग्नि से फटते और नष्ट होते हैं जिससे वह दिन रात में एक बार पैर रखने और उठाने में समर्थ होता है। इसी प्रकार चरण रखते हुए सहस्र योजन पार कर लेने पर वहाँ से छुटकारा पाता है और पाप शुद्धि के लिये उसी के समान दूसरे नर्क में जाता है और इसी प्रकार सब नरकों को पार करना पड़ता है।"

नरकों का यह वर्णन बड़ा विस्तृत है और विभिन्न पुराणों में इस प्रकार के वीभत्स विवरण के अध्याय के अध्याय भरे पड़े हैं। तामस नरक में कड़ाके की सर्दी पड़ती और सदैव घोर अन्धेरा छाया रहता है। वहाँ सर्दी से कष्ट पाकर पापी मनुष्य इधर से उधर दौड़ते रहते हैं और ठण्ड को मिटाने के लिये परस्पर लिपटते हैं। ठण्ड की अधिकता से दाँत ऐसे कड़कड़ाते हैं कि वे टूट कर गिर जाते हैं। भूख प्यास भी वहाँ बहुत लगती है पर उसकी निवृत्ति का कोई साधन नहीं होता। ओलों के साथ बहने वाली भयङ्कर हवा शरीर की हड्डियों को तोड़ देती है और मज्जा तथा रक्त बाहर गिरता है। वे भूखे

प्राणी उसी को खाकर भूख को मिटाते है। इस प्रकार अनेक वर्षो तक वे अन्धकार मे पडे कष्ट भोगा करते है।

तीसरे 'निकृन्तन' नामक नरक मे बहुत से चक्र लगातार घूमते रहते है। यमदूत पापी जीवो को उनके ऊपर चढा कर तेजी से घुमाते है और काल-सूत्र नामक यत्र से उनके प्रत्येक अङ्ग को बार-बार काटते रहते है। पर इससे उन पापियो का प्राण नही निकलता वरन् शरीर के सैकडो टुकडे होने पर भी वे फिर जुड जाते है और उनको पुनः काटे जाने की महाकष्ट कारक प्रक्रिया सहन करनी पडती है। चौथे 'अप्रतिष्ठ' नरक मे भी वैसे ही कुम्हारो के से चक्र और घटी-यन्त्र होते है। पापियो को उन चक्रो पर चढा कर निरन्तर घुमाया जाता है और कभी विश्राम नही लेने दिया जाता जिससे उनको अपार कष्ट होता है। इसी प्रकार अन्य पापियो को रहट के समान एक घटीयन्त्र मे बाँधकर नीचे ऊपर घुमाया जाता है, जिससे उनके मुख से रक्त, लार गिरती है, आँखो से अश्रु बरसते है और वे असह्य कष्ट का अनुभव करते रहते हैं।

पाँचवा 'असिपत्रवन' अत्यन्त भयङ्कर है। जब उसमे पापी मनुष्य गर्मी से व्याकुल होकर हरे-भरे पेडो की छाया मे भागते है तो उनके ऊपर पेडो के पत्ते जो तलवारो की तरह होते है गिर जाते है और उनके अगो को छिन्न-भिन्न कर डालते हैं। उसी समय कुत्ते रूपी यमदूत वहाँ आकर उनके टुकडे-टुकडे कर डालते है। छठवाँ 'तप्त कुम्भ' नरक है जिसमे पापियो को खौलते हुए तेल और लोहे के चूर्ण से भरे घडो मे डालकर घोर कष्ट पहुँचाया जाता है।

इसमे सन्देह नही कि नरको का यह वर्णन हृदय को कँपाने वाला है और उसे सुनकर एक बार घोर पापी व्यक्ति भी सहम जाता है। यह कह सकना तो कठिन है कि इस विश्व के किसी कोने मे वास्तव मे कोई ऐसा स्थान है या नही जहाँ उपर्युक्त प्रकार के अनुभव होते हो, पर यदि हम इस समस्या पर आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करते है तो मालूम पडता है कि क्रोध, लोभ, अहङ्कार,मोह,कामवासना और मद जो मनुष्य का पतन करने वाले षड्रिपु कहे गये है, वे ही नर्क रूप है और जो व्यक्ति उनके वशीभूत हो जाता है वह उप-

युक्त नरको की सी पीडा इसी दुनियाँ मे भोगता रहता है। क्रोध की अग्नि "रौरव" नरक से कम नही होती और कितने ही व्यक्ति उसके पजे मे पडकर सारा जीवन घोर अशान्ति और मानसिक जलन मे ही व्यतीत कर देते है। इसी प्रकार जिस व्यक्ति के पीछे लोभ का भूत लग जाता है वह सदा प्रत्येक पदार्थ का अभाव ही अनुभव रता है। उसकी तृष्णा की कभी पूर्ति नही होती और इससे उसके उत्साह और आशाओ पर तुषारपात हो जाता है और वह 'तम' नरक के कष्टो को इस पृथ्वी पर ही सहन करता रहता है। 'निकृन्तन' नर्क का वर्णन किसी अहङ्कार ग्रस्त प्राणी के वर्णन से ही मिलता-जुलता है। अहङ्कारी व्यक्ति अन्य व्यक्तियो को तुच्छ समझ कर बडे गरूर के साथ अपने बडप्पन की तरह-तरह की कल्पनाये खडी करता रहता है, पर वे सब वास्तविकता के धरातल पर टुकडे-टुकडे हो जाती है। इससे उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है और वह असह्य पीडा अनुभव करता है।

'अप्रतिष्ठ' नरक मोह का परिणाम होता है। सासारिक पदार्थो के मोह मे फॅसकर वह एक बार अपने को धन्य और सफल समझने लगता है, पर फिर जब उनका वियोग हो जाता हे तो खेद से भरकर आँसू बहाता रहता है। जल भरने के रहट की तरह वह बार-बार भरता और खाली होता रहता है और इसके परिणाम स्वरूप उसके हृदय मे सदैव हलचल मचती रहती है। 'असिपत्र वन' नरक दूपित कामवासना का रूपक है। दुराचार या व्यभिचार की वासना यद्यपि दूर से बडी सुन्दर और मनोमोहक जान पडती है, पर उसका परिणाम तलवार या छुरी से आलिगन करने के समान ही नाशकारी होता है। क्रोधाग्नि के समान कामाग्नि भी बहुत जलाने वाली है। इससे शक्ति का और भी क्षय होता है और मनुष्य का जीवन नष्ट प्राय हो जाता है। छठा नर्क 'तप्त कुम्भ' कहा गया है जो 'मद' का परिणाम होता है। इसके कारण मनुष्य अपनी छोटी-मोटी सफलताओ या सामान्य वैभव पर बहुत फूलता रहता है, पर जब वह दूसरो को अपने से बढा-चढा देखता है तो उसके भीतर ईर्ष्या द्वेष की ऐसी अग्नि प्रज्वलित होती है कि शरीर का समस्त रस-रक्त खौलने लगता है और हृदय मे लोहे के हजारो नुकीले टुकडे चुभने लगते है।

मार्कण्डेय पुराण का यह नर्क-वर्णन एक बहुत बडा प्रभावशाली रूपक है जिसका आशय यही है कि यदि मनुष्य को सासारिक व्यथाओ,पीडाओ,ज्वालाओ से बचना है तो उसे काम, क्रोध, आदि मानसिक दुष्प्रवृत्तियो से बचकर सदाचार पूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहिये । सदाचार और इद्रियो का सयम ही स्वर्ग का द्वार है और इसके विपरीत इन्द्रियो का दुरुपयोग, दुराचरण हर प्रकार से कष्टदायक और दुर्गति मे ग्रस्त करने वाला है । साथ ही हम यह भी स्वीकार करते है कि नर्क-वर्णन मे तथ्य का अश चाहे कितना भी कम या ज्यादा हो, पर सामान्य अशिक्षित जनता पर उसका बडा प्रभाव पडा है और करोडो व्यक्ति उससे भयभीत पाप कर्मो से न्यूनाधिक परिणाम मे बचते रहते है ।

महामानव के लक्षण—

नरको के वर्णन के प्रसग मे विपश्चित नामक एक राजा का भी कथानक आ गया है, जो थोडी देर के लिये नरक दर्शन के लिये लाया गया था और जिसने उस अवस्था मे भी परोपकार धर्म को नही छोडा । अगणित नारकीय जीवो का उसने उसी समय उद्धार किया । उसका सम्पर्क प्राप्त होने से समस्त नर्कवासी जीवो को कुछ सुख मिलने लगा, यह देखकर उसने स्वर्ग—सुख को छोड कर वही रहने का आग्रह किया और कहा कि उसने जो कुछ पुण्य किया है उसके बदले मे इन पापियो का उद्धार कर दिया जाय । वह वहाँ से तभी हटा जब वहाँ पर उपस्थित नरक निवासियो को छुटकारा मिल गया । राजा की इस महामानवता के फलस्वरूप भगवान् विष्णु का विमान उसे लेने आया और उसे स्वर्ग की सर्वोच्च स्थिति प्राप्त होगई ।

ऐसा पुण्यवान् राजा भी किस कारण नर्क दर्शन के लिये लाया गया इसकी कथा भी बडी शिक्षाप्रदहै । यमदूतने उसे बताया कि विदर्भ देश की राजकुमारी आपकी पत्नी थी । जब वह ऋतुमती हुई तो आप उसकी उपेक्षा करके केकय देश की रानी के साथ बिहार करते रहे । ऋतुकाल के समय तो स्त्री-पुरुष का समागम एक प्राकृतिक नियम है जिससे प्रजा की उत्पत्ति होती है और सृष्टि-क्रम स्थिर रहता है । इस दृष्टि से उसे दूषित नही बतलाया गया है ।

पर अन्य समय मे स्त्री का उपभोग कामसक्तता का लक्षण है। प्राकृतिक नियम का उल्लघन करके विषयासक्तता का आचरण धर्म की दृष्टि से एक पाप कर्म ही है और इसी के फलस्वरूप आपको कुछ क्षणो के लिये नर्क प्रदेश मे आना पडा। शास्त्र मे भी कहा गया है कि जैसे हवन के समय अग्नि घृताहुति की प्रतीक्षा करती है इसी प्रकार ऋतुकाल मे स्वय प्रजापति ऋतुआधान की प्रतीक्षा करता है। दूसरी शिक्षा इस आख्यान से यह भी प्राप्त होती है कि त्याग सबसे बडा पुण्य है और इसके द्वारा सामान्य पुण्य भी अनेक गुणा बढ जाता है।

पातिव्रत धर्म की लोकोत्तर महिमा--

पातिव्रत का आदर्श भारतवर्ष की एक ऐसी विशेषता है जिसका अस्तित्व ससार के अन्य किसी समाज मे नही पाया जाता। भारतीय धर्म-कथा लेखको ने पति-पत्नी के सम्बन्ध को अमिट बना दिया है और उसकी शृङ्खला को जन्मान्तर तक विस्तृत कर दिया है। इस सम्बन्ध मे जो आख्यान विभिन्न स्थानो मे पाये जाते है उनमे अतिशयोक्ति से काम लिया गया है, पर उसका उद्देश्य यही है कि लोगो के हृदय मे यह तथ्य भली-भाँति जम जाय। मार्कण्डेय पुराण के सोलहवे अध्याय मे एक पतिव्रता द्वारा सूर्य का उदय होना रोक देने की कथा ऐसी ही है। ब्राह्मणी का पति कोढी होने पर भी वेश्यागमन के लिये लालायित हुआ,पर मार्ग मे उसे माण्डव्य ऋषि द्वारा सूर्योदय होते ही मरने का शाप दे दिया गया। इस पर पतिव्रता ने कहा कि'अब सूर्य का उदय ही नही होगा ?' ऐसा होने पर सब प्रकार के यज्ञ, सध्या, श्राद्ध आदि भी रुक गये। तब देवताओ की प्रार्थना पर अत्रि ऋषि की पतिव्रता पत्नी उस ब्राह्मणी के पास गई और उसे राजी करके सूर्योदय कराया और उसके पति की मृत्यु हो जाने पर उसे अपने पतिव्रत के बल से पुनर्जीवित किया। इस आख्यान का उद्देश्य पतिव्रत धर्म की अलौकिक शक्ति का प्रभाव सामान्यजनो के हृदय मे स्थापित करना ही है, जो समाज के हित की दृष्टि से एक कल्याणकारी प्रवृत्ति ही मानी जायगी। इसी घटना के परिणाम स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और शिव की शक्तियो ने चन्द्रमा, दत्तात्रेय और दुर्वासा के रूप मे अनुसूया के पुत्र होकर जन्म लिया।

मदालसा का उपाख्यान—

मदालसा का उपाख्यान कई दृष्टियो से धार्मिक जगत् मे प्रसिद्ध है और वह भारतीय नारियो की आध्यात्मिक ज्ञान–प्रियता तथा वैराग्य-भावना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। मदालसा राजकुमार ऋतध्वज की पत्नी थी जो उनको पातालकेतु नामक दैत्य का सहार करते हुए मिली थी। कुछ समय पश्चात् पातालकेतु के एक भाई ने ऋतध्वज के साथ छल करके मदालसा को यह असत्य समाचार सुनाया कि "ऋतध्वज तपस्वियो की रक्षा करते हुए किसी दुष्ट दैत्य के हाथ से मारे गये ?" इसको सुनकर मदालसा ने शोक मग्न होकर उसी समय प्राण त्याग दिये। ऋतध्वज को वापस आने पर इस शोकजनक घटना का हाल विदित हुआ और उसने कहा—"यह बाला धन्य थी जिसने मेरी मृत्यु की बात सुनते ही प्राण त्याग दिये। मै बडा कठोर प्राणी हूँ जो उसके बिना जीवित हूँ। पर यदि मै जीवन दे डालूँ तो उसका क्या उपकार होगा ? इसलिये मै यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि मदालसा ने मेरे लिये प्राण त्याग दिया तो मै भी जीवनभर अन्य स्त्री को अपनी सहचारिणी नही बनाऊँगा और सदैव उसकी स्मृति को ताजा रखकर परोपकारमय कार्यो मे ही लगा रहूँगा।"

कुछ समय पश्चात् ऋतध्वज की दो नाग कुमारो से मित्रता हो गई जो ब्राह्मण के वेश मे उसके पास आते थे। उन्होने ऋतध्वज की मनोव्यथा को जान कर एक दिन उसका जिक्र अपने पिता अश्वतर नाग से किया और कहा कि हमको कोई ऐसा उपाय नही सूझता कि जिससे उसका कुछ उपकार किया जा सके। जो मर चुका उसे सिवाय भगवान् के और कौन फिर से जीवित कर सकता है। पिता ने कर्म की महिमा बतलाते हुए कहा—"द्युलोक और पृथ्वी मे ऐसा कोई असम्भव कार्य नही है जिसे मन और इन्द्रियो के सयम से युक्त मनुष्य सिद्ध न कर सके। कर्म सर्व प्रधान है। चलती हुई चींटी अनेक योजन तक चली जाती है, पर बिना चले शीघ्रगामी गरुडा भी जहाँ का तहाँ पडा रहता है।"

अपने कथन को सत्य सिद्ध करने के लिये अश्वतर ने शिवजी की तपस्या करके मदालसा को जीवित करा दिया और उसे ऋतध्वज को प्रदान करके उसके जीवन को पुन सरस और सुखी बना दिया। इस प्रकार उन्होने यह भी दिखला दिया कि [मित्रता का अर्थ केवल ऊपरी शिष्टाचार ही नही है वरन् मनुष्य को मित्र का सच्चा हित साधन करने के लिये कठिन से कठिन कार्य को अगीकार करने मे भी सकोच नही करना चाहिये।]

जब मदालसा के प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ और राजा ऋतध्वज ने उसका विक्रान्त नाम रखा तो वह बहुत हँसने लगी। राजा की कल्पना थी कि मेरा पुत्र समस्त शत्रुओ को नष्ट करने वाला महावीर योद्धा बनेगा और बडे-बडे वीरता के काम करके वश के नाम को बढायेगा। पर मदालसा उसको अपना दूध पिलाने के साथ शैशवावस्था से ही लोरियो के रूप मे अध्यात्म ज्ञान की शिक्षा देने लगी। वह कहती थी—

"हे तात! तू तो शुद्ध आत्मा है। तेरा कोई नाम नही है। यह कल्पित नाम तो तुझे अभी मिला है। यह शरीर भी पाँच भूतो का बना है। न वह तेरा है, न तू इसका है। फिर तू किसलिये रोता है?"

"जैसे इस जगत् मे अत्यन्त दुर्बल भूत अन्य भूतो के सहयोग से वृद्धि को प्राप्त होते है, उसी प्रकार अन्न और जल आदि भौतिक पदार्थो के पाने से पुरुष के पाच भौतिक देह की पुष्टि होती है। इससे तुझ शुद्ध आत्मा की न तो वृद्धि होती है और न हानि ही होती है।"

"तू अपने इस देह रूपी चोले के जीर्ण शीर्ण होने पर मोह न करना शुभाशुभ कर्मो के अनुसार यह देह प्राप्त हुआ है। तेरा यह चोला माँस-मेद आदि से बँधा है, पर तू इससे सर्वथा पृथक् है।"

"कोई जीव पिता के रूप मे प्रसिद्ध है, कोई पुत्र कहलाता है, किसी को माता और किसी को प्रिय पत्नी कहते है। कोई 'यह मेरा है' कहकर अपनाया जाता है और कोई 'यह मेरा नही है' इस भाव से पराया माना जाता है। इस प्रकार ये भूत समुदाय के ही नाना रूप है, ऐसा तुझे मानना चाहिये।"

"यद्यपि समस्त भोग दु ख रूप है तथापि मूढ चित्त मानव उन्हे दु ख दूर करने वाला तथा सुख की प्राप्ति कराने वाला समझ लेता है। पर जो ज्ञानी है और जिनका चित्त मोह से आच्छन्न नही हुआ है, वे उन भोगजनित सुखो को भी दु ख ही मानते है।"

"स्त्रियो की हँसी क्या है हड्डियो (दाँतो) का प्रदर्शन। जिसे हम अत्यन्त सुन्दर नेत्र कहते हे वे मज्जा की कलुषता है। कुच आदि अग माँस की ग्रन्थियाँ है। इसलिये पुरुष जिस स्त्री पर मोह के भाव से अनुराग रखता है क्या वह एक प्रकार से हाड-माँस की ढेरी ही नही है ?"

"पृथ्वी पर सवारी चलती है, सवारी पर यह शरीर बैठा रहता है। और इस शरीर के भीतर भी एक दूसरा पुरुष बैठा हुआ है। पर हम सवारी और पृथ्वी पर वैसी ममता नही रखते जैसी की अपनी इस देह मे रखते है। यही मूर्खता है।"

इसी प्रकार के सत् उपदेश देकर मदालसा ने अपने प्रथम तीन पुत्रो को अध्यात्म मार्ग का पथिक और सासारिक प्रपच से विरागी बना दिया। तब राजा ने उससे कहा कि अब एक पुत्र को राजधर्म तथा गृहस्थ धर्म की भी शिक्षा देनी चाहिये जिससे वह हमारे उत्तराधिकार को ग्रहण करके राज्य-सचालन कर सके। राजा के आग्रह को स्वीकार करके मदालसा चौथे पुत्र अलर्क को लोरियाँ सुनाते हुए इस प्रकार उपदेश देने लगी—

"बेटा! तू धन्य है जो शत्रु रहित होकर चिरकाल तक पृथ्वी का पालन करता रहेगा। पृथ्वी के पालन से तुझे सुख की प्राप्ति हो और धर्म के फलस्वरूप तुझे अमरत्त्व मिले। पर्वो पर सद् ब्राह्मणो को भोजन से तृप्त करना, बन्धु-बान्धवो की इच्छापूर्ण करना, अपने हृदय मे दूसरो की भलाई का ध्यान रखना और पराई स्त्रियो की ओर कभी मनको न जाने देना। अपने मन मे सदा भगवान् का चिन्तन करना, उनके ध्यान द्वारा अन्त करण के काम, क्रोध आदि छहो शत्रुओ को जीतना, ज्ञान के द्वारा माया का निवारण करना और जगत् की अनित्यता का विचार करते रहना। धन की आयके लिये राजाओ

पर विजय प्राप्त करना, यश के लिये धन का सद्व्यय करना, परायी निन्दा सुनने से विरत रहना और विपत्ति मे पडे हुए व्यक्तियो का उद्धार करना ।

"बाल्यावस्था मे तू भाई बन्धुओ को आनन्द देना, कुमारावस्था मे आज्ञा पालन द्वारा गुरुजनो को सन्तुष्ट रखना, युवावस्था मे गृहस्थ धर्म का पालन करके कुल को सुशोभित करने वाली पत्नी को प्रसन्न करना और वृद्धावस्था मे वनके भीतर निवास करके वहाँ रहने वाले त्यागी तपस्वियो की सहायता करना ।

हे तात ! राज्य करते हुए मित्रो को सुख देना, सज्जनो की रक्षा करते हुए लोकोपयोगी यज्ञो और उत्सवो की परम्परा को स्थिर रखना और देश की रक्षा के लिये आवश्यकता हो तो दुष्टो, शत्रुओ का सामना करके प्राण भी निछावर कर देना ।"

राजधर्म और राजनीति का आदर्श—

माता द्वारा खेल खेलते हुए ही इस प्रकार के जीवनादर्श के उपदेश प्राप्त करता हुआ अलर्क जब कुछ बडा हो गया और उसका उपनयन सस्कार हुआ तो उसने माता को प्रणाम करके कहा कि "लोक और परलोक के सुख तथा जीवन की सफलता प्राप्त करने के लिये क्या करना चाहिये इसका मेरे प्रति उपदेश करिये ।"

मदालसा ने कहा—"पुत्र-राज्य का सर्वप्रथम कर्तव्य धर्मानुकूल आचरण करते हुए प्रजा की रक्षा और उसे सतुष्ट रखना है राजा को उचित है कि वह सातो व्यसन-कटुभाषण, कठोर दण्ड, धन का अपव्यय, मदिरापान, कामासक्ति, आखेट मे व्यर्थ समय गँवाना और जुआ खेलना से सदैव बचकर रहे क्योकि ये मूलोच्छेद करने वाले है । अपनी गुप्त मत्रणा को कभी प्रकट नही होने देना चाहिये, क्योकि शत्रु सदैव ऐसे मौके की ताक मे रहते है और गुप्त भेदो का पता लगाकर आक्रमण करके राज्य का नाश करने को तत्पर हो जाते है । राजा को अपना गुप्तचर-विभाग बहुत उत्तम रूप से सगठित करके रखना चाहिये जिससे मालूम पडता रहे कि शत्रु उसके राज्य मे किस प्रकार की भेदनीति या तोड फोड की योजना कर रहे है और अपने साथियो मे से कौन सच्चा है और कौन

शत्रु के बहकावे मे आ गया है। सब के साथ प्रेम युक्त व्यवहार करते हुए भी राजा को अपने मित्रो तथा सगे सम्बन्धियो पर भी आँख बन्द करके विश्वास नही करना चाहिये, पर आवश्यकता पडने पर शत्रु पर भी विश्वास कर लेना चाहिये। उमे युद्ध तथा शान्ति के अवसरो का पूरा ज्ञान रखना चाहिये। सन्धि (शत्रु से मेल रखना) विग्रह (युद्ध छोडना) यान (आक्रमण करना) आसन (अवसर की प्रतीक्षा मे रहना) द्वैधीभाव (दुरगी नीति से काम लेना) समाभाव (किसी बलवान् राजा की शरण लेना)—इन छ उपायो का राजा को पूरा ज्ञान होना चाहिये। राजा को पहले अपनी आत्मा को जीतना चाहिये, फिर मत्रियो को जीते, फिर कुटुम्बीजनो तथा सेवको के हृदय पर अधिकार करे, फिर समस्त प्रजा को अपना अनुरक्त बनाये और तब शत्रुओ के साथ विरोध करे। जो इन सबको जीते बिना ही शत्रुओ से विरोध कर लेता है वह प्राय असफलता का ही मुख देखता है और अपनी हानि कर लेता है।

"काम, क्रोध, लोभ, मद, मान और हर्षोन्मत्तता ये मनुष्यो के लिये पतन कराने वाले दोष है। राजा तो इनके वशीभूत होकर नष्ट ही हो जाता है। राजा को कौआ, कोयल, भौरा, हिरन, साँप, हस मुर्गा और लोहे के व्यवहार से भी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। जिस प्रकार कौआ सदैव आलस्य रहित रहता है, कोयल दूसरो से अपना काम निकालती है, भौरा सब से रस लाभ लेता रहता है, हिरन निरन्तर चौकन्ना रहता है, साँप फुफकार कर सब को डराता रहता है, हंस नीर क्षीर विवेक रखता है, मुर्गा ब्रह्म मुहूर्त मे ही जगकर कर्मरत हो जाता है तथा लोहा सबके लिये अभेद्य और तीक्ष्ण रहता है, वैसा ही आचरण राजा को रखना चाहिये। राजा चीटी की तरह उचित समय पर समस्त आवश्यक, पदार्थो का सग्रह करे। उसे जानना चाहिये कि जिस प्रकार एक छोटी सी आग की चिन्गा बडे-बडे वनो को जला डालने की शक्ति रखती है, इसी प्रकार एक छोटा-सा शत्रु अवसर आ जाने पर बहुत अधिक हानि कर सकता है, जिस प्रकार सेमल का छोटा-सा बीज धीरे-धीरे एक बहुत विशाल पेड के रूप मे परिणत हो जाता है उसी प्रकार कोई सामान्य शत्रु भी बढते-बढते अत्यन्त प्रबल हो सकता है। इस लिये उसे आरम्भ मे ही उखाड फेकना चाहिये।

"राजा को सब देवताओ का अश कहा गया है और उसे इन्द्र, वायु, सूर्य, चन्द्र एव यम इन पाँच देवो की तरह पृथ्वी का पालन करना चाहिये, जैसे इन्द्र चार महीने तक वर्षा करता है वैसे ही राज्य को दान दक्षिणा, उपहार द्वारा प्रजा को प्रसन्न करना चाहिये। जैसे सूर्य आठ मास तक सूक्ष्म रूप से जल सोखता रहता है वैसे ही राजा को ऐसे ढग से कर वसूल करते रहना चाहिये जिससे किसी को कष्ट का अनुभव न हो। जिस प्रकार यमराज समयानुसार भले-बुरे सबको अपने नियत्रण मे रखता है और सदैव उचित न्याय ही करता है वैसे ही राजा को सज्जन और दुष्ट सबको स्ववश मे रखना चाहिये। जैसे वायु अनजान मे ही सर्वत्र पहुँचता रहता है, उसी प्रकार राजा को गुप्तचरो द्वारा मित्र-शत्रु सबका पूरा भेद मालूम करते रहना चाहिये। जैसे पूर्ण चन्द्रमा को देख कर सब मनुष्य प्रसन्न होते है वैसे ही राजा को अपने मधुर व्यवहार द्वारा सबको सुखी और प्रसन्न रखना चाहिये। जो कुमार्गगामी और स्वधर्म से विचलित मनुष्यो को उनके धर्म मे स्थापित कर देता है वही सच्चा राजा है। सब भूतो-प्राणियो के पालन मे ही राजधर्म की सफलता मानी जाती है।"

गृहस्थ धर्म की विशेषता—

मार्कण्डेय पुराण मे गृहस्थ को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है और स्पष्ट कहा है कि पितृगण, ऋषिगण, देवगण, भूतगण, नरगण, कृमि, कीट, पतगगण, पक्षिगण और असुरगण—ये समस्त ही गृहस्थाश्रम का अवलम्बन कर जीवन यात्रा निर्वाह करते है। 'गृहस्थ हमको अन्न देगा या नही' यह चिन्ता करके उसी के मुख की तरफ देखते रहते है।

आगे चलकर गृहस्थ की उपमा एक गाय से दी है कि "ऋग्देव जिसकी पीठ, यजुर्वेद मध्य, सामवेद मुख और ग्रीवा, इष्टापूर्त उसका सीग, साधुसूक्त रोम, शान्ति और पुष्टि कर्म उसका मलमूत्र एव वर्ण और आश्रम ही उस धेनुकर प्रतिष्ठा है। इस धेनुका कभी क्षय नही होता। स्वाहा, स्वधाकार, वषट्कार और हन्तकार इस धेनु के थन है। इनमे से देवगण स्वाहाकार, पितृगण वषट्कार और मनुष्य-गण हन्तकार स्तन का पान करते रहते है। जो गृहस्थ इस प्रकार देवता आदि की तृप्ति नही करता वह महापापी होता है। इस प्रसग मे एक बहुत महत्वपूर्ण श्लोक यह है—

श्रीमत ज्ञातिमासाद्य यो ज्ञातिरवसीदति ।
सीदताय तत्कृत तेन तत्पाप स समश्नुते ।।

"किसी निर्धन और असहाय व्यक्ति के क्षुधार्त होकर प्रार्थना करने पर उसको भी आहार दे । सम्पत्ति होने पर समर्थ पुरुष को उसे भोजन कराना चाहिये । जो जाति वाला श्रीमान् व्यक्ति के समीप होते हुए भी दुखी रहता है और इस कारण कोई पाप-कर्म करता है तो श्रीमान् को भी पाप के अंश का भागी होना पडता है ।"

अगर हम वर्तमान समय की विचारधारा और भाषा के अनुसार इस विचार को प्रकट करे तो इसे भारतवर्ष का धार्मिक साम्यवाद कह सकते है । अपने आस पास तथा परिचित समाज मे कोई व्यक्ति भूखा, नगा, अभाव ग्रस्त न रहे इसका ध्यान रखना सम्पत्तिशाली व्यक्तियो का कर्तव्य है । परिस्थिति वश सम्पति कही भी कम या ज्यादा आती, जाती रहे पर वास्तव मे वह समस्त समाज की है और उसका उपयोग उसके हित की दृष्टि से ही किया जाना चाहिये । जो व्यक्ति किसी उपाय अथवा सयोग से सम्पत्ति को पाकर उसे निजी समझकर ताले मे बन्द रखने की चेष्टा करता है, उसके स्वाभाविक प्रवाह को रोकता है वह बहुत बडा सामाजिक पाप करता है । इस प्रकार अन्य लोगो को जीवन साधनो का अभाव होने से वे जो कुछ चोरी, जमा, ठगी, लूटमार या अन्य पाप कर्म करते है उनके उत्तरदायी वास्तव मे वे व्यक्ति ही होते है जो किसी प्रकार सम्पत्ति के प्रवाह को अवरुद्ध करते है ।

आज हम समाज मे इसी दूषित प्रणाली को जोरो से फैलता देख रहे है । आज चारो तरफ यही दृश्य दिखलाई पड रहा है कि 'धनी दिन पर दिन अधिक धनवान् बनता जाता है और गरीब निरन्तर अधिक गरीब होना जाता है ।' मानव धर्म की निगाह से यह प्रवृत्ति अत्यन्त जघन्य और कुफल उत्पन्न करने वाली है । इसी के परिणाम स्वरूप समाज मे तरह-तरह के विग्रह, फूट, अनेकता और अनुचित विरोध भावो की उत्पत्ति होती है और क्लेश तथा अशान्ति की वृद्धि होती है । इसी लिये शास्त्रो मे कदम-कदम पर दान की प्रेरणा दी है । उसका आशय यही है कि मनुष्य को अपनी आवश्यकता से अधिक जो

कुछ मिल जाय उसे दान, धर्म, यज्ञ अतिथि सत्कार आदि के रूप मे स्वेच्छा से समाज को ही लौटा देना चाहिये। इसी भाव को कई सौ वर्ष पहले महात्मा कबीर ने एक छोटे दोहे मे प्रकट किया था—

पानी बाढ्यो नाव मे, घर मे बाढ्यो दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यही सयानो काम॥

जिस प्रकार नाव के भीतर पानी जमा हो जाने से वह डूबने लगती है उसी प्रकार एक व्यक्ति के पास आवश्यकता से अधिक धन का भडार जमा हो जाने से अनेक प्रकार के दोष दुर्गुण उत्पन्न होने लगते हैं। उससे एक तरफ व्यक्तिगत अहकार, लोभ, निष्ठुरता, दुश्चरित्रता की प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती है और दूसरी तरफ अभाव ग्रस्तता दीनता, हीन आचरण आदि बढने लगते है। इस दूषित परिस्थिति को रोकने के लिये भारतीय शास्त्रकारो ने स्वेच्छा से त्याग का उपदेश दिया था और जब तक समाज उचित रूप से उसका पालन करता रहा तब तक यहाँ शान्ति और सामाजिक एकता कायम भी रही। आज अनेक देशो के शासक या सत्ताधारी दल साम्यवाद के नाम से इसी कार्य को करने की चेष्टा करते रहे है, भारतीय सविधान का अन्तिम लक्ष्य भी 'समाजवाद' की स्थापना बतलाया गया है, पर व्यक्तियो की स्वार्थपरता और लोभ की भावनाओ के रहते हुए इन सब प्रयत्नो का परिणाम बहुत कम दिखलाई पड रहा है। 'मार्कण्डेय पुराण' के लेखक ने इस सत्य को स्पष्ट शब्दो मे प्रकट करके निस्सन्देह समाज-निर्माण एक बहुत बडे समाज निर्माण के सिद्धान्त पर प्रकाश डाला है।

अनासक्त भाव की श्रेष्ठता--

मदालसा उपाख्यान के अन्त मे मनुष्यो के व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन के इन दोषो को मिटाने का एक सीधा उपाय अनासक्त भावना को उत्पन्न करना बताया है। क्योकि सब प्रकार के सम्पत्ति और चरित्र सम्बन्धी दोष प्राय: तभी बढते है जब मनुष्य अपने आत्म-स्वरूप को भूलकर इस पचभौतिक जगत् को ही सत्य और अपना अन्तिम लक्ष्य समझ बैठता है। इस उपदेश को स्पष्ट रूप से समझाने के लिये पुराणकार ने मदालसा के पुत्र अलर्क की कथा को आगे

बढाते हुए कहा है कि मदालसा के उपदेशानुसार धर्मराज्य करते हुए भी वह अन्तिम अवस्था मे सामारिक माया मोह मे विशेष फम गया और आत्मोत्थान के वास्तविक लक्ष्य को भूल ही गया। यह देख कर उसके बडे भाई वनवासी सुबाहु को चिन्ता हुई और उसने एक युक्ति की दृष्टि से काशीराज के पास पहुँच कर उसे अलर्क पर आक्रमण करने की प्रेरणा दी। इस आक्रमण का सामना न कर सकने के कारण अलर्क की मोह निद्रा टूटी उसने माता की अन्तिम चिह्न स्वरूप अगूठी के भीतर लिखा हुआ यह उपदेश पढा—

सङ्ग सर्वात्मना त्याज्य स चेत् त्युक्तु न शक्यते।
स सद्भि सह कर्त्तव्य सता सङ्गो हि भेषजम् ॥

"मनुष्यो को आसक्ति का पूर्णतया त्याग करना चाहिये, पर यदि वैसा सम्भव न हो तो सत्पुरुषो की सगति ही करनी चाहिये, क्योकि विषयासक्ति की औषधि सत्सग ही है।"

इस उपदेश से अलर्क को जो मार्ग दर्शन हुआ तदनुसार वह सत्सङ्ग के उद्देश्य से महात्मा दत्तात्रेय के पास जा पहुँचा और उनसे अपनी विपत्ति का पूरा वर्णन सुनाकर दुख दूर करने की प्रार्थना की। दत्तात्रेय ने उसकी बुद्धि पर पडे पर्दे को देख लिया और सब से प्रथम प्रश्न यही किया कि "तुम अपने मन मे अच्छी तरह सोच विचार कर मुझे यह बतलाओ कि तुमको दुख किस प्रकार का है और वह क्यो उत्पन्न हुआ है? तुम अपने वास्तविक स्वरूप पर विचार करो, साँसारिक वस्तुओ से उसके सम्बन्ध का निर्णय करो और तब बतलाओ कि किस बात ने तुमको क्यो दुखी किया है?" इन शब्दो को सुनकर जब अलर्क राज्य पर आक्रमण सम्बन्धी समस्त घटना पर आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करने लगे तो उनका सशय बहुत शीघ्र दूर हो गया और वे हँसते हुए कहने लगे—मै वास्तव मे बडे भ्रम मे पडा था कि इन पंच तत्वो को ही जपना मुख्य आधार समझ कर उनके लिए शोक कर रहा था। अगर तात्विक दृष्टि से विचार किया जाय तो मै न तो भूमि हूँ, न जल हूँ, न अग्नि हूँ न वायु हूँ और न आकाश ही हूँ। इन सब

पदार्थो मे न्यूनता अथवा अधिकता होने से ही हम शोक और हर्ष करते है पर आत्मा की दृष्टि से यह निरर्थक है। यदि सुख-दुःख का कारण मन और बुद्धि को माने तो आत्मा इनसे भी अलग है। इसलिये वास्तव मे मेरा कोई राज्य है, न कोष है, न कोई मेरा शत्रु है। जैसे विभिन्न पात्रो मे भरे हुए जल मे आकाश का प्रतिविम्ब अलग-अलग जान पडता है, पर वास्तव मे वह एक ही होता है उसी प्रकार मै गलती से काशीराज तथा बडे भाई सुबाहु को अपने से पृथक् समझ रहा हूँ। ये लोग मेरे दुःख का कारण नही, वास्तव मे मेरे दुःख का कारण मेरी ममता है। यदि ममता की भावना को त्यागकर विचार करे तो कही दुःख नही है। जब बिल्ली किसी गौरैया या चुहिया को पकडने जाती है तो हमको कुछ भी दुःख नही होता, और जब वह घर मे पाले तोता या मुर्गे को खा डालती है तो हम शोक करने लगते है। इसलिए आत्मा की दृष्टि से हमको कोई दुःख या सुख नही होता। किसी एक भौतिक पदार्थ द्वारा दूसरे भौतिक पदार्थ को उत्पीडित देखकर ही हम झूठमूठ सुख-दुःख की कल्पना कर सकते है।"

दत्तात्रेय जी ने राजा अलर्क की भ्रांति को इस प्रकार दूर करके उसे दुःख से मुक्त होने का मार्ग बतलाया कि तुम्हारा सोचना युक्तियुक्त है। वास्तव मे सब प्रकार के दुःखो का मूल यह 'मेरा-मेरा' ही है। जब हम इस ममता को त्याग देते है तो दुःख की जड स्वयं ही कट जाती है। यह संसार कर्मो का एक महावृक्ष है। उसका अंकुर अहंभाव मे से फूटता है। ममता ही उसका भारी तना है। घर-बार का मोह उसकी शाखाये है, स्त्री-पुत्र धन, सम्पत्ति आदि पत्ते है। यह वृक्ष निरन्तर बढता रहता है और तब उस पर पाप-पुण्य के फूल और सुख-दुःख के फल लगते है। अज्ञानी लोग उसे लालसा, कामनाओ द्वारा सीचते रहते है। यह वृक्ष बन्धन-मुक्ति के मार्ग को रोक कर खडा रहता है। जो लोग संसार रूपी वन मे भ्रमण करते हुए उसका आश्रय लेते है उन्हे सच्चा सुख कहाँ मिल सकता है? इसलिए आवश्यकता है कि अपने ज्ञान रूपी कुठार को सत्संग रूपी सान धरने के पत्थर पर तेज करके इस ममता रूपी वृक्ष को

काट डाला जाय। तभी हम आत्म-ज्ञान या ब्रह्म-ज्ञान के शांतिदायक उद्यान मे पहुच सकते है जहाँ धूल और काटो का भय नही है।"

इसके पश्चात् दत्तात्रेय ने अलर्क को योग साधन का पूरा विधि-विधान उसके बीच मे आने वाले उपसर्ग और प्रलोभनो की चेतावनी दी और योगी के आचार व्यवहार का उपदेश दिया। अन्त मे ओकार की महिमा को समझाते हुए कहा कि उसकी 'अ' 'उ' 'म' तीन मात्राये सत, रज, तम तीनो गुणो अथवा ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीन ईश्वरीय शक्तियो के प्रतीक है और चौथी ऊर्ध्व मात्रा परब्रह्म की ओर सकेत करती है। जो साधक ओकार के इस स्वरूप को हृदयगम करके उसका ध्यान करेगा वह केवल इसी साधन से मुक्ति का अधिकारी बन सकता है।

दत्तात्रेय के आत्मोपदेश से अलर्क कृतार्थ हो गया। उसका शोक, मोह सर्वथा लोप हो गया और उसने स्वय काशीराज तथा सुबाहु के पास जाकर प्रसन्नतापूवक समस्त राज्य अर्पण कर दिया। उसकी इस निस्पृहता को देखकर वे भी बडे प्रभावित हुए और सुबाहु ने अपना अभीष्ट लक्ष्य पूरा हुआ देखकर उसका राज्य उसी को लौटा दिया। पर अब अलर्क को सच्चा आत्मज्ञान हो चुका था और वह आत्मा के शाश्वत रूप को अनुभव कर चुका था अत उसी समय पुत्र को राज्य भार देकर वनवास के लिए चला गया।

सृष्टि रचना और उसका विकास—

[यहाँ तक मदालसा-उपाख्यान के रूप मे मानव धर्म तथा अध्यात्म ज्ञान की चर्चा की गई जिसका मनन करने से मनुष्य को लौकिक और पारलौकिक जीवन की सफलता का मार्ग विदित हो जाता है।] इसके पश्चात् पुराण का मूल विषय "सर्ग, प्रतिसर्ग, वश मन्वन्तर, राज्यवश" आरम्भ होता है। ये विषय थोडे बहुत अन्तर के साथ प्रत्येक पुराण मे पाये जाते है और इसे हम पौराणिक "सृष्टि विद्या" कह सकते है। जिस प्रकार वेदो मे एक अक्षर-तत्त्व से सत्-रज-तम तीन गुणो की उत्पत्ति बतला

कर उनसे समस्त सृष्टि का विकास और विस्तार बतलाया है, उसी प्रकार पुराणो मे एक निराकार ब्रह्म से ब्रह्मा, विष्णु, महेश की तीन सृजन, पालन तथा सहार करने वाली शक्तियो का उद्भव बतलाकर देव, ऋषि, पितर एव भूतगणो के वशो की उत्पत्ति का वर्णन किया है। वास्तव मे वेद और पुराणो के वर्णन मे कोई सिद्धान्त भेद नही है, वरन् पुराणकारो ने वेदो के सूक्ष्म और शुष्क विषय की रूपको, और दृष्टान्तो की शैलो मे विस्तृत व्याख्या करके उसे साधारण बुद्धि के लोगों के लिए भी बोधगम्य बनाने का प्रयत्न किया है। इस सृष्टि-रचना-क्रम का साराश इन शब्दो मे दिया जा सकता है।

इस भौतिक जगत् का जो मूल कारण है उसे 'प्रधान' कहते है। उसी को महर्षियो ने अव्यक्त, सूक्ष्म, नित्य अथवा सदसत्स्वरूप प्रकृति कहा है। सृष्टि के आदि काल मे केवल एक ब्रह्म ही था जो अजन्मा अविनाशी, अजर, अप्रमेय और आधार निरपेक्ष है। वह गन्ध, रूप, रस, स्पर्श और शब्द से रहित है और अनादि तथा अनन्त है। वही सम्पूर्ण जगत की 'योनि' और तीनो गुणो का कारण है। यह ज्ञान, विज्ञान से अगम्य है। सृष्टि का समय आने पर वही ब्रह्म गुणो की साम्यावस्था रूप प्रकृति को क्षुब्ध करता है जिसके फल स्वरूप महत्तत्व का प्राकट्य होता है। महत्तत्व मे वैज्ञानिक, तैजस, भूतादि अर्थात् सात्विक, राजस और तामस इस त्रिविध अहकार का आविर्भाव होता है। तामस अहकार से शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध-इन पाँच तन्मात्राओ का उद्भव होता है और इन तन्मात्राओ से क्रमश आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी तत्व का आविर्भाव होता है। राजस अहकार से श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना और घ्राणे इन पाँच ज्ञानेन्द्रियो तथा वाक्, पाणि, पाद, वायु और उपस्थ इन पाँच कर्मेन्द्रियो की उत्पत्ति होती है। सात्विक अहकार से इन दसो इन्द्रियो के अधिष्ठातृ देवता तथा ग्यारहवे मनकी उत्पत्ति होती है। फिर महत्तत्व से पृथ्वी तत्व पर्यन्त सब तत्व मिलकर पुरुष और प्रकृति के सम्बन्ध से एक अण्ड उत्पन्न करते है। यह अण्ड धीरे-धीरे बढता है और साथ ही उसके भीतर प्रतिष्ठित 'ब्रह्मा' नाम से प्रसिद्ध क्षेत्रज्ञ पुरुष भी वृद्धि को प्राप्त होता है।

आवश्यक वृद्धि और विकास हो जाने पर प्रथम शरीरी या साकार ब्रह्मा का प्राकट्य होता है और फिर वही ब्रह्मा उस अण्ड मे समस्त सचराचर जगत् की रचना करते है ।' यह बात मार्कण्डेय पुराण मे बहुत स्पष्ट शब्दो मे कही है ।

> स वै शरीरी प्रथम स वै पुरुष उच्यते ।
> आदि कर्ता च भूताना ब्रह्माग्रे समवर्तत ।
> तेन सर्वमिद व्याप्त त्रैलोक्य सचराचरम् ।।

पर यह 'ब्रह्मा' कोई बाह्य शक्ति या व्यक्ति नही है । ससार मे उस परब्रह्म के अतिरिक्त चैतन्य सत्ता का कोई अन्य स्रोत नही है, इसलिये ब्रह्म ही विविध रूपो मे प्रकट होकर सृष्टि का विकास करता है । इस तथ्य को 'मनुस्मृति' मे बहुत स्पष्टता से कह दिया गया है—

> यत्तत्कारणमव्यक्त नित्य सदसदात्मकम् ।
> तद् विसृष्ट स पुरुषो लोके ब्रह्मे ति कीर्त्यते ।।

अर्थात् 'जो अव्यक्त, सदसदात्मक नित्य कारण है वह ब्रह्म है और उसी से विसृष्ट या प्रेरित सृष्टि मे जो अनुप्रविष्ट कारण है वह ब्रह्मा कहा जाता है ।"

इस सबका तात्पर्य यही है कि पुराणो ने ब्रह्मा विष्णु महेश—तीन प्रधान देव और इन्द्र, वरुण, मारुत यम, कुबेर, गणेश आदि सैकडो गौण देवता मानने पर भी इस मूल तत्त्व से इनकार नही किया है कि इस समस्त विश्व-प्रपच का मूल एक ही है जिसे परमात्मा, परब्रह्म, निराकार ईश्वर आदि किसी भी नाम से पुकारा जा सकता है । जिस प्रकार पिता अपनी स्त्री के गर्भ मे स्वय बीज रूप से प्रविष्ट होकर पुत्र बनता है या वृक्ष अपना समावेश बीज के भीतर कर देता है उसी प्रकार निराकार ब्रह्म स्वय ही अडे के भीतर प्रविष्ट होकर साकार देवतत्त्वो का आविर्भाव करते है और बाद मे वे ही सचराचर जगत् के रूप मे अपना विस्तार करते है । इसी दृष्टि से वेदान्त मे प्रत्येक व्यक्ति को ब्रह्म स्वरूप ही माना है और मुक्त कण्ठ से 'अह ब्रह्मास्मि' की घोषणा कर दी है ।

यद्यपि ऊपर से देखने पर अनेक श्रुतियो मे सृष्टि के आदि कारण

का यह विवेचन अनावश्यक अथवा निरर्थक भी मालूम पड सकता है। वे कहेगे कि इतनी दूर जाने की, ऐसे अज्ञेय क्षेत्र मे प्रवेश करके महा कठिन कल्पना करने की क्या आवश्यकता है ? जो कुछ सामने है उसी को यथार्थ मान कर उपयोग और व्यवहार क्यो न किया ? पर यह बहुत सकीर्ण अथवा अदूर-दर्शी दृष्टिकोण है। ऐसे ही विचारो के कारण आज ससार मे भौतिकवाद का बोलवाला है और अधिकाश मनुष्य किसी प्रकार स्वार्थ साधन को ही सबसे महत्त्व का काम समझ बैठे है। इसका परिणाम घोर व्यक्तिगत स्वार्थपरता, पारस्परिक सघर्ष, दूसरे का नाश करके भी अपना लाभ करन की प्रवृत्ति के रूप मे देखने मे आता है। यही प्रवृत्ति बढते-बढते आज समग्र ससार को एक साथ नष्ट करने के भय के रूप मे उपस्थित हो गई है।

यह सब नाशकारी परिणाम उन मनुष्यो के जीवन के पीछे किसी तरह की उच्च दार्शनिक पृष्ठ भूमि न होने से ही उत्पन्न हुए है। पर जो मनुष्य यह विश्वास करता है कि यह समस्त जगत् और तमाम प्राणी एक ही स्रोत से उत्पन्न हुए है और यह एक अविनाशी महाशक्ति का खेल मात्र है, जो कुछ समय बाद फिर उसी एक तत्व मे विलीन हो जायगा, तो वह मिट्टी से बने और थोडे ही समय बाद फिर मिट्टी हो जाने वाले पदार्थो के लिये किसी तरह का हीन, निकृष्ट काम करने को तैयार न होगा। इस दार्शनिक दृष्टिकोण के कारण ही पूरब और पश्चिम की मनोवृत्तियो मे जमीन-आसमान का अन्तर होगया है जिसका वर्णन एक विनोदी उर्दू कवि ने इन दो लाइनो मे किया है।

कहा मसूर ने खुदा हूँ मै।
डार्विन बोले बूबना हूँ मै॥

अर्थात्—' मसूर (ईरान के ब्रह्मज्ञानी सत) ने घोषणा की कि मै खुदा हूँ, (अह ब्रह्मास्मि) और योरोप के विज्ञानी पुरुप डार्विन ने कहा—' मै बन्दर हूँ।"

जिस व्यक्ति की यह भावना होगी कि मै इस समस्त ससार के आदि कारण परब्रह्म का अग हू वह सदा अपनी निगाह बहुत ऊपर रखेगा और

नीचतापूर्ण कार्यों से बचता रहेगा। पर जिसकी धारणा यह होगी कि मैं तो मिट्टी, पानी आदि पचभूतो का पुतला हूँ, जो सौ-पचास वर्ष मे फिर उन्ही मे मिल जाऊँगा, उसकी निगाह सोना चाँदी इकट्ठा करके तरह तरह के भोग अधिक से अधिक मात्रा मे प्राप्त कर लेने के अतिरिक्त और कहाँ जा सकती है ? इसलिये भारतीय शास्त्रकारो का सबसे पहले सृष्टि के मूल कारण पर विचार करना और मनुष्यो को सदैव अपने सच्चे स्वरूप पर विचार करते रहने की प्रेरणा देना निस्सन्देह व्यक्ति और समाज के लिये परम कल्याणकारी है।

समाज का निर्माण और विकास—

सृष्टि-विकास के पश्चात् समाज निर्माण पर विचार करना आवश्यक है। पुराणो मे भौतिक पदार्थों और जीव-जगत् की उत्पत्ति का जो क्रम बतलाया गया है वह अधिकाश मे विज्ञान-सम्मत है, उसे सर्वथा काल्पनिक नही कहा जा सकता है। पहले कहा जा चुका है कि महत्तत्व से सात्विक, राजस और तामस तीन प्रकार का अहङ्कार पैदा होता है। आगे चलकर सर्व प्रथम तामस अहङ्कार से 'असज्ञ' (चेतना रहित) पदार्थों की उत्पत्ति होती है जैसे मिट्टी, पत्थर, लोहा आदि। फिर राजस अहङ्कार से 'अन्त सज्ञ' (सुप्त चैतन्य) पदार्थों की उत्पत्ति होती है जैसे घास, बेले, वनस्पति, वृक्ष आदि। इनमे प्राण शक्ति प्रकट हो जाती है, पर मन की क्रिया भीतर छिपी रहती है। अन्त मे सात्विक अहङ्कार से 'ससज्ञ' (चैतन्य) जीवधारी सृष्टि होती है जैसे कीट, पतङ्ग, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि। पंच कर्मेन्द्रियाँ, पच ज्ञानेन्द्रियाँ और ग्यारहवाँ मन। इस विकार–सर्ग के विकसित होने के कारण ससज्ञ सृष्टि को 'वैकारिक' भी कहा जाता है।

जीवधारी सृष्टि के सम्बन्ध मे बतलाया गया है कि ब्रह्मा ने जो प्राणी प्रथम बनाये वह 'सर्दी-गर्मी' से बहुत कम प्रभावित होकर नदियो, झीलो, समुद्र और पर्वतो के निकट विचरण करते रहते थे। वे उपभोग के विषय मे अनायास तृप्ति लाभ कर लेते थे और उनमे किसी प्रकार विघ्न, द्वेष अथवा मत्सर नही था। वे घर न बना कर पर्वत या समुद्र तट पर निवास करते एव सदा

निष्कमचारी और प्रसन्नचित्त थे। यह स्पष्टत उस समय का वर्णन है जिसे हम 'प्रकृति का साम्राज्य' या 'स्टेट आफ नेचर' कहते हैं। उस समय प्राणी अपना निर्वाह घास-पात, फल-फूल से करते है और इसलिये उनको किसी प्रकार चिंता या संघर्ष की आवश्यकता नही होतीहै। यही वह युग होताहै जिसके लिये कथाओं मे कहा जाता है कि पशु और पक्षी भी बातें करते है और देवता भी उनकी सहायता को आ जाते है। वास्तव मे जिस समय तक भाषा का अविर्भाव नही होता तब तक प्रत्येक प्राणी दूसरे प्राणी के भावो को उसकी आकृति और ध्वनि, चीत्कार आदि से पहचान लेता है। उनका प्राकृतिक शक्तियो के द्वारा ही सञ्चालन होता है और वे प्रकृति के सकेतो का आशय भी भली प्रकार समझते है। इस दृष्टि से उस आदिकालीन युग मे एक प्रकार से देवता ही पृथ्वी पर विचरण करते है।

पर परिवर्तनशील सृष्टि-क्रम मे यह अवस्था सदैव स्थिर नही रह सकती थी। क्रमश जीवो की अनायास तृप्ति हो जाने की 'सिद्धि' समाप्त होने लगी और आकाश से जल रूपी दूध बरसने लगा और लोगो के निवास स्थानो मे कल्पवृक्ष उत्पन्न होगये जिनसे उनको आवश्यकता की समस्त वस्तुएँ प्राप्त हो जाती थी। तत्पश्चात् जब मनुष्यो मे कल्पवृक्षो के प्रति राग उत्पन्न होने लगा तो वे नष्ट होगये और चार शाखा वाले अन्य वृक्ष पैदा हुए जिनके प्रत्येक पुट मे बिना मक्खियो के ही मधु उत्पन्न होता था और उसी को पीकर लोग जीवन निर्वाह करते थे। यह स्थिति त्रेतायुग मे थी। क्रमश मनुष्य अत्यन्त लोभी होने लगे, उन वृक्षो पर अपना अधिकार जमाने लगे और उनकी जडो मे अपने रहने के घर बना लिये। इससे वे वृक्ष भी कुछ काल मे नष्ट होगये।

उस समय मे सब प्राणी भूख-प्यास से व्याकुल होकर अत्यन्त कातर होने लगे। कुछ समय पश्चात् आकाश से जल की विशेष रूप से वर्षा होने लगी और उसका जल मिट्टी के सयोग से दोष रहित होकर नदियो के रूप मे परिणत होगया। नदियो के प्रभाव से पृथ्वी पर तरह-तरह की उत्तम 'औषधियाँ' (वनस्पतियाँ) पैदा हुई, जिनका उपयोग करने मे लोगो का सुखपूर्वक निर्वाह

होने लगा। पर जब लोग उन वनस्पतियो को भी अधिक से अधिक परिमाण मे इकट्ठा कर लेने का लालच करने लगे तो वे भी नष्ट हो गई कोई अन्य उपाय न देखकर लोगो ने भगवान् ब्रह्माजी (बुद्धि) की शरण ली तो उन्होने कुछ बीज उत्पन्न करके लोगो को कृषि-विद्या का उपदेश दिया और सामाजिक सुव्यवस्था की दृष्टि से उनको चार वर्णों मे विभाजित करके प्रत्येक वर्ण को एक–एक कार्य का उत्तरदायित्व सौपा। उन्होने कर्म परायण ब्राह्मणो के लिये प्राजापत्य-स्थान, सग्राम करने वाले क्षत्रियो के लिये ऐन्द्रस्थान, स्वधर्म निरत वैश्यो के लिये मारुत-स्थान और सेवा परायण शूद्रो के लिये गान्धर्व-स्थान की कल्पना की।"

इस विवेचन से आदिम मानव-समाज और उसके क्रमश विकास पर अच्छा प्रकाश पडता है। वर्तमान युग के अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र के एक बडे विवेचक कार्ल मार्क्स ने यह मत प्रकट किया है कि मानव-समाज मे सब तरह की प्रथाओ और रीति-रिवाजो के उत्पन्न और प्रचलित होने का मूलाधार आर्थिक व्यवस्था ही थी। जिस काल मे जीवन-निर्वाह के जैसे साधन प्राप्त थे वैसी ही सामाजिक व्यवस्था भी उस समय बन गई। उपर्युक्त पौराणिक वर्णन मे भी यही बतलाया गया है कि जैसे–जैसे जीवन निर्वाह के साधन बदलते गये उसी प्रकार प्राणियो और उनकी जीवन-निर्वाह विधि मे भी परिवर्तन होता गया। जब तक लोगो मे स्वार्थ बुद्धि की वृद्धि नही हुई और वे प्रकृति दत्त पदार्थो मे से आवश्यकतानुसार ही लेकर अपनी भूख मिटा लेते थे तब तक उनका काम बिना किसी विशेष प्रयत्न के जगल और वनो की स्वाभाविक उपज से होता रहा। पर जैसे-जैसे उनमे सग्रह और परिग्रह की भावना उत्पन्न होने लगी प्रकृति भी अपने दान को सकुचित करने लगी और लोगो को जीवन-निर्वाह की परिश्रम और युक्तिसाध्य विधियो का आश्रय लेना पडा। इसी से खेती और पृथक् परिवार की प्रथा का जन्म हुआ। आगे चलकर विभिन्न प्रकार के सामाजिक कार्यो तथा पेशो के बढने से जाति-प्रथा का भी उद्भव हुआ। जितने ही अधिक लोग विभाजित हुए और अपने उत्पादन को सुरक्षित रखकर उसका स्वय ही उपभोग करने लगे वैसे-वैसे ही मानव-सम्बन्धो मे जटिलता आती गई

और क्रमश शासन, राज्य और राष्ट्र का प्रादुर्भाव होकर मानव-समुदाय आधुनिक सभ्यता, सस्कृति तक पहुँच गया।

यह तो भौतिक पदार्थों के विभाजन तथा स्वामित्व के कारण उत्पन्न सामाजिक व्यवस्था की एक मोटी रूपरेखा हुई। जब इसके साथ भली-बुरी मनोवृत्तियो, धर्म-अधर्म, कर्तव्य-अकर्तव्य, सत्य-झूँठ, प्रेम-घृणा, मित्रता-शत्रुता आदि भावनाओं का योग होता है तो मानव-व्यवहारो मे ऐसी जटिलता आ जाती है कि जिसके निर्णय और कार्य रूप मे परिणत करने मे बडे-बडे समाज शास्त्री तथा न्यायवेत्ता विद्वानो की बुद्धि भी चकरा जाती है। इसका वर्णन पुराणकार ने अपनी रूपक और अलङ्कारो की विशिष्ट शैली मे इस प्रकार किया है—

"जब ब्रह्मा के मानस पुत्रो मे सृष्टि का विस्तार न हो सका तो उन्होंने एक पुरुष उत्पन्न करके उसके आधे भाग मे एक स्त्री को भी उत्पन्न किया और उनको पति-पत्नी बनाकर प्रजा की उत्पत्ति का आदेश दिया। वे ही ससार के प्रथम मानव-प्राणी स्वायम्भुव मनु और शतरूपा थे। उनके दो पुत्र हुए, प्रियव्रत और उत्तानपाद। दो कन्याएँ भी हुई—प्रसूति और ऋद्धि सृद्धि का विवाह रुचि से हुआ जिससे यज्ञ और दक्षिणा नामक दो सन्तानो की उत्पत्ति हुई। दक्ष और प्रसूति के चौबीस कन्याएँ हुई उन्हे धर्म ने अपनी पत्नी बनाया। इसके साथ ही अधर्म का परिवार भी बढा। उसकी पत्नी हिंसा मे अनृत नामक पुत्र और सृति नामक कन्या उत्पन्न हुई। उनसे नरक और भय नामक पुत्र हुए और माया तथा वेदना दो कन्याएँ हुई। माया से मृत्यु और वेदना से दुख नामक पुत्र उत्पन्न हुए। मृत्यु के व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोध नामक पुत्र हुए। दुख से जो सन्तति हुई वह सब अधर्म का आचरण करने वाली थी। मृत्यु ने अलक्ष्मी नामक एक और स्त्री से विवाह किया जिसके चौदह पुत्र हुए जो मनुष्यो के मन तथा इन्द्रियो मे प्रविष्ट होकर उनको नाश की तरफ ले जाते है।

इन पुत्रो मे से एक का नाम दुसह है जिसको अत्यन्त भयकर बतलाया

है। कहा है कि वह जन्म लेते ही ऐमा भूखा था कि ममस्त समार के उसके द्वारा नष्ट होने की सम्भावना जान पडी। तब ब्रह्मा ने उमके रहने के स्थान नियत कर दिये कि जहाँ बुरे लक्षण, आलस्य, प्रमाद, दारिद्र्य हो वहाँ पर वह निवास करे। जहाँ देशाचार, जाति-धर्म, लोकाचार का ठीक तरह से आचरण किया जाता है, जप, होम, मगल, यज्ञ शौच आदि का विधिवत् पालन किया जाता है, उन स्थानो मे वह दूर रहे। इस दु सह के 'निर्माष्टि' नाम पत्नी से दन्ताकृष्टि, तथोक्ति, परिवर्त, अङ्गध्रुक, शकुनि, गड, प्रान्तरति और गर्भहा नामक आठ पुत्र हुए। नियोजिका, विरोधिनी, स्वयहारकरी, भ्रामणी, ऋतु हारिका, स्मृति हरा, बीजहरा और विद्वेषिणी नामक आठ कन्याएँ भी हुई दु सह की इन सोलह सन्तानो ने मनुष्यो के जीवन को महाकष्टमय बना दिया है और जिस पर उनका वश चलता है उसे वे नष्ट करके ही छोडते है।"

यह कहने की आवश्यकता नही कि दु सह और उनकी सन्तानो क आशय तरह-तरह की दूषित मनोवृत्तियो, नैतिक, सामाजिक और भौतिक दोषो तथा भाति-भाति के रोगो से ही है, जो कर्तव्य विमुख और आलस व्यक्तियो पर सवार हो कर उन्हे नष्ट किया करते है। पुराणकार ने दु सह के रहने के जितने स्थान बतलाये है वे सब दूषित आचरणवालो के ही लक्षण है। सदाचारी और कर्तव्यरत व्यक्तियो की तरफ वह आँख उठाकर भी नहीं देखता। अडतालीसवे अध्याय मे दु सह के क्रिया-कलापो का विस्तृत वर्णन निस्सन्देह पढने और शिक्षा ग्रहण करने योग्य है।

रुद्र सृष्टि अथवा अग्नि तत्व की व्याख्या—

अगले अध्याय मे कहा गया है कि ब्रह्माजी ने कल्प के आदि मे अप समान एक पुत्र का ध्यान किया तो एक नील लोहित कुमार उत्पन्न हुआ। व ब्रह्माजी की गोदी मे रोने लगा। ब्रह्माजी ने पूछा—तू क्यो रोता है? उसने कहा "मेरा नाम रखिये।" उसने उत्पन्न होते ही रुदन किया इस ब्रह्मा ने कहा—तुम्हारा नाम 'रुद्र' हुआ। इस पर वह सात बार और रोया तब ब्रह्मा ने उसके सात नाम और रखे—भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम

ग्र और महादेव। तब उसके रहने के लिये आठ स्थान नियत किये—सूर्य, ल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश, दीक्षित ब्राह्मण और सोम। उसकी आठ नियाँ भी बनादी—सुवर्चला, उमा, विकेशी, स्वधा, स्वाहा, दिक्, दीक्षा रोहिणी। शनैश्चर, शुक्र, लोहिताङ्ग, मनोजव, स्कन्द, सर्ग, सन्तान और बुध गो रुद्र के आठ पुत्र बताया गया है।

यह रुद्र का रूपक वैदिक साहित्य में वर्णित प्राण तत्त्व की कथा के रूप में व्याख्या है। 'शतपथब्राह्मण' में कहा गया है "यो वै रुद्र सोऽग्नि" अर्थात् अग्नि या प्राणतत्व का एक नाम रुद्र भी है। पुराण में इसका नाम जो 'नील लोहित कुमार गया है उसका आशय यही है कि अग्नि की रश्मियों का अथवा सूर्य-रश्मियों का वर्ण एक छोर पर नीला और दूसरे पर लोहित (लाल) ही होता है। 'अथर्व वेद' के एक सूक्त में भी रुद्र के 'नील लोहित धनुष' का उल्लेख मिलता है। अग्नि तत्त्व जब अपने केन्द्र में जागृत होता है तो वह 'उग्र रूप' में होता है। उसमें बुभुक्षा वृत्ति उत्पन्न होती है अर्थात् वह बाहर से कोई पदार्थ अपने पोषण को चाहता है। जब उसे वह पदार्थ मिल जाता है तो वह रचनात्मक अर्थात् 'शिव' बन जाता है। रुद्र के जो सात नाम और बतलाये गये हैं वे अग्नि तत्त्व के वे सात रूप हैं जो अव्यक्त पदार्थों को व्यक्त रूप में लाने के साधन बनते हैं। अग्नि या प्राण तत्त्व ही समस्त भौतिक पदार्थों को प्राण या गति-तत्त्व प्रदान करता है अत वे उसके स्थान हैं। इसी प्रकार स्वधा, स्वाहा आदि आहवनीय अग्नि से सम्बन्धित हैं। शनि, शुक्र, बुध आदि सभी ग्रह उपग्रह अग्नि तत्त्व के ही विभिन्न रूप या उसके परिवार की तरह हैं।

मन्वन्तर और सप्त द्वीप वर्णन—

इसके पश्चात् स्वायम्भुव व मन्वन्तर और उसमें उत्पन्न राजाओं के शासन-क्षेत्र के रूप में जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर इन सात द्वीपों का वर्णन आया है। इन सातों द्वीपों का विस्तार सब मिला

कर पचास करोड योजन बतलाया गया है, जिसमे से जम्बू द्वीप की लम्बाई चौडाई एक लाख योजन है और भारत वर्ष इसी का एक भाग है।

स्वायम्भुव मनु के बडे पुत्र प्रियव्रत की प्रजावती नामक पुत्री का विवाह प्रजापति कर्दम के साथ किया गया। उसके सात पुत्र हुए जिनमे से अग्नीध्र को जम्बू का, मेधातिथि को प्लक्ष द्वीप का, वपुष्मान को शाल्मलि का, ज्योतिष्मान् को कुश का, द्युतिमान् को क्रौञ्च का, भव्य को शाक द्वीपका और सवन को पुष्कर का अधिपति बनाया गया। फिर इनमे से प्रत्येक के भी प्राय सात-सात ही पुत्र हुये जिनके लिये उक्त द्वीपो को सात विभागो मे जिनका नाम 'वर्ष' रखा गया है, बाँट दिया गया। इनमे से प्रत्येक द्वीप मे सात पर्वत और सात नदियाँ भी थी। इन सब की बडी नामावली अनेक पुराणो मे पाई जाती है, पर वह पाठको के लिये रुचिकर नही हो सकती। उनका एकाध नाम वर्तमान इतिहास या भूगोल के नामो से मिलता है, पर उसे अधिक महत्त्व देना ठीक नही। एक विद्वान् का इस सम्बन्ध मे यह भी मत है कि ये सातो द्वीप एक समय मे एक साथ मौजूद नही थे, पर पृथ्वी के उलट फेर के फल स्वरूप विभिन्न कालो मे बने और नष्ट हुये है। वर्तमान समय मे हम पृथिवी के जिस रूप को देख रहे है वह जम्बू द्वीप है और उसी का वर्णन कुछ अशो मे हमको प्रत्यक्ष दिखाई देता है। शेष छ द्वीप भूत काल या भविष्य से सम्बन्धित है। पर पुराणो ने इस विषय पर एक त्रिकाल-द्रष्टा की हैसियत से विचार किया है और सृष्टि रचना और इसके विलय के नाटक को इस प्रकार लिख दिया है जैसे वह एक ही समय मे उनके नेत्रो के सम्मुख हो रहा हो।

अधिकाश विद्वानो के मतानुसार जम्बू द्वीप का जो वर्णन पुराणो मे किया गया है उसमे एशिया के एक बडे भाग का समावेश हो जाता है। पर चूँकि पुराने समय मे आवागमन के साधन बहुत ही सीमित थे इस लिये सभी लेखको ने जो भौगोलिक वर्णन किये है उनमे वास्तविकता और कल्पना का सम्मिलन है। पुराणो के वर्णन मे ही नही वरन् यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस तथा इटैलियन मार्कोपोलो के वर्णनो मे भी बहुत सी ऐसी बात

पाई जाती है जो इन्होने दूसरे लोगो से सुन कर ही लिख दी थी और जो अब कल्पनिक सिद्ध हो रही है। इस लिये पुराणो मे पृथ्वी के विभिन्न द्वीपो समुद्रो, खण्डो का जो वर्णन किया गया है वह कथा रूप मे ही ग्रहण किया जाना चाहिये। वास्तव मे पुराणकार भारतवर्ष मे ही रहते थे, यही के निवासियो से उनका परिचय और सम्बन्ध था, इस लिये उन्होने यहाँ के नगरो, जनपदो, पर्वतो, नदियो के सम्बन्ध मे जो कुछ लिखा है वही प्रामाणिक और उपयोगी सिद्ध होता है। फिर पुराणो का मुख्य उद्देश्य जन साधारण को धार्मिक और नैतिक शिक्षा देना था। इसी दृष्टि से उनकी महत्ता पर विचार करना चाहिये। इस प्रकार के भौगोलिक वर्णन तो इन्होने कथानको को प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से किये है और वे सभी पुराणो मे प्राय उसी रूप मे लिख दिये गये है जिसमे वे परम्परा से चलते आते थे। आधुनिक वैज्ञानिक खोजो के दृष्टि कोण से उनकी आलोचना मे प्रवृत्त होना अपनी 'विद्या' के अहङ्कार का निरर्थक प्रदर्शन ही है।

आग्नीध्र को जम्बू द्वीप दिया गया उसके अपने पुत्रो मे उसने नौ हिस्से कर दिये। इनमे हिम नाम दक्षिणवर्ष नाभि राजा को मिला। नाभि से इसका उत्तराधिकार उनके पुत्र ऋषभ को मिला और ऋषभ अपने पुत्र भरत को राज्य देकर तपस्या करने चले गये। इन्ही भरत के नाम से यह खण्ड भारतवर्ष के नाम मे प्रसिद्ध हुआ। पुराणो के मतानुसार शकुन्तला के पुत्र भरत के नाम के आधार पर इस देश का नाम भारतवर्ष होने की कल्पना ठीक नही है। यह भरत भी महायोगी और तपस्वी थे। वे भी कुछ समय पश्चात् अपने पुत्र सुमति को गद्दी पर बिठा कर वन को चले गये। इस प्रकार स्वायम्भुव मनु के पुत्र प्रियव्रत का वंश समस्त पृथ्वी पर बहुत समय तक शासन करता रहा।

इसके पश्चात् अन्य पाँच मन्वन्तरो के सम्बन्ध मे भी तरह-तरह की कथाये दी गई है, जिनसे अनेक प्रकार की शिक्षाये प्राप्त हो सकती है। पर ऐतिहासिक या सामाजिक विकास की दृष्टि से इनमे विशेष तथ्य दृष्टिगोचर नही होता।

सूर्य का तात्विक विवेचनः—

सृष्टि-रचना का मुख्य आधार सूर्य है। ससार के प्रत्येक पदार्थ मे उसी से उष्णता प्राप्त होती है और वही प्राण रूप बनकर प्रत्येक जीवित प्राणी मे गति उत्पन्न करता है। मनुष्यो मे निरोगिता, स्वास्थ्य, शारीरिक बल, उत्साह, साहस, पराक्रम आदि गुण भी उसी के प्रभाव से उत्पन्न होते है। वही प्रकाश का एक मात्र साधन है। उसके बिना सर्वत्र घोर अन्धकार ही है। प्रकाश के अन्य जितने कृत्रिम साधन मनुष्य ने खोज निकाले है वे भी सूर्य की ही देन है। सूर्य अग्नि-तत्त्व का प्रतीक है और उसके बिना समस्त ससार जड और मृतक ही है।

मार्कण्डेय पुराण मे इस प्राकृतिक तत्त्व को ही सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है और उसी को पूजा उपासना के योग्य बतलाया गया है। वैवस्वत मन्वन्तर का आरम्भ सूर्य के पुत्र मनु से ही माना गया है और उसके वर्णन मे सूर्य की महिमा पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। कथा मे कहा गया है कि त्वष्टा (विश्वकर्मा) की पुत्री सज्ञा का विवाह सूर्य हुआ था जिसमे वैवस्वतमनु तथा यम, दो पुत्रो तथा एक पुत्री यमुना का जन्म हुआ। उस समय सूर्य का तेज अत्यन्त प्रखर था और सज्ञा उसे सह सकने मे असमर्थ थी। इससे वह अपना एक छायामय शरीर बनाकर गुप्त रूप से अपने पिता के घर चली गई और छाया मे कह गई कि तुम इस भेद को कभी प्रकट मत करना। कुछ समय पश्चात् पिता ने सज्ञा को फिर पति गृह जाने की सलाह दी तो वह वहाँ से चली आई और घोडी का रूप रखकर सूर्य के रूप का सुधार होने के उद्देश्य से तप करने लगी।

कुछ समय पश्चात् सूर्य को छाया के रूप मे कृत्रिम सज्ञा का भेद मालूम पड गया और उन्होने विश्वकर्मा के पास जाकर इस सम्बन्ध मे पूछा तो मालूम हुआ कि सूर्य के असहनीय तेज के कारण पिता के यहाँ चली आई थी और अब कही तप करने चली गई है। यह जानकर सूर्य ने विश्वकर्मा से अपने स्वरूप को काट छाँटकर सौम्य बना देने को कहा। उन्होने सूर्य को

'संवत्सर' रूपी खराद पर चढ़ाकर इस प्रकार छाँट दिया जिससे उनका स्वरूप बहुत दर्शनीय और लोकोपयोगी बन गया। उनके उस स्वरूप के दर्शन करके देवता उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—

"हे देव! तुम ऋग्वेद स्वरूप हो, तुमको नमस्कार है। तुम्ही यजु स्वरूप हो, तुमको नमस्कार है। तुम्ही ज्ञान (प्रकाश) के एक मात्र आधार हो, तुम्ही तम (अन्धकार) के नाशक, शुद्ध ज्योति स्वरूप और निर्मल हो, तुमको नमस्कार है; तुम शङ्ख, चक्र, शार्ङ्ग, पद्म धारण करने वाले विष्णु रूप हो, तुम्हे नमस्कार है। तुम्ही वरिष्ठ, वरेण्य, पर और परमात्मा हो, तुम ही समस्त जगत् मे व्यापक हो, आत्म स्वरूप हो तुम्हे नमस्कार है। तुम्ही ज्ञानी मनुष्यो की निष्ठा, सर्वभूतो के कारण स्वरूप हो। तुम्ही प्रकाश आत्म रूपी भास्कर, दिनकर हो, तुम्ही रात्रि के कारण स्वरूप हो, तुम्ही सध्या और ज्योत्स्नाकारी हो। तुम्ही भगवान् हो, तुम्हारे द्वारा ही जगत् जागृत और गतिमान होता है। तुम्हारे प्रभाव से ही यह चराचर युक्त अखिल ब्रह्माण्ड भ्रमण करता है। सम्पूर्ण पदार्थ तुम्हारी किरणो से स्पर्श होकर पवित्र होते है। तुम्हारी किरणो द्वारा ही जलादि की पवित्रता साधित होती है। हे देव! जब तक यह जगत् आपकी किरणो के सयोग को प्राप्त नही होता तब तक होम दानादि कोई उपकारक कर्म भी नही हो पाता। आपके अंग से जो किरणे निकलती है वे ही ऋक् यजु साम रूपी त्रयी विद्या है। तुम्ही ब्रह्म रूपी प्रधान और अप्रधान हो। तुम्ही मूर्तिधारी और अमूर्त हो, स्थूल और सूक्ष्म रूप से तुम्ही काल रूप हो।"

इस स्तोत्र मे सूर्य का जो वर्णन किया है उससे प्रकट होता है कि इन पक्तियो का लेखक सूर्य को ही परमात्मा का मुख्य स्वरूप मानता है और ससार मे एक मात्र उन्ही को पूजनीय, अर्चनीय, उपासनीय तत्व स्वीकार करता है। वेद मे भी प्रकाश और तम दोनो का कारण सूर्य को ही बतलाया गया है और ब्रह्माण्ड मे जो गति और जगत् मे प्राण तत्व दिखाई पड़ता है उसका मूल भी सूर्य के अतिरिक्त कोई नही। सूर्य को त्रयी विद्या का भी मूल बतलाया

करने से प्रतीत होता है कि वही हिन्दू धर्म की सबसे बडी मान्यताओ का मूल स्रोत है। इस सम्बन्ध मे एक विद्वान् ने लिखा है—

"ऋक्-यजु-साम का सम्मिलित रूप सूर्य है। वस्तुत यह वैदिक तत्वज्ञान का मूलभूत दृष्टिकोण था। विश्व की प्रत्येक रचना सूर्य की ही शक्ति है। त्रयी विद्या को ही यज्ञ कहते है, इसलिए सूर्य को यज्ञ-नारायण कहा जाता है। त्रयी विद्या 'त्रिक' का ही दूसरा नाम है। भारतीय धर्म, दर्शन, वैदिक और पुराण तत्व सबका मूल त्रयी विद्या या त्रिक है। वेद मे अव्यय-पुरुष, अक्षर-पुरुष और क्षर-पुरुष, पुराणो मे ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूपी त्रिदेव एव दर्शन मे सत्व, रजु तम नामक तीन गुण त्रयी विद्या के ही रूप है। ये ही भू-भुव-स्व नामक तीन व्याहृतियाँ है। भारतीय साहित्य मे 'त्रिको' की अनेक समानान्तर सूचियाँ है। मन-प्राण-वाक् एव प्राण-अपान व्यान त्रिक के ही रूप है। इस प्रकार त्रयी विद्या या 'त्रिक' का अपरिमित विस्तार भारतीय साहित्य मे पाया जाता है। सूर्य उस विद्या का सर्वोत्तम प्रतीक है।"

'मार्कण्डेय पुराण' मे इस एक स्थान पर ही नही वरन् अनेक प्रसङ्गो मे सूर्य को ही सृष्टि का सबसे महान् और रचनात्मक साधन बतलाया गया है। अध्याय ६४ मे कहा गया है कि ब्रह्मा ने जब चारो वेदो को, प्रकट किया और उनका तब उत्तम तेज एक होकर 'ॐकार' के श्रेय तेज से सयुक्त हुआ तब सूर्य का सर्वोच्च तेज दृष्टिगोचर होने लगा। यह तेज सृष्टि-रचना मे सबसे पहले उत्पन्न हुआ था इसी से 'आदित्य' कहा जाता है। पर उस आरम्भिक दशा मे यह इतना प्रखर और अनियन्त्रित था कि ब्रह्माजी ने देखा कि वे जो कुछ सृष्टि रचगे वह सब इसकी तीव्रता से नष्ट हो जायगी। इसका उत्ताप जल तत्व को सोख लेगा और पृथ्वी तत्व को भी भस्म रूप कर देगा। इसलिए उन्होने सूर्य नारायण की स्तुति करते हुए कहा—

"जो सम्पूर्ण विश्व के आत्म स्वरूप है जो इस विश्व रूप मे ही वर्त्तमान है, विश्व ही जिनकी मूर्ति है, योगीगण जिनकी इन्द्रियो से अग्राह्य परम ज्योति का ध्यान करते है, मै उनको नमस्कार करता हूँ। जो अचिन्त्य

शक्ति ऋग्वेदमय, यजुर्वेद का आधार सामवेद की उत्पत्ति का कारण है, जो परम ब्रह्म स्वरूप और गुणातीत है, सबसे पहले मै उन्ही सर्वकारणरूप, परम पूज्य, परमवेद्य, परम ज्योति, देवात्मता हेतु स्थूल रूपी श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतर आदि पुरुष भगवान् भास्वान् को नमस्कार करता हूँ। हे देव ! तुम्हारी शक्ति ही 'आधा' है क्योंकि उसी के द्वारा प्रेरित होकर मै जल, पृथ्वी, पवन और अग्नि रूपी देवताओ और प्रणवादि की सृष्टि करता हूँ। इसी प्रकार स्थिति और प्रलय भी मैं तुम्हारी शक्ति से प्रेरित होकर ही करता हूँ।

हे भगवन् ! तुम्ही वह्नि रूप हो। जब तुम पृथ्वी का जल सोखते हो तब मैं जगत् की रचना और अन्नादि को सम्पन्न करता हूँ। तुम्ही सर्वव्यापी गगन स्वरूप हो और तुम्ही इस पच भूतात्मक विश्व की रक्षा करते हो। हे विवस्वन् परमात्म तत्व के ज्ञाता अखिल यज्ञमय विष्णुरूप मे यज्ञो द्वारा तुम्हारी ही अर्चना करते है, आत्ममोक्षाभिलाषी जितेन्द्रिय यतिगण परम सर्वेश्वर जानकर तुम्हारा ही ध्यान करते है। तुम्ही देव रूप हो, मै तुमको प्रणाम करता हूँ। तुम्ही योगीजनो द्वारा चिन्तनीय परब्रह्म स्वरूप हो, तुमको प्रणाम करता हू। हे विभो ! तुम अपने तेज को निवृत्त करो, मै सृष्टि करने को उद्यत हुआ हूँ। तुम्हारा जो प्रखर तेज समूह सृष्टि मे विघ्नकारी होता है उसे सयमित करो।"

इसी प्रकार देवमाता अदिति द्वारा और राज्य वर्धन के व्याख्यान मे ब्राह्मणो और राजा द्वारा सूर्य के कई स्तोत्र इस पुराण मे दिये गये है, जिनसे प्रकट होता है कि विष्णु, शिव, राम, कृष्ण आदि पौराणिक प्रतीको के स्थान पर मार्कण्डेय पुराण के रचयिता ने 'विवस्वान्' (जिनसे आगे चल कर इन्द्र (प्राण) और विष्णु तथा शिव का आविर्भाव होता है) को ही उपासना तथा ध्यान का सर्व श्रेष्ठ और मूल लक्ष्य माना है। पुराण मे देवासुर सग्राम की जो कथाये भरी पडी है, उसका बहुत कुछ सम्बन्ध भी सौर-शक्ति के अविर्भाव से ही है। वेदो मे जिस वृत्रासुर का प्रसङ्ग आया है और जिसको नष्ट करके इन्द्र 'देवराज' बने थे वह वास्तव मे सौर-शक्ति के अवरोधक अन्धकार तत्त्व के मिटने का ही वर्णन है।

शक्ति के दो रूप और देवी द्वारा असुरों का पराभव—

७३ से ८५ अध्याय तक देवी के आविर्भाव और उसकी अपार महिमा का वर्णन किया गया है। इसके लिये किसी सुरथ नामक राजा का उपाख्यान दिया गया है कि उसके राज्य को शत्रुओ ने षडयन्त्र करके छीन लिया और उसे विवश होकर सब कुछ छोडकर वन मे चला जाना पडा। पर वहाँ भी उसका ध्यान अपने महल, कोशागार, नगर, हाथी, घोडो मे लगा रहा और वह उनके विषय मे चिन्ता करता हुआ दुःखी रहने लगा। वही उसकी भेट समाधि नामक एक वैश्य से हो गई जिसको उसके स्त्री-पुत्र आदि ने समस्त धन अपहरण करके घर से निकाल दिया था और जो अब वनवासियो के साथ रहकर जीवन-निर्वाह कर रहा था। पर अब भी उसका घर सम्बन्धी मोह छूटा न था और वह घर वालो के हानि लाभ सुख-दुःख की बात सोचते हुए व्यस्त रहा करता था। इन दोनो ने उसी अरण्य मे आश्रम बनाकर रहने वाले मेधा ऋषि से अपनी दुर्दशा और मनोव्यथा के विषय मे प्रश्न किया। ऋषि ने उनको मोहजनित भ्रम का रहस्य समझाया और साथ ही देवी की महिमा तथा उपासना की कथा भी सुनाई जिसके द्वारा वे अपनी विपत्ति से छुटकारा पा सकते थे।

देवी का यह उपाख्यान "दुर्गा सप्तशती" के नाम से प्रसिद्ध है और वह कितने ही स्थानो मे थोडे बहुत अन्तर के साथ कहा गया है। इस महाशक्ति का प्रथम आविर्भाव सृष्टि के आरम्भ होने से भी पूर्व उस समय हुआ जब जगत्कर्ता भगवान् विष्णु सो रहे थे और उनकी नाभि से सृष्टि के रचयिता ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई थी। उस समय विष्णु के कान के मैल से मधु और कैटभ नाम के दो दैत्य उत्पन्न हुए और ब्रह्माजी को मारने को दौडे। ब्रह्मा उनका सामना करने मे असमर्थ थे अतः उन्होने परब्रह्म की आदि शक्ति महामाया की स्तुति की। इससे सन्तुष्ट होकर देवी प्रकट हुई और उसने विष्णु को जगा कर मधु और कैटभ के कुकृत्य का उनको ज्ञान करा दिया। विष्णु उन असुरो से पाँच हजार वर्ष तक बाहु युद्ध करते रहे, पर उनका विनाश न कर सके। तब महामाया ने ही उनको मोहित करके कहलवाया कि "हे विष्णु

हम तुम्हारे साथ युद्ध करके सन्तुष्ट हुए है, हमसे कोई वर माँगो।" विष्णु ने कहा 'तुम मेरे वध्य हो, यही वर मै माँगता हूँ।' वचन बद्ध होने से उन्हे वर देना पडा और तब विष्णु ने चक्र से उनका मस्तक काट दिया।

जब देवलोक का अधिपति इन्द्र को बनाया गया तो महिप नामक असुर ने उनका विरोध किया और अपनी विशाल सेना के द्वारा उनको हरा कर देवलोक पर अधिकार कर लिया। इन्द्र और अन्य देवगण ब्रह्माजी को साथ लेकर विष्णु और महादेव की शरण मे गये और महिपासुर के अत्याचारो की कथा उनको सुनाई। उसे सुनकर वे बडे क्रोधित हुए और उनके मुखो से एक महा तेज निकला। उसी समय ब्रह्मा, इन्द्र तथा अन्य देवगणो से मुख से भी तेज प्रकट हुआ। समस्त देवताओ के उस तेज ने सम्मिलित होकर एक देवी का रूप धारण कर लिया। सब देवताओ ने उसे अपने-अपने सर्वश्रेष्ठ अलङ्कार और अस्त्र-शस्त्र दिये और उसे त्रैलोक्य मे अजेय एक महाशक्ति बना दिया। इस प्रकार वह देवी जब युद्ध के लिये प्रस्तुत होकर गर्जने लगी तो उस महा-शब्द से तीनो लोक काँपने लगे। उसे सुनकर महिषासुर भी अपनी सेना को सजा कर दौडा और दोनो पक्षो मे घोर सग्राम होने लगा। आरम्भ मे महिषा-सुर के चिक्षुर, चामर, उदग्र, महाहनु, असिलोमा, वाष्कल और विडालाक्ष सेना-पतियो से सामना हुआ और एक एक करके वे सब मारे गये। फिर दुर्धर और दुर्मुख आदि महिपासुर के महा पराक्रमी सहयोगी रणभूमि मे उतरे पर देवी के सामने वे भी अधिक देर तक न ठहर सके और सेना सहित मारे गये।

अपनी सेना और साथियो को इस तरह नष्ट होता देखकर महिषासुर अत्यन्त क्रोधित होकर सामने आया और अपने समस्त अद्भुत साधनो से भयङ्कर सग्राम करने लगा। वह कभी महिप, कभी सिह और कभी हाथी का रूप धारण करके लडता था। कभी भूमि पर और कभी आकाश मे जाकर शस्त्र वर्षा करता था। उसके भयङ्कर सग्राम से तीनो लोक क्षुब्ध हो गये। तब देवी अपने सिह से उछाट लेकर महिषासुर के ऊपर कूद पडी और उसे पैर से दबाकर तलवार से उसका मस्तक काट डाला। उसका बध होते ही

सर्वत्र हर्ष की लहर उठ गई और समस्त देवता देवी की जय-जयकार करने लगे। इस अवसर पर देवगणो ने देवी की जो स्तुति की वह बडी अर्थपूर्ण है। उसमे कहा गया है कि देवी ने अपनी शक्ति का समस्त विश्व मे विस्तार कर रखा है और ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी उसके रहस्य को ज्ञात नही कर सकते। वही जगत् का कारण अव्याकृता प्रकृति, देवताओ और पितरो की स्वाहा और सुधा तथा मोक्षभिलाषियो को मोक्ष प्रदान करने वाली परा-विद्या है। देवी ही तीनो वेदो की शब्दमयी मूर्ति, सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाली, वार्ता समस्त शास्त्रो का रहस्य प्रकट करने वाली सरस्वती, व सागर मे उद्धार करने वाली दुर्गा, विष्णु के हृदय मे निवास करने वाली लक्ष्मी और शिव के सिर पर विराजने वाली गौरी है। उसकी शक्ति और बल अपार है।

तीसरी बार जब शुम्भ और निशुम्भ नामक असुरो ने देवताओ को हराकर भगा दिया तो वे फिर देवी की शरण मे पहुँचे। उस समय पार्वती की देह से अम्बिका प्रकट होकर देवताओ की रक्षा के लिए असुरो से युद्ध करने को अग्रसर हुई। उनकी अनुपम सुन्दरता का वर्णन सुनकर पहले शुम्भ ने अपना दूत भेजकर अपना प्रणय सन्देश कहलवाया। पर देवी ने उत्तर दिया कि मैने यह प्रतिज्ञा की है कि "जो मुझे युद्ध मे जीत सकेगा वही मेरा भर्ता हो सकेगा।" इस पर शुम्भ ने क्रोधित होकर अपने सेनापति धूम्रलोचन को एक बडी सेना के साथ देवी को पकड कर ले आने का आदेश दिया। इस असुर सेना के साथ देवी का विकट सग्राम हुआ, और अन्त मे सब असुर मारे गये। फिर चण्ड-मुण्ड नामक महावीर असुर लडने को आये पर वे भी काली द्वारा मार डाले गये, जिससे काली का नाम 'चामुण्डा' पड गया।

इसके पश्चात् रक्तबीज नामक असुर रणभूमि मे आया। इसमे यह विशेषता थी कि उसके रक्त की जितनी बूँदे पृथ्वी पर गिरती थी उतने ही नये असुर और पैदा हो जाते थे और उनका नाश असम्भव प्रतीत होता था। तब देवी ने काली से कहा कि जब मैं रक्तबीज पर अस्त्र से प्रहार करूँ तो

तुम उसके रक्त को पी जाओ, एक भी बूँद को भूमि पर मत गिरने दो। काली ने ऐसा ही किया और तब उस महा असुर का बध किया जा सका।

रक्तबीज के मारे जाने पर स्वय शुभ और निशुंभ सम्पूर्ण सेना सहित रणक्षेत्र मे उपस्थित हुए। पहले निशुम्भ का देवी के साथ घोर सग्राम हुआ और वह मारा गया। फिर शुभ सामने आया और उसने देवी की सहायक सप्त मातृका शक्तियो ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिही और ऐन्द्री की ओर सकेत करके कहा—"तुम दूसरो का आश्रय लेकर युद्ध करती हो और अपने पराक्रम का झूँठमूँठ अभिमान करती हो।" इस पर देवी ने उन सातो शक्तियो को अपने भीतर समेट लिया और कहा कि ये सब मेरी विभिन्न शक्तियाँ है जो मेरी इच्छा से प्रकट होती रहती है। अब देख मै अकेली ही तेरा बध करती हूँ।" इसके पश्चात् असुर सेना से देवी का सबसे बडा सग्राम हुआ और शुभ तथा उसके समस्त सहयोगी असुरो को पूर्णतया नष्ट कर दिया गया। इस महान् विजय के पश्चात् देवताओ ने निर्भय और प्रसन्न होकर देवी की जो स्तुति की उसमे उनको ही सृष्टि का कारण बतलाया है। देवताओ ने कहा—

"महामाया ही विपत्ति मे पडे जनो का कष्ट दूर करती है। वही जगत् की माता और चराचर विश्व की ईश्वरी है। सम्पूर्ण विद्याएँ और समस्त दैवी शक्तियाँ उन्ही के रूप है। जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और सहार उनकी इच्छा से होता है।"

स्तुति से प्रसन्न होकर देवी ने देवताओ को वरदान देते हुए आश्वासन दिया कि "पृथ्वी पर जब-जब असुरो का उत्पात बढ़ेगा मै विभिन्न रूपो मे अवतीर्ण होकर उनका नाश और तुम्हारी रक्षा करूँगी।"

'देवी सप्त शती' का यह उपाख्यान 'मार्कण्डेय पुराण' का एक महत्त्वपूर्ण और प्रसिद्ध अ श है और नवरात्रियो के अवसर पर लाखो भक्त इसका पाठ करते हुए देवी से अपने कल्याण की याचना करते है। एक धार्मिक कथा के रूप मे निस्सन्देह यह रचना बडी प्रभावशाली और रोचक

है, पर इसके आध्यात्मिक और आधिदैविक अर्थ इससे भी अधिक शिक्षा-प्रद है।

आधिभौतिक रूप मे तो इसका स्पष्ट तात्पर्य यही है कि ससार मे दैवी शक्तियो के साथ आसुरी शक्तियो का प्रादुर्भाव तथा सघर्ष सदैव होना है। असुर या दुष्ट स्वभाव के व्यक्ति अधिक उग्र, आक्रमणकारी और धूर्त होते है और इस कारण प्राय आरम्भ मे देव शक्तियो या सज्जन व्यक्तियो को दबा लेते है, उनको पीडित करते है। पर जब कष्ट मिलने से देवगण सावधान होते है, अपनी शक्तियो को एकत्रित और सगठित करते है तब वे असुरो के लिए अजेय बन जाते है। असुरो का सङ्गठन अहङ्कार, स्वार्थपरता दूसरो के उत्पीडन की भावना पर आधारित होता है, जब कि देवताओ (सज्जनो) के संगठन मे त्याग तपस्या, परोपकार, विश्वकल्याण जैसी उच्च भावनाये भी निहित रहती है। इसलिए सघर्ष मे असुरगण चाहे जैसी माया, छल-बल से काम ले, अन्त मे उन्हे परास्त होना ही पडता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से इस कथा का अर्थ मनुष्य के भीतर उत्पन्न होने वाली सद् और असद् वृत्तियो के सघर्ष और मानसिक हलचल से है। भौतिक लाभ और सुखो को प्रधानता देना और उनके लिए अनुचित ढङ्गो को अपनाना बहुसंख्यक मनुष्यों का स्वभाव होता है। वे इस जीवन का अस्तित्व देह तक ही समझते है और उनकी धारणा यही होती है कि हम अपने अन्तकाल तक जो कुछ ऐश्वर्य, वैभव प्राप्त कर लेगे और उसके द्वारा जितना विषय-सुख भोग लेगे, वही सार है, क्योकि देह त्याग के बाद कोई निश्चय नही कि क्या हो। इस प्रकार के निकृष्ट विचार मनुष्य मे स्वार्थपरता के भावो को भडकाते है जिससे अन्य व्यक्तियो को किसी भी प्रकार की हानि पहुँचाने मे सकोच नही करता।

यह एक प्रकार का तामसी अहंभाव होता है जिससे मनुष्य के अन्तर के सद्विचार क्षीण हो जाते है और वह समाज तथा ससार के लिए भ्रष्टाचारी तथा ध्वसकारी शत्रु का रूप ग्रहण कर लेता है। ऐसे तामसी और स्वार्थान्धता के विचारो का नाम ही महिषासुर है जो आत्मा की सद्वृत्तियो

को दवाकर दूपित भावनाओ का राज्य स्थापित कर देता है। इस दूपित अहम्भाव से छुटकारा पाने के लिए मनुष्य को बडा प्रयास और तैयारी करनी पडती है। उसके लिए समस्त देव शक्तियो-श्रेष्ठ मनोवृत्तियो को जागृत करके एक लक्ष्य पर एकत्रित करना पडता है। तब वह शक्तिरूपा देवी एक-एक करके दुर्विचारो की सेना का सहार करती है। अन्त मे दूपित अहभाव विभिन्न रूपो मे उसके सामने आता है पर सद्विचारो की पैनी तलवार से उसको निर्जीव कर दिया जाता है।

आधिदैविक दृष्टि से 'देवी सप्तशती' की कथा का आशय सृष्टि के विकास के आरम्भिक परिवर्तनो से है। जैसा हमे मालूम है हमारी जानी हुई चराचर सृष्टि का मूल आधार सूर्य है। उसके प्रकाश और उष्णता के कारण ही इन्द्रिय ज्ञानयुक्त जीवो की उत्पत्ति और वृद्धि हो सकी है। पर सृष्टि के आरम्भ मे जब सूर्य का आविर्भाव हुआ तब बहुत समय तक तम का आवरण उसके प्रकाश को रोके रहा। जो पदार्थ या शक्ति प्रकाश (देव-भाव) के फैलने मे बाधक होती है उसे सृष्टि विज्ञान के ज्ञाता ऋषियो ने 'असुर' के नाम से पुकारा है। प्रकाश की तरह प्राण-तत्व या गति तत्व भी देव-भाव का सूचक है क्योकि उसी से प्राणि—जगत् का विकास और उत्थान होता है। जब तक सूर्य के तेज का परिपाक नही होता और उसके द्वारा प्राण-शक्ति कार्यशील नही होती तब तक की तम के आवरण-युक्त अवस्था को वृत्र अथवा महिषासुर का आधिपत्य कहा जाता है। उस समय तक सूर्य या इन्द्र अपने 'राज्य' से वचित होता है। जब सूर्य की शक्ति का परिपाक हो जाता है और सौर-तेज सर्वत्र व्याप्त होकर सृष्टि-रचना के कार्य को अग्रसर करते है तो वही वृत्र या महिष का बध हो जाता है। यह कार्य देव-भाव की शक्ति का सग्रह होने से ही होता है, इसलिये उसे शक्ति या देवी द्वारा सम्पन्न होना कहा जाना ठीक ही है। यह सृष्टि-विकास और रचना के परिवर्तन करोडो वर्षो मे होते है अतएव 'देवासुर संग्राम' उतने समय तक चलता ही रहता है। यह सब वर्णन वेदो मे स्थान-स्थान पर पाया जाता है और पुराणकारो ने भी उसे उपाख्यान का रूप देकर अपेक्षाकृत सरल भाषा मे लिख दिया है। इस विषय पर प्रकाश

डालते हुए एक विद्वान् ने देवासुर सग्राम का इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है—

"देवो के अधिपति पुरन्दर या इन्द्र का आशय सौर-प्राण से है। सूर्य मे जागरण-भाव ही है। सूर्य के भीतर सोना (निद्रा) नही है। आसुरी-भाव परिधि पर आक्रमण करते है, पर सूर्य-मण्डल के भीतर वे प्रवेश नही कर पाते। केन्द्र पर देवताओ का ही अधिकार रहता है। असुर केन्द्र तक कभी नही पहुच सके। इसीलिये 'शतपथ ब्राह्मण' मे इन्द्र के देवासुर सग्राम को बनावटी कहा है—

न त्व युयुत्से कतमच्चनाहर्न तेऽमित्रोमघवन् कश्चनास्ति ।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रु ननु पुरायुयुत्सु ॥

अर्थात्—"हे इन्द्र ! तुम कभी लडे नही, न कोई तुम्हारा शत्रु है। तुम्हारे युद्धो का सब वर्णन माया या बनावटी है। न आज तुम्हारा कोई शत्रु है और न पहले तुमसे लडने वाला कोई था।"

'वेदो मे इन्द्र और वृत्र के युद्धो का विशद वर्णन है। वृत्र के मरने से इन्द्र 'असपत्न' (बिना शत्रु के) होगया वही भाषा मार्कण्डेय पुराण मे महिषासुर के लिये प्रयुक्त की गई है—'इन्द्रोऽभून्महिषासुर' (७५-२) महिषासुर ने इन्द्र को स्वर्ग के सिहासन से पदच्युत कर दिया और स्वय इन्द्र बन बैठा। पुन इन्द्र (सूर्य मडल का अधिष्ठातृ देवता) देव-भाव की वृद्धि से या देवी की हायता से शक्तिशाली हुए और महिषासुर मारा गया। जो आवरण करने वाला भाव है, जो अपने तम से सौर तेज को ढक देता है वही वृत्र या महिष है। सृष्टि काल के हिसाब से परमेष्ठी को सूर्य-भाव मे आने के लिये समय लगा होगा सूर्य के जन्म से लेकर उनके तेज का पूर्ण परिपाक होने तक महिषासुर ही शक्तिशाली रहा होगा अन्त मे जब इन्द्र पुन प्रबल हुए तब वही महिष बध हुआ।"

देवासुर सग्राम और देवी के युद्धो की कथाये वास्तव मे बडे सुन्दर रूपक है जिनके माध्यम से पुराणकारो ने आध्यात्मिक और आधिदैविक गूढ तत्वो को सर्व साधारण के बोधगम्य रूप मे वर्णन किया है। उनमे तामसिक शक्ति के ऊपर सात्विक शक्ति की विजय का भाव दर्शाया गया है जो मनुष्य

को सतोगुण का अवलम्बन करने भी प्रेरणा देता है। उससे प्रकट होता है कि अन्धकार या तम की शक्तियाँ चाहे कुछ समय के लिये प्रकाश—सत्य की शक्ति को आच्छादित करले पर अन्त मे विजय सत्य-सतोगुण की होती है।

चौदह मन्वन्तर—

मन्वन्तरो का वर्णन और विवेचन पुराणो का एक मुख्य लक्षण माना गया है और 'मार्कण्डेय पुराण' मे भी इस सम्बन्ध मे अनेक रोचक कथाये दी गई है। उपर्युक्त 'देवी-सप्तशती' जिसका साराँश पिछले पृष्ठो मे दिया गया है, स्वारोचिष मन्वन्तर के कथानक का ही एक अश है। मन्वन्तरो की सख्या चौदह बतलाई है जिनमे से स्वायम्भुव, स्वारोचिष, औत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष—ये छ बीत चुके है। सातवाँ वैवस्वत मन्वन्तर वर्तमान समय मे चल रहा है। इसके पश्चात् सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्र-सावर्णि, रौच्य और भौत्य नाम के सात मन्वन्तर और व्यतीत होगे। ये चौदह मन्वन्तर ब्रह्मा के एक दिन के अन्तर्गत होते है जिसका परिमाण मनुष्यो के ४ अरब ३२ करोड वर्षो का बतलाया गया है। ब्रह्मा के इस एक दिन अथवा चौदह मन्वन्तरो की सम्मिलित अवधि को एक 'कल्प' कहा जाता है।

यदि हम मानवीय इतिहास के दृष्टिकोण से विचार करते है तो दस बीस हजार वर्ष का इतिहास ही बहुत अस्पष्ट जान पडता है जिसका पता लगाने मे बहुत कुछ अनुमान और कल्पना से काम लेना पडता है। ऐसी दशा मे पुराणकारो का चार अरब वर्ष पहिले का इतिहास नाम-धाम सहित लिख देना विचित्र ही जान पडता है। पर इसका कारण यही है कि पुराणकार सृष्टि के निर्माण और प्रलय को एक सामान्य नियम मान कर उसके मुख्य परिवर्त्तनो (सर्गो) की चर्चा करते है। यह ठीक है कि वर्त्तमान मानव-सभ्यता का इतिहास आठ-दस हजार वर्ष से अधिक का विदित नहीं होता और वह भी अधूरा और कुछ अशो मे अनुमानो पर ही आधारित है, पर इसमे कोई सन्देह नही कि पृथ्वी की सृष्टि और प्रलय होते रहने से ऐसी सभ्यताऐ हजारो बार बन और बिगड चुकी है और हजारो ही बार बने और बिगडेगी। जब देश और काल अनन्त और अनादि है और निरन्तर परिवर्तन विश्व का अटल

नियम है तब आजकी दुनिया और मनुष्य जाति को ही सब कुछ समझ लेना या उसके आगे पीछे संसार को शून्य ही मान लेना ज्ञान का बहुत सीमित प्रयोग करना है ।

हम जानते है कि पुराणो मे विभिन्न मन्वन्तरो के राजाओ, ऋषियो और व्यक्तियो की जो कथाये दी गई है वह वर्तमान दुनिया के स्वरूप और नमूने के अनुसार ही लिखी गई है, पर उसमे किसी तरह की हानि नही जान पडती। इन वर्णनो का मुख्य उद्देश्य पाठको को सृष्टि की विशालता और अनादिकाल से होते चले आने वाले विविध परिवर्तनो का आभास कराना ही है जिससे वह अपनी वास्तविकता का अनुभव कर सके और अधर्म तथा अनीति से बचकर अपने धर्म कर्त्तव्यो पर आरुढ रहे। व्यक्तियो के नाम और उनके कथोपकथन तो इस उद्देश्य से लिखे गये है जिससे पाठको को वे स्वाभाविक जान पडे और वे उनसे शिक्षा और प्रेरणा प्राप्त कर सके। हम तो यह भी निश्चय पूर्वक नही कह सकते कि प्रत्येक मन्वन्तरो मे मनुष्यो का आकार प्रकार और शरीर रचना वर्तमान तरह की ही थी और वे इसी प्रकार बोलकर अपना मनोभाव प्रकट करते थे। पर इसमे सन्देह नही कि पञ्चभूत, प्राण शक्ति और चेतन-तत्त्व मिल कर इसीमे मिलती-जुलती प्राणियो की रचना और विनाश सदैव करते ही रहते है और विविध प्रकार की भली-बुरी घटनाओ का होते रहना प्रकृति का एक स्वाभाविक और अनिवार्य नियम है। यदि किसी काल के मनुष्य चार हाथ पैरो मे गमन करने वाले हो या उड कर आते-जाते हो तो इससे भी भलाई-बुराई, नैतिकता-अनैतिकता, पाप-पुण्य की शिक्षाओ मे कोई अन्तर नही पडता।

पौराणिक कथाओ का मुख्य उद्देश्य लोगो को सदाचरण की सत्-शिक्षाएं देना ही है। वर्णनो के नाम, गाँव, सख्या, कथोपकथन के ज्यो का त्यो होने पर बहस करना निरर्थक है। रामायण और महाभारत के नायको के अथवा बुद्ध, ईसा, सिकन्दर, चन्द्रगुप्त, चाणक्य, अशोक आदि ऐतिहासिक व्यक्तियो के जो सम्भाषण उनके जीवन चरित्रो या ऐतिहासिक कथाओ मे दिये गये है वह भी उस समय किसी 'शार्ट हैण्ड' लेखक ने नही लिखे थे। पर घटनाओ को सम्पूर्णता और स्वाभाविकता का रूप देने के ख्याल से कथा

लेखक, कविगण या नाटककार उसे ऐसे रूप मे लिखते ही है मानो वे घटनाये उनकी आँखो के सामने ही हुई हो। पौराणिक कथाओ की रचना भी इसी प्रकार और ऐसे ही शिक्षा देने के उद्देश्य से की गई है। हम तो उन लेखको के व्यापक दृष्टिकोण की प्रशमा ही करेगे जिन्होने मानव मात्र को ही नही प्राणीमात्र मे एक ही सत्ता का अनुभव करके मनुष्यो के सम्मुख सत्य, न्याय, सहानुभूति, दया क्षमा के दैवी गुणो के आदर्श ऐसे रूप मे उपस्थित किये जो किसी सहृदय व्यक्ति के अन्त करण को सहज ही प्रभावित कर सकते है।

इस दृष्टि से मार्कण्डेय पुराण का दर्जा बहुत ऊँचा माना जाता है। इसमे मतमतान्तर, सम्प्रदायवाद और विशेष स्वार्थो की भावना से ऊपर उठ कर आत्मोत्थान, सच्चारित्रता, परोपकार, दया, क्षमा आदि सद्गुणो की ही शिक्षा दी है। इन तथ्यो को साधारण बुद्धि के मनुष्य भी हृदयगम कर सके इसके लिये उपाख्यानो की रोचक शैली का अवलम्बन किया है। इसके 'हरिश्चन्द्र' और 'मदालसा' के उपाख्यान धार्मिक-जगत् मे अमर बन चुके है और 'देवी सप्तशती' शाक्त-सम्प्रदाय ही नही हिन्दूमात्र का पारायण ग्रन्थ बन चुका है। नरक वर्णन, योग निरूपण, सूर्य तत्त्व विवेचन, पातिव्रत महिमा आदि का इसमे एसे प्रभावशाली ढग से वर्णन किया है कि प्रत्येक पाठक को उससे कुछ न कुछ सद्प्रेरणा अवश्य प्राप्त होती है। सृष्टि-रचना, जड और प्राणी-जगत् का क्रमविकास, मानव स्वभाव के दोष और दुरितो का कथन, राजवशो की कथाये आदि पौराणिक विषयो के वर्णन मे भी मार्कण्डेय पुराण ने अतिशयोक्ति से यथासम्भव बच कर शिक्षा और उपदेश पर अधिक दृष्टि रखी है। इन सब विशेपताओ के कारण सामान्य जनता तथा विद्वानो मे भी मार्कण्डेय पुराण का आपेक्षाकृत अधिक मान है और हमारा विश्वास है कि पाठक इसके पारायण से पर्याप्त लाभान्वित हो सकते है।

मार्कण्डेय पुराण की श्लोक सख्या अन्य पुराणो के विस्तार को देखते हुए पर्याप्त न्यून है। अत इसमे कोई खास कमी नही की गई है। केवल श्राद्ध सम्बन्धी कुछ विषय जो अप्रासगिक जान पडता था छोडा गया है। अन्यथा आदि से अन्त तक सम्पूर्ण ग्रन्थ ज्यो का त्यो रखा गया है।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

मार्कण्डेय पुराण की विषय-सूची



॥ ॐ ॥

मार्कण्डेय पुराण

॥प्रकरण-१ महाभारत विषयक चार शंकायें ॥

यद्योगिभिर्भवभयार्तिविनाशयोग्यमामाद्यवदिनमतीवविविक्तचि

तद्व पुनातुहरिपाद सरोजयुग्ममाविर्भवत्क्रमविलघित भूर्भुवःस्व

पायात्सव सकलकल्मपभेददक्ष क्षोरोदकुक्षिफणिभोगनिविष्टमूर्

श्वासावधूतसलिलोत्करिणका कराल सिन्धु प्रनृत्यमिवयम्यकरोतिसग।

नारायणनमस्कृत्यनरचैवनरोत्तमम्॥ देवीसरस्वती व्यासततोजयमुदीरयेत्॥

तप स्वाध्याय निरतमार्कण्डेयमहामुनिम् ॥

व्यास शिष्योमहातेजाजमिनि पर्यपृच्छत ॥१॥

संसार के भय और दुःख के नाशक, एकान्त चित्त योगियो और सन्यासियो द्वारा ध्यान योग्य तथा वदनीय, भू भुव और स्वर्लोक का वामन रूप से अतिक्रमण करने वाले, नारायण के पद-पद्म आपको पवित्र करे ॥१॥ जो शेषशायी, श्वास से जल के कराल कण को कम्पा-यमान करने वाले, जिससे समुद्र नर्तन करता-सा प्रतीत होता है, वह अविनाशी नारायण तुम्हारे रक्षक हो ॥२॥ नर नारायण, नरोत्तम तथा देवी सरस्वती को प्रणाम करके जय कीर्तन एवं पुराण आदि का पाठ करे। ३॥ एक समय की बात है महर्षि वेदव्यास के शिष्य महा तेजस्वी जैमिनि ने, वेदादि के अध्ययन मे परायण, महा तपस्वी मार्कण्डेयजी से प्रश्न किया ॥१॥

भगवन् भारताख्यानव्यासेनोक्त महात्मना ॥
पूर्णमस्तमलै शुभ्रैर्नानाशास्त्रसमुच्चय ॥२॥
जातिशुद्धिसमायुक्त साधुशब्दोपशोभितम् ॥
पूर्वपक्षोक्तिसिद्धान्तप रनिष्ठासमन्वितम् ॥३॥
त्रिदशानायथाविष्णुर्द्विपदाब्राह्मणो यथा ॥
भूषणानाचसर्वेषायथाचूडामणिर्वर ॥४॥
यथायुधानाकुलिशर्मिन्द्रियाणायथामन ॥
तथेहसवशास्त्राणामहाभारतमुत्तमम् ॥५॥
अत्रार्थश्चैवधर्मश्चकामोमोक्षश्चवर्ण्यते ॥
परस्परानुबन्धाश्चसानुबन्धाश्चतेपृथक् ॥६॥
धर्मशास्त्रमिदश्रेष्ठमर्थशास्त्रमिदपरम् ॥
कामशास्त्रमिदचाग्र्य मोक्षशास्त्र तथोत्तमम् ॥७॥
चतुराश्रमधर्माणामचारस्थितिसाधनम् ॥
प्रोक्तमेतन्महाभागवेदव्यासेनधीमता ॥८॥

हे भगवन् ! महात्मा वेदव्यास जी ने जिस 'भारत' ग्रन्थ को कहा है, वह अनेक शास्त्रो के मर्मार्थ वाला ॥२॥ पवित्र शब्द से युक्त, छन्दालकारो से सम्पन्न, कानो को सुखप्रद है तथा उसमे वर्णित यथार्थ प्रश्नो का उत्तर सन्निविष्ट है ॥३॥ जैसे देवगण मे विष्णु, मनुष्यो मे ब्राह्मण और आभूषणो मे चूडामणि ॥४॥ अस्त्रो मे वज्र तथा इन्द्रियो मे मन प्रमुख है, वैसे ही सम्पूर्ण शास्त्रो मे एक मात्र महाभारत ही है ॥५॥ इसमे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का पारस्परिक सम्बन्ध है तथा वे प्रकट और पृथक-पृथक कहे गये है ॥६॥ इसलिये यही धर्मशास्त्र, अर्थ-शास्त्र, कामशास्त्र, और मोक्षशास्त्र है ॥७॥ हे महाभाग ! महर्षि वेदव्यास ने इसमे चारो आश्रम, उनका आचार, अवस्थान तथा साधन, सभी कुछ विशेष रूप से कहा है ॥८॥

तथातातकृतह्येतद्व्यासेनोदारकर्मणा ॥
यथा व्याप्त महाशास्त्र विरोधैर्नाभिभूयते ॥९॥
व्यासवाक्यजलौघेनकुतर्कतरुहारिणा ॥
वेदशैलावतीर्णेननीरजस्कामहीकृता ॥१०॥
कलशब्दमहाहंसमहाख्यानपराम्बुजम् ॥
कथाविस्तीर्णसलिलकापूर्णं वेदमहाह्रदम् ॥११॥
तदिद भारताख्यानबह्वर्थश्रुतिविस्तरम् ॥
तत्त्वतोज्ञातुकामोहभगवस्त्वामुपस्थित ॥१२॥
कस्मान्मानुपताप्राप्तोनिर्गुणोऽपिजनार्दन ॥
वासुदेवोजगत्सूतिस्थितिसयमकारणम् ॥१३॥
कस्माच्चपाण्डुपुत्राणामेकासाद्रुपदात्मजा ॥
पञ्चानामहिषीकृष्णाह्यत्रन सशयोमहान् ॥ १४॥

उन उदारकर्मा व्यासजी ने इस महाशास्त्र को इस प्रकार रचा है कि उसके अत्यन्त विस्तृत होने पर भी इसमे कोई स्थल, किसी भी स्थल का परस्पर विरोधी नही है ॥९॥ वासुदेव की वचन रूप जल राशि वेद रूप पर्वत से प्रकट हुई और उसने कुतर्क रूप पेडो को उखाड कर भूमि को रजहीन बना दिया ॥१०॥ यह पचम वेद रूप जलाशय महाशब्द रूप हसो और महानाख्यान रूप अरविदो से सुशोभित तथा विस्तीर्ण कथा नीर के द्वारा परिपूर्ण हुआ है ॥११॥ हे प्रभो ! जो महाभारत शास्त्र वेदार्थ और श्रुतियो से सम्पन्न है, उसका यथार्थ जानने के निमित्त ही आपके निकट उपस्थित हुआ हूँ ॥१२॥ विश्व सृष्टि, स्थिति और संहारकर्ता जनार्दन वासुदेव निर्गुण होते हुए भी मनुष्यत्व को किस लिए प्राप्त हुए ॥१३॥ द्रुपद सुता द्रौपदी एक ही पॉच पाण्डवो की पत्नी कैसे हुई इस विषय मे मुझे अत्यन्त शका है ॥१४॥

भेपजब्रह्महत्यायाबलदेवोमहाबल ॥
तीर्थयात्राप्रसङ्गेनकस्माच्चक्रे हलायुध ।१५॥
कथचद्रौपदेयास्तेऽकृतदारामहारथा ॥
पाण्डुनाथामहात्मानोवधमापुरनाथवत् ॥१६॥
एतत्सर्वं विस्तरशाम्ममाख्यातुमिहार्हसि ॥
भवन्तोमूढबुद्धीनामवबोधकरा सदा ॥१७॥
इतितस्यवच श्रुत्वामार्कण्डेयो महामुनि ॥
दशाष्टदोपरहितोवक्तु समुचक्रमे ॥१८॥
क्रियाकालोऽयमस्माकसप्राप्तो मुनिसत्तम ॥
विस्तरेचापि वक्तव्येनैपकाल प्रशस्यते ॥१९॥
येतु वक्ष्यन्तितक्ष्येऽद्यनानहजे मिनेतव ॥
तथाचनष्टसन्देह त्वाकारिष्यन्तिपक्षिरण ।२०॥
पिङ्गाक्षश्चविबोधश्चसुपुत्र सुमुखस्तथा ॥
द्रोणपुत्रा खगश्रेष्ठास्तत्त्वज्ञा शास्त्रचिन्तका ॥२१॥

तथा महाबली बलदेवजी ने तीर्थ यात्रा के प्रसग मे कैसे ब्रह्म-हत्या का प्रायश्चित किया ? ॥१५॥ पाण्डवो से रक्षित द्रौपदी के महारथी पुत्रो ने अनाथ के समान ही अविवाहितावस्था मे ही कैसे प्राण छोड दिये? ॥१६॥ यह सब मेरे प्रति विस्तार सहित कहिये, क्योकि आप ही अज्ञानियो को ज्ञानोत्पन्न करने मे समर्थ है ॥१७॥ योगशास्त्र मे वर्णित अठारह दोषो से बचे हुए महर्षि मार्कण्डेयजी ने मुनि श्रेष्ठ जैमिनी के यह वचन सुनकर कहा ॥१८॥ मार्कण्डेयजी बोले—यह समय मेरे सध्या वन्दनादि का है, विस्तार सहित कुछ कहने का नही है ॥१९॥ परन्तु, इस विषय को तुम्हारे प्रति जो पक्षी कहेगे और तुम्हारा सदेह नष्ट करेंगे, उनका वर्णन तुम्हारे प्रति कहता हूँ ॥२०॥ पिगाक्ष विबोध, सुपुत्र और सुमुख इत्यादि द्रोण-पुत्र पक्षी श्रेष्ठ, सब शास्त्रो का तत्व जानने वाले है ॥२१॥

वेदशास्त्रार्थविज्ञानेयेषामव्याहतामति ॥
विन्ध्यकन्दरमध्यस्था स्तानुपास्यत्वपृच्छच ॥२२॥
एवमुक्तस्तदातेनमार्कण्डेयेनधीमता ॥
प्रत्युवाचर्षिशार्दूलोविस्मयोत्फुल्ललोचन ॥२३॥
अत्यद्भुतमिदब्रह्मन्खगवागिवमानुषी ॥
यत्पक्षिणस्तैविज्ञानमापुरत्यन्तदुर्लभम् ॥२४॥
तिर्य्यग्योन्यायदिभवस्तेषाज्ञानकुतोऽभवत् ॥
कथचद्रोणतनया प्रोच्यन्तेतेपतत्रिण ॥२५॥
कश्चद्रोण प्रविख्यातोयस्यपुत्रचतुष्टयम् ॥
जातगुणवतातेषाधर्मज्ञानमहात्मनाम् ॥२६॥
शृणुष्वावहितो भूत्वायद्वृत्त नन्दनेपुरा ॥
शक्रस्याप्सरसाचैवनारदस्यचसगमे ॥२७॥

वे विध्याचल की कन्दरा मे निवास करते है उनकी बुद्धि वेदशास्त्र के अर्थ मे कभी अवरुद्ध नही होती, उनकी उपासना करके प्रश्न करोगे तो सम्पूर्ण विषय का ज्ञान तुम्हे हो सकता । २२। मेधावी मार्कण्डेयजी के यह वचन सुनकर उन मुनि शार्दूल जैमिनि ने विस्मय मे विस्फारित हुए नेत्रो से प्रश्न किया ॥२३॥ जैमिनि बोले—प्रथम तो यह आश्चर्य की बात है कि पक्षी भी मनुष्य के समान वार्ता कह सकते हैं फि अत्यन्त आश्चर्य यह है कि उन्हे अलभ्य शास्त्र ज्ञान प्राप्त हो चुका है ।।२४। उनका जन्म यदि तिर्यग्योनि मे हुआ है तो ऐसा ज्ञान की उपलब्धि उन्हे कह से हुई और वे द्रोणपुत्र किस प्रकार कहे जाते है ? । २५।। वह द्रोण कौन है जिसके पुत्र यह चार पक्षी है तथा इन गुणज्ञ एव महात्मा पक्षियो को धर्मज्ञा की प्राप्ति किस प्रकार हुई ? ।।२६।। मार्कण्डेयजी ने कहा—हे जैमिने प्राचीन काल मे इन्द्र, नारद तथा अप्सराओ के नन्दन वन मे एकत्र मिल होने पर जो घटना हुई, उसे एकाग्र मन होकर श्रवण करो ॥२७॥

नारदोनन्दनेऽपश्यत्पु श्चलीगणमध्यगम् ॥
शक्र सुराधिराजानतन्मुखासक्तलोचनम् ॥२८॥
सतेनर्षिवरिष्ठेनदृष्टमात्र शचीपति ॥
समुत्तस्थौस्वकञ्चास्मैददावासनमादरात् ॥२९॥
तद्दृष्टात्रलवृत्रघ्नमुत्थितत्रिदशाङ्गना ॥
प्रणेमुस्ताश्चदेवर्षिविनयावनता स्थिता ॥३०॥
ताभिरभ्यार्चित सोऽथ उपविष्टेशतक्रतौ ॥
यथार्ह कृतसंभाष कथाश्चक्रेमनोरमाः ॥३१॥
तत कथान्तरेशक्रस्तमुवाचमहामुनिम् ॥
देह्याज्ञानृत्यतामासातवयाभिमतेतिवै ॥३२॥
रम्भावाकर्कशावाथउवश्यथ तिलोत्तमा ॥
घृताचीमेनकावापियत्रवाभवतोरुचि ॥३३॥
एतच्छ्रुत्वाद्विजश्रेष्ठोवाचशक्रस्यनारद ॥
विचिन्त्याप्सरम प्राहविनयावनता स्थिता ॥३४॥

एक दिन नारदजी ने वहाँ पहुँचकर देखा कि देवराज इन्द्र अनेक वाराङ्गनाओं से घिरे हुए उनके ही मुख को देख रहे हे ॥२८। शचीपति इन्द्र महर्षि श्रेष्ठ नारद को देखते ही उठे और अत्यन्त आदरपूर्वक उनके निमित्त अपना आसन दिया ॥२९॥ इन्द्र को उठता हुआ देखकर उन वाराङ्गनाओं ने भी उठकर महर्षि नारद को प्रणाम किया और विनयपूर्वक नतमस्तक हुई खडी रही ॥३०॥ उनके द्वारा इस प्रकार पूजित हुए नारदजी इन्द्र के सहित बैठ कर परस्पर अनेक प्रकार की बाते करने लगे ॥३१॥ इसी मध्य उन महर्षि से इन्द्र बोले—हे महाभाग ! यदि आपकी इच्छा हो तो नृत्यगान की आज्ञा दीजिये ॥३२॥ रम्भा, मिश्रकेशी, तिलोतमा उर्वशी, घृताची या मेनका मे से जिसे आप चाहे उसी को नृत्य करने का आदेश दे ॥३३॥ द्विजोत्तम नारद जी ने इन्द्र की यह बात सुनी तो कुछ समय विचार कर उन्होने विनय से झुकी हुई उन अप्सराओ से कहा ॥३४॥

युष्माकमिह सर्वासां रूपौदार्यगुणाधिकम् ॥
आत्मानमन्यते यातु सा नृत्यतु ममाग्रत ॥३५॥
गुणरूपविहीनाया सिद्धिर्नाटयस्यनास्तिवै ॥
चार्वधिष्ठानवन्नृत्यनृत्यमन्यद्विडम्बनम् ॥३६॥
तद्वाक्यसमकालञ्चएकैकास्तानतास्तत ॥
अहगुणाधिकानत्वनत्वचान्याब्रवीदिदम् ॥३७॥
तासासभ्रमालोक्य भगवान्पाकशासन ॥
पृच्छयतामुनिरित्याहवक्तायावोगुणाधिकाम् ॥३८॥
शक्रच्छन्दानुयाताभि पृष्टस्ताभि सनारद ॥
प्रोवाचयत्तदावाक्यजैमिनेनन्निबोधमे ॥३९॥
तपस्यतनगेन्द्रस्थयाव.क्षोभयतेबलात् ॥
दुर्वाससमुनिश्रेष्ठ तावोमन्येगुणाधिकाम् ॥४०॥
तस्यतद्वचनश्रुत्वासर्वावेपितकन्धरा ॥
अशक्यमेतदस्माकमितिताश्चक्रिरेकथा ॥४१॥

देखो, तुम्हारे मध्य जो भी अधिक रूपवती हो, तथा जो अपने मे उदारता आदि गुणो को पाती हो, वही मेरे समक्ष नृत्य करे ॥३५॥ क्योकि नाट्यशास्त्र मे रूपवती और गुणवती नारी के अतिरिक्त किसी अन्य की सिद्धि नही तथा हाव, भाव, कटाक्ष, विक्षेपादि से सम्पन्न नृत्य ही नृत्य कहा जाता है ॥३६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—नारदजी की यह बात सुनकर अप्सराए परस्पर मे विवाद करने लगी—सब गुणो से विभूषित विशिष्ट मै ही हूँ, तुम नही हो ॥३७॥ उनमे इस प्रकार विवाद होता देख कर इन्द्र बोले—इन मुनि से ही पूछो कि तुम मे से गुणवती कौन-सी हे ? इस बात को यही कह सकते है ॥३८॥ हे जैमिने ! इन्द्र की इच्छा पर उद्यत रहने वाली अप्सराओ द्वारा पूछने पर उस समय नारदजी ने जो कुछ कहा, वह कहता हूँ ॥३९॥ नारदजी ने कहा—पर्वत पर मुनिवर दुर्वासा तप करते है, तुम मे से जो कोई उन्हे मोहित कर सकेगी, वही अधिक गुणवती होगी ॥४०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—

उनकी बात सुनकर सब अप्सराओं का मस्तक घूम गया और वे बोलीं कि हम इस कार्य मे समर्थ नही है ॥४१॥

तत्राप्सरावपुर्नाम मुनिक्षोभणगर्विता ॥
प्रत्युवाचानुयास्यामियत्रासौमस्थितोमुनि. ॥४२॥
अद्यतदेहयन्तारप्रयुक्तेन्द्रियवाजिनम् ॥
स्मरशस्त्रगलद्रश्मिकरिष्यामिकुसारथिम् ॥४३॥
ब्रह्माजनार्दनोवापियदिवानीललोहित ॥
तमप्यद्यकरिष्यामिकामबाणक्षतान्तरम् ॥४४॥
इत्युक्त्वाप्रजगामाथप्रालेयाद्रिवपुस्तदा ॥
मुनेस्तप प्रभावेणप्रशान्तश्वापदाश्रमम् ॥४५॥
सापुस्कोकिलमाधुर्यायत्रास्तेसमहामुनि ॥
क्रोशमात्र स्थितातस्मादगायतवराप्सरा ॥४६॥
तद्गीतध्वनिमाकर्ण्यमुनिर्विस्मितमानस ॥
जगामतत्रयत्रास्तेसाबालरुचिरानन ॥४७॥
तांदृष्ट्वाचारुसर्वाङ्गीमुनि सस्तभ्यमानमम् ॥
क्षोभणायागतांज्ञात्वाकोपामर्षसमन्वित ॥४८॥

परन्तु, उनमे वपु नाम की एक अप्सरा अनेक मुनियो का तप भग कर चुकी थी, इसलिये उसने सगर्व कहा कि आप मुझे आज्ञा करे, दुर्वासाजी जहाँ निवास करते है, मै वहाँ जाने को उद्यत हूँ ॥४२॥ मै उनकी मन रूप लगाम को काम बाण से काट कर इन्द्रिय रूप अश्वो को उल्टी दिशा मे फेर कर देह रूप रथ को बुद्धि रूप सारथी से विहीन कर डालूँगी ॥४३॥ यदि ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव भी हो, तो भी मै उनके अन्तर को काम बाण से अवश्य ही जर्जर कर डालूँगी ॥४४॥ यह कह कर वह अप्सरा हिमालय मे पहुँची, वहा दुर्वासा के तप के प्रभाव से आश्रम के हिंसक जीव भी अत्यन्त शान्त रहते थे ॥४५॥ जहाँ दुर्वासा रहते थे, वहा से एक कोश दूर रह कर वह अप्सरा श्रेष्ठ वपु अपने कोकिल कंठ से गायन करने लगी ॥४६॥ जहाँ पर वह

कोकिल कंठी गारही थी, वहाँ उस गान को सुन कर आश्चर्यान्वित हुए दुर्वासा पहुँचे ॥४७॥ और उन्होंने उस सर्वाङ्गसुन्दरी को देखकर मन को रोकते हुए सोचा कि यह मेरी तपस्या मे विघ्न रने को उपस्थित हुई है और क्रोध मे भर कर बोले ॥४८॥

उवाचेदततोवाक्य महर्षिस्तामहातपा ॥४९॥
यस्माद् खार्जितस्येहतपसोविघ्नकारणात् ॥
आगतासिमदोन्मत्ते ममदु खायखेचरि ॥५०॥
तस्मात्सुपर्णगोत्रेत्व मत्क्रोधकलुषीकृता ॥
जन्मप्राप्स्यसिदुष्ट ज्ञेयावद्वर्षाणिषोडश ॥५१॥
निजरूपपरित्यज्यपक्षिणीरूपधारिणी ॥
चत्वारस्तेचतनयाजनिष्यन्तेऽधमाप्सरा ॥५२॥
अप्राप्यतेषुचप्रीतिंशस्त्रपूतापुनर्दिवि ॥
वासमाप्स्यसिवक्तव्यनोत्तरतेकथचन ॥५३॥
इति वचनमसह्य कोपसरक्तदृष्टिश्चलकलवलयातामानिनी श्रावयित्वा ।
तरलतरतरङ्गागापरित्यज्यविप्र प्रथितगुणगणौघासप्रयात: वगङ्गाम् ॥

उन महा तपस्वी महर्षि ने उसके प्रति कहा ॥४९॥ अरी मदोन्मत्त खेचरी ! कष्टो से उपार्जित मेरे इस तप मे विघ्न करने के लिये ही तू यहाँ आई है ॥५०॥ हे दुर्बुद्धि वाली ! तू मेरे क्रोध मे कलुषित होकर पक्षि-कुल मे जन्म लेकर सोलह वर्ष तक रहेगी ॥५१॥ अरी अधम अप्सरे ! तू अपने इस रूप को छोड कर पक्षी का रूप धारण करेगी, उस समय तेरे चार पुत्र होगे ॥५२॥ तू पुत्रोत्पत्ति की प्रीति मे वचित रहेगी और शस्त्र के आघात से पापो से छूट कर पुनः स्वर्ग को प्राप्त होगी, अब इसमे किसी प्रश्नोत्तर की आवश्यकता नही है ॥५३॥ विप्र श्रेष्ठ दुर्वासा क्रोधपूर्ण रक्त नयनो से, मनोरम ककण को धारण करने वाली मानवती वपु से इतना कह कर पृथ्वी को त्याग कर, प्रसिद्ध गुणो वाली आकाश गगा को चले गये ॥५४॥

।। प्रकर्ण २—महाभारत सग्राम मे पक्षी शावको का जन्म ।।

अरिष्टनेमिपुत्रोऽभूद्गरुडोनामपक्षिराट् ।।
गरुडस्याभवत्पुत्र सम्पातिरितविश्रुत ।।१।।
तस्याप्यासीत्सुत शूर सुपार्श्वोवायुविक्रम ।।
सुपार्श्वत नय कुन्ति कुन्तिपुत्र प्रलोलुप ।।२।।
तस्यापितनयावास्ताकङ्क कन्धरएवच ।।३।।
कङ्क कैलासशिखरेविद्यु द्रूपेनिविश्रुताम् ।।
ददर्शाम्बुजपत्राक्षराक्षस धनदानुगम् ।।४।।
आपानासक्तममलस्रग्दामाम्बर धारिणम् ।।
भार्यासहायमासीनशिलापट्टेऽमलेशुभे ।।५।।
तद्दृष्टमात्र कङ्केनरक्ष क्रोधसमन्वितम् ।।
प्रोवाचकस्मादायातस्त्वमितोह्यण्डजाधम ।।६।।
स्त्रीसन्निकर्षैतिष्ठन्तकस्मान्मामुपसर्पसि ।।
नैषधर्म सुबुद्धिनामिथोनिष्पाद्यवस्तुषु ।।७।।

मार्कण्डेयजी ने कहा—अरिष्टनेमि के पुत्र पक्षिराज गरुड हुए तथा गरुड का पुत्र सम्पाति हुआ ।।१।। उस सम्पाति का अत्यन्त बली एव वायु के समान विक्रम वाला पुत्र सुपार्श्व हुआ, सुपार्श्व का पुत्र कुन्ति और कुन्ति का पुत्र प्रलोलुप हुआ ।।२।। प्रलोलुप के कक और कन्धर नाम के दो पुत्र हुए ।।३।। कक एक दिन कैलाश पर्वत मे गया और वहाँ उसने कमलपत्र के समान विशाल नेत्र वाले कुबेर-किकर विद्यु द्रूप नाम के राक्षस को देखा ।।४।। वह राक्षस उस समय स्वच्छ माला और श्रेष्ठ वस्त्र धारण किये एक स्वच्छ शिला पर अपनी पत्नी के सहित बैठा हुआ मद्य पी रहा था ।।५।। कक को देखते ही वह राक्षस अत्यन्त क्रोधपूर्वक बोला—रे पक्षिय अधम ! तू यहाँ किसलिये उपस्थित हुआ है ? ।।६।। मै इस समय अपनी भार्या के साथ बैठा

हू, तब तू मेरे पास क्यो आया है ? रहस्य कार्य मे बुद्धिमानो का ऐसा आचरण उचित नही है ॥७॥

साधारणोऽयशैलेन्द्रोयथातवतथामम ॥
अन्येपाचैवजन्तूनामता भवतोऽत्रका ॥८॥
ब्रुवाणमित्थखड्गेनकङ्कचिच्छेदराक्षस ॥
क्षरत्क्षतजवोमत्सविस्फुरन्तमचेतनम् ॥९॥
कङ्कविनिहतश्रुत्वाकन्धरक्रोधमूर्छित ॥
विद्युद्रूपवधायाशुमनश्चक्रेण्डजेश्वर ॥१०॥
सगत्वाशैलशिखरकङ्कोयत्रहत स्थित ॥
तस्य सकलनचक्रेभ्रातुर्ज्येष्ठस्यखेचर ॥
कोपामर्षविवृत्ताक्षोनागेन्द्रइवनि श्वसन् ॥११॥
जगामाथसयत्रास्तेभ्रातृहातस्यराक्षस ॥
पक्षवातेनमहता चालयन्भूधरान्वरान् ॥१२॥
वेगात्पयोदजालानिविक्षिपन्क्षतजेक्षण ॥
क्षणात्क्षयितशत्रु सपक्षाभ्याक्रान्तभूधर ॥१३॥
पानासक्तमतितत्रतददर्शनिशाचरम् ॥
आताम्रवक्त्रनयनहेमपर्यङ्कमाश्रितम् ॥१४॥

कक बोला—इस पर्वत पर सभी का समान अधिकार है, जैसा तुम्हारा अधिकार है, वैसा ही मेरा तथा अन्य-अन्य जीवो का है, फिर तुम्हे इसके प्रति इतना ममत्व क्यो है ? ॥८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—कक की यह बात सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुए उस राक्षस ने खड्ग से उसका शीश काट डाला, उस समय अधिक रक्त गिरने से अति भयानक कार्य हुआ और कक की मृत्यु होगई ॥९। फिर पक्षिय श्रेष्ठ कन्धर ने कक का मरण सुना तो अत्यन्त क्रोधित होकर उसने विद्युद्रूप राक्षस को मार डालने का विचार किया ॥१०॥ फिर कक के उस ज्येष्ठ भ्राता कधर ने कैलाश मे जहाँ कक की मृत्यु हुई थी वहा पहुच कर उसकी अन्त्येष्टि की और विस्फारित नेत्रो से सर्प के समान श्वास लेने लगा ॥११॥ और जहाँ कक का हत्यारा वह विद्युद्रूप राक्षस था,

वहाँ पहुँचा । उसके जाते समय उनके पंखों की हवा के वेग से बड़े बड़े पर्वत हिलने लगे ॥१२॥ और समुद्र का जल भी उधर उधर फैलने लगा । पश्चात् पंखों के बल से ही कन्धर ने पर्वत पर आक्रमण किया ॥१३॥ उसने वहाँ जाकर देखा कि सुवर्णमय शैय्या पर स्थित वह राक्षस मद्यपान कर रहा है ॥१४॥

स्रग्दामापूरितशिखहृग्चिन्दनभूषिनम् ॥
केतकोपत्रगर्भाभैर्दनैर्घोरनराननम् ॥१५॥
वामोरुमाश्रिताचास्यददर्शायतलोचनाम् ॥
पत्नीमदनिकानामपुंस्कोकिलाकलस्वनाम् ॥१६॥
ततोरोषपरीतात्माकन्धर कन्दरस्थितम् ॥
तमुवाचमुदुष्टात्मन्नेहियुध्यस्ववेमया ॥१७॥
यस्माज्ज्येष्ठोममभ्राताविश्वयोघातितस्त्वया ॥
तस्मात्त्वामदससक्त नयिष्येयमसादनम् ॥१८॥
विश्वस्तघातिनालोकायेवस्त्रीबालघातिनाम् ॥
यास्यसे निरयान्सर्वास्तांस्त्वमद्यमयाहतः ॥१९॥
इत्येवपतगेन्द्रेणप्रोक्त स्त्रीसन्निधौतदा ॥
रक्ष क्रोधसमाविष्ट प्रत्यभाषतपक्षिणम् ॥२०॥

जिसका मुख मण्डल और दोनो नेत्र रक्त वर्ण के हो रहे है, उसके मस्तक मे माला पडी है तथा वह सर्वाङ्ग चन्दन मे चर्चित है और उसका मुख-मण्डल केतकी पुष्प के गर्भ पत्र के तुल्य श्वेत दन्त-पंक्ति मे सुशोभित है ॥१५॥ तथा उसने यह भी देखा कि एक सर्वाङ्ग सुन्दरी, कोकिलकण्ठ वाली नारी उसके निकट बैठी है उसके दोनो नेत्र विशाल है, वह उसकी पत्नी है, जिसका नाम मदनिका है ॥१६॥ फिर पक्षिय श्रेष्ठ कन्धर ने पर्वत कन्दरा मे स्थित उस राक्षस को क्रोधपूर्वक बुला कर कहा—अरे दुष्ट आत्मा वाले ! तू शीघ्र यहाँ आकर मुझसे संग्राम कर ॥१७॥ तू ने मदोन्मत्त होकर मेरे भाई की हत्या की है, इसलिये मै तुझे अवश्य ही यम सदन को भेज दूंगा ॥१८॥ जिन नरको को विश्वासघात करने वाले, स्त्री और बालको के हत्यारे प्राप्त होते है, उन्ही नरको मे तुझे भी मेरे हाथ से प्राण-त्याग करना पडेगा ॥१९॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—कधर के इन वचन सुनकर वह राक्षस अत्यन्त क्रोध-पूर्वक उस पक्षिराज से कहने लगा ॥२०॥

यदितेनिहताभ्रातापौरुषंमद्विदर्शितम् ॥
तस्मात्त्वामद्य हनिष्येहंखड्गेनानेनखेचर ॥२१॥
तिष्ठक्षणंनात्रजीवन्त्वंगाधमप्रास्यसि ॥
इत्युक्त्वाञ्जनपुञ्जाभविमलखड्गमाददे ॥२२॥
ततः पतगराजस्यरयक्षाधिपभटस्यच ॥
बभूवयुद्धमतुलंयथागरुडशक्रयोः ॥२३॥
ततःसराक्षसःक्रोधात्खड्गमाविध्यवेगवत् ॥
चिक्षेपपतगेन्द्रायनिर्वाणाङ्गारवर्चसम् ॥२४॥
पतगेन्द्रश्चतंखड्गं किञ्चिदुत्प्लुत्यभूतलात् ॥
वक्त्रेणजग्राहनदागरुणःपन्नगं यथा ॥२५॥
वक्त्रपादतलैर्भङ्क्त्वाचक्रेक्षोभमथाण्डजः ॥
तस्मिन्भग्नेततःखड्गे बाहुयुद्धमवर्तत ॥२६॥

अरे तेरे भाई की मृत्यु से मेरा पौरुष ही प्रकट हुआ है, इसलिये अब इस खड्ग द्वारा तेरा भी वध करूँगा ॥२१॥ अरे अधम ! तू क्षण भर ठहर, मेरे पास से अब तू जीवित कदापि नहीं जा सकता। यह कहकर उस राक्षस ने निर्मल खड्ग को हाथ मे ग्रहण किया ॥२२॥ और जिस प्रकार प्राचीन काल मे इन्द्र-गरुड का तुमुल सग्राम हुआ था, उसी प्रकार इस राक्षस मे और कधर मे युद्ध होने लगा ॥२३॥ फिर अत्यन्त क्रोध मे भर कर उस राक्षस ने अग्नि के समान चमचमाते हुए उस खड्ग को वेग पूर्वक कधर के ऊपर चलाया ॥२४॥ परन्तु, जिस प्रकार गरुड सर्पो को चोच मे दबा लेता है, उसी प्रकार कधर ने कुछ कूद कर खड्ग को चोच मे दबा लिया ॥२५॥ तथा उस खड्ग को पाव मे प्रहार से तोडकर अत्यन्त क्रोधित हुआ और अब उन दोनो मे बाहु युद्ध होने लगा ॥२६॥

तत पतगराजेनवक्षस्याक्रम्यराक्षस ॥
हस्तपादकरैराशुशिरसाचवियोजित ॥२७॥
तस्मिन्विनिहतेसास्त्रीखगशरणमभ्यगात् ॥
किञ्चित्सञ्जातसन्त्रासाप्रहास्मभार्याभवामिते ॥२८॥
तामादायखगश्रेष्ठ स्वकगृहमगात्पुन ॥
गत्वासनिष्कृतिभ्रातुर्विद्युद्रूपनिपातनात् ॥२९॥
कन्धरस्यचसावेश्मप्राप्येच्छारूपधारिणी ॥
मेनकातनयासुभ्रू सौपर्ण रूपमाददे ॥३०॥
तस्यासजनयामासतार्क्षी नामसुतानदा ।
मुनिशापाग्निविप्लुष्टावपुमप्सरसावराम् ॥
तस्यानामतदाचक्रे तार्क्षीमिति वहगम ॥३१॥
मन्दपालसुताश्चासश्चत्वारोऽमितबुद्धय ॥
जरितारिप्रभृतयोद्रोणान्ताद्विजसत्तमा ॥३२॥
तेषाजघन्योधर्मात्मावेदवेदागपारग ॥
उपयेमेसतातार्क्षीकन्धरानुमतेशुभाम् ॥३३॥

फिर वह राक्षस कधर के द्वारा वक्षस्थल मे चोट मारे जाने से जर्जर होगया और उसकी नाडी, हाथ, पाव, मस्तक शरीर से अलग होगये ॥२७॥ उस राक्षस की मृत्यु होने पर उसकी पत्नी भय से व्याकुल होकर कधर की शरण मे गई और बोली कि 'मै आपकी पत्नी होती हूँ'॥२८॥ पक्षिवर कधर राक्षस को मार कर भाई के शोक से निवृत्त होगये और मदनिका को साथ लेकर अपने घर पहुँचे ॥२९॥ वह राक्षसी मदनिका इच्छानुसार रूप ग्रहण करने वाली मेनका की पुत्री थी, वह कधर के घर मे पाक्षिय रूप धारण कर रहने लगी ॥३०॥ दुर्वासा की शापाग्नि से पीडित वपु नाम की अप्सरा ने इसी के उदर मे जन्म पाया और कधर ने उसका नाम तार्क्षी रखा ॥३१॥ हे ब्रह्मन् ! मन्दपाल नामक एक ब्राह्मण था, उसके चार पुत्र थे, उनमे बडे का नाम जितारि और छोटे पुत्र का नाम द्रोण था,

वे सभी अत्यन्त मेधावी थे ।।३२।। वेद वेदान्तो के तत्वज्ञाता द्रोण के साथ पक्षीराज कश्यप की अनुमति से वह सर्वाङ्ग सुन्दरी तार्क्षी विवाही गयी थी ।।३३।।

कस्यचित्त्वथकालस्यतार्क्षीगर्भमवापह ।।
सप्तपक्षाहितेगर्भेकुरुक्षेत्रजगामसा ।।३४।।
कुरुपाण्डवयोर्युद्धे वर्तमानेमुदारुणे ।।
भावित्वाद्दैवकार्यस्यरयमध्येविवेशसा ।।३५।।
तत्रापश्यतयुद्ध सासर्वेपापृथिवीक्षिताम् ।।
शरशक्त्यृष्टिभिर्भीमयथादेवासुररणम् ।।३६।।
तत्रापश्यत्तदायुद्ध भगदत्तकिरीटनो ।।
निरतर शरै रासीदाकाशशलभैरिव ।।३७।।
पार्थकोदण्डनिर्मुक्तमासन्नमतिवेगवत् ।।
तस्याभल्लमहिश्यामत्वचच्छिदजाठरीम् ।।३८।।
भिन्नेकोष्ठेशशाङ्काभभूमावण्डचतुष्टयम् ।।
आयुष मावशेषत्वात्तूलराशाविवापतत् ।।३९।।
तत्पातसमकालाचसुप्रतीकाद्गजोत्तमात् ।।
पपातमहतीघण्टाबाणसाछिन्नबन्धना ।।४०।।

कुछ समय व्यतीत होने पर तार्क्षी गर्भवती हुई, गर्भ धारण के दिन से सात सप्ताह व्यतीत होने पर तार्क्षी कुरुक्षेत्र गई ।।३४।। उस समय वहाँ कौरव पाण्डवो का भीषण सग्राम चल रहा था, परन्तु भवितव्य को कोई नही मिटा सकता, इसीलिये तार्क्षी उस सग्राम भूमि मे पहुँच गई ।।३५।।

वहाँ जाकर उसने देखा कि भगदत्त और अर्जुन मे घोर युद्ध होरहा है और उनके द्वारा निरन्तर छोडे जाने वाले बाणो से व्योम टीढी दल के समान व्याप्त है ।।३६।।३७।। पार्थ के धनुप से वेग पूर्वक निकलेहुए एक बाण ने तार्क्षी के जठर की त्वचा बीध दी ।।३८।। उसकी कोष्ठ विदीर्ण होने पर चन्द्रमा के समान शुभ्र चार अण्डे ऊपर से गिर कर भी आयु होने के कारण रुई के समान सुख पूर्वक पृथिवी मे आ गिरे ।।३९।। उसी समय भगदत्त के सुप्रतीक नामक हाथी के कण्ठ का घण्टा बाण से कट कर भूमि पर गिरा ।।४०।।

समसमन्तात्प्राप्तातुर्निर्भिन्नधरणीतला ॥
छादयन्त्तांखमण्डानिस्थिगनिषिशितापरि ॥४१॥
हतेचतस्मिन्नृपतौभगदत्तोनरेश्वरे ॥
बहून्यहान्यभूद्युद्ध कुरुपाण्डवसैन्यो ॥४२॥
वृत्तेयुद्धे धर्मपुत्रेगतेशान्तनवान्तिकम् ॥
भीष्मस्यगदतोऽशेषाञ्श्रोतु धर्मान्महात्मन ॥४३॥
घण्टागतानितिष्ठन्तियत्राण्डानिद्विजोत्तम ॥
आजगामतमृद्देशशमीकोलामसयमी ॥४४॥
सतत्रशब्दमश्रृणोच्चिचीकुचीतिवाशताम् ॥
बाल्यादस्फुटवाक्यानाविज्ञानेऽपि परेसति ॥४५॥
अथर्षि शिष्यसहितोघण्टामुत्पाटयविस्मित ॥
अमातृपितृपक्षाणिशिशुकानिददर्शह ॥४६॥

यद्यपि दोनो एक समय ही पृथ्वी पर गिरे थे, परन्तु दैववश माँस पिण्ड के सब अण्डो को चारो ओर ऊपर से ढकता हुआ वह घण्टा ढक्कन से समान होगया ॥४१॥ राजाओ मे श्रेष्ठ भगदत्त के वध होने पर भी कौरव पाण्डव सेनाओ मे बहुत समय तक युद्ध चलता रहा ॥४२॥ जब युद्ध समाप्त होगया, तब धर्मपुत्र युधिष्ठिर अनेक प्रकार के धर्म विषयक उपदेश सुनने के लिये शान्तनु पुत्र भीष्म के पास गये ॥४३॥

फिर सयम चित्त वाले विप्र श्रेष्ठ शमीक मुनि, जहा घटे से ढँके हुए पक्षी के बालक थे, वहाँ सहसा जा पहुचे ॥४४॥ और उन्होने घटे के भीतर उन बालको का 'चिचा कुची' शब्द सुना । यद्यपि बालको को बहुत ज्ञान होगया था, फिर भी वह बाल्यावस्था के कारण समझ मे न आने वाले शब्द ही बोल रहे थे ॥४५॥ फिर शिष्यो सहित उन ऋषि ने पक्षि बालको का शब्द सुनकर आश्चर्य सहित घटे को भूमि से उठाया तब उन्हे माता, पिता तथा पखो से रहित वे बालक दिखाइ दिये ॥४६॥ उन शमीक मुनि ने पृथिवी पर उन बालको को यथावत् देखकर आश्चर्य सहित अपने साथी ब्राह्मणो से

तानितत्रतथाभूमौशमीकोभगवान्मुनि ।
दृष्ट्वासविस्मयाविष्ट प्रोवाचानुगतान्द्विजान् ।।४७।।
सम्यगुक्त द्विजाग्र्येणशुक्रेणोशनसास्वयम् ।
पलायनपरदृष्ट्वादैत्यसैन्यमुरार्दितम् ।।४८।।
नगन्तव्यनिवर्तध्वकस्माद्व्रजतकातरा ।।
उत्सृज्यशौर्य्ययशमीक्वगतानमरिष्यथ ।।४९।।
नश्यतोयुध्यतोवापिता वद्भवतिजीवितम् ।
यावद्धातासृजत्पूर्वनयावन्मनसेप्सितम् ।।५०।।
एकेम्रियन्तेस्वगृहेपलायन्तोऽपरे जना· ।
भुञ्जन्तोऽन्न तथैवाप पिवन्तोनिधनगता ।।५१।।
विलासिनस्तथैवायेकामयानानिरामया ।
अविक्षतागा शस्त्रैश्चप्रेतराजवशगता ।।५२।।
अन्येतपस्यभिरतानीता प्रेतनृपानुगै ।
योगाभ्यासेरताश्चान्येनैवप्रापुरमृत्युताम् ।।५३।।
शम्वरायपुराक्षिप्त वज्र कुलिशपाणिना ।
हृदयेऽभिहतस्तेनतथापिनमृतोसुर ।।५४।।
तेनैवखलुवज्रेणतेनैवेन्द्रेणदानवा ।
प्राप्ते कालेहतादैत्यास्तत्क्षणान्निधनगता ।।५५।।
विदित्वैवनसत्रास कर्तव्योविनिवर्तत ।
ततो निवृत्तास्तेदैत्यास्त्यक्त्वामरणजभयम् ।।५६।।

कहा ।।४६।। हे ब्राह्मणो ! पुराकाल मे देवताओ द्वारा ताडित दैत्य सेना के इधर-उधर भागने पर द्विजोत्तम शुक्राचार्यजी ने उससे स्वय ही कहा था ।।४७।। हे दैत्यो ! तुम मत भागो, रुको, इस प्रकार कातर होकर क्यो भागते हो ? शौर्य और यश को छोड कर कहा जाओगे ? क्या तुम्हारी मृत्यु कभी नही होगी ? जिस विधाता ने तुम्हे उत्पन्न किया है, उसकी जब तक इच्छा न हो, तब तक मत भागो, सग्राम करो, इससे तुम किसी भी प्रकार मृत्यु को प्राप्त न होगे ।।४८।। घर रहते हुए भी कोई मर जाता है, कोई भाग कर भी मर

है ।।५०।। कोई काम का अनुगत होकर, कोई स्वस्थ रह कर, कोई दिव्य भोग विलास करता हुआ, कोई शस्त्र आदि से घायल न होने पर भी काल के कराल गाल मे जा पडता है ।।५१।। कोई तपस्या मे रत रहता हुआ तथा कोई योगाभ्यास करता हुआ ही यमपुर को प्राप्त होगया, परन्तु अमर कोई भी नही हो सका ।।५२।। पुराकाल मे वज्रपाणि इन्द्र ने शब्द पर बज्र से आघात किया और हृदय विदीर्ण हो जाने पर भी वह असुर नही मर सका ।।५३।। उसी इन्द्र ने उसी वज्र से सब असुरो पर आघात किया और उनका काल था, इसलिए वे सब मृत्यु को प्राप्त हो गए ।।५४।। इसलिए यह सब जानकर भी तुम त्रास क्यो करते हो ? उससे निवृत्त होओ, तब सुन कर दैत्यो ने मृत्यु भय त्याग दिया और वे भागने से रुक गये ।।५५।। हे ब्राह्मणो ! पक्षी के इन बालको ने शुक्राचार्यजी के वे वचन सत्य कर दिये । अहो, इस अद्भुत युद्ध मे भी इनके प्राण नही गये ।।५६।।

इतिशुक्रवच सत्यकृतमेभि खगोत्तमै ।
येयुद्धेऽपिनसप्राप्ता पञ्चत्वमतिमानुषे ।।५७।।
काण्डानापतनविप्रा ववघण्टापतनसमम् ।
क्वचमासवसारक्तैर्भूमेरास्तरणक्रिया ।।५८।।
केऽत्येतेसर्वथाविप्रनैतेसामान्यपक्षिण ।
दैवानुकूलतालोके महाभाग्यप्रदर्शिनी ।।५९।।
एवमुक्त्वासतान्वीक्ष्यपुनर्वचनमब्रवीत् ।
निवर्तताश्रमयातगृहीत्वापक्षिबालकान् ।।६०।।
मार्जाराखुभययत्रनैषामण्डजजन्मनाम् ।
श्येनतोनकुलाद्वापिस्थाप्यतातत्र पक्षिण ।।६१।।
द्विजा किवातियत्नेनमार्यन्तेकर्मभि स्वकै ।
रक्ष्यन्तेचाखिलाजीवायथैतेपक्षिबालका ।।६२।।
तथापियत्न कर्तव्योनरै सर्वेषुकर्मसु ।
कुर्वन्पुरुषकारतुवाच्यतायातिनोसताम् ।।६३।।
इतिमुनिवरचोदितास्ततस्तेमुनितनया परिगृह्यपक्षिण स्तान् ।
तरुविटपसमाश्रितालिसघययुरथतापसरम्यमाश्रमस्वम् ।।६४।।

सचापिवन्यमनसाभिकामितप्रगृह्यमूलकुसुमफलकुशान् ।
चकारचक्रायुधरुद्रवेधसासुरेन्द्रवैवस्वतजातवेदसाम् ॥६५॥
अपापतेर्गोष्पतिवित्तरक्षिणो समीरणस्यापितथाद्विजोत्तम ।
धातुर्विधातुस्त्वथवैश्वदेविका श्रुतिप्रयुक्ताविविधास्तुसत्क्रिया ॥६६॥

कितने आश्चर्य का विषय है कि कहाँ तो सब अण्डो का पृथ्वी पर गिरना और उसी समय घटे का गिरना और कहाँ माँस, रक्त और वसा से पृथिवी का ढका जाना, यह सब परस्पर भिन्न होते हुए भी, एक ही समय मे होगया ॥५७॥ हे ब्राह्मणो ! यह कौन है ? प्रतीत होता है कि सामान्य पक्षी तो नही है, क्योकि दैव की अनुकूलता से भाग्य भी अनुकूल होता है ॥५८॥ इतना कह कर महर्षि शमीक उन्हे देख कर पुन कहने लगे—हे ब्राह्मणो ! निवृत्त होकर पक्षि-बालको को ले लो और आश्रम मे जाओ ॥५९॥ जहाँ बिल्ली, मूषक, नकुल, बाज आदि का भय न हो, इन पक्षि-शावको को वही रखो ॥६०॥ हे ब्राह्मणो ! अधिक यत्न की आवश्यकता नही है, क्योकि प्रत्येक जीव अपने कर्म से ही अवध्य और रक्षित होता है, यह बालक यहाँ किसके द्वारा रक्षित हुए थे ? ॥६१॥ फिर भी सब कार्यो मे मनुष्य को प्रयत्न करना चाहिए, यदि पुरुषार्थ न किया जाय तो साधु जनो के समक्ष निन्दनीय होना होता है ॥६२॥ महर्षि के वचन सुनकर मुनि-बालको ने पक्षि के उन बच्चों को उठा लिया और वे वृक्ष-शाखो मे गुंजारते हुए भ्रमरो से युक्त अपने रमणीय आश्रम को गये ॥६३॥ इधर महर्षि शमीक ने उनके फल, मूल, पुष्प और कुश लेकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, यम और अग्नि का पूजन किया। वरुण, बृहस्पति, कुवेर, पवन, धाता और विधाता का पूजन तथा वेदोक्त विधान से हवन आदि कर्म किये ॥६४–६६॥

प्रकरण ३—पक्षियों का शाप वृत्तान्त

अहन्यहनिविप्रेन्द्रसतेषांमुनिसत्तम ।
चकाराहारपयसातथागुप्त्याचपोषणम् ॥ १ ॥
मासमात्रेणजग्मुस्तेभानो. स्यन्दनवर्त्मनि ॥
कौतूहलविलोलाक्षैर्दृष्ट्वामुनिकुमारकै ॥ २ ॥
दृष्ट्वा महीसनगरासाम्भोनिधिसरिद्वराम् ।

रथचक्रप्रमाणातेपुनराश्रममागता ॥ ३ ॥
श्रमक्लाततरात्मानोमहात्मानोवियोनिजा ।
ज्ञानच प्रकटीभूत तत्रतेषाप्रभावत ॥ ४ ॥
ऋपे शिष्यानुकम्पार्थवदतोधर्मनिश्चयम् ।
कृत्वाप्रदक्षिणसर्वेचरणावभ्यवादयन् ॥ ५ ॥
ऊचुश्चमरणाद्धोरान्मोक्षिता स्मस्त्वयामुने ।
आवासभक्ष्यपयसात्वनोदातापितागुरु ॥ ६ ॥
गर्भस्थानामृतामातापित्रानैवापिपालिता ।
त्वयानोजीवितदत्त शिशवोयेनरक्षिता ॥ ७ ॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! मुनिवर शमीक नित्यप्रति उन पक्षि शावको की आहार देकर रक्षा एव पोषण करने लगे ॥१॥ मुनि के द्वारा इस प्रकार पोषण को प्राप्त हुए, वे बालक एक मास के भीतर ही आकाश मार्ग मे उडने लगे और कौतूहल मे भर कर मुनि बालक उनको देखने लगे ॥२॥ वे तिर्यक् योनि मे उत्पन्न हुए महात्मा पक्षी नद, नदी, सागर, नगर आदि मे रथ-चक्र के समान घूमने हुए पृथिवी को देखते और थकने पर आश्रम मे लौट आते। तभी मुनि के ज्ञान प्रभाव वश उन्हे क्रमश ज्ञान प्राप्त हुआ ॥३–४॥ एक समय अपने शिष्यो पर कृपा करके महर्षि शमीक धर्मोपदेश कर रहे थे, तभी उन पक्षियो ने प्रदक्षिणा करके मुनि-चरणो मे प्रणाम किया ॥५॥ और कहने लगे—हे मुने ! आपने घोर मृत्यु के कष्ट से हमारी रक्षा की है, आपने ही हमको निवास, आहार, और जल प्रदान किया है, इसलिए आप ही हमारे पिता एव गुरु है ॥६॥ हमारी माता की गर्भवास के समय ही देहान्त हो गया और पिता द्वारा भी हमारा पालन नही हो सका, आपने ही हमारी उस समय से अब तक रक्षा की है ॥७॥

क्षितावक्षततेजास्त्वक्रमीणामिवशुष्यताम् ।
गजघटासमुत्पाट्यकृतवान्दु खरेचनम् ॥ ८ ॥
कथवर्द्धेयुरबला खस्थान्द्रक्ष्याम्यहकदा ।
कदाभूमेर्द्रु मप्राप्तान्द्रक्ष्येवृक्षातरगताम् ॥ ९ ॥
कदामेसहजाकान्ति पासुनानाशमेष्यति ।

एषापक्षानिलोत्थेनमत्समीपविचारिणाम् ॥१०॥
इतिचिन्तयतातातभवताप्रतिपालिता ।
तेसाप्रतप्रवृद्धा स्म प्रबुद्धा करवामकिम् ॥११॥
इत्यृषिर्वचनतेपाश्रुत्वासस्कारवत्स्फुटम् ।
शिष्यै परिवृत सर्वै सहपुत्रेणशृङ्गिणा ॥१२॥
कौतूहलपरोभूत्वारोमाचपटसवृत ।
उवाचतत्वतोब्रूतप्रवृत्ते कारणगिर ॥१३॥
कस्य शापादियप्राप्ताभवद्भिर्विक्रियापरा ।
रूपस्यवचसश्चैवतन्मेवक्तुमिहार्हथ ॥१४॥

हे अक्षय तेज वाले मुनिवर ! जब पृथिवी मे पडे हुए हम कृमि के समान सूख रहे थे, तभी आपने घटा उटा कर हमारा सकट दूर कर दिया ॥८॥ यह दुर्बल पक्षि शायक किस प्रकार बुद्धि को प्राप्त हो, कब पृथिवी से वृक्ष पर पहुँचे और एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर जॉय तथा आकाश मे उडने लगे ॥९॥ तथा मेरे पास विचरण करते हुए कब उडेगे और कब इनके पङ्ख चलाने से निकली हुई वायु से उडी हुई धूलि द्वारा मेरी सहज कान्ति नष्ट होगी ॥१०॥ आपने इस प्रकार विचार करते हुए हमारा पालन किया है, अब हम बडे हो गए और आपकी कृपा से हमे ज्ञान भी प्राप्त होगया है, अब हम क्या करे, यह आज्ञा करिये ॥११॥ शिष्यो सहित महर्षि शमीक उनके इस प्रकार सस्कारमय वचन सुन कर अपने पुत्र शृङ्गी सहित अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुये ॥१२॥ और अत्यन्त कुतूहल से पुलकायमान शरीर होकर उन पक्षियो के प्रति बोले ॥१३॥ हमे सत्य बताओ कि तुमने ऐसे स्पष्ट वचनो का उच्चारण किस प्रकार किया है ? किस के शाप से तुम्हारे रूप और वाणी की ऐसी विक्रिया हुई है ॥१४॥

विपुलस्वानितिख्यात प्रागासीन्मुनिसत्तम ।
तस्यपुत्रद्वयजज्ञेसुकृषस्तु बुरुस्तथा ॥१५॥
सुकृष स्यवयपुत्राश्चत्वार सयतात्मन ।
तस्यर्षेर्विनयाचारभक्तिनम्रा सदैवहि ॥१६॥

यथाभिमतमस्माभिस्तदातस्योपपादितम् ।।१७।।
समित्पुष्पादिकसर्वयच्चैवाभ्यवहारिकम् ।
एवतत्राथवसतातस्यास्माकचकानने ।।१८।।
आजगाममहावर्ष्माभग्नपक्षोजरान्वित ।
आताम्रनेत्र स्रस्तात्मापक्षीभूत्वासुरेश्वर ।।१९।।
सत्यशौचक्षमाचारमतीवोदारमानसम् ।
जिज्ञासुस्तमृषिश्रेष्ठमस्मच्छापभवायच ।।२०।।
द्विजेन्द्रमाक्षुधाविष्टपरित्रातुमिहार्हसि ।
भक्षणार्थीमहाभागगतिर्भवममातुला ।।२१।।

पक्षियो ने कहा—हे पुनिश्रेष्ठ ! पुराकाल मे विपुलस्वान् नामक एक मुनि थे, उनके सुकृष्ट और तुम्बरु नामक दो पुत्र हुए ।।१५।। उन जितेन्द्रिय महात्मा सुकृष के हम पुत्र है, हम सदा विनय, आचार, भक्ति और नम्रता पूर्वक ही उनके पास रहते थे ।।१६।। जब वे सयतचित्त से तपस्या मे लगे रहते, तब हम उनकी स्वेच्छा के अनुमार वस्तु ला देते थे ।।१७।। हम ही उनके लिये समिधा, पुष्प तथा भोजन की सम्पूर्ण सामग्री ले आते थे, इस प्रकार वह हमारे साथ वन मे रहते थे ।।१८।। एक दिन देवराज इन्द्र एक विशालकाय पक्षी के रूप मे हमारे पास आये, उनके सभी पङ्ख टूटे हुए तथा नेत्र ताम्रवर्ण के हो रहे थे और उनका आत्मा शिथिल हो रहा था ।।१९।। वह उन सत्य, शौच, क्षमा और आचार युक्त मुनि से कोई बात पूछने लगे, हम समझते है कि वे हमारे प्रति पितृ-शाप होने के कारण ही वहाँ उनका आगमन हुआ था ।।२०।। पक्षी ने कहा—हे द्विजेन्द्र ! मै क्षुधा से अत्यन्त आतुर एव नितान्त भक्षणार्थी हूँ, आप ही मेरी गति है अत मेरी रक्षा कीजिये ।।२१।।

विन्ध्यस्यशिखरेतिष्ठन्पत्रिपत्रेरितेनवै ।
पतितोऽस्मिमहाभागश्वसनेनातिरहसा ।।२२।।
सोहमोहसमाविष्टोभूमौसप्ताहमस्मृति. ।
स्थितस्तत्राष्टमेनाह्नाचेतनाप्राप्तवानहम् ।।२३।।
प्राप्तचेता क्षुधाविष्टोभवतशरणगत ।

तत्कुरुष्वामलमतेमत्त्राणायाचला मतिम् ।
प्रयच्छभक्ष्यविप्रर्षेप्राणयात्राक्षममम ॥२५॥
यएवमुक्त प्रोवाचतमिन्द्र पक्षिरूपिणम् ।
प्राणसन्धारणार्थायदास्येभक्ष्यतवेप्सितम् ॥२६॥
इत्युक्त्वापुनरप्येनमपृच्छत्सद्विजोत्तम ।
आहार कस्तवार्थायउपकल्प्योभवेन्मया ।
सचाहनरमासेनतृप्तिर्भवतिमेपरा ॥२७॥

हे महाभाग ! मैं विध्याचल के शिखर चूडा मे रहता हूँ और पक्षिराज गरुड के पङ्खो की वायु के वेग से यहाँ गिर कर मूर्च्छित हो गया था ॥२२॥ उसी अवस्था मे पडे हुए मुझे एक सप्ताह होगया और आठवे दिन मूर्छा नष्ट होकर चैतन्यता प्राप्त हुई ॥२३॥ कुछ देर मे जब स्वस्थ हुआ, तब भूख से आतुर होकर आपकी शरण मे आगया । मेरा हृदय भूख से अत्यन्त कातर होने के कारण सम्पूर्ण आनन्द का हरण किये लेता है ॥२४॥ हे ब्रह्मर्षे ! मेरी रक्षा का प्रयत्न करिये, जिससे मेरी भूख मिट सके, ऐसा भोजन मुझे दीजिये ॥२५॥ पक्षी रूप धारी इन्द्र की ऐसी बात सुन कर उन महर्षि ने उनसे कहा—हे खग ! तुम अपने प्राण-धारण के लिए उपयोगी किस आहार को चाहते हो, मै तुम्हारे भोजनार्थ किस द्रव्य को उपस्थित करूँ ? ॥२६॥ हे ब्रह्मन् ! इतना कह कर उन मुनि ने पुन कहा—कहो, क्या भोजन करोगे ? तुम्हारे लिए किस आहार को लाऊँ ? इस पर उसने उत्तर दिया कि मेरी परम तृप्ति मनुष्य का माँस खाने से ही होगी ॥२७॥

कौमारतेव्यतिक्रातमतीतयौवनचते ।
वयस परिणामस्तेवर्ततेनूनमण्डज ॥२८॥
यस्मिन्नराणासर्वेषामशेषेच्छानिवर्त्तते ।
सकस्माद्वृद्धभावेऽपिसुनृशसात्मकोभवान् ॥२९॥
क्वमानुषस्यपिशितक्ववयश्चरमतव ।
सर्वथादुष्टभावानाप्रथमोनोपपद्यते ॥३०॥
अथवाकिमयैतेनप्रोक्तेनास्तिप्रयोजनम् ।

इत्युक्त्वातसविप्रेन्द्रस्तथेतिकृतनिश्चय ।
शीघ्रमस्मान्समाहूयगुणतोऽनुप्रशस्यच ॥३२॥
उवाचक्षुब्धहृदयोमुनिर्वाक्यसुनिष्ठुरम् ।
विनयावनतान्सर्वान्भक्तियुक्तान्कृताजलीन् ॥३३॥
कृतात्मानोद्विजश्रेष्ठऋणैर्युक्तामयासह ।
जातश्रेष्ठमपत्यवोयूय ममयथाद्विजा ॥३४॥
गुरु पूज्योयदिमतोभवतापरम पिता ।
तत कुरुतमेवाक्य निर्व्यलीकेनचेतसा ॥३५॥

ऋपि ने कहा—तुम्हारी कौमारावस्था जाकर युवावस्था आई और वह भी व्यतीत होकर वृद्धावस्था आगई है ॥२८॥ जिसमे सभी वासनाएँ अशेष हो जाती है, फिर भी तुम वृद्धावस्था को प्राप्त होकर इतने नृशस क्यो हो ? ॥२९॥ मनुष्य माँस के भक्षण और वृद्धावस्था दोनो मे बहुत अन्तर है, तो भी दुष्ट जीवो की दुराशा नही मिट पाती ॥३०॥ परन्तु मुझे इस सब की आलोचना क्यो करनी चाहिए ? अङ्गीकृत विपय का दान अवश्य करना चाहिए, ऐसा सोचना ही ठीक है ॥३१॥ उस पक्षी से इतना कह कर निश्चय को कार्य रूप देने वाले मुनि ने तुरन्त हमे बुलाकर हमारे गुणो की प्रशसा की ॥३२॥ तथा हमारे विनय और भक्ति पूर्वक हाथ जोड खडे होने पर अत्यन्त क्षोभ सहित हमारे पिता ने यह निष्ठुर वचन कहे ॥३३॥ तुम सब विद्वान् हो, ब्राह्मणो मे श्रेष्ठ तथा सन्तानोत्पत्ति द्वारा मेरे समान ही ऋण-मुक्त हो चुके हो, जैसे श्रेष्ठ तुम मेरे पुत्र हो, वैसे ही श्रेष्ठ पुत्र तुम्हारे हो चुके है ॥३४॥ मै तुम्हारा पिता हूँ, तुम यदि मुझे बडा और पूज्य मानते हो तो कपट रहित हृदय से मेरे वचनो का पालन करो ॥३५॥

तद्वाक्यसमकालचप्रोक्तमस्माभिरादृतै ।
यद्वक्ष्यतिभवास्तद्वै कृतमेवावधार्यताम् ॥३६॥
मामेषशरणप्राप्तोविहग क्षुत्तृषान्वित ।
युष्मन्मासेनयेनास्यक्षणतृप्तिर्भवेतवै ॥३७॥
तृष्णाक्षयश्चरक्तेनतथाशीघ्र विधीयताम् ।
ततोवयप्रव्यथिता प्रकम्पोद्भ तसाध्वसा ।

कष्टकष्टमितिप्रोच्यनैतत्कर्मेतिचाब्रुवन् ॥३८॥
कथपरशरीरस्यहेतोर्देह स्वकबुध ।
विनाशयेद्घातयेद्वायथाह्यात्मातथासुत ॥३९॥
पितृदेवमनुष्याणायान्युक्तानिऋणानिवै ।
तान्यपाकुरुतेपुत्रोनशरीरप्रद सुत ॥४०॥
तस्मान्नैतत्करिष्यामोनोचीर्णयत्पुरातनै ।
जीवन्भद्राण्यवाप्नोतिजीवन्पुण्यकरोतिच ॥४१॥
मृतस्यदेहनाशश्चधर्माद्युपरतिस्तथा ।
आत्मानसर्वतोरक्ष्यमाहुर्धर्मविदोजना ॥४२॥

यह सुनकर हमनेभी आदर सहित कहा-आपकी जो आज्ञा होगी, उसका सपादन हमारे द्वारा हुआ ही समझिये ॥३६॥ तब उन्होने कहा—पुत्रो ! यह पक्षी भूख-प्यास से आतुर होकर यहाँ आया है, इस समय तुम्हारे माँस का आहार करके इसकी क्षुधा ॥३७॥ तथा रक्त पान द्वारा प्यास की निवृत्ति होगी, इसलिए शीघ्र ही ऐसा करो, यह सुन कर हम भय से काँप उठे और बोले कि यह अत्यन्त कष्टप्रद कार्य हमसे होना सभव नही है ॥३८॥ कौन-सा मनुष्य विद्वान् होकर पराये शरीर की पुष्टि के लिए अपने जीवन का नाश करेगा ? क्योकि आत्मा की भी सन्तान के समान रक्षा करनी उचित है ॥३९॥ शास्त्र मे जिस पितृ ऋण, देव ऋण और मनुष्य ऋण का आदेश है, उसी को सन्तान चुकाती है, परन्तु शरीर-दान नही किया जा सकता ॥४०॥ इसलिए यह कार्य हमारे द्वारा सभव नही है, पहिले भी कभी किसी के द्वारा ऐसा आचरण नही मिलता, जीवन है तो पुण्यादि के आचरण द्वारा मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है ॥४१॥ मर जाने पर शरीर नष्ट हो जाने से धर्माचरण आदि नष्ट हो जाते है, इसीलिये धर्मज्ञाता पडितो ने आत्मा की सदा रक्षा करने का उपदेश दिया है ॥४२॥

इत्थश्रुत्वावचोऽस्माकमुनि क्रोधादिवज्वलन् ।
प्रोवाचपुनरप्यस्मान्निर्दहन्निवलोचनै ॥४३॥
प्रतिज्ञातवचोमह्य यस्मान्नैतत्करिष्यथ ।

एवमुक्त्वातदासोस्मास्तविहगममब्रवीत् ।
अन्त्येष्टिमात्मन कृत्वाशास्त्रतश्चौर्ध्वदैहिकम् ॥४५॥
भक्षयस्वसुविश्रब्धोमामत्रद्विजसत्तम ।
आहारीकृतमेत्तमयादेहमिहात्मन ॥४६॥
एतावदेवविप्रस्यब्राह्मणत्वप्रचक्ष्यते ।
यावत्पतगजात्यग्र्यस्वसत्यपरिपालनम् ॥४७॥
नयज्ञैर्दक्षिणावद्भिस्तत्पुण्यप्राप्यतेमहत् ।
कर्मणान्येनवाविप्रैर्यत्सत्यपरिपालनात् ॥४८॥

हमारे इन वचनो को सुन कर मुनि श्रेष्ठ क्रोधानल से दग्ध होने लगे और क्रोध से हुए लाल नेत्रो से जैसे हमको भस्म करना चाहते हो, देखते हुए पुन कहने लगे ॥४३॥ अरे दुर्वृत्तो ! मैने इससे प्रतिज्ञा की है, और तुम मेरा वचन पालन नही कर रहे हो, इसलिए मेरे शाप से भस्म होकर तिर्यग् योनि को प्राप्त हो जाओगे ॥४४॥ हे द्विजोत्तम ! इतना कह कर ही उन्होने शास्त्र विधिसे अपनी ऊर्ध्वदैहिक अन्त्येष्टि क्रिया का सम्पादन किया और पक्षी से बोले ।४५। हे पक्षी ! तुम विश्वस्त चित्त से मेरा भक्षण करो, मैने अपना ही शरीर तुम्हारे आहार के निमित्त दिया ॥४६॥ हे खग श्रेष्ठ ! जब तक ब्राह्मण अपने सत्य के पालन मे दृढ है, तभी तक वह ब्राह्मण कहलाता है ॥४७॥ जितना पुण्य सत्य के प्रतिपालन मे होता है, उतना दक्षिणा वाले यज्ञ के अनुष्ठान से अथवा किसी अन्य कर्म के द्वारा भी नही होता ॥४८॥

इत्यृषेर्वचनश्रुत्वासोऽन्तर्विस्मयनिर्भर ।
प्रत्युवाचमुनिशक्र.पक्षिरूपधरस्तदा ॥४९॥
योगमास्थायविप्रेन्द्रत्यजेदस्वकलेवरम् ॥
जीवज्जतु हिविप्रेन्द्रनभक्षामिकदाचन ॥५०॥
तस्यतद्वचनश्रुत्वायोगयुक्तोऽभवन्मुनि ।
ततस्यनिश्चयज्ञात्वाशक्रोऽप्याहस्वदेहभृत् ॥५१॥
भोभोविप्रेन्द्रयुध्यस्वबुद्धयाबोध्यंबुधात्मक ।
जिज्ञासार्थमयाऽयतेअपराध.कृतोऽनघ ॥५२॥

पालनात्सत्यवाक्यप्रीतिर्मेपरमात्वयि ॥५३॥
अद्यप्रभृतितेज्ञानमैन्द्र प्रादुर्भविष्यति ।
तपस्यथतथाधर्मेनतेविघ्नोभविष्यति ॥५४॥
इत्युक्त्वातुगतेशक्रेपिताकोपसमन्वित ।
प्रणम्यशिरसास्माभिरिदमुक्तोमहामुनि ॥५५॥

ऋषिवर के यह वचन सुन कर उन खग रूपी इन्द्र ने अत्यन्त आश्चर्य चकित होकर उनसे कहा ॥४९॥ हे ब्रह्मन् ! आप पहिले योग के अबलम्बन से अपने शरीर का त्याग कर दे, तब मै आपके माँस को खाऊँगा, क्योकि जीवित प्राणी के माँस का मैंने कभी आहार नही किया ॥५०॥ पक्षी की यह बात सुन कर मुनि ने योग का अबलम्बन किया और उनको अपने सकल्प मे दृढ देख कर इन्द्र ने अपना देह धारण करके कहा ॥५१॥ हे पडितो मे अग्रणी ब्रह्मर्षे ! ज्ञातव्य विषय को बुद्धि से जानिये, हे पाप-रहित ! आपको भले प्रकार जानने के लिए ही मैने आपके प्रति यह अपराध किया है ॥५२॥ हे स्वच्छ-चित्त ! मुझे क्षमा कीजिये, आपकी जो अभिलाषा हो वह मेरे प्रति कहिए, सत्य वचन के प्रतिपालनार्थ आपके प्रति मुझको अत्यन्त प्रीति हुई है ॥५३॥ अब आपको ऐन्द्रज्ञान की उत्पत्ति होगी और तपस्या के आचरण मे कभी भी विघ्न उपस्थित न होगा ॥५४॥ देवराज इन्द्र के इस प्रकार कह कर वहाँ से चले जाने पर हमने उन क्रोधयुक्त महामुनि, अपने पिता-श्री के चरणो मे प्रणाम करके कहा ॥५५॥

बिभ्यतामरणात्तातत्वमस्माकमहामते ।
क्षन्तुमर्हसिदीनानांजीवितप्रियताहिन. ॥५६॥
त्वगस्थिमाससंघातेपूयशोणितपूरिते ।
कर्त्तव्यानरतिर्यत्रतत्रास्माकमियरति ॥५७॥
श्रूयतांचमहाभागयथालोकोविमुह्यति ।
कामक्रोधादिभिर्दोषैरवश प्रबलारिभि ॥५८॥
प्रज्ञाप्राकारसयुक्तमस्थिस्थूणंपरमहत् ।
चर्मभित्तिमहारोधमासशोणितलेपनम ॥५९॥

नृपश्चपु रुपस्तत्रचेतनावानवस्थित ॥६०॥
मत्रिणौतस्यबुद्धिश्चमनश्चैवविरोधिनौ ।
यतेतेवैरनाशायतावुभावितरेतरम् ॥६१॥
नृपस्यतस्यचत्वारोनाशमिच्छतिविद्विष ।
काम क्रोधस्तथालोभोमोहश्चान्यस्तथारिपु ॥६२॥
यदातुसनृपस्तानिद्वाराण्यावृत्यतिष्ठति ।
सदामुस्थबलश्चैवनिरातकश्चजायते ॥६३॥

हे पिता, हे महामुने ! मृत्यु के भय से अत्यन्त डर कर हमने अपने जीवन के प्रति मोह करके ऐसा कहा था, इसलिए हमको क्षमा कर दीजिए ॥५६॥ यह शरीर, हड्डी, मॉस, त्वचा, रक्त आदि से भरा हुआ है, इसके प्रति किचित् भी मोह न करे, परन्तु उसी शरीर के प्रति हमारा मोह बढा हुआ हे ॥५७॥ हे महाभाग ! प्रवल शत्रु रूप काम क्रोधादि दोषो के द्वारा ही सव लोक मोहित हुए सुने जाते है ॥५८॥ हे पिता ! प्रज्ञा रूप प्राचीरो वाली इस देह-नगरी का अस्थि ही स्तम्भ है, जो चर्म रूप भित्ति से रुद्ध ओर रक्त मॉस रूप कीचड से लिप रही है ॥५९॥ उसे नस चारो ओर से घेरे हुये है, उसके नौ बडे द्वार है और चैतन्य रूपी पुरुष उसमे राज्य करता है ॥६०॥ उस राजा के दो मन्त्री मन बुद्धि रूपी हे, परन्तु वे परस्पर विरोधी होने के कारण एक दूसरे के विनाश के लिए सदा प्रयत्नशील रहते है ॥६१॥ काम, क्रोध, लाभ, मोह नामक चार शत्रु उस राजा को नष्ट करने की चेष्टा मे लगे रहते हें ॥६२॥ जब वह राजा नौ द्वारों को रोक कर स्थित होता है, तब वह अत्यन्त स्वस्थ और आतङ्क रहित होता है ॥६३॥

जातानुरागोभवतिशत्रुभिर्नाभिभूयते ॥६४॥
यदातुसर्वद्वाराणिविवृतानिसमु चति ।
रागोनामतदाशत्रुर्नेत्रादिद्वारमृच्छति ॥६५॥
सर्वव्यापीमहायाम पञ्चद्वारप्रवेशन ।
तस्यानुमार्गविशतितद्वै घोररिपुत्रयम् ॥६६॥
प्रविश्याथसवैतत्रद्वारैरिन्द्रियसज्ञकै ।
राग सश्लेषमायातिमनसाचसहेतरै ॥६७॥

इन्द्रियाणिमनश्चैववशेकृत्वादुरासद ।
द्वाराणिचवशेकृत्वाप्राकारनाशयत्यथ ।।६८।।
मनस्तस्याश्रितदृष्ट्वाबुद्धिर्नश्यतितत्क्षणात् ।
अमात्यरहितस्तत्रपौरवर्गोज्झितस्तथा ।।६६।।
रिपुभिर्लब्धविवर सनृपोनाशमृच्छति ।
एवरागस्तथामोहोलोभ क्रोधस्तथैवच ।।७०।।
प्रवर्ततेदुरात्मानोमनुष्यस्मृतिनाशका ।
रागात्क्रोध प्रभवतिक्रोधाल्लोभोऽभिजायते ।।७१।।

तथा उस समय उसके प्रीतिमान् होने के कारण उसके शत्रु उसे अभिभूत करने मे समर्थ नही होते ।।६४।। वह जब सभी द्वारो को खोल कर अवस्थान करता है, तब नेत्रादि सब द्वारो पर अनुराग नामक शत्रु आक्रमण कर देता है ।।६५।। यह अत्यन्त बलवान् शत्रु सर्वत्र व्यापी है, जब यह अनुराग रूप शत्रु चक्षु आदि द्वारो मे प्रविष्ट होता है, तब उसके पीछे-पीछे लोभ, मोह और क्रोध रूप तीनो शत्रु दौड पडते है ।।६६।। अनुराग रूप वह शत्रु इन्द्रियादि सब द्वारो से पुरी मे प्रवेश करके मन और बुद्धि से सगति करने की इच्छा करता है ।।६७।। वह इन्द्रियो को और मन को अपने वश मे करके बुद्धि रूपी परकोटे को तोड डालता है ।।६८।। मन को उसके आश्रित हुआ देख कर बुद्धि भी तत्काल नाश को प्राप्त होती है, इस प्रकार मन्त्रियो और प्रजावर्ग से हीन हुआ ।।६६।। वह राजा शत्रुओ के आक्रमण से विवर होने के कारण नष्ट हो जाता है, तब काम, क्रोध, लोभ, मोह रूप ।।७०।। दुरात्मा उस पुरी मे वास करने लगते है । उस समय मनुष्य की स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है, अनुराग मे क्रोध और क्रोध से लोभ की उत्पत्ति होती है ।।७१।।

लोभाद्भवतिसम्मोह सम्मोहात्स्मृतिविभ्रम ।
स्मृतिभ्र शाद्बुद्धिनाशोबुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।७२।।
एवप्रणष्टबुद्धीनारागलोभानुवर्त्तिनाम् ।
जीवितेचसलोभानाप्रसादकुरुसत्तम ।।७३।।
योऽयशापोभगवतादत्त सनभवेत्तथा ।
नतामसीगतिकष्टाव्रजेत्समुनिसत्तम ।।७४।।

यन्मयोक्तनतन्मिथ्याभविष्यतिकदाचन ॥
नमेवागनृतप्राहयावदद्येतिपुत्रका ॥७५॥
दैवमात्नपरमन्येधिक्पौरुषमनर्थकम् ।
अकार्यकारितोयेनबलादहमचिन्तितम् ॥७६॥
यस्माच्चयुष्माभिरहप्रणिपत्यप्रसादित ॥
तस्मात्तिर्य्यक्त्वमापन्ना परज्ञानमवाप्स्यथ ॥७७॥
ज्ञानदर्शितमार्गाश्चनिर्धूतक्लेशकल्मषा ।
मतप्रसादादसन्दिग्धा परासिद्धिमवाप्स्यथ ॥७८॥

लोभ से मोह उत्पन्न होता और मोह स्मृति को नष्ट कर देता है, स्मृति के नष्ट होने से बुद्धि नष्ट होती और बुद्धि नष्ट हो जाती है तो मृत्यु हो जाती है ॥७२॥ राग और लोभ के वश मे पड कर ही हमारी बुद्धि नष्ट हो गयी, इसलिए जीवन के प्रति इतना मोह हममे है, अत आप प्रसन्न हो ॥७३॥ आपका दिया हुआ शाप हम पर फलित न हो, हम पर प्रसन्न होकर ऐसा ही करे, जिससे हमको यह कष्ठ देने वाली गति न मिलेगी ॥७४॥ ऋषि ने कहा– हे पुत्रो ! मेरा कथन कभी मिथ्या नही होगा, मेरे मुख से कभी भी कोई मिथ्या वचन नही निकला ॥७५॥ अनर्थक पौरुप को धिक्कार है, मै समझता हूँ कि दैव बलवान् है, उसी ने मुझे इस प्रकार के अकार्य मे प्रवृत्त किया है ॥७६॥ तुमने जिस प्रकार प्रणामादि से मुझे प्रसन्न किया है, उससे तिर्यक् योनि मे उत्पन्न होकर भी अत्यन्त ज्ञानी होगे ॥७७॥ मेरे अनुग्रह से ज्ञान के द्वारा तुम सन्मार्ग को देखते हुये अपने पापो को नष्ट करते हुए असदिग्ध चित्त के द्वारा प्रधान सिद्धि को पा सकोगे ॥७८॥

एवंशप्ता स्मभगवन्पित्रादैगवशात्पुरा ।
तत कालेनमहतायोन्यन्तरमुपागता ॥७९॥
जाताश्चरणमध्येवैभवतापरिपालिता ।
वयमित्थद्विजश्रेष्ठखगत्वसमुपागता ॥८०॥
नास्त्यसाविहससारेयोनदिष्टेनवाध्यते ।
सर्व्वेषामेवजन्तूनादैवाधीनहिचेष्टितम् ॥८१॥
इतितेषावच श्रुत्वाशमीकोभगवान्मुनि ।

प्रत्युवाचमहाभाग समापस्थायिनोद्विजान् ॥८२॥
पूर्वमेवमयाप्रोक्तं भवतासन्निधाविदम् ।
सामान्यपक्षिणोनैतेकेऽप्येतेद्विजसत्तमा ।
येयुद्धेऽपिनसंप्राप्ता पचत्वमतिमानुषे ॥८३॥
तत प्रीतिमतातेनतेऽनुज्ञातामहात्मना ।
जग्मु शिखरिणाश्रेष्ठंविध्यद्रुमलतायुतम् ॥८४॥
यावदद्यस्थितास्तस्मिन्नचलेधर्मपक्षिण ।
तप स्वाध्यायनिरता समाधौकृतनिश्चया ॥८५॥
इतिमुनिवरलब्धसत्क्रियास्तेमुनितनयाविहगत्वमभ्युपेता ।
गिरिवरगहनेऽतिपुण्यतोयेयतमनसोनिवसन्तिविन्ध्यपृष्ठे ॥८६॥

हे भगवन् ! पुराकाल मे दैववश बमारे पिता ने हमको इस प्रकार शाप दिया था तथा कुछ ममय व्यतीत होने पर हमने पक्षि-योनि मे जन्म लिया ॥७९॥ हे द्विजोत्तम ! हमारा जन्म रणभूमि मे हुआ, आपने यहाँ लाकर हमारा पालन किया और अब हम आकाश मार्ग मे विचरण करने योग्य हो गए है, ॥८०॥ हे मुने ! विश्व मे ऐसा जीव कोई भी नही है, जो प्रारब्ध के वश मे न हो, प्राणियो की जितनी भी चेष्टाएँ है, वह मब दैवाधीन ही है ।८१। मार्कण्डेयजी ने कहा—पक्षियो की यह बात सुन कर षड्गुण सम्पन्न महर्षि वर शमीक ने अपने पास वैठे हुए ब्राह्मणो से कहा ॥८२॥ हे ब्राह्मण ! मै पहिले ही कह चुका हूँ कि जब यह युद्ध भूभि मे भी मृत्यु मुख मे नही जा सके, तो यह सामान्य पक्षी नही, अवश्य ही कोई ब्राह्मण पुत्र है ॥८३॥ फिर वह पक्षी प्रसन्न हुये महर्षि शमीक की आज्ञा पाकर वृक्ष-लता आदि से परिपूर्ण विध्याचल पर्वत को चले गये ॥८४॥ वह धर्मखग उस पर्वत मे रहते हुए वेदपाठ मे निरत रहकर समाधि मे रहने के लिए तत्पर हुये ॥८५॥ शमीक मुनि ने समस्त क्रिया का उपदेश ग्रहण करके, उनकी आज्ञा से वह खग रूपी मुनि कुमार उस अत्यन्त स्वच्छ जल मे परिपूर्ण गिरि-शिखर पर आनन्द सहित रहने लगे ॥८६॥

प्रकरण—४—भगवान् का चतुर्व्यूहावतार

एकतेद्रोणतनया.पक्षिणोज्ञानिनोऽभवन् ।
वसन्तिह्यचलेविन्ध्येतानुपास्वचपृच्छच ॥१॥

इत्यृषेर्वचनश्रु त्वामार्कण्डेयस्यजैमिनि ।
जगामविन्ध्यशिखरयत्रतेधर्मपक्षिण ॥२॥
तन्नगासन्नभूतश्चशुश्रावपठताध्वनिम् ।
श्रु त्वाचविस्मयाविष्टश्चिन्तयामासजैमिनि ॥३॥
स्थानसौष्ठवसम्पन्नजितश्वासमविश्रमम् ।
विस्पष्टमपदोपंचपठ्यतेद्विजसत्तमै ॥४॥
वियोनिमपिसंप्राप्तानेतान्मुनिकुमारकान् ।
चित्रमेतदहमन्येनजहातिसरस्वती ॥५॥
बन्धुवर्गस्तथामित्रयच्चेष्टमपरगृहे ।
त्यक्त्वागच्छतितत्सर्वनजहातिसरस्वती ॥६॥
इतिसचिन्तयन्नेवविवेशगिरिकन्दरम् ।
प्रविश्यचददर्शासौशिलापट्टगतान्द्विजान् ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे जैमिने ! वह सव ज्ञानवान् पक्षी इस प्रकार द्रोणपुत्र हुये और अब वह विध्याचल मे निवास करते है, तुम उनकी उपासना करके प्रसन्न करो ॥१॥ मुनिवर मार्कण्डेय के वचन सुनकर मर्हषि जैमिनि उस धर्मपक्षियो के निवास स्थान विध्य पर्वत को चले ॥२॥ विध्य पर्वत के समीप पहुँचते ही उनको पक्षियो द्वारा वेदपाठ करने का शब्द सुनाई पडा, तब वे अत्यन्त आश्चर्य पूर्वक विचार करने लगे ॥३॥ अहो, कैसा आश्चर्य है कि विप्र-गण पक्षी होकर भी स्थान की श्रेष्ठता से श्वास को जीत कर दोष-रहित, विश्राम रहित एव स्पष्ट रूप वेदपाठ करते है ॥४॥ इन बालको को तिर्यक् योनि प्राप्त होने पर सरस्वती ने उनको नही छोडा, यह आश्चर्य की बात है ॥५॥ इससे प्रतीत होता है कि बन्धु, मित्र या घर की सभी इच्छित वस्तुए त्याग कर चली जाती है, परन्तु सरस्वती कभी भी त्याग नही करती ॥६॥ ऐसा विचार करते करते मुनिवर जैमिनी पर्वत की कन्दरा मे घुमे और उन्होने वहाॅ देखा कि वे ब्राह्मण पाषाण-शिला पर विराजमान है ॥७॥

पठतस्तान्समालोक्यमुखदोषविवर्जितान् ।
सोऽथशोकेनहर्षेणसर्वानेवाभ्यभाषत ॥८॥
स्वस्त्यस्तुवोद्विज श्रेष्ठाजैमिनिमांनिबोधत ।

व्यासशिष्यमनुप्राप्तभवतादर्शनोत्सुकम् ॥९॥
मन्युर्नखलुकर्तव्योयत्पित्रातीवमन्युना ।
शप्ता खगत्वमापन्ना सर्वथादिष्टमेवतत् ॥१०॥
स्फीतद्रव्येकुलेकेचिज्जाता किलमनस्विन ।
द्रव्यनाशेद्विजेन्द्रास्तेशबरेणसुसान्त्विता ॥११॥
दत्वायाचन्तिपुरुषाहत्वावध्यन्तिचापरे ।
पातयित्वाचपास्यन्तेतएवतपस क्षयात् ॥१२॥
एतद्दृष्टसुवहुशोविपरीततथामया ।
भावाभावसमुच्छेदैरजस्र व्याकुलजगत् ॥१३॥
इतिसञ्चिन्त्यमनसानशोक कर्तुमर्हथ ।
ज्ञानस्यफलमेतावच्छोकहर्षैरधृष्यता ॥१४॥

उन सब दोषो से रहित पक्षियो को वेदपाठ करते देख कर हर्ष-शोक मिश्रित कहा ॥८॥ हे श्रेष्ठ द्विजो ! तुम्हारा कल्याण हो, मै व्यास शिष्य जैमिनि तुम्हारे दर्शन की इच्छा से इस स्थान मे उपस्थित हुआ हूँ ॥९॥ तुम्हे अत्यन्त कुपित पिता के शाप वश पक्षि रूप ग्रहण करना पडा, परन्तु इसके प्रति शोक न करना चाहिए क्योकि यह सब प्रारब्ध का ही परिणाम है ॥१०॥ धन, सम्मान आदि युक्त ऐश्वर्य सम्पन्न उत्तम वश मे कोई महात्मा जन्म लेता है, और द्रव्यादि के नष्ट होने पर भीलो के द्वारा उसी को सान्त्वना प्राप्त होती है ॥११॥ कोई दानी भी भिखारी हो जाता है, कोई हत्या करके भी अवध्य रहता है, कोई दूसरे की मृत्यु से रक्षा करके भी दूसरो के द्वारा मारा जाता है, तप के क्षीण होने पर ऐसी ही घटनाएँ होती रहती है ॥१२॥ मै अनेक बार ऐसी घटनाएँ देख चुका हूँ, इस प्रकार भाव और अभाव की परम्परा से सम्पूर्ण विश्व निरन्तर व्याकुल है ॥१३॥ ऐसा विचार कर शोक मत करो, क्योकि हर्ष या शोक से अभिभूत न होना ही तप का फल है ॥१४॥

ततस्तेजैमिनिसर्वेपाद्यार्घ्याभ्यामपूजयन् ।
अनामयचपप्रच्छु प्रणिपत्यमहामुनिम् ॥१५॥
अथोचु खगमा सर्वेव्यासशिष्यंतपोनिधिम् ।
सुखोपविष्ट विश्रांतपक्षानिलहृतक्लमम् ॥१६॥

अद्यन सफलजन्मजीवित चसुजीवितम् ।
यत्पश्याम सुरैर्वन्द्यतवपादाम्बुजद्वयम् ॥१७॥
पितृकोपाग्निरुद्ध्रूतोयोनोदेहेषुवर्त्त ते ।
सोद्यशान्तिगतोविप्रयुष्मद्दर्शनवारिणा ॥१८॥
कच्चित्ते कुशलब्रह्मन्नाश्रमेमृगपक्षिषु ।
वृक्षेष्वथलतागुल्मत्वक्सारतृणजातिषु ॥१९॥
अथवानैतदुक्त हिसम्यगस्माभिराहृतं ।
भवतासंगमोयेषातेषामकुशलकुत ॥२०॥
प्रसादचकुरुष्वात्रब्रूह्यागमनकारणम् ।
देवानामिवससर्गोभवतोऽभ्युदयोमहान् ।
केनास्मद्भाग्यगुरुणाआनीतोदृष्टिगोचरम् ॥२१॥

इसके पश्चात् उन धर्मपक्षियो ने पाद्यार्घ्य आदि से महामुनि का पूजन किया तथा प्रणाम के पश्चात् कुशल-प्रश्न किया ॥१५॥ उनके पङ्खो की हवा से व्यास शिष्य जैमिनि का श्रम दूर हुआ और वे सुखपूर्वक बैठे, तब वे पक्षि-गण उनसे बोले ॥१६॥ पक्षियो ने कहा—हे महाभाग ! हमारा जन्म और जीवन अब सफल हो गया है, क्योकि देवताओ द्वारा पूजित आपके चरणार-विंदो का हमे दर्शन प्राप्त हुआ है ॥१७॥ हे ब्रह्मन् ! हमारे पिता की जो क्रोधाग्नि हमारे शरीरो मे अत्यन्त प्रबल रूप से रहती है, वह आपके दर्शन रूप जल से शान्त होगई है ॥१८॥ हे विप्र ! आपके आश्रम के मृग, पक्षिवृन्द, वृक्ष, लतादि सब कुशल पूर्वक तो है ॥१९॥ अथवा हमारा यह प्रश्न ही उचित नही है, क्योकि आपके समीप निवास करने वालो के लिए अमङ्गल ही कसा ? ॥२०॥ अब आप यहाँ किसलिये पधारे है, यह हमको कृपा पूर्वक बताइये, आपका आगमन और देवताओ का समर्ग यह समान ही है, यह समझ मे नही आता कि भाग्य की किस प्रबलता से आपका दर्शन प्राप्त हो सका है ॥२१॥

श्रूयताद्विजशार्दूला कारणयेनकन्दरम् ।
विन्ध्यस्येहागतोरम्यंरेवावारिकणोक्षितम् ।
सन्देहान्भारतेशास्त्रे तान्प्रष्टु गतवानहम् ॥२२॥
मार्कण्डेयमहात्मानपूर्वभृगुकुलोद्वहम् ।

तमहपृष्टवान्प्राप्यसन्देहान्भारतप्रति ॥२३॥
सचपृष्टोमयाप्राहसन्तिविन्ध्येमहाचले ।
द्रोणपुत्रामहात्मानस्तेवक्ष्यन्त्यर्थविस्तरम् ॥२४॥
तद्वाक्यचोदितश्चे ममागतोऽहमहागिरिम् ।
तच्छृणुध्वमशेषेणश्रुत्वाव्याख्यातुमर्हथ ॥२५॥
विषयेसतिवक्ष्यामोनिर्विशङ्क श्रृणुष्वतत् ।
कथतन्नवदिष्यामोयदस्मद्बुद्धिगोचरम् ॥२६॥
चतुर्ष्वपिहिवेदेषुधर्मशास्त्रेषुचैवहि ।
समस्तेषुतथाङ्गेषुयच्चान्यद्वेदसमितम् ॥२७॥
एतेषुगोचरोऽस्माकबुद्धेर्ब्राह्मणसत्तम ।
प्रतिज्ञातुसमावोढुंतथापिनहिशक्नुम ॥२८॥

जैमिन ने कहा—रेवा नदी जलकणो द्वारा सीचे हुए इस विध्य पर्वत की मनोहर कन्दरा मे, मै जिस लिए उपस्थित हुआ हूँ, वह सुनो ! हे विप्रगण ! महाभारत शास्त्र मे अनेक सदेह होने के कारण उनके समाधानार्थ ॥२२॥ मै महात्मा मार्खण्डेयजी के पास गया था और उनसे महाभारत के प्रति सदेह-प्रश्न किये थे ॥२३॥ उन्होने कहा कि विध्य पर्वत मे महात्मा द्रोण के पुत्र रहते है, वहाँ जाकर उनसे ही यह बात पूछो, इन प्रश्नो का सविस्तार वर्णन वही करेगे ॥२४॥ उन्ही के आदेश से मै इस महापर्वत मे उपस्थित हुआ हूँ, मेरे उन प्रश्नो को भले प्रकार सुनकर उनकी व्याख्या करदो ॥२५॥ पक्षी बोले—यदि कहने योग्य होगा तो अवश्य कहेगे, आप शका रहित चित्त से कहे, जो हमारी बुद्धि मे आयेगा, उसे क्यो न बतायेगे ? ॥२६॥ चारो वेद, सभी धर्मशास्त्र, वेदाङ्ग अथवा अन्य कोई भी वेद सम्मत शास्त्र ॥२७॥ यद्यपि हमारी बुद्धि के लिए गोचर है, फिर भी हम इसकी प्रतिज्ञा नही करेगे ॥२८॥

तस्माद्वदस्वविश्रब्धसन्दिग्धयद्धिभारते ।
वक्ष्यामस्तवधर्मज्ञनचेन्मोहोभविष्यति ॥२९॥
सन्दिग्धानीहवस्तूनिभारतप्रतियानिमे ।
श्रृणुध्वममलास्तानिश्रुत्वाव्याख्यातुमर्हथ ॥३०॥
कस्मान्मानुषताप्राप्तोनिर्गुणोऽपिजनार्दन ।

वासुदेवोऽखिलाधार सर्वकारणकारणम् ॥३१॥
कस्माच्चपाण्डुपुत्राणामेका साद्रुपदात्मजा ।
पञ्चानामहिषीकृष्णासुमहानत्रसशय ॥३२॥
भेषजब्रह्महत्यायाबलदेवोमहाबल ।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेनकस्माच्चक्रेहलायुध ॥३३॥
कथचद्रौपदेयास्तेऽकृतदारामहारथा ।
पाण्डुनाथामहात्मानोवधमापुरनाथवत् ॥३४॥
एतत्सर्वकथ्यतामेसन्दिग्धभारत प्रति ।
कृतार्थोऽहसुखयेनगच्छेयनिजमाश्रमम् ॥३५॥

इसलिए आपको महाभारत के प्रति जो शङ्का है, उसे व्यक्त कीजिए, हे धर्मज्ञ ! यदि मोह न हुआ तो उसे आपके प्रति अवश्य ही कहेगे ॥२६॥ जैमिनि ने कहा—हे स्वच्छ चित्त खगगण ! महाभारत के जिन स्थलो मे मुझे सदेह हुआ है, उन्हे सुनो और व्याख्या करो ॥३०॥ मेरी शका है कि सम्पूर्ण कारणो के कारण और समस्त ब्रह्माण्ड के आधार जनार्दन वासुदेव गुण-रहित होकर भी मनुष्य किस कारण हुए ॥३१॥ तथा द्रुपद की एक ही कन्या पाँच पाण्डवो की महिषी किस प्रकार हुई, यह अत्यन्त सशय है ॥३२॥ महाबली बलरामजी नीर्थयात्रा के प्रसग मे ब्रह्महत्या के पाप से किस प्रकार मुक्त हुए थे ? ॥३३॥ तथा युधिष्ठिर आदि पाँचो पाण्डव द्वारा रक्षित द्रौपदी के अविवाहित पुत्र अनाथ के समान मृत्यु को किस प्रकार प्राप्त हुए थे ॥३४॥ इन सब विषयो के प्रति मुझे अत्यन्त सदेह है, इन सदेहो का अपने उत्तर से समाधान करके मुझे कृतार्थ करो तो मै सुख पूर्वक अपने आश्रम को लौट सकूँगा ॥३५॥

नमस्कृत्यसुरेशायविष्णवेप्रभविष्णवे ।
पुरुषायाप्रमेयायशाश्वतायाव्ययायच ॥३६॥
चतुर्व्यूहात्मनेतस्मैत्रिगुणायागुणायच ।
वरिष्ठायगरिष्ठायवरेण्यायामृतायच ॥३७॥
यस्मादणुतरनास्तियस्मान्नास्तिबृहत्तरम् ।
येनविश्वमिदव्याप्तमजेनजगदादिना ॥३८॥

आविर्भावतिरोभावदृष्टादृष्टविलक्षणम् ।
वदन्तियत्सृष्टमिदन्तथैवान्तेचसहृतम् ॥३६॥
ब्रह्मणेचादिदेवायनमस्कृत्यसमाधिना ।
ऋक्सामान्युद्गिरन्वक्त्रैर्य पुनातिजगत्त्रयम् ॥४०॥
प्रणिपत्यतथैशानमेकबाणविनिर्जितै ।
यस्यासुरगणैर्यज्ञाविलुप्यन्तेनयज्विनाम् ॥४१॥
प्रवक्ष्यामोमतकृत्स्नव्यासस्याद्भुतकर्मण ।
येनभारतमुद्दिश्यधर्माद्या प्रकटीकृता ॥४२॥

पक्षियो ने कहा—जो देवताओ के अधीश्वर, सर्वव्यापी, अत्यन्त प्रभाव शाली, आत्मा, अप्रमेय, शाश्वत एव अव्यय स्वरूप है ॥३६॥ तथा जो वासुदेव, सकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध रूप है, जो त्रिगुण अथवा निर्गुण है, जो उत्तम, गरिष्ठ, वरेण्य एव अमृत है ॥३७॥ जो यज्ञाङ्ग तथा चराचर विश्वात्मक है, वेदान्त शास्त्र मे जिनके स्वरूप का सक्षिप्त वर्णन हुआ है, सम्पूर्ण ससार मे जिनके समान सूक्ष्मतर या वृहत्तर नही है, सम्पूर्ण जगत् जिससे व्याप्त है, जो जगत् के आदि तथा अजन्मा है ॥३८॥ जिन भगवान् विष्णु के द्वारा आविर्भाव, तिरोभाव, दर्शन, अदर्शन आदि सभी कार्य सम्पन्न होते है, और जो उनसे अतीत, सृष्टिकर्त्ता और सहारकर्त्ता कहलाते है ॥३९॥ जो आदिदेव है तथा अपने चारो मुखो से चारो वेद प्रकट करके त्रैलोक्य को पवित्र करते है, उन ब्रह्माजी को ध्यान पूर्वक नमस्कार है ॥४०॥ जिनके एक बाण से ही सम्पूर्ण असुर परास्त होकर याज्ञिको के यज्ञ को नष्ट करने मे असमर्थ होते हैं, उन देवाधिदेव महादेव के चरणारविन्दो मे प्रणाम करके ॥४१॥ अद्भुत कर्म युक्त महर्षि बादरायण द्वारा महाभारत रूप से प्रकट हुए धर्मादि को महर्षि व्यास के मतानुसार सम्पूर्ण विषय आपको कहेगे ॥४२॥

आपोनाराइतिप्रोक्तामुनिभिस्तत्वदर्शिभि ।
अयनतस्यता पूर्वतेननारायण स्मृत ॥४३॥
सदेवोभगवान्सर्वव्याप्यनारायणोविभु ।
चतुर्धासस्थितोब्रह्मन्सगुणोनिर्गुणस्तथा ॥४४॥
एकामूर्तिरनिर्देश्याशुक्लापश्यन्तिताबुधाः ।

ज्वालामालोपरुद्धागीनिश्रसायोगिनापरा ॥४५॥
दूरस्थाचान्तिकस्थाचविज्ञेयासागुणातिगा ।
वासुदेवाभिधानोऽसौनिर्ममत्वेनदृश्यते ॥४६॥
रूपवर्णादयस्तस्यानभावा कल्पनामय ।
अस्त्येवसासदाशुद्धासुप्रतिष्ठैकरूपिणी ॥४७॥
द्वितीयापृथिवीमूर्ध्नाशेषाख्याधारयत्यध ।
तामसीसासमाख्यातातिर्यक्त्वसमुदाश्रिता ॥४८॥
तृतीयाकर्मकुरुतेप्रजापालनतत्परा ।
सत्वोद्रिक्तातुसाज्ञेयाधर्मसस्थानकारिणी ॥४९॥
चतुर्थीजलमध्यस्थाशेतेपन्नगतल्पगा ।
रजस्तस्यागुण सर्गसाकरोतिसदैवहि ॥५०॥

तत्त्वदर्शी मुनियो ने कहा—'नार' का अर्थ जल है, वह जल ही जिसका एक मात्र 'अयन' अर्थात् गृह है, इसलिए वे नारायण कहे जाते है ॥४३॥ हे भगवन् ! अनन्त लीलामय भगवान् नारायण सगुण तथा-निर्गुण दोनो प्रकार से चार मूर्ति से अवस्थित है ॥४४॥ उनकी जो एक मूर्ति वाणी से परे है उसे ज्ञानीजन शुक्लवर्ण कहते है, जो योगियो का एक मात्र आश्रय है तथा चन्द्र सूर्य आदि सम्पूर्ण तेजोमय पदार्थ स्वरूप ज्वालमाल से जिसके सब अङ्ग आच्छादित है ॥४५॥ जो नित्य मूर्ति तीनो गुणो का अतिक्रम करके दूर तथा समीप स्थित रहती है उम प्रधान मूर्ति का नाम वासुदेव है, इसमे ममता किंचित् भी नही है ॥४६॥ उमके रूप, वर्ण आदि कल्पनात्मक है, वह सर्व काल मे विराजमान, एक रूप तथा परम पवित्र है ॥४७॥ जो मूर्ति पाताल मे निवास करके पृथिवी को अपने मस्तक पर धारण करती है, उस दूसरी मूर्ति को सकर्षण कहते है, तामसी होने के कारण यह मूर्ति तिर्यग् योनि वाली है ॥४८॥ नारायण के जिस मूर्ति से सभी कर्म भले प्रकार से साध्य होते है और प्रजापालन आदि सब कार्य सम्पादन होते है तथा जो धर्म की रक्षा करने वाली सतोगुणी मूर्ति है, उसे प्रद्युम्न कहते है ॥४९॥ चौथी मूर्ति जल मे पन्नगशय्या पर शयन करती है, वह रजोगुणी है, उसी के द्वारा सृष्टिकार्य

यातृतीयाहरेर्मूर्ति प्रजापालनतत्परा ।
सातुधर्मव्यवस्थानकरोतिनियतभुवि ।।५१।।
प्रोद्धूतानसुरान्हन्तिधर्मविच्छित्तिकारिण ।
पातिदेवान्सतश्चान्यान्धर्मरक्षापरायणान् ।।५२।।
यदायदाहिधर्मस्यग्लानिर्भवतिजैमिने ।
अभ्युत्थानमधर्मस्यतदात्मानसृजत्यसौ ।।५३।।
भूत्वापुरावराहेणतुण्डेनापोनिरस्यच ।
एकयादष्ट्रयोत्खातानलिनीववसुधरा ।।५४।।
कृत्वानृसिहरूपचहिरण्यकशिपुर्हत ।
विप्रचित्तिमुखाश्चान्येदानवाविनिपातिता ।।५५।।
वामनादीस्तथैवान्यान्नसख्यातुमिहोत्सहे ।
अवताराश्चतस्येहमाथुर साप्रतत्वयम् ।।५६।।
इतिसासात्विकीमूर्तिरवतारान्करोतिवै ।
प्रद्युम्नेतिचसाख्यातारक्षाकर्मण्यवस्थिता ।।५७।।
देवत्वेऽथमनुष्यत्वेतिर्यग्योनौचसस्थिता ।
गृह्णातितत्स्वभावचवासुदेवेच्छयासदा ।।५८।।
इत्येतत्तेसमाख्यातकृतकृत्योऽपियत्प्रभु ।
मानुषत्वगतोविष्णु श्रृणुष्वास्योत्तरपुन ।।५९।।

प्रजा का पालन करने वाली तीसरी मूर्ति के द्वारा ही पृथिवी मे सदैव धर्म सस्थापन कार्य होता है ।।५१।। धर्म को नष्ट करने वाले असुरगण उसी मूर्ति के द्वारा नाश को प्राप्त होते है तथा उसी के द्वारा धर्म रत साधुओ की रक्षा होती है ।।५२।। हे जैमिने ! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब यह मूर्ति धर्म के अभ्युत्थानार्थ प्रकट होती है ।।५३।। प्राचीन समय मे इसी मूर्ति ने वराह रूप धारण करके दाँतो के अग्र भाग से जल को हटा कर केवल दाढो से पृथिवी को निकाला और पहिले के समान स्थिर किया ।।५४।। उसी ने नृसिह रूप धारण कर हिरण्यकशिपु का सहार किया और उसी ने विप्रचित्ति इत्यादि दैत्यो को मारा ।।५५।। उसके वामनादि अन्यान्य बहुत से अवतार हुए जिनकी गणना नही कर सकते, इस समय वह

मूर्ति श्रीकृष्ण के रूप मे उत्पन्न हुई है ।।५६।। इस प्रकार उस सतोगुणी मूर्ति के उद्भुत होने पर उसकी रक्षा प्रद्युम्न मूर्ति करती है ।।५०।। वह देवत्व, मनुष्यत्व अथवा तिर्यक् आदि योनियो मे अवस्थान कर वासुदेव की इच्छा-नुसार उसके स्वभाव का अवलम्बन करती है ।।५८।। आपके प्रति हमने यह सब कहा, अब भगवान् विष्णु ने मनुष्य शरीर जिस लिए धारण किया, उसे कहते है ।।५६।।

* इति *

५—द्रौपदी के पाँच पति

त्वष्टृपुत्रेहतेपूर्वब्रह्मन्निन्द्रस्यतेजस ।
ब्रह्महत्याभिभूतस्यपराहानिरजायत ।।१।।
तद्धर्मप्रविवेशाथशाक्रतेजोऽपचारत ।
निस्तेजाश्चाभवच्छक्रोधर्मेतेजसिनिर्गते ।।२।।
तत पुत्रहतश्रुत्वत्वष्टाक्रुद्ध प्रजापति ।
अवलु च्यजटामेकामिदवचनमब्रवीत् ।।३।।
अद्यपश्यन्तुमेवीर्यत्रयोलोका सदेवता ।
सचपश्यतुदुर्बु द्धिर्ब्रह्महापाकशासन ।।४।।
स्वकर्माभिरतोयेनमत्सुतोविनिपातित ।
इत्युक्त्वाकोपरक्ताक्षोजटामग्नौजुहावताम् ।।५।।
ततोवृत समुत्तस्थौज्वालामालीमहासुर ।
महाकायोमहादंष्ट्रोभिन्नाञ्जनचयप्रभ ।।६।।
इन्द्रशत्रुरमेयात्मात्वष्टृतेजोपवृंहित ।
अहन्यहनिसोऽवर्द्ध दिषुपातमहाबल ।।७।।

पक्षियो ने कहा—हे ब्रह्मन् ! प्रजापति त्वष्टा का पुत्र त्रिशिरा अधो-मुख होकर तप कर रहा था, उसके तप से डर कर इन्द्र ने उसे मार डाला, उसके मारने से ब्रह्महत्या से उत्पन्न पातक से इन्द्र का तेज नष्ट होगया ।।१।। अधर्म का आचरण करने से इन्द्र के तेज ने धर्म मे प्रवेश किया और इस कारण इन्द्र निस्तेज होगये ।।२।। त्रिशिरा की मृत्यु का वृत्तान्त सुनकर त्वष्टा अत्यन्त

क्रोधित हुए और उन्होने अपने मस्तक की एक जटा उखाड कर कहा ॥३॥ देवगण सहित स्वर्ग और पाताल मे निवास करने वाले सभी लोग इस समय मेरे तेज को देखे तथा मेरे पुत्र का हत्यारा दुर्बुद्धि वाला इन्द्र भी मेरे विक्रम कोदेखे ॥४॥ जिसने अपने कर्म मे लगे हुए मेरे पुत्र का बध किया है, यह कह कर उन्होने रक्त नेत्र किये हुए क्रोध पूर्वक उस जटा को अग्नि मे होम दिया ॥५॥ तब तत्काल ज्वालमाला युक्त विशालकाय, विशाल दंष्ट्राओ से युक्त, अजनपिण्ड जैसा रूप धारण किये वृत्र नामक एक घोर असुर अग्नि से प्रकट हुआ ॥६॥ त्वष्टा के तेज से उत्पन्न हुआ वह शक्रारि वृत्र, धनुष से छूटे हुए बाण की ऊँचाई के समान नित्य वृद्धि को प्राप्त होने लगा ॥७॥

वधायचात्मनोदृष्ट्वावृत्रशक्रोमहासुरम् ।
प्रेषयामाससप्तर्षीन्सन्धिमिच्छन्भयातुर ॥८॥
सख्यचक्रुस्ततस्तस्यवृत्रेणसमयास्तथा ।
ऋषय प्रीतमनस सर्वभूतहितेरता ॥९॥
समयस्थितिमुल्लघ्ययदाशक्रेणघातित ।
वृत्रोहत्याभिभूतस्यतदाबलमशीर्यत ॥१०॥
तच्छक्रदेहविभ्रष्ट बलमारुतमाविशत् ।
सर्वव्यापिनमव्यक्त बलस्यैवाधिदैवतम् ॥११॥
अहल्याचयदाशक्रोगौतमरूपमास्थित. ।
धर्षयामासदेवेन्द्रस्तदारूपमहीयत ॥१२॥
अङ्गप्रत्यङ्गलावण्ययदतीवमनोरमम् ।
विहायदुष्ट देवेन्द्र नासत्यावगमत्तत ॥१३॥
धर्मेणतेजसात्यक्त वलहीनमरूपिणम् ।
ज्ञात्वासुरेशदैतेयास्तज्जयेचक्रुरुद्यमम् ॥१४॥

अपने बध के लिए उस घोर असुर वृत्र को उत्पन्न हुआ देख कर इन्द्र भय से अत्यन्त आतुर हुए और उन्होने उससे सधि करने के उद्देश्य से मरीच्यादि से सप्त ऋषियो को उसके पास भेजा ॥८॥ सब जीवो की कल्याण-कामना वाले सप्त ऋषियो ने इन्द्र और वृत्रासुर के मध्य परस्पर प्रतिज्ञा करा के, मित्रता करायी ॥९॥ प्रतिज्ञा की मर्यादा का उल्लघन करके जब वृत्रासुर

इन्द्र के द्वारा वध को प्राप्त हुआ, तब उसी ब्रह्महत्या से उत्पन्न पाप के कारण इन्द्र का बल नष्ट हो गया ।।१०।। वह बल इन्द्र के देह से निकल कर बल के एक मात्र अधिदेव सर्व व्यापी एव अव्यक्त पवन देवता मे प्रविष्ट होगया ।।११।। और जब इन्द्र ने गौतम का रूप धारण कर अहिल्या से सगति की, तब भी उसका स्वरूप श्री हीन होगया ।।१२।। उस समय उस दुरात्मा इन्द्र के अङ्ग प्रत्यङ्ग का सम्पूर्ण लावण्य उसका त्याग करके दोनो अश्विनी कुमारो मे प्रवेश कर गया ।।१३।। उस समय इन्द्र को धर्म और तेज के द्वारा त्यागा हुआ तथा बल और रूप से भी हीन समझ कर दैत्यो ने उन पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न किया ।।१४।।

राज्ञामुद्रिक्तवीर्याणादेवेन्द्रविजिगीषव ।
कुलेष्वतिबलादैत्याअजायन्तमहामुने ।।१५।।
कस्यचित्वथकालस्यधरणीभारपीडिता ।
जगाममेरुशिखरसदोयत्रदिवौकसाम् ।।१६।।
तेषासाकथयामासभूरिभारावपीडिता ।
तनुजात्मजदैत्योत्थखेदकारणमात्मन ।।१७।।
एतेभवद्भिरसुरानिहता पृथुलौजस ।
तेसर्वेमानुषेलोकेजातागेहेषुभूभृताम् ।।१८।।
अक्षौहिण्योहिबहुलास्तद्भारार्त्ताव्रजाम्यध ।
तथाकुरुध्वत्रिदशायथाशातिर्भवेन्मम ।।१९।।
तेजोभागैस्ततोदेवाअवतेरुर्दिवोमहीम् ।
प्रजानामुपकारार्थभूभारहरणायच ।।२०।।

हे महामुने ! महान् बल वाले दैत्यो ने इन्द्र पर विजय प्राप्त करने की अभिलाषा से बल, वीर्य और मद युक्त राजाओ के वश मे जन्म लिया ।।१५।। फिर कुछ समय व्यतीत होने पर दैत्यो के भार से पृथिवी बोझिल हो गई और वह सुमेरु पर्वत मे देवताओ की सभा मे पहुँची ।।१६।। और वह अत्यन्त बोझ की पीडा वाली देवी वसुन्धरा दैत्य-दानवो के कारण होने वाले अपने दुःख का सम्पूर्ण कारण वहाँ कहने लगी ।।१७।। हे देवगण ! तुमने जिन अत्यन्त बली असुरो का सहार किया था, उन्होने अब मर्त्यलोक के राजवश

मे जन्म धारण किया है ॥१८॥ वे दैत्य असख्य अक्षौहिणी सख्यक है, इसलिए उनके भार से अत्यन्त पीडित हुई मै नीचे की ओर झुकी जा रही हूँ, हे देवगण ! मुझे जिस प्रकार शान्ति मिल सके, वही करो ॥१९॥ पक्षियो ने कहा— हे मुनिवर ! इसके पश्चात् प्रजा के उपकार और पृथिवी के भार हरणार्थ देवताओ ने अपने-अपने तेजाँश से भू मडल पर जन्म लिया ॥२०॥

यदिन्द्रदेहजन्तेजस्तन्मुमोचस्वयवृष ।
कुन्त्याजातोमहातेजास्ततोराजायुधिष्ठिर ॥२१॥
बलमुमोचपवनस्ततोभीमोव्यजायत ।
शक्रवीर्यार्धतश्चैवजज्ञेपार्थोधनजय ॥२२॥
उत्पन्नौयमलौमाद्रयाशक्ररूपौमहाद्युती ।
पञ्चधाभगवानित्थमवतीर्ण शतक्रतु ॥२३॥
तस्योत्पन्नामहाभागापत्नीकृष्णाहुताशनात् ॥२४॥
शक्रस्यैकस्यसापत्नीकृष्णानान्यस्यकस्यचित् ।
योगीश्वरा शरीराणिकुर्वतिबहुलान्यपि ॥२५॥
पचानामेकपत्नीत्वमित्येतत्कथिततव ।
श्रूयताबलदेवोऽपियथायात सरस्वतीम् ॥२६॥

तब इन्द्र के शरीर से उत्पन्न उस तेज को स्वय धर्म ने कुन्ती के गर्भ मे स्थापित किया, उसी से अत्यन्त तेजस्वी राजा युधिष्ठिर की उत्पत्ति हुई ॥२१॥ और देवताओ मे श्रेष्ठ वायु ने इन्द्र के जिस तेज को कुन्ती के गर्भ मे स्थापित किया उससे भीमसेन और इन्द्र के आधे बल से कुन्ती के गर्भ से ही पार्थ अर्जुन उत्पन्न हुए ॥२२॥ इन्द्र के लावण्य को धारण करने वाले दोनो अश्विनी कुमारो ने माद्री मे गर्भ धारण कर दो (यमल) कुमारो को उत्पन्न किया, इस प्रकार इन्द्र ही इन पाँच रूपो मे प्रकट हुए ॥२३॥ तथा उन्ही इन्द्र की भार्या शची यज्ञभाग एव याज्ञ सेना रूप से अग्नि के द्वारा उत्पन्न हुई ॥२४॥ इससे निश्चय हुआ कि द्रौपदी केवल एक इन्द्र की ही महिषी थी क्योकि महात्मा एव योगीश्वर अपने देह के अनेक विभाग करने मे समर्थ है ॥२५॥ जसे वह द्रौपदी पाँच व्यक्तियो की एक ही पत्नी हुई वह कारण बता दिया अब बलदेवजी जिस प्रकार सरस्वती मे पहुँचे, वह श्रवण करो ॥२६॥

६—बलदेव द्वारा ब्रह्महत्या

राम पार्थेपराप्रीतिज्ञात्वाकृष्णस्यलाङ्गली ।
चिन्तयामासबहुधाकिंकृतसुकृतभवेत् ।।१।।
कृष्णेनहिविनानाहयास्येदुर्योधनान्तिकम् ।
पाण्डवान्वासमाश्रित्यकथदुर्योधननृपम् ।।२।।
जामातरतथाशिष्यघातयिष्येनरेश्वरम् ।
तस्मान्नपार्थयास्यामिनापिदुर्योधननृपम् ।।३।।
तीर्थेष्वाप्लावयिष्यामितावदात्मानमात्मना ।
कुरूणापाण्डवानाचयावदन्तायकल्पते ।।४।।
इत्यामन्त्र्यहृषीकेशपार्थदुर्योधनावपि ।
जगामद्वारकाशौरि स्वसैन्यपरिवारित ।।५।।
गत्वाद्वारवतीरामोहृष्टपुष्टजनाकुलाम् ।
श्वागन्तव्येषुतीर्थेषु पपौपानहलायुध ।।६।।
पीतपानोजगामाथरेवतोद्यानमृद्धिमत् ।
हस्तेगृहीत्वासमदारेवतीमप्सरोपमाम् ।।७।।

पक्षियो ने कहा—अर्जुन के प्रति श्रीकृष्ण की अत्यन्त प्रीति देख कर बलरामजी क्या करने से मगल होगा, इस विषय पर अनेक प्रकार विचार करने लगे ।।१।। श्री कृष्ण को साथ लिए बिना ही मै एकाकी दुर्योधन के पास नही जाऊँगा, इन पाण्डवो का पक्ष लेकर ।।२।। अपने ही जामाता और शिष्य राजा दुर्योधन का किस प्रकार बध करूँ ? अतएव मै राजा दुर्योधन और अर्जुन दोनो मे से किसी के पास नही जाऊँगा ।।३।। इसलिए कौरव-पाँडवो का जब तक नाश न हो जाय तब तक इकला ही तीर्थ-यात्रा करता हुआ अपने आत्मा को पवित्र करूँ ।।४।। ऐसा निश्चय करके बलरामजी ने हृषीकेश, अर्जुन और दुर्योधन को आमन्त्रण करते हुए अपनी सेना से घिरे हुए, द्वारका को प्रस्थान किया ।।५।। जब वे हृष्ट-पुष्ट मनुष्यो वाली द्वारका नगरी मे पहुँचे तब तीर्थ यात्रा का विचार करते हुए उन्होने ताडी का रस पान किया ।।६।। रस पीने के उपरान्त अप्सरा के समान गर्वित रेवतीजी का कर ग्रहण

करते हुए अनेक वैभवो से युक्त रैवत उद्यान मे पहुँचे ।।७।।

> स्त्रीकदम्बकमध्यस्थोययौमत्त पदास्खलन् ।
> ददर्शचवनवीरारमणीयमनुत्तमम् ।।८।।
> सर्वर्तु फलपुष्पाढ्य शाखामृगगणाकुलम् ।
> पुण्यपद्मवनोपेतसल्वलमहावनम् ।।९।।
> सश्रृण्वन्प्रीतिजननान्बहून्मदकलाञ्शुभान् ।
> श्रोत्ररम्यान्सुमधुराञ्शब्दान्खगमुखेरितान् ।।१०।।
> सर्वर्तु फलभाराढ्यान्सर्वर्तु कुसुमोज्ज्वलान् ।
> अपश्यत्पादपाँस्तत्रविहगैरनुनादितान् ।।११।।
> आम्रानाम्रातकान्भव्यान्नारिकेलान्सतिन्दुकान् ।
> आबिल्वकास्तथाजीरान्दाडिमान्बीजपूरकान् ।।१२।।
> पनसाल्लकुचान्मोचान्नीपाश्चातिमनोहरान् ।
> पारावताँश्चकङ्कोलान्नलिनानम्लवेतसान् ।।१३।।
> भल्लातकानामलकास्तिन्दुकाश्चमहाफलान् ।
> इ गुदान्करमर्दाश्चहरीतकविभीतकान् ।।१४।।
> एतानन्याश्चसत्तरून्ददर्शयदुनन्दन ।
> तथैवाशोकपुन्नागकेतकीबकुलानथ ।।१५।।

मद्यपान से उन्मत्त होने के कारण स्त्रियो से घिरे रह कर क्रीडा रत होने पर उनके पाँव डगमगाने लगे, फिर स्वस्थ होकर उन्होने उस अत्यन्त रमणीय रैवत वन को देखा ।।८।। वह समस्त ऋतुओ मे उत्पन्न होने वाले फलो, पुष्पो से सुशोभित, बदरो से व्याप्त, कमल वन से सम्पन्न तथा छोटे सरोवर और महावन से सम्पन्न था ।।९।। रेवतीजी के साथ उस वन मे प्रविष्ट होकर बलरामजी आह्लाद उत्पन्न करने वाले तथा कानो को सुख देने वाले विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षियो का मधुर कूजन सुनने लगे ।।१०।। वहाँ वृक्षो मे सब ऋतुओ के फल लगे है, उन वृक्षो पर प्रसन्न पक्षी चहचहा रहे है तथा सभी ऋतुओ के पुष्प प्रफुल्लित हो रहे है और सभी रङ्गो के फल शोभा दे रहे है ।।११।। आम, अम्रातक, नारियल, तिन्दु, बेल, अ जीर, अनार, निम्बु ।।१२।। कटहल, बडहल, मोचरस, कदम्ब, पारावत, ककोल, नलिनि, अम्ल-

वेत ॥१३॥ भिलावा, तिल, तैंदू, हिंगोट, करौदा, हरड, बहेडा ॥१४॥ वहाँ इन सब वृक्षो को बलरामजी ने देखा तथा अशोक, पुन्नाग, केतकी, मौलश्री ॥१५॥

चम्पकान्सप्तपर्णाश्चकर्णिकारान्समालतीन् ।
पारिजातान्कोविदारान्दाराञ्चबदरॉस्तथा ॥१६॥
पाटलान्पुष्पितान्नम्यान्देवदारुद्रुमास्तथा ।
सालास्तालास्तमालाश्चकिंशुकान्वजुलान्वराम् ॥१७॥
चकोरै पातपत्रैश्चभृगराजैस्तथाशुकै ।
कोकिलै कलविकैश्चहारीतैर्जीवजीवकै ॥१८॥
प्रिय पुत्रैश्चातकैश्चतथान्यैर्विविधै खगै
श्रोत्ररम्यंसुमधुरंकूजद्भिश्चाप्यधिष्ठितम् ॥१९॥
स्मरासिचमनोज्ञानिप्रसन्नसलिलानिच ।
कुमुदै पुण्डरीकैश्चतथानीलोत्पलै शुभै ॥२०॥
कह्लारै कमलैश्चापिआचितानिसमतत ।
कादम्बैश्चक्रवाकैश्चतथैवजलकुक्कुटै ॥२१॥
कारण्डवै प्लवैर्हंसै कूर्मैर्मद्गुभिरेवच ।
एभिश्चान्यैश्चकीर्णानिसमन्ताज्जलचारिभि ॥२२॥

चम्पा, कन्नेर, सप्तपर्ण, पारिजात, मालती, कोबिदार, मन्दार, बेर ॥१६॥ पाटल, देवदार, सुखुआ, ताल, तमाल, पलाश और वजुल आदि उत्तमोत्तम फल-पुष्पो मे सम्पन्न वृक्षो से वह वन सुशोभित है ॥१७॥ उन वृक्षो पर चकोर, जातपत्र, भृङ्गराज, शुक, सारिका, कोकिला, हरैल, जीवजीवक ॥१८॥ प्रियपुत्र तथा चातक आदि विभिन्न प्रकार के पक्षी, सुनने मे मनोहर शब्द करते हुए, इन सब वृक्षो की शाखाओ के आश्रय मे निवास करते है ॥१९॥ उस रैवतक वन मे स्वच्छ जल वाले सरोवर सुशोभित है, जिन्हे देखते ही चित्त प्रसन्न होता है, कुमुद, पुण्डरीक, नीलपद्म ॥२०॥ कह्लार और कमल आदि पुष्पो से सर्वत्र शोभायमान तथा कलहस, चकवा और जल कुक्कुट ॥२१॥ प्लव, हस तथा कारण्डव आदि जलचर आदि के सहित अत्यन्त सुशोभित है ॥२२॥

क्रमेणेत्थवनशौरिर्वीक्ष्यमाणोमनोरमम् ॥
जगामानु गत स्त्रीभिर्लतागृहमनुत्तमम् ॥२३॥
सददर्श द्विजास्तत्रवेदवेदागपारगान् ॥
कौशिकान्भार्गवाश्चैवभरद्वाजान्सगौतमान् ॥२४॥
विविधेषुचसभूतान्वशेषुद्विजसत्तमान् ॥
कथाश्रवणबद्धोत्कानुपविष्टान्महत्सुच ॥२५॥
कृष्णाजिनोत्तरीयेषुकुशेचुषुचबृसीषुच ॥
सूतचतेषामध्यस्थकथयानकथा शुभा. ॥२६॥
पौराणिकी सुरर्षीणामाद्यानाचरिताश्रया ॥
दृष्ट्वारामद्विजा सर्वेमधुपानारुणेक्षणम् ॥२७॥
मत्तोऽयमितिमन्वाना समुत्तस्थुस्त्वरान्विता ॥
पूजयन्तोहलधरमृतेतसूतवशजम् ॥२८॥

उस वन को देखते हुए बलराम जी स्त्रियो के सहित एक अत्यन्त श्रेष्ठ लतागृह मे पहुचे ॥ २३ ॥ वहाँ उन्होने देखा कि अनेको वेदवेदाङ्ग ज्ञाता ब्राह्मण, कुशिक वशी, भृगुवशी, तथा भारद्वाज और गौतम के वशधर ॥ २४ ॥ तथा अन्यान्य वशो के पवित्र ब्राह्मण और श्रेष्ठ मनुष्य बैठे हुए कथा श्रवण कर रहे है ॥ २५ ॥ कोई मृगचर्म पर, वस्त्र पर, कोई कुशाओ पर और कोई घास पर ही बैठे है तथा उनके मध्य मे पुराण की कथा कहने वाले सूतजी कल्याणमयी कथा कह रहे है ॥ २६ ॥ उस कथा मे देवताओ और ऋषिओ का वर्णन था । उसी समय उन ब्राह्मणो ने मदिरा के मद से लाल दुए नेत्रो वाले बलराम जी को देखा ॥ २७ ॥ सब मुनियो ने उन्हे मदोन्मत्त देखा उस समय सूतजी के अतिरिक्त अन्य सभी ने उठ कर अत्यन्त आदर पूर्वक बलराम जी का पूजन किया ॥ २८ ॥

तत क्रोधसमाविष्टोहलीसूत महाबलः ॥
निजधानवृवित्ताक्ष क्षोभिताशेषदानव ॥२९॥
अध्यास्यतिपदब्राह्म तस्मिन्सूतोनिपातिते ॥
निष्क्रान्तास्ते द्विजा सर्वेवनात्कृष्णाजिनाम्बरा ॥३०॥
अवधूततथात्मानमन्यमानोहलायुध ॥

चिन्तयामाससुमहन्मयापापमिदकृतम् ।।३१।।
ब्राह्म स्थानगतोह्येषयत्सूतोविनिपातित ।।
तथाहिमेद्विजा सर्वेमामवेक्ष्यविनिर्गता ।।३२।।
शरीरस्यचमेगन्धोलोहस्येवासुखावह ।।
आत्मानचावगच्छामिब्रह्म घ्नमिवकुत्सितम् ।।३३।।
धिगमर्षतथामद्यमतिगानमभीरुताम् ।।
यैराविष्टेनसुमहन्मयापापमिदकृतम् ।।३४।।
तत्क्षयार्थचरिष्यामिव्रतद्वादशवार्षिकम् ।
स्वकर्मख्यापनकुर्वन्प्रायश्चित्तमनुत्तमम् ।।३५।।
अथयेयसमारब्धातीर्थयात्रामयाधुना ।
एतामेवप्रयास्यामिप्रतिलोमासरस्वतीम् ।।३६।।
अतोजगामरामोऽसौप्रतिलोमासरस्वतीम् ।
तत परश्शृणुष्वेमपाण्डवेयकथाश्रयम् ।।३७।।

फिर दानवो के हन्ता महान् पराक्रमी बलरामजी ने सूतजी के द्वारा अपना तिरस्कार हुआ समझ कर अत्यन्त क्रोध से लाल नेत्र कर सूतजी को मार डाला ।। २९ ।। पुराणवेत्ता सूतजी के मर-कर स्वर्ग मे पहुँच जाने पर मृगछालाओ पर बैठे हुए सभी ब्रह्मण वहाँ से उठकर चले गए ।। ३० ।। तब जिन बलरमजी की देह पर मद प्रतीत हो रहा था, वह चिन्ता और पश्चात्ताप करने लगे कि मै ऐसा घोर पाप क्यो कर बैठा ? ।। ३१ ।। मैने जिन सूतजी को मारा, वह ब्रह्मस्थान को प्राप्त हुए और सभी ब्राह्मण मुझे देखते ही चले जाते है ।। ३२ ।। मेरे देह से असुरत्व प्रदर्शित करने वाली लौह तुल्य गध निकल रही है और आत्मा भी ब्रह्महत्या से उत्पन्न पाप से कलुषित प्रतीत होती है ।। ३३ ।। अरे अमर्ष ! तुझे धिक्कार है, अरे मद्य ! तुझे भी धिक्कार है, अत्यन्त सम्मान और साहस को भी धिक्कार है, क्योकि इन्ही के वशीभूत होकर मै ऐसा घोर पातक कर बैठा ।। ३४ ।। अब इस ब्रह्महत्या से उत्पन्न महा पातक को दूर करने के लिए बारह वर्ष तक व्रत करता हुआ अपने पाप को सर्वत्र विख्यात करके इसका प्रायश्चित्त करूँगा ।। ३५ ।। अथवा जिस तीर्थ यात्रा का जो उद्यम मै कर रहा हूँ, उसी यात्रा मे प्रतिलोमा सरस्वती

मे जाऊँगा ।। ३६ ।। हे मनु ! ऐसा कह कर यदुकुल धुरधर बलरामजी प्रतिलोमा सरस्वती को जाकर प्राप्त हुए, अब तुम्हारे प्रति पाण्डव पुत्रो का वृत्तान्त कहते है, उसे श्रवण करो ।। ३७ ।।

७—द्रौपदी के पांच पुत्रों की मृत्यु

हरिश्चन्द्रेतिराजर्षिरासीत्त्रेतायुगेपुरा ।
धर्मात्मापृथिवीपाल प्रोल्लसत्कीर्तिरुत्तम ।।१।।
नदुर्भिक्ष नचव्याधिर्नाकालमरणनृणाम् ।
नाधर्मरुचय पौरास्तस्मिन्शासतिपार्थिवे ।।२।।
बभूवुर्नतथोन्मत्ताधनवीर्यतपोमदै ।
नाजायन्तस्त्रियश्चैवकाश्चिदप्राप्तयौवना ।।३।।
सकदाचिन्महाबाहुररण्येऽनुसरन्मृगम् ।
शुश्रावशब्दमसकृत्त्रायस्वेतिचयोषिताम् ।।४।।
सविहायमृगराजामाभैषीरित्यभाषत ।
मयिशासतिदुर्मेधा कोऽयमन्यायवृत्तिमान् ।।५।।
तत्क्रन्दितानुसारिचसर्वारम्भविघातकृत् ।
एतस्मिन्नन्तरेरौद्रोविघ्नराट्समचिन्तयत् ।।६।।
विश्वामित्रोऽयमतुलतपआस्थायवीर्यवान् ।
प्रागसिद्धाभवादीनाविद्या साधयतिव्रती ।।७।।

धर्मात्मा पक्षियो ने कहा—हे जैमिनि ! पुराकाल मे, त्रेता मे हरिश्चन्द्र नाम के एक धार्मिक नरेश हुए, वह अत्यन्त कीर्ति से युक्त, पृथ्वी का पालन करने वाले श्रेष्ठ पुरुष थे ।। १ ।। उनके शासन-काल मे दुर्भिक्ष नही पडा और प्रजा को रोग, अकाल मृत्यु का फल तथा अधर्म-फल नहीं भोगना पडता था ।। २ ।। उनकी प्रजा भी धन, बल या धर्म के मद से उन्मत्त नही होती थी, स्त्रियाँ भी यौवनावस्था प्राप्त किये बिना सन्तानवती नही होती थी ।। ३ ।। एक समय की बात है वह आखेट के लिए वन मे गए, उसी समय उन्होने अनेक स्त्रियो के कठ से 'रक्षा करो, रक्षा करो' का शब्द सुना ।। ४ ।। तब राजा मृगया छोड कर 'डरो मत' कहते हुए बोले कि मेरे शासनकाल मे कौन दुर्बुद्धि अन्याय का आचरण करता है ? ।। ५ ।। यह कह कर उन्होने

उस करुण स्वर का अनुसरण किया, उसी समय सब कार्यो को नष्ट करने वाला भयकर विघ्नराज सोचने लगा ।। ६ ।। इस वन मे जिन साधनो को पहिले कोई नही साध सजा उन्हे भवादि सम्पूर्ण विद्याओ का साधन व्रतालम्बन एव घोर तप द्वारा महामुनि विश्वमित्रजी कर रहे है ।। ७ ।।

साध्यमाना क्षमामौनचित्तसयमिनाऽमुना ।
तावैभयार्त्ता क्रन्दन्तिकथकार्यमिदमया ।।८।।
तेजस्वीकौशिकश्रेष्ठोवयमस्यसुदुर्बला ।
क्रोशन्त्येतास्तथाभीतादुष्पारप्रतिभातिमे ।।९।।
अथवायनृप प्राप्तोमाभैरितिवदन्मुहु ।
इममेवप्रविश्याशुसाधयिष्येयथेप्सितम् ।।१०।।
इतिसचिन्त्यरौद्रेणविघ्नराजेनवैतत ।
तेनाविष्टोनृप कोपादिदवचनमब्रवीत् ।।११।।
कोऽयबध्नातिवस्त्रान्तेपावकपापकृन्नर ।
बलोष्णतेजसादीप्तेमयिपत्यावुपस्थिते ।।१२।।
सोऽद्यमत्कार्मुकाक्षेपविदीपितदिगन्तरै ।
शरैर्विभिन्नसर्वांगोदीर्घनिद्राप्रवेक्ष्यति ।।१३।।
विश्वामित्रस्तत क्रुद्ध श्रुत्वातन्नृपतेर्वच ।
क्रुद्धेचर्षिवरेतस्मिन्नेशुर्विद्या क्षणेनता ।।१४।।

क्षमा, मौन और चित्त के सयम द्वारा वे मुनिवर जिन विद्याओ के साधन मे अहर्निश श्रद्धा से रत है, वे विद्याएँ अत्यन्त भयभीत हो नारी रूप मे 'रक्षा करो' कहती हुई रोती है, अब मुझे क्या कर्त्तव्य है? ।। ८ ।। क्योकि विश्वामित्रजी अत्यन्त तेजस्वी है और मै इनके समक्ष अत्यन्त दुर्बल हूँ और यह विद्याएँ भी भय से रुदन कर रही है, इस प्रकार अत्यन्त कठिन वार्त्ता उपस्थित है ।। ९ ।। अथवा मुझे किसी प्रकार चिन्तित नही होना चाहिए, क्योकि राजा हरिश्चन्द्र 'डरो मत' कहता हुआ आ पहुँचा है, इसलिए इस राजा के देह मे घुस कर ही अपनी इच्छा पूर्ण करता हूँ ।। १० ।। उस समय भयकर विघ्नराज ने इस प्रकार विचार कर राजा के देह मे प्रवेश किया, तब राजा ने और भी क्रोध पूर्वक कहा ।। ११ ।। यह कौन पापी,

वस्त्र मे अग्नि को बाँध रहा है ? जब मै साक्षात् बल रूप, अत्यन्त तेजस्वी भूपति हरिश्चन्द्र यहाँ आ गया हूँ ।। १२ ।। इस समय कौन मूर्ख धनुष से छूट कर दिशाओ मे प्रकाश करने वाले मेरे बाणो से छिद कर योग निद्रा को प्राप्त होगा ।। १३ ।। तब राजा हरिश्चन्द्र के यह अहकारमय वचन सुन कर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी क्रोधित हो उठे और उनके क्रोध करते ही सब विद्या नष्ट हो गई ।। १४ ।।

सचापिराजातदृष्ट्वाविश्वामित्रतपोनिधिम् ।
भीत प्रावेपतात्यर्थसहसाश्वत्थपर्णवत् ।।१५।।
सदुरात्मन्नितियदामुनिस्तिष्ठेतिचाब्रवीत् ।
तत सराजाविनयात्प्रणि पत्याभ्यभाषत ।।१६।।
भगवन्नेषधर्म्मोमेनापराधोममप्रभो ।
नक्रोद्धु मर्हसिमुनेनिजधर्मरतस्यमे ।।१७।।
दातव्यक्ष तव्यचधर्मज्ञेनमहीक्षिता ।
चापचोद्यम्ययोद्धव्यधर्मशास्त्रानुसारत ।।१८।।
दातव्यकस्यकेरक्ष्या कैर्योद्धव्यचतेनृप ।
क्षिप्रमेतत्समाचक्ष्वयद्यधर्मेभयतव ।।१९।।
दातव्यविप्रमुख्येभ्योयेचान्येकृशवृत्तय ।
रक्ष्याभीता सदायुद्ध कर्त्तव्यपरिपन्थिभि ।।२०।।
यदिराजाभवान्सम्यग्राजधर्ममवेक्षते ।
निर्वेष्टुकामोविप्रोऽहृदीयतामिष्टदक्षिणा ।।२१।।

सहसा तपोनिधि विश्वामित्रजी को देख कर राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त भयभीत होकर पीपल-पत्र के समान काँपने लगे ।। १५ ।। उसी समय मुनिवर विश्वामित्र ने कहा 'दुरात्मन् ! ठहर' यह सुन कर राजा ने उनको प्रणाम किया और विनय पूर्वक बोले ।। १६ ।। हे भगवन् ! मेरा धर्म यही है, आप मेरे अपराध को न मानिये, मैने अपने धर्म का त्याग नही किया है, इसलिए मेरे प्रति क्रोध न करिये ।। १७ ।। धर्मज्ञ नरेशो का कर्त्तव्य ही धर्मानुसार दान, रक्षा और धनुष धारण करके युद्ध करना है ।। १८ ।। विश्वामित्र बोले—राजन् ! यदि तुम्हे अधर्म से भय है तो यह बताओ कि

दान किसको करना चाहिए, किसकी रक्षा और किस के युद्ध साथ करना उचित है ? ।। १६ ।। हरिश्चन्द्र बोले—जो सदैव व्रत अनुष्ठान मे तत्पर और ब्राह्मण श्रेष्ठ है, उसी के लिए दान करे, भयभीत की रक्षा करे और शत्रुओ के साथ युद्ध करे ।। २० ।। विश्वामित्र ने कहा कि राजन् ! यदि तुम्हे सम्पूर्ण राजधर्म का ज्ञान है तो मै मुमुक्षु ब्राह्मण हूँ, मुझे इच्छित दक्षिणा प्रदान करो ।। २१ ।।

एतद्राजावच श्रुत्वाप्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
पुनर्जातमिवात्मानमेनेप्राह चकौशिकम् ।।२२।।
उच्यताभगवन्यत्ते दातव्यमविशङ्कितम् ।
दत्तमित्येवतद्विद्धियद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ।।२३।।
हिरण्यवासुवर्णवापुत्रस्त्रियकलेवरम् ।
प्राणाराज्यपुरलक्ष्मीर्यदभिप्रेतमात्मन ।।२४।।
राजन्यतिगृहीतोऽय्ययस्तेदत्त प्रतिग्रह ।
प्रयच्छप्रथमतावद्दक्षिणाराजसूयिकीम् न२५।।
ब्रह्म स्तामपिदास्यामिदक्षिणाभवतोह्यहम् ।
व्रियताद्विजशर्दू लयस्तवेष्ट प्रतिग्रह ।।२६।।
ससागराधरामेतासभूभृद्ग्रामपत्तनाम् ।
राज्यचसकलवीररथाश्वगजसकुलम् ।।२७।।
कोष्ठागारचकोशचयच्चान्यद्विद्यतेतव ।
विनाभार्याचपुत्रचशरीरचतवानघ ।।२८।।
धर्मचसर्वधर्मज्ञयोयान्तमनुगच्छति ।
बहुनावाकिमुक्तेनसर्वमेतत्प्रदीयताम् ।।२९।।

पक्षियो ने कहा कि हे जैमिने ! राजा हरिश्चन्द्र ने यह बात सुन कर आह्लाद और प्रफुल्लता युक्त होकर अपना नया जन्म समझते हुए मुनि से कहा ।। २२ ।। हे भगवन् ! आप अपनी अभिलाषा कहे, मै उसे देने के लिए तत्पर हूँ तथा प्रतिज्ञा करता हूँ कि कठिन से कठिन बात को भी पूरी करूँगा ।। २३ ।। आपको स्वर्ण, रत्न, पुत्र, स्त्री, देह, प्राण, राज्य, ग्राम, धन जिस वस्तु की इच्छा हो वही बतलाइये ।। २४ ।। विश्वामित्र ने कहा—आप जो

देंगे, वही मैने ग्रहण कर लिया समझो, परन्तु अब प्रथम राजसूय यज्ञ की दक्षिणा मुझे दो ।। २५ ।। राजा बोले—ब्रह्मन् ! यह देने को मै तत्पर हूँ, राजसूय यज्ञ की दक्षिणा के रूप मे आपकी जो इच्छा हो सो आज्ञा करे ।। २७ ।। विश्वामित्र ने कहा—समस्त नगर, ग्राम, पर्वत, सागर आदि से युक्त पृथिवी एव रथ, अश्व, हाथी सहित सम्पूर्ण राज्य ।। २७ ।। अन्तर्गृह, राजकोश आदि तुम्हारी सभी वस्तुएँ, बिना भार्या, पुत्र तथा अपने शरीर के ।। २८ ।। तथा धर्मशास्त्र के अनुसार तुम्हारे सभी अनुगत अथवा तुम्हारे पास जो कुछ है, सब कुछ मुझे दे दो ।। २९ ।।

प्रहृष्टेनैवमनसासोऽविकारमुखोनृप ।
तस्यर्षेर्वचनश्रुत्वातथेत्याहकृताञ्जलि ।।३०।।
सर्वस्वयदिमेदत्त राज्यमुर्वीबलधनम् ।
प्रभुत्वकस्यराजर्षेराज्यस्थेतापसेमयि ।।३१।।
यस्मिन्नपिमयाकालेब्रह्मन्दत्तावसुन्धरा ।
तस्मिन्नपिभवान्स्वामीकिमुताद्यमहीपति ।।३२।।
यदिराजस्त्वयादत्ताममसर्वावसुन्धरा ।
यत्रमेविषयेस्वाम्यतस्मान्निष्क्रान्तुमर्हसि ।।३३।।
श्रोणीसूत्रादिसकलमुक्त्वाभूषणसग्रहम् ।
तरुवल्कलमाबध्यसहपत्न्यासुतेनच ।।३४।।
तथेतिचोक्त्वाकृत्वाचराजा गन्तु प्रचक्रमे ।
स्वपत्न्याशैब्ययासार्धबालकेनात्मजेनच ।।३५।।

पक्षियो ने कहा—मुनि के वचन सुन कर राजा ने प्रसन्नता पूर्वक हाथ जोड कर 'जो आज्ञा, ऐसा ही होगा' मुख से कहा ।। ३० ।। विश्वामित्र ने कहा—तुमने पृथिवी, बल, धन इत्यादि सर्वस्व ही मुझे अर्पण कर दिया है, तब तपस्वी होकर राज्य करने से किसका प्रभुत्व रहेगा ? ।। ३१ ।। हरिश्चन्द्र बोले—ब्रह्मन् ! जब से मैने यह वसुधरा आपको दे दी, तभी से आप इसके स्वामी है, फिर आप प्रभुत्व का प्रश्न क्यो करते है ।। ३२ ।। विश्वामित्र ने कहा—राजन् ! तुमने जब यह वसुधरा मुझे दे दी और मेरा स्वामित्व हो गया तो तुम अब इस राज्य से चले जाओ ।। ३३ ।। कटि-

भूषण आदि तुम्हारी भार्या और पुत्र के देह मे है, उन सब को उतार कर वृक्षो छाल धारण करके पत्नी पुत्र सहित मेरे राज्य से निकल जाओ ।। ३४ ।। पक्षियो ने कहा-राजा हरिश्चन्द्र ने मुनि विश्वामित्र की आज्ञा के अनुसार देश के कार्य किये और अपनी भार्या शैव्या और पुत्रके सहित जाने लगे ।। ३५ ।।

व्रजत सततोरुद्धापन्थानप्राहतनृपम् ।
क्वयास्यसीत्यदत्त्वामेदक्षिणाराजसूयिकीम् ।।३६।।
भगवन्सराज्यमे तत्त दत्त निहतकण्टकम् ।
अवशिष्टमिदब्रह्मन्नद्यदेहत्रयमम ।।३७।।
तथापिखलुदातव्यात्वयामेयज्ञदक्षिणा ।
विशेषतो ब्राह्मणानाहन्त्यदत्त प्रतिश्रुतम् ।।३८।।
यावत्तोषोराजसूयेब्राह्मणानाभवेन्नृप ।
तावदेवतुदातव्यादक्षिणाराजसूयिकी ।।३९।।
प्रतिश्रुत्यचदातव्ययोद्धव्यचाततायिभि ।
रक्षितव्यास्तथाचार्त्ता स्त्वयैवप्राक्प्रतिश्रुतम् ।।४०।।
भगवन्साम्प्रतनास्तिदास्येकालक्रमेणते ।
प्रसादकुरुविप्रर्षेसद्भावमनुचिन्त्यच ।।४१।।
किप्रमाणोमयाकाल प्रतीक्ष्यस्तेजनाधिप ।
शीघ्रमाचक्ष्वशापाग्निरन्यथात्वाप्रधक्ष्यति ।।४२।।

तभी विश्वामित्र ने उनका मार्ग रोका और कहने लगे—हे राजन् ! राजसूय यज्ञ की दक्षिणा दिये बिना कहाँ जा रहे हो ? ।। ३६ ।। हरिश्चन्द्र ने कहा—हे भगवन् ! मैने आपको अपना सम्पूर्ण राज्य निष्कटक रूप से आपको दे दिया है, अब इन तीन प्राणियो के शरीर के अतिरिक्त मेरे पास कुछ भी नही है ।। ३७ ।। विश्वामित्र बोले—यदि इन तीन शरीरो के अतिरिक्त कुछ और नही है तो भी यज्ञ की दक्षिणा तो देनी ही होगी, क्योकि ब्राह्मण मे कही हुई वस्तु न थेने से सब कुछ नष्ट हो जाता है ।। ३८ ।। हे नरेश ! राजसूय यज्ञ मे ब्राह्मण जिस वस्तु से सतुष्ट हो वही उसकी यज्ञ दक्षिणा है ।। ३९ ।। तुम्हारी तो प्रतिज्ञा है कि अगीकृत दान, आततायी से युद्ध और आर्त्त पुरुष की भले प्रकार रक्षा करनी चाहिए ।। ४० ।। हरिश्चन्द्र

बोले—हे ब्रह्मर्षे ! आप साधुत्व का अवलम्बन करके प्रसन्न हों, इस समय मेरे पास कुछ नही है, काल क्रम से आपको दूँगा ॥ ४१ ॥ विश्वामित्र ने कहा—हे राजन् ! मै कब तक प्रतीक्षा करूँ ? मुझे शीघ्र बताओ, नही तो शापानल मे भस्म हो जाओगे ॥ ४२ ॥

मासेनतव विप्रर्षेप्रदास्येदक्षिणाधनम् ।
साम्प्रतनास्तिमेवित्तमनुज्ञादातुमर्हसि ॥४३॥
गच्छगच्छ नृपश्रेष्ठस्वधर्ममनुपालय ।
शिवश्चतेऽध्वाभवतुमासन्तुपरिपन्थिन ॥४४॥
अनुज्ञात सगच्छेतिजगामवसुधाधिप ।
पद्भ्यामनुचितागन्तुमन्वगच्छच्चत्त प्रिया ॥४५॥
तसभार्यनृपश्रेष्ठ निर्यान्तससुतपुरात् ।
दृष्ट्वाप्रचुक्रुशु पौराराज्ञश्चैवानुयायिन ॥४६॥
हानाथकिजहास्यस्मान्नित्यार्त्तिपरिपीडितान् ।
त्वधर्मतत्परोराजन्पौरानुग्रहकृत्तथा ॥४७॥
नयास्मानपिराजर्षेयदिधर्ममवेक्षसे ।
मुहूर्त्त तिष्ठराजेन्द्रभवतोमुखपङ्कजम् ॥४८॥
पिवामोनेत्रभ्रमरै कदाद्रक्ष्यामहेपुन ।
यस्यप्रयातस्यपुरोयान्तिपृष्ठेचपार्थिवा ॥४९॥
तस्यानुयातिभार्येय गृहीत्वाबालकसुतम् ।
यस्यभृत्या प्रयातस्ययान्त्यग्रेकुञ्जरस्थिता ॥५०॥
सएषपद्भ्याराजेन्द्रोहरिश्चन्द्रोद्यगच्छति ।
हाराजन्कुमारतेसुभ्रु सुत्वचमुन्नसम् ॥५१॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मेरे पास अब कुछ भी नही है, एक मास मे आपकी दक्षिणा उपस्थित कर दूँगा, इसलिए आज्ञा दोजिये ॥ ४३ ॥ विश्वामित्र ने कहा—हे भूपश्रेष्ठ ! जाओ, अपने धर्म के पालनार्थ गमन करो तुम्हारे विघ्न दूर हो और तुम्हारा कल्याण हो ॥ ४४ ॥ पक्षियो ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ जैमिने ! फिर वह राजर्षि हरिश्चन्द्र मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र द्वारा जाने का अनुमोदन प्राप्त कर चल दिये, रानी शैव्या भी उनके पीछे-पीछे

चली ।। ४५ ।। इधर नगर मे रहने वाले प्रजाजन पुत्रादि के सहित राजा को जाते देख कर ऊँचे स्वर से रोते हुए उनके पीछे चलने लगे ।। ४६ ।। हे महाराज ! यदि आप धर्म मे लगे रहने वाले और अनुग्रह पूर्वक प्रजा के पालन मे तत्पर रहने वाले है तो अपनी प्रजा का किस लिए त्याग कर रहे है ? ।। ४७ ।। हे राजर्षि ! यदि आप धर्म की ओर देखे तो हमको भी साथ ले चले, हे राजेन्द्र ! कुछ समय के लिए तो ठहरिये हम एक वार आपके मुखारविंद को ।। ४८ ।। भौरे के समान पान कर सके फिर कब आपका दर्शन हो सकेगा ? जिनके चलते समय भूमडल के सभी नरेश आगे-पीछे गमन करते थे ।। ३९ ।। उन्ही राजा हरिश्चन्द्र की पत्नी आज अपने बालक को लिए हुए उनका अनुगमन कर रही है । जिनके चलते समय सभी भृत्य हाथियो के मस्तक पर चढ कर आगे-आगे दौडते थे ।। ५० ।। आज वे राजेन्द्र स्वय पदयात्रा कर रहे है ।। ५१ ।।

पथिपासुपरिक्लिष्ट मुखकीदृग्भविष्यति ।
तिष्ठतिष्ठनृपश्रेष्ठस्वधर्ममनुपालय ।।५२।।
आनृशस्यपरोधर्म क्षत्रियाणाविशेषत ।
किदारै-किसुतैनर्थिधनैर्धान्यैरथापिवा ।।५३।।
सर्वमेतत्परित्यज्यच्छायाभूतावयतव ।
हानाथहामहाराजहास्वामिन्किजहासिन ।।५४।।
यत्रत्वतत्रहिवयतत्सुखयत्रवैभवान् ।
नगरतद्भवान्यत्रसस्वर्गोयत्रनोनृप ।।५५।।
इतिपौरवच श्रुत्वाराजाशोकपरिलुप्त
अतिष्टत्सतदामार्गेतेषामेवानुकम्पया ।।५६।।

आपका यह शोभायमान मुख मडल मार्ग मे धूल धूसरित हो जायगा, उस समय कितनी शोचनीय अवस्था होगी ? इसलिए आप मत जाइये, यही रह कर अपना धर्म-पालन कीजिए ।। ५२ ।। क्षत्रियो का मुख्य धर्म दया है, हमको पुत्र, धन अथवा धान्यादि किसी वस्तु की भी आवश्यकता नही है ।। ५३ ।। हम भी सर्वस्व त्याग कर आपके साथ छाया के समान रहेगे, इस-लिए हे प्रभो आप हमारा त्याग न कीजिये ।। ५४ ।। जहाँ आप जाँयगे, वही

हम जायेगे, जहाँ आपको सुख है, वही हमको भी होगा, जहाँ आप रहेगे, वही हमारा नगर है, जहाँ राजा का निवास हो, वही स्वर्ग है ॥ ५५ ॥ प्रजा के इस प्रकार के वचन सुनकर राजा हरिश्चन्द्र शोक मग्न होगए और उनकी दया देख कर कुछ समय मार्ग मे ही खडे रहे ॥ ५६ ॥

विश्वामित्रोऽपितदृष्ट्वापौरवाक्याकुलीकृतम् ।
रोषामर्षविवृत्ताक्ष समागम्यवचोऽब्रवीत् ॥५७॥
धिक्त्वादुष्टसमाचारमनृतजिह्मभाषिणम् ।
ममराज्यचदत्त्वाय पुन प्राकृष्टु मिच्छसि ॥५८॥
इत्युक्त परुषतेनगच्छामीतिसवेपथु ।
ब्रु वन्नेवययौशीघ्रमाकर्षन्दयिताकरे ॥५९॥
कर्षतस्ताततोभार्या सुकुमारीश्रमातुराम् ।
सहसादण्डकाष्ठेनताडयामासकौशिक ॥६०॥
तातथाताडितादृष्ट्वाहरिश्चन्द्रोमहीपति ।
गच्छामीत्याहदु खार्तोनान्यत्किञ्चिदुदाहरत् ॥६१॥
अथविश्वे तदादेवा पचप्राहु कृपालव ।
विश्वामित्र सुपापोऽयलोकान्कान्समवाप्स्यति ॥६२॥
येनाययज्वनाश्रेष्ठ स्वराज्यादवरोपित ।
कस्यवाश्रद्धयापूतसुतसोममसाध्वरे ।
पीत्वावयप्रयास्यामोमुदमन्त्रपुर सरम् ॥६३॥

तभी प्रजा के वचनो से राजा को आकुल हुआ देख कर विश्वामित्रजी आ पहुँचे और रोष पूर्वक घूरते हुए कहने लगे ॥ ५७ ॥ ये दुष्ट ! मिथ्यावादिन् ! इस सम्पूर्ण राजत्व को अब पुन मुझसे ले लेना चाहता है, तुझे धिक्कार है ॥ ५८ ॥ इस प्रकार विश्वामित्र के वचन सुन कर 'जाता हूँ' कहते हुए राजा हरिश्चन्द्र कम्पित गात से चलने को उद्यत हुए और उन्होने शैव्या का हाथ खीचा ॥ ५९ ॥ कोमलागी शैव्या अत्यन्त थक गई थी, राजा उसे चलने को खीच रहे थे, फिर भी विश्वामित्र अपने डण्डे से रानी की पीठ मे आघात करने लगे ॥ ६० ॥ पृथिवीपति हरिश्चन्द्र शैव्या को इस प्रकार ताडित होते देख कर अत्यन्त दु खी हुए, फिर भी इतना ही बोले कि भगवन् मै जारहा हूँ

।। ६१ ।। यह देख कर पाँच जन लोकपाल, विश्वेदेवा देवताओ ने दया पूर्वक कहा—इस पापात्मा विश्वामित्र ने श्रेष्ठ राजा हरिश्चन्द्र को राज से भ्रष्ट कर दिया, इसकी कौन-सी गति होगी ? अब हम किसके यज्ञ मे सोम पान करके आनन्द को प्राप्त होगे ।। ६२ ।। ।। ६३ ।।

इतितेषावच श्रु त्वाकौशिकोऽतिरुषान्वित ।
शशापतान्मनुष्यत्वसर्वेयूयमवाप्स्यथ ।।६४।।
प्रसादितश्चतै प्राहपुनरेवमहामुनि ।
मानुषत्वेऽपिभवताभवित्रीनैवसन्तति· ।।६५।।
नदारसग्रहश्चैवभवितानचमत्सर ।
कामक्रोधविनिर्मु क्ताभविष्यथसुरा पुन ।।६६।।
ततोऽवतेरुरशै स्वैर्देवास्तेकुरुवेश्मनि ।
द्रौपदीगर्भसम्भूता पचवैपाण्डुनन्दना ।।६७।।
एतस्मात्कारणात्पचपाण्डवेयामहारथाः ।
नदारसग्रहप्राप्ता.शापात्तस्यमहामुने ।।६८।।
एतत्ते सर्वमाख्यातपाण्डवेयकथाश्रयम् ।
प्रश्नंचतुष्टयगीतकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।।६९।।

पक्षियो ने कहा कि उन पाँचो विश्वेदेवो को वचन से रुष्ट होकर विश्वामित्र ने शाप दिया कि अरे पापात्माओ ! तुम सब मनुष्य-योनि ग्रहण करोगे ।। ६४ ।। इस पर विश्वेदेवो के प्रार्थना करने पर विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर कहा कि तुम यद्यपि मनुष्य तो होगे परन्तु स्त्री-सम्पर्क और सन्तानोत्पत्ति से दूर रहोगे ।। ६५ ।। तुम मात्सर्य से बचे रहोगे और काम क्रोधादि से परे रहोगे ।। ६६ ।। फिर वही विश्वेदेवा द्रौपदी के गर्भ से पाण्डवो की सन्तान रूप मे उत्पन्न हुए ।। ६७ ।। हे महामुने ! विश्वामित्र के शापवश ही उन पाँचो महारथी द्रोपदी-पुत्रो का विवाह नही हुआ ।। ६८ ।। पाण्डवो की कथा के आश्रय से तुम्हारे चारो प्रश्नो का उत्तर दिया जा चुका अब और क्या सुनाना चाहते हो, सो कहिये ।। ६९ ।।

इति श्री मार्कण्डेय पुराणे द्रौपदेयोत्पत्ति कथन

८—राजा हरिश्चन्द्र की कथा

भवद्भिरिदमाख्यातयथाप्रश्नमनुक्रमात् ।
महत्कौतूहल मेऽस्तिहरिश्चन्द्रकथाप्रति ॥१॥
अहोमहात्मनातेनप्राप्तकृच्छ्रमनुत्तमम् ।
कच्चित्सुखमनुप्राप्तताद्दगेवद्विजोत्तमाः ॥२॥
विश्वामित्रवश श्रुत्वासराजाप्रययौशनै. ।
शैब्ययानुगतोदु.खीभार्ययाबालपुत्रया ॥३॥
सगत्वावसुधापालोदिव्यावाराणसींपुरीम् ।
नैषामनुष्यभोग्याहिशूलपाणे परिग्रह ॥४॥
जगामपद्भ्यादु खार्त्त.सहपत्न्यानुकूलया ।
पुरीप्रविश्यददर्शविश्वामित्रमुपस्थितम् ॥५॥
तद्दृष्ट्वासमनुप्राप्तविनयावनतोऽभवत् ।
प्राहचैवाञ्जलिकृत्वाहरिश्चन्द्रोमहामुनिम् ॥६॥
इमेप्राणा सुतश्चायमियपत्नीमुनेमम ।
येनतेकृत्यमस्त्याशुतद्ग्रहाणार्घ्यमुत्तमम् ॥७॥
यद्वान्यत्कार्यमस्माभिस्तदनुज्ञातुमर्हसि ॥८॥

जैमिनी बोले—हे द्विजश्रेष्ठ ! मेरे प्रश्नो का आपने क्रमानुसार समाधान कर दिया । अब मुझे हरिश्चन्द्र की कथा मे अत्यन्त कुतूहल है ॥ १ ॥ उन महात्मा ने कितना कष्ट पाया ? क्या उन्हे वैसे ही सुख की प्राप्ति भी हुई ? ॥ २ ॥ पक्षियो ने कहा—विश्वामित्र के वचन सुन कर राजा दु खी हृदय से धीरे-धीरे चल पडे तथा बालक पुत्र लिए हुए उनकी रानी के साथ ही चली ॥ ३ ॥ वह वहाँ से चल कर वाराणसी पहुँचे, क्योकि शूलपाणि शकर द्वारा निर्मित वह नगरी मनुष्यो के भोग के लिए नही है ॥ ४ ॥ दु खित चित्त से चिन्ता करते हुए राजा पत्नी के सहित पैदल ही वाराणसी मे गये और उन्होने वहाँ सामने ही मुनिवर विश्वामित्र को खडे देखा ॥ ५ ॥ राजा हरिश्चन्द्र ने उन महामुनि को वहाँ आया देख कर हाथ जोडे और विनय पूर्वक कहा ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! अब तो मेरा प्राण, पत्नी और पुत्र यही शेष

है । इनमे से जिसे आप स्वीकार करना चाहे वही आपको अर्घ्य स्वरूप दिया जाय ।। ७ ।। इसके अतिरिक्त आप जैसी आज्ञा दे वैसे मै करूँ ।। ८ ।।

पूर्णःसमासोराजर्षेदीयताममदक्षिणा ।
राजसूयनिमित्ताहिस्मर्यतेस्ववचोयदि ।।९।।
ब्रह्मन्नद्यैवसपूर्णोमासोऽम्लानतपोधन ।
तिष्ठत्येतद्दिनार्धयत्तत्प्रतीक्षस्वमाचिरम् ।।१०।।
एवमस्तुमहाराजआगमिष्याम्यहपुन: ।
शापतवप्रदास्यामिनचेदद्यप्रदास्यसि ।।११।।
इत्युक्त्वाप्रययौविप्रोराजाचाचिंतयत्तदा ।
कथमस्मैप्रदास्यामिदक्षिणायाप्रतिश्रुता ।।१२।।
कुत पुष्टानिमित्राणिकुतोऽर्थ.साप्रतमम ।
प्रतिग्रह·प्रदुष्टोमेनाहयायामध कथम् ।।१३।।
किमुप्राणान्विमुञ्चामियादिशयाम्यकिञ्चन ।
यदिनाशगमिष्यामिअप्रदायप्रतिश्रुतम् ।।१४।।
ब्रह्मस्वहृत्कृमि पापोभविष्याम्यधमाधम ।
अथवाप्रेष्यतायास्येवरमेवात्मविक्रय ।।१५।।

इस पर विश्वामित्र ने कहा—आपने राजसूय यज्ञ के उपलक्ष्य मे जो दक्षिणा एक मास बाद देने को कहा था उसका समय पूरा हो चुका, अब उसे तत्काल दो ।। ९ ।। हरिश्चन्द्र ने निवेदन किया...हे ब्रह्मन् ! एक मास आज सध्या तक पूरा होगा, अभी आधा दिन शेष है, आप उतनी देर और प्रतीक्षा कीजिये, उसी समय मै चुका दूँगा ।। १० ।। विश्वामित्रजी बोले—हे राजा,यही हो महाराज ! मै सध्या के समय आऊँगा । यदि उस समय दक्षिणा नही दोगे तो तुम्हे शापग्रस्त होना पडेगा ।। ११ ।। पक्षियो ने कहा कि इस प्रकार कहकर विश्वामित्र तो चले गये और राजा यह चिन्ता करने लगे कि इनको वह दक्षिणा किस प्रकार दी जा सकती है । इस समय न तो मेरा कोई अर्थ-सम्पन्न बान्धव यहाँ है और न सम्पदा मे से कुछ शेष रहा है । ऐसी दशा मे क्या मुझे दान न चुकाने के लिये पतित होना पडेगा ।। १२ ।। ।। १३ ।। अब तो मेरे पास कुछ भी नही रहा । मै कहाजाऊँ ? अगर अगीकार की हुई

वस्तु को दिये बिना मै प्राण भी त्याग दू तो वह भी एक पापकर्म होगा और ब्रह्मअ श को हरण करने के पाप से या तो मै कृमियोनि मे जाऊँगा अथवा आत्मा को बेच कर सन्यासी होना पडेगा ।। १५ ।।

राजानव्याकुलदीनचिन्तयानमधोमुखम् ।
प्रत्युवाचतदापत्नीबाष्पद्गदयागिरा ।।१६।।
त्यजचिन्तामहाराजस्वसत्यमनुपालय ।
श्मशानवद्वर्जनीयोनर सत्यबहिष्कृत ।।१७।।
नात परतरधर्मवदन्तिपुरुषस्यतु ।
यादृशपुरुषव्याघ्रस्वसत्यपरिपालनम् ।।१८।।
अग्निहोत्रमधीतवादानाद्याश्चाखिला क्रिया ।
भजन्तेतस्यवैफल्ययस्यवाक्यमकारणम् ।।१९।।
सत्यमत्यन्तमुदितधर्मशास्त्रेषुधीमताम् ।
तारणायानृततद्वत्पातनायाकृतात्मनाम् ।।२०।।
सप्ताश्वमेधानाहृत्यराजसूयचपार्थिव ।
कृतिर्नामिमच्युत स्वर्गादसत्यवचनात्सकृत् ।।२१।।
राञ्जातमपत्यंमेइत्युक्त्वाप्ररुरोदह ।
बाष्पाम्बुप्लुतनेत्राातामुवाचेदमहीपति ।।२२।।

पक्षियो ने कहा—हे मुने ! इस प्रकार राजा को नीचा मुख किये घोर चिन्ता युक्त देख कर रानी शैव्या ने ऑसू बहाते हुए कण्ठ से कहा—हे महाराज ! चिन्ता मत कीजिये और वचन दिया है, उसका पालन कीजिये क्योकि असत्य व्यवहार करने वाला व्यक्ति श्मशान के समान त्याज्य है ।। १६ ।। ।। १६ ।। वचन के असत्य होने पर अग्निहोत्र, फल, वेद-पठन और दान-आदि सभी सत्कर्म व्यर्थ हो जाते है, हे महावीर ! विद्वानो का कथन है कि सत्य-पालन का कितना महान् धर्म होता है। वैसा किसी अन्य प्रकार नही होता ।। १८ ।। धर्म शास्त्रो का भी यही मत है कि सत्य वचन मनुष्य को तारने वाला और असत्य नीचे गिराने वाला है ।। २० ।। हे पृथ्वी नाथ ! आपने सात अश्वमेध करके राजसूय यज्ञ किया है। इस समय पर क्या एक छोटी-सी बात के लिये उस सब को नष्ट कर स्वर्ग से वचित होगे ।।२१।। हे

महाराज ! मेरे सन्तान हो चुकी है" इतना कह कर वह रोने लगी। तब राजा उस अश्रुवर्षा करती हुई रानी से कहने लगे ॥ २२ ॥

विमुंचभद्रेसतापमयतिष्ठतिबालक ।
उच्यतावक्तुकामासियद्वात्वगजगामिनि ॥२३॥
राजञ्जातमपत्यमेसतापुत्रफला स्त्रिय ।
समाप्रदायवित्तेनदेहिविप्रायदक्षिणाम् ॥२४॥
एतद्वाक्यमुपश्रुत्ययययौमोहमहीपति ।
प्रतिलभ्यचसञ्ज्ञासविललापातिदुःखित ॥२५॥
महद्दुःखमिदभद्रेयत्वमेवब्रवीषिमाम् ।
कितवस्मितसॅल्लापाममपापस्यविस्मृता ॥२६॥
हाहाकथत्वयाशक्यवक्तुमेतच्छुचिस्मिते ।
दुर्वाच्यमेतद्वचनकर्त्तुंशक्नोम्यहकथम् ॥२७॥
इत्युक्त्वासनश्रेष्ठोधिग्धिगित्यसकृद्ब्रुवन् ।
निपपातमहीपृष्ठेमूर्च्छयाभिपरिप्लुत ॥२८॥

राजा हरिश्चन्द्र ने रानी से कहा—शोक को त्याग कर जो कहने की इच्छा हो कहो। तुम्हारी सन्तान तो यह मौजूद ही है ॥ २३ ॥ रानी बोली —हे महाराज ! मेरे सन्तान हो गई है, इसी उद्देश्य से साधु पुरुषो से पत्नी की आवश्यकता होती है। इससे अब आप मुझे बेचकर ऋषि की दक्षिणा चुका दे ॥ २४ ॥ पक्षियो ने कहा—राजा हरिश्चन्द्र अपनी भार्या का ऐसा वचन सुनकर शोक से मूर्च्छित-से हो गये। फिर चैतन्य होकर दुःख प्रकट करते हुए कहने लगे कि हे प्रिये जो कुछ कहा वह अत्यन्त कष्ट दायक है। यह पापी हरिश्चन्द्र क्या स्मितपूर्वक भाषण करना भूल गया ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ नही तो तुम्हारे मुख से ऐसी अशुभ बात क्यो निकलती और मै भी ऐसे वचन सुनकर किस प्रकार सहन करता ॥ २७ ॥ राजा हरिश्चन्द्र इस प्रकार कह कर अपने को धिक्कारते हुये पृथ्वी पर गिरकर बेसुध हो गये ॥ २८ ॥

शयानभुवितदृष्ट्वाहरिश्चन्द्र महीपतिम् ।
उवाचेदसकरुणराजपत्नीसुदुःखिता ॥२९॥
हामहाराजकस्येदमपध्यानमुपस्थितम् ।

यत्त्वनिपतितोभूमौराङ्कवास्तरणोचित ॥३०॥
येनकोटचग्रशोवित्तं विप्राणामपवर्जितम् ।
सएषपृथिवीनाथोभूमौस्वपितिमेपति ॥३१॥
हाकष्ट कितवानेनकृतदेवमहीक्षिता ।
यदिद्रोपेद्रतुल्योऽयनीत पापामिमादशाम् ॥३२॥
इत्युक्त्वासापिसुश्रोणीमूर्च्छितानिपपातह ।
भर्तृ दु खमहाभारेणासह्येननिपीडिता ॥३३॥
तौतथापतितौभूमावनाथौपितरौशिशु ।
दृष्ट्वात्यतक्षुधाविष्ट प्राहवाक्यसुदु खित ॥३४॥
तातातातवदस्वान्नमम्बाम्बभोजनदद ।
क्षुन्मेबलवतीजाताजिह्वाग्रशुष्यतेतथा ॥३५॥

महाराज हरिश्चन्द्र को इस प्रकार पृथ्वी पर लौटते देख महारानी शैव्या अत्यन्त दु खी हुई और करुण स्वर से कहने लगी कि आज कैसे कष्ट का दृश्य देख रही हूँ कि जो महाराज मृग चर्म की कोमल शैय्या पर शयन करते थे वे आज इस प्रकार कठोर भूमि पर पडे है ॥२९—३०॥ जिन्होने करोडो गौऐ ब्राह्मणो को दान दी वही पृथ्वीनाथ हरिश्चन्द्र भूमि पर पडे है ॥३१॥ हा दैव ! इन्होने कौन सा ऐसा अपराध किया है, जिससे एक ऐसे उपेन्द्र की समता वाले पुरुष की पापियो की-सी दुर्दशा हो रही है ॥३२॥ इस प्रकार महारानी शैव्या शोक सन्तप्त होती हुई अचेत होकर मूर्च्छित हो गई। जब राजपुत्र ने माता और पिता को इस प्रकार बेसुध पडे देखा और उसे भूख भी लगी तो रोकर कहने लगा—हे तात ! हे माता ! मुझको बडी भूख लगी है, भोजन दो। मेरी जीभ सूख रही है ॥३३—३४—३५॥

एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तोविश्वामित्रोमहातपा ।
कालकल्पइवक्रुद्धोधनसमार्गितु तदा ।
दृष्ट्वातु हरिश्च द्र पतितोभुविमूर्च्छित ॥३६॥
सवारिणासमभ्युक्ष्य राजानमिदमब्रवीत् ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठराजेद्रतादादस्वेष्टदक्षिणाम् ॥३७॥
ऋणधारयतोदुःखमहन्यहनिवर्द्धते ।

आप्यायमान सतदाहिमशीतेनवारिणा ॥३८॥
अवाप्यचेतनाराजाविश्वामित्रमवेक्ष्यच ।
पुनर्मोहसमापेदेसचक्रोधययौमुनि ॥३६॥
ससमाश्वास्यराजानवाक्यमाहद्विजोत्तम ।
दीयतादक्षिणासामेयदिधर्ममवेक्षसे ॥४०॥
सत्येनार्क प्रतपतिसत्येतिष्ठतिमेदिनी ।
सत्यचोक्त परोधर्म स्वर्ग सत्येप्रतिष्ठित ॥४१॥
अश्वमेधसहस्र चसत्यचतुलयाधृतम् ।
अश्वमेधसहस्राद्धिसत्यमेर्वविशिष्यते ॥४२॥

पक्षियो ने कहा—कि उसी महात्मा विश्वामित्रजी अत्यन्त क्रोध प्रकट करते हुए वहाँ आ पहुँचे। उन्होने जब राजा को मूर्च्छित अवस्था मे पृथ्वी पर पडे देखा तो जल के छीटे देकर उसे चैतन्य किया और कहा.. राजन्! उठ कर मेरी दक्षिणा दो, क्योकि जब तुम पर यह ऋण बना रहेगा तब तक दुःख इसी प्रकार बढता रहेगा। शीतल जल के स्पर्श से राजा हरिश्चन्द्र चैतन्य हुए, पर सामने ही विश्वामित्र को खडा देख कर फिर मूर्च्छित हो गये। तब विश्वामित्रजी ने कहा—हे राजा यदि तुम धर्म की रक्षा करना चाहते हो तो मेरी दक्षिणा देने मे बिलम्ब न करो ॥३६ से ४०॥ सूर्य सत्य के बल से ही तपते है, पृथ्वी सत्य की महिमा से ही टिकी है, सत्य ही सब से बडा धर्म है और स्वर्ग भी एक मात्र सत्य के ऊपर ही स्थित है ॥४१॥ अगर एक तराजू के पलडे पर सत्य को रखा जाय और दूसरे पर हजार अश्वमेध यज्ञो के फल को तो सत्य का पलडा ही भारी रहेगा ॥४२॥

अथवाकिममैतेनसाम्नाप्रोक्तेनकारणम् ।
अनार्येपापसकल्पेक्रूरेचानृतवादिनि ॥४३॥
त्वयिराज्ञिप्रभवतिसद्भाव श्रूयतामयम् ।
अद्यमेदक्षिणाराजन्नदास्यतिभवान्यदि ॥४४॥
अस्ताचलप्रयातेऽर्केशप्स्यामित्वाततोध्रुवम् ।
इत्युक्त्वासययौविप्रोराजाचासीद्भयातुर ॥४५॥
कान्दिग्भूतोऽधनोनि स्वोनृशसधनिनार्दित. ।

भार्यास्यिभूय प्राहेदक्रियतावचनमम ।।४६।।
माशापानलनिर्दग्ध पचत्वमुपयास्यसि ।
सतयाचोद्यमानस्तुराजापत्न्यापुन पुन ।।४७।।
प्राहभद्रेकरोम्येषविक्रयतवनिर्घृण ।
नृशसैरपियत्कर्तु नशक्यतत्करोम्यहम् ।।४८।।
यदिमेशक्यतेवाणीवक्तुमीदृक्सुदुर्वच ।
एवमुक्त्वाततोभार्यागत्वानगरमातुर ।
बाष्पाहितकण्ठाक्षस्ततोवचनमब्रवीत् ।।४९।।

पर जाने दो, मुझे अनार्य, पापी, क्रूर, मिथ्यावादी राजा को समझाने बुझाने की आवश्यकता ही क्या है ।।४३।। मै स्पष्ट रूप से कहे देता हुँ कि यदि तुम आज मेरी दक्षिणा नही दोगे, तो सूर्य के अस्ताचल गामी होते ही मै निश्चय रूप से शाप दूँगा ? विश्वामित्र ऐसा कह कर वहाँ से चले गये, और ब्रह्म शाप की आशका से अत्यन्त घवराने लगे कि अब दक्षिणा कहाँ से और. कैसे चुकाऊँ । मै तो इस ममय पूर्णत, निर्धन हूँ, और धन वाले बडे कठोर है । अब किम प्रकार करने से ठीक होगा ? हम कहाँ जाये ? यह देख कर रानी शैव्या ने कहा कि महाराज मैने आपसे जो कहा है वही कीजिये ।।४४–४५–४६।। जव यह उपाय मौजूद है तो ऋषि के शाप मे ग्रस्त होकर नाश को प्राप्त होने की क्या आवश्यकता है । इस प्रकार पत्नी के बार-बार आग्रह करने पर हरिश्चन्द्र ने कहा—अच्छा ! मै इस घृणित कार्य को भी करूँगा, यद्यपि यह मेरी सामर्थ्य के बाहर है तो भी यही करूँगा ।।४७–४८।। देखता हूँ कि मै ऐसे कठोर वचन कह भी मकता हूँ या नही ? तब नगर मे गये और आँसुओ को जवर्दस्ती रोक कर कहने लगे ।।४९।।

भोभोनागरिका सर्वेश्रृणुध्ववचनमम ।
किमापृच्छथकस्त्वभोनृशसोऽहममानुषं ।।५०।।
राक्षसोवातिकठिनस्तत पापतरोऽपिवा ।
विक्रेतु दयिताप्राप्तोयोनप्राणास्त्यजाम्यहम् ।।५१।।
यदिव कस्यचित्कार्यदास्याप्राणेष्टयामम ।
सब्रवीतुत्वरायुक्तोयावत्सन्धारयाम्यहम् ।।५२।।

अथवृद्धोद्विजःकश्चिदागत्याहनराधिपम् ।
समर्पयस्वमेदासीमहंक्रेताधनप्रद ॥५३॥
अस्तिमेवित्तमस्तोकसुकुमारीचमेप्रिया ।
गृहकर्मनशक्नोमिकर्त्तुमस्मात्प्रयच्छमे ॥५४॥
कर्मण्यतावयोरूपशीलानातवयोषितः ।
अनुरूपामिदवित्त गृहाणार्पयमेऽबलाम् ॥५५॥
एवमुक्तस्यविप्रेणहरिश्चन्द्रस्यभूपते. ।
व्यदीर्य्यतमनोदुःखान्नचैनकिंचिदब्रवीत् ॥५६॥

राजा कहने लगे—यदि आप जानना चाहते है कि मै कौन हूँ, तो मै बतलाऊँगा कि मै एक नृशस अत्याचारी हूँ, मनुष्य नही हूँ। मै राक्षस हूँ या उससे भी अधिक निर्दयी हूँ, पापात्मा हूँ। क्योकि प्राणप्यारी पत्नी को बेचने के लिए तैयार होने पर भी मेरा प्राण नही निकला ॥५०–५१॥ अस्तु जब तक सध्या न हो, और मेरा प्राण देह के भीतर रहे तब तक इस मेरी प्राणो से प्यारी दासी को यदि खरीदना चाहो तो कहो ॥५२॥ पक्षी बोले. उसी अवसर पर एक बूढ़े ब्राह्मण ने वहाँ आकर कहा—मुझे दासी की आवश्यकता है, मै उसका मूल्य देने को तैयार हूँ। मेरे पास पर्याप्त धन-सम्पत्ति है और मेरी स्त्री बडी कोमल है जिससे घर का काम नही कर सकती, अतएव यह दासी मुझे दे दो ॥५३–५४॥ तुम इस अपनी स्त्री की कार्य दक्षता, अवस्था, रूप, और स्वभाव के अनुपम यह अर्थ राशि लेकर इसे मुझे दो ॥५५॥ ब्राह्मण के वचनो को सुन कर शोक से राजा का हृदय फटने लगा और उसने कुछ उत्तर नही दिया जा सका ॥५६॥

तत सविप्रोनृपतेर्वल्कलान्तेदृढधनम् ।
बद्धाकेशेष्वथादायनृपपत्नीमकर्षयत् ॥५७॥
रुरोदरोहितास्योऽपिदृष्ट्वाकृष्टातुमातरम् ।
हस्तेनवस्त्रमाकर्षन्काकपक्षधर शिशु ॥५८॥
मुंचार्यमुंचतावन्मायावत्पश्याम्यहशिशुम् ।
दुर्लभदर्शनतातपुनरस्यभविष्यति ॥५९॥
पश्येहवत्समामेवमातरदास्यतागताम् ।

मामाम्प्राक्षीराजपुत्रअस्पृश्याहतावाधुना ॥६०॥
ततःसबालःसहसादृष्ट्वाकृष्टातुमातरम् ।
समभ्यधावदम्बेतिरुदन्नस्त्राविलेक्षरण ॥६१॥
तमागतद्विज क्रोधाद्वालमभ्याहनत्पदा ।
वदस्तथापिसोऽम्बेतिनैवामु चतमातरम् ॥६२॥
प्रसादकुरुमेनाथक्रीणीष्वेमचबालकम् ।
क्रीतापिनाहभवतोविनैनकार्य्यसाधिका ॥६३॥
इत्थममाल्पभाग्याया प्रसादसुमुखोभव ।
मासयोजयबालेनवत्सेनेवपयस्विनीम् ॥६४॥

तब उस ब्राह्मण ने दासी के मूल्य स्वरूप वह धनराशि राजा के वस्त्र मे बाँध दी और रानी को वे पकड कर ले जाने लगा ॥५७॥ यह देख कर उसका पुत्र रोहिताश्व उसका आँचल खीचता रोने लगा ॥५८॥ रानी ने ब्राह्मण से कहा—हे आर्य ! मुझे जरा देर के लिए अपना पुत्र को प्यार कर लेने दो, फिर मैं इसे कहाँ देख सकूँगी ? हे पुत्र ! अब मै तुम्हारी माता दासी हुई हूँ, इससे अब मुझे मत छूना, मै अब इस योग्य नही रही ॥५९–६०॥ इसके पश्चात् बालक माता को खिचती हुई जाती देखकर रोते रोते "मा-मा" कहता हुआ उसके पीछे दौडा ॥६१॥ वृद्ध ब्राह्मण ने गुस्सा होकर उसे जोर से एक लात मारी पर वह बालक "मा-मा कह कर दौडता ही रहा और उसने किसी प्रकार माता को न छोडा ॥६२॥ रानी ने ब्राह्मण से कहा—हे स्वामी ! कृपा करके इस बालक को भी खरीद लीजिए, क्योकि यद्यपि मै बिक चुकी, पर इस बालक के बिना मुझसे काम नही किया जायगा। इस लिए आप मुझ अभागिनी पर दया कीजिये कि जिस प्रकार दूध देने वाली गाय को बछडे के सग ही लाया जाता है उसी प्रकार इस बालक को भी मेरे साथ ही रहने दीजिये ॥६३–६४॥

गृह्यतावित्तमेतत्त दीयताबालकोमम ।
स्त्रीपुंसोर्धर्मशास्त्रज्ञै कृतमेवहिवेतनम् ।
शतसहस्त्र लक्षचकोटिमूल्यतथापरै ॥६५॥
तथैवतस्यतद्वित्त बद्धोत्तरपटेतत ।

प्रगृह्यबालकमाव्रासहैकस्थमबन्धयत् ।।६६।।
नीयमानौनृतौदृष्ट्वाभार्य्यापुत्रौसपार्थिवः ।
विललापसुदुःखार्तोनि श्वस्योष्णपुन पुन ।।६७।।
यानवायुर्नचादित्योनेन्दुर्नचपृथग्जन ।
दृष्टवत पुरापत्नीसेयदासीत्वमागता ।।६८।।
सूर्यवशप्रसूतोऽयसुकुमारकरागुलि ।
सप्राप्तोविक्रयबालोधिड् मामस्तुसुदुर्मतिम् ।।६९।।
हाप्रियेहाशिशोवत्समममानार्यस्यदुर्नयै ।
दैवाधीनादशाप्राप्तोनमृतोऽस्मितथापिधिक् ।।७०।।

ब्राह्मण ने कहा—अच्छा, बालक को भी मुझे दो और उसके बदले मे यह धन ग्रहण करो । धर्म शास्त्रो मे स्त्री और पुरुष दोनो का ही मूल्य शत, सहस्र, लक्ष व करोड मुद्रा बतलाया है ।।६५। पक्षियो ने कहा—हे जैमिनि ! यह कह कर उस ब्राह्मण ने वह धन भी राजा के वस्त्रो मे बाँध दिया और रानी तथा उसके पुत्र दोनो को बाँध कर ले गया ।।६६।। राजा हरिश्चन्द्र पत्नी और पुत्र इस प्रकार विलग होता हुआ देख कर लम्बी साँस लेकर अत्यन्त शोक करने लगे कि जिसको अभी वायु, सूर्य, चन्द्र व बाहरी व्यक्ति भी अभी तक नही देख पाते थे उसको आज इस प्रकार दासी बनना पडा ।।६७–६८।। जिस छोटे बालक ने सूर्य वश मे जन्म लिया और जो अभी अत्यन्त कोमल है, उसको भी बिकना पडा, यह मेरी दुर्बुद्धि है जिसके लिए मै निन्दा का पात्र हूँ ।।६९।। मेरे अन्याय युक्त आचरण के कारण ही इन निर्दोषो की ऐसी गति हुई, पर खेद है अब भी मेरे प्राण नही निकलते ।।७०।।

एवविलपतोराज्ञ सविप्रोऽन्तरधीयत ।
वृक्षगेहादिभिस्तु गैस्तावादायत्वरान्वित ।।७१।।
विश्वामित्रस्तत प्राप्तोनृपवित्तमयाचत ।
तस्मैसमर्पयामासहरिश्चन्द्रोऽपितद्धनम् ।।७२।।
तद्वित्तास्तोकमालोक्यदारविक्रयसभवम् ।
शोकाभिभूतराजानकुपित कौशिकोऽब्रवीत् ।।७३।।
क्षत्रबधोममेमात्वसदृशीयज्ञदक्षिणाम् ।

मन्यसेयदितत्क्षिप्रपश्यत्वमेवलपरम् ॥७४॥
तपसोऽत्रसुतप्तस्यब्राह्मण्यस्यामलस्यच ।
मत्प्रभावस्यचोग्रस्यशुद्धस्याध्ययनस्यच ॥७५॥
अन्यादास्यामिभगवन्काल कश्चित्प्रतीक्ष्यताम् ।
अनृतनास्तिविक्रीतापत्नीपुत्रश्चबालक ॥७६॥
चतुर्भाग स्थितोयोऽयदिवसस्यनराधिप ।
एपएवप्रतीक्ष्योमेवक्तव्यनोत्तरत्वया ॥७७॥

पक्षियो ने फिर कहा—राजा हरिश्चन्द्र तो इस प्रकार विलाप करते रहे और उधर वह ब्राह्मण रानी और कुमार को वृक्षो और महलो की ओट मे चला गया ॥७१॥ उसी समय विश्वामित्र मुनि ने आकर राजा से दक्षिणा का धन देने को कहा तो जितनी मुद्राऐ उनके पास थी वे उन्होने अर्पित कर दी। विश्वामित्र उनने धन को बहुत थोडा देख कर बडे क्रोध से कहने लगे कि हे नीच, क्या मेरे यज्ञ कराने की उपयुक्त दक्षिणा यही है ? यदि तू ऐसा विचारता है तो मै तुझे अपनी तपस्या की शक्ति दिखलाता हूँ। तुझे मालूम हो जायगा कि मेरे ब्रह्मतेज और अध्ययन का कितना प्रभाव है ॥७२ से ७५॥ राजा ने विनय पूर्वक कहा—महर्षे ! दक्षिणा के लिए मैने पत्नी और पुत्र को भी बेच दिया और उसमे जो धन मिला वह यही है। अब आप थोडी देर ठहरे तो मै शेष दक्षिणा भी देने की व्यवस्था करता हूँ। विश्वामित्र ने कहा कि अब दिन का केवल चौथा भाग शेष है, इतनी ही देर मै प्रतिक्षा करूँगा। इसके पश्चात् मै तुम्हारी कोई बात नही सुनूँगा ॥७६–७७॥

तमेवमुक्त्वाराजेद्रनिष्ठुरनिर्घृणवच ।
तदादायधनतूर्णकुपित कौशिकोययौ ॥७८॥
विश्वामित्रेगतेराजाभयशोकादिमध्यग. ।
स्वविक्रयविनिश्चित्यप्रोवाचोच्चैरधोमुख ॥७९॥
वित्तक्रीतेनयोह्यर्थीमयाप्रेष्येणमानव ।
सब्रवीतुत्वरायुक्तोयावत्तपतिभास्कर ॥८०॥
अथाजगामत्वरितोधर्मश्चाण्डालरूपधृक् ।
दुर्गन्धोविकृतोरूक्ष श्मश्रुलोदन्तुरोघृणी ॥८१॥

कृष्णोलम्बोदर पिङ्गरूक्षाक्ष परुषाक्षर ।
गृहीतपक्षिपु जश्वशवमाल्यैरलकृत ॥८२॥
कपालहस्तोदीर्घास्योभैरवोऽतिवदन्मुहु ।
श्वगणाभिवृतोघोरोयष्टिहस्तोनिराकृति ॥८३॥
अहमर्थीत्वयाशीघ्र कथयस्वात्मवेतनम् ।
स्तोकेनबहुनावापियेनवैलभ्यतेभवान् ॥८४॥

पक्षियो ने कहा—विश्वामित्र मुनि राजा से ऐसे कठोर और कोध युक्त वचन कह कर उस धन को लेकर चले गये। तत्पश्चात् राजा हरिश्चन्द्र भय और शोक से अभिभूत होकर और अन्तिम निश्चय करके उच्च स्वर से कहने लगे कि यदि किसी को सेवक खरीदने की इच्छा हो तो यह मुझे सूर्यास्त से पहले ही क्रय करले ॥७८–७९–८०॥ उस समय चाण्डाल के रूप मे धर्म वहा उपस्थित हुआ। उसके शरीर से बुरी गन्ध आती थी, आकृति बडी रूखी, डाढी, मूँछो से युक्त थी। स्वभाव बडा भयकर, दाँत ऊँचे और रूप घृणा उत्पन्न करने वाला था। काले रङ्ग का, लम्बे पेट का, पिगल, रूखे नेत्र वाला कर्कश था। उसके हाथ मे कितने ही पक्षी थे, गले मे मुण्डो की माला, एक हाथ मे नरकपाल और दूसरे मे लाये हुए मृग शरीर बडा दुबला-पतला, बहुत से कुत्तो को साथ लिये और ऊट-पटाग बकता था ॥८१–८२–८३॥ वह धर्म-राज इस प्रकार चाण्डाल के वेश मे आकर राजा से कहने लगे—मै तुमको खरीदना चाहता हूँ। तुम्हारा जो कुछ कम या अधिक मूल्य हो यह बतलाओ ? ॥८४॥

तताद्दशमथालक्ष्यक्रूरदृष्टिसुनिष्ठुरम् ।
वदन्तमतिदु शीलकस्त्वमित्याहपार्थिव ॥८५॥
चण्डालोऽहमिहरख्यात प्रवीरेतिपुरोत्तमे ।
विख्यातोवध्यवधकोमृतकम्बलहारक. ॥८६॥
नाहचण्डालदासत्वमिच्छेयसुविगर्हितम् ।
वरशापाग्निनादग्धोनचण्डालवशगत. ॥८७॥
तस्यैववदत प्राप्तोविश्वामित्रस्तपोनिधि ।
कोपामर्षविवृत्ताक्ष प्राहचेदनराधिपम् ॥८८॥

चण्डालोऽयमनल्पतेदातु वित्तमुपस्थित ।
कस्मान्नदीयतेमह्यमशेषायज्ञदक्षिणा ।।८९।।
भगवन्सूर्यवशोत्थमात्मानवेद्मिकौशिक ।
कथचण्डालदासत्वगमिष्येवित्तकामुक ।।९०।।
यदिचण्डालवित्त त्वमात्मविक्रयजमम ।
नप्रदास्यसिकालेनशप्स्यामित्वामसशयम् ।।९१।।

पक्षियो ने कहा—बहुत कठोर बोलने वाले, क्रूर दृष्टि और कर्कश व्यवहार वाले उस चाण्डाल को देख कर राजा ने जिज्ञासा की कि तुम कौन हो ? ।।८५।। उसने उत्तर दिया—मै चाण्डाल हूँ और इस महा नगरी मे मेरा निवास स्थान है । मेरा नाम प्रवीर है और पेशा बध करने योग्य पुरुषो को मारने का है । मै मरे हुए पुरुषो का कम्बल (कफन) भी लेता हूँ ।।८६।। राजा ने कहा—चाण्डाल के यहाँ दास कार्य करना तो बहुत ही बुरा है, इस कारण मै इसे स्वीकार नही कर सकता । मेरे ऊपर से पहले ही शाप रूपी कोप पडा हुआ है, पर यह चाण्डाल का दासत्व तो और भी नीच है ।।८७।। पक्षियो ने कहा—राजा ने इतना कहा ही था, तभी विश्वामित्र वहाँ आ गये और कोध पूर्वक लाल नेत्र करके बोले ।।८८।। विश्वामित्र ने कहा—राजन् ! यह चाण्डाल तुम्हे बहुत-सा धन दे रहा है, तो तुम मेरी दक्षिणा क्यो नही देते ? ।।८९।। राजा ने कहा—हे भगवन् ! मै अपने को सूर्यवशी मानता हूँ, इसलिये धन के लोभ से चाण्डाल का दासत्व कैसे स्वीकार करूँ ।।९०।। विश्वामित्र बोले—यदि तुम अपने को इस चाण्डाल के हाथ बेच कर मुझे समय के भीतर धन नही दोगे तो मै तुम्हे अवश्य ही शाप दूँगा ।।९१।।

हरिश्चन्द्रस्ततोराजाचिन्तावस्थितजीवित ।
प्रसीदेतिवदन्पादावृषेर्जग्राहविह्वल ।।९२।।
दासोस्म्यार्त्तोऽस्मिभीतोऽस्मित्वद्भक्तश्चविशेषत ।
कुरुप्रसाद विप्रर्षेकष्टश्चण्डालसङ्कर ।।९३।।
भवेयवित्तशेषेणसर्वकर्मकरोवश ।
तवैवमुनिशार्दूलप्रेष्यश्चित्तानुवर्त्तक ।।९४।।
यदिप्रेष्योममभवाश्चण्डालायततोमया ।

दासभाव मनुप्राप्तोदत्तोवित्तार्बु देनवै ।।८५।।
यद्यसौशक्यतेविप्र कौशिक परितोपितुम् ।
ततोगृहाणमामद्यदासत्वतेकरोम्यहम् ।।८६।।
शतयोजनविस्तीर्णनानाग्रामैरलकृताम् ।
भूमिरक्षामथीकृत्वादास्येहकौशकप्रति ।।८७।।

पक्षियो ने कहा—फिर राजा हरिश्चन्द्र ने व्याकुल मन से 'भगवन् ! प्रसन्न हो ' कहते हुए विश्वामित्र के दोनो चरण पकड लिए ।।९२।। मै आपका दास इस समय अत्यन्त भयभीत एव व्याकुल हूँ, मै आपका ही भक्त हूँ, ब्रह्मर्षे ! कृपा करिये चाण्डाल का दाम होना अत्यन्त ही कष्टदायक होगा ।।९३।। हे प्रभो ! मेरे पास धन नही है, फिर भी मै आपका दास होकर रहूँगा, आप जो आज्ञा देगे वही करूँगा तथा सदा आपके चित्त के अनुसार ही कार्य करूँगा ।।९४।। विश्वामित्र ने कहा—राजन् ! यदि तुम मेरे अधीन होते हो तो मैने तुम्हे इस चाण्डाल को एक अर्बु द मुद्रा मे वेच दिया है, अब तुम इसके ही दास बनो ।।९५।। हरिश्चन्द्र बोले—जिससे यह विश्वामित्रजी सतुष्ट हो, वही करो, मै तुम्हारा दास होकर सेवा कार्य करूँगा ।।९६।। चाण्डाल बोला—सौ योजन विस्तार वाली भूमि, जो अनेको ग्रामो से युक्त है, उसे मै विश्वामित्रजी को दे रहा हूँ ।।९७।।

एवमुक्ते तदातेनश्वपाकोहृष्टमानस ।
विश्वामित्रायतद्द्रव्यदत्त्वाबद्ध्वानरेश्वरम् ।।८८।।
दण्डप्रहारसभ्रान्तमतीवव्याकुलेन्द्रियम् ।
इष्टबन्धुवियोगार्तमनयन्निजपक्कणम् ।।८९।।
हरिश्चन्द्रस्ततोराजावसश्चण्डालपक्कणे ।
प्रातर्मध्याह्नसमयेसायचैतदगायत ।।१००।।
बालादीनमुखीदृष्ट्वाबालदीनमुखपुर ।
मास्मरत्यसुखाविष्टामोचयिष्यतिनौनृप ।।१०१।।
उपात्तवित्तोविप्रायदत्वावित्तमतोऽधिकम् ।
नसामामृगशावाक्षीवेत्तिपापतरकृतम् ।।१०२।।
राज्यनाश सुहृत्यागोभार्यातनयविक्रय. ।

प्राप्ताचण्डालताचेयमहोदु खपरम्परा १०३।।
एवसनिवसन्नित्यसस्मारदयितसुतम् ।
भार्याचात्मसमाविष्टाहृतसर्वस्वआतुर ।।१०४।।
कस्यचित्वथकालस्यमृतचैलापहारक ।
हरिश्चद्रोऽभवद्राजाश्मशानेतद्वशानुग ।।१०५।।

पक्षियो ने कहा—फिर राजा के मुख से 'जो आज्ञा' शब्द निकलते ही चाण्डाल रूपी धर्म ने विश्वामित्र को वह धन देकर राजा को बाँध लिया और अपने निवास को गया ।।९८।। राजा हरिश्चन्द्र भार्या तथा पुत्र के वियोग से पहिले ही अत्यन्त कातर थे, फिर चाण्डाल द्वारा डडे मारने से वे और भी व्याकुल हो गये ।।९९।। फिर चाण्डाल के यहाँ रहते हुए वे प्रात मध्याह्न, सायकाल आदि सब समय इसी प्रकार कहते रहते थे ।।१००।। वह दीन मुख वाली रानी, अपने दीनमुख बालक को देख कर दु खी चित्त से सोचती होगी कि धनोपार्जन कर राजा इस ब्राह्मण को अधिक धन देकर हमे छुडा लेगे, परन्तु उसे यह क्या मालूम होगा कि मै चाण्डाल के दासत्व रूपी पाप की दशा मे गिर गया हूँ ।।१०१–१०२।। राज्य का नाश, सुहृदो से विछोह, पत्नी-पुत्र का विक्रय और अन्त मे चाण्डालत्व की प्राप्ति अहो, दु ख पर दु ख मिल रहा है ।।१०३।। सर्वस्व से भ्रष्ट वह राजा चाण्डाल के घर रहता हुआ दु खित चित्त से प्रिय पुत्र और भार्या का स्मरण करने लगा ।।१०४।। फिर कुछ समय व्यतीत होने पर चाण्डाल के दास राजा हरिश्चन्द्र को श्मशान मे मृतको के वस्त्र लेने के कार्य पर निमुक्त किया गया ।।१०५।।

चण्डालेनानुशिष्टश्चमृतचैलापहारिणा ।
शवागमनमन्विच्छन्निहतिष्ठन्दिवानिशम् ।।१०६।।
इद राज्ञेऽपिदेयञ्चषड्भागन्तुशवप्रति ।
त्रयस्तुममभागा स्युर्द्वौभागौतववेतनम् ।।१०७।।
इतिप्रतिसमादिष्टोजगामशवमन्दिरम् ।
दिशतुदक्षिणायत्रवाराणस्यास्थिततदा ।।१०८।।
श्मशानघोरसनादशिवाशतसमाकुलम् ।
शवमौलिसमाकीर्णदुर्गन्धबहुधूमकम् ।।१०९।।

पिशाचभूतवेतालडाकिनीयक्षसकुलम् ।
महागणमहाभूतरवकोलाहलायुतम् ।।११०।।
गृध्रगोमायुसकीर्णश्ववृन्दपरिवारितम् ।
अस्थिसघातसकीर्णमहादुर्गन्धसकुलम् १११।।
नानामृतसुहृन्नादरौद्रकोलाहलायुतम् ।
हापुत्रमित्रहाबन्धोभ्रातर्वत्सप्रियाद्यमे ।।११२।।
हापतेभगिनिमातर्हामातुलपितामह ।
मातामहपित पौत्रक्वगतोऽस्येहिबान्धव ।।११३।।

मृतको के वस्त्र का अपहरण करने वाले चाण्डाल ने आदेश दिया कि दिनरात श्मशान मे रहकर कौन मुर्दा आता है, यह देखो तथा ।।१०६।। प्रत्येक मृतक से जो धन प्राप्त हो, उसका छटा भाग राजा को दो, तीन भाग मेरे लिए और दो भाग अपने वेतन मे लो ।। १०७ ।। इस प्रकार चाण्डाल की आज्ञा प्राप्त कर राजा हरिश्चन्द्र दक्षिण दिशामे स्थित श्मशान मे गये ।। १०८ ।। उसकी चारो दिशाएँ घोर शब्द से प्रतिध्वनित हो रही थी, गीदडियो से युक्त मृत-मस्तको से व्याप्त तथा दुर्गंधित धूम्र से आच्छन्न ।। १०९ ।। भूत, पिशाच, डकनी, यक्ष, ग्रध्र आदि से युक्त और उनके शब्दो से निनादित था तथा इधर उधर अनेक श्वान घूम रहे थे, वह स्थान अस्थियो और महा दुर्गंध से भर रहा था ।। ११० ।। ।। १११ ।। मृतक सम्बन्धियो के आर्त्तनाद के कारण अत्यन्त कोलाहलमय था, वहाँ हा मित्र, हा पुत्र, हा वत्स, हा बन्धो, हा प्रिये ।। ११२ ।। हा नाथ ! हा बहिन, हा माता, हा मामा, हा पिता, हा पितामह, हा मातामह, हा पौत्र, आज किधर गये, एक बार तो आओ ।। ११३ ।।

इत्येववदतायत्रध्वनि सश्रूयतेमहान् ।
यत्रनेत्रैरनिमिषै शवाभयमिवाविशन् ।।११४।।
निमीलितैश्चनयनैर्बंधुचितापथेस्थित ।
ज्वलन्मासवसामेदश्छमच्छमितसकुलम् ।।११५।।
अर्द्ध दग्धा शवा श्यामाविकसद्दन्तपक्तय ।
हसंत्येवाग्निमध्यस्था कायस्येयदशात्विति ।।११६।।
अग्नेश्चटच्चटाशब्दोवयसामस्थिपक्तिषु ।

बान्धवाक्रन्दशब्दश्चपुल्कसेषुप्रहर्षज ॥११७॥
गायताभूतवेतालपिशाचगणरक्षासाम् ।
श्रूयतेसुमहान्घोर कल्पान्तइवनि स्वन ॥११८॥
महामहिषकारीषगोशकृद्राशिसकुलम् ।
तदुत्थभस्मकूटैश्चवृतसास्थिभिरुन्नतै ॥११९॥

इस भाँति अनेक प्रकार के विलाप युक्त आर्त्तस्वर वहाँ सुनाई पडते थे, तथा मृतक बिना पलक मारे देखते हुए लगते थे, उनसे भी भय प्रतीत होता था ॥ ११४ ॥ कोई नेत्र खोले हुए बन्धु-चिन्तन मे था, माँस, मज्जा, मेद के दग्ध होने पर छन-छन शब्द निकलता था उससे चारो दिशाएँ व्याप्त होती थी ॥ ११५ ॥ कोई शव अग्नि मे पड कर अधजला होने पर काला होगया, दन्तपक्ति निकल गई उसे देखने से लगता 'उस देह की यह दशा ?' जैसे विचार उसकी हँसी उडा रहे हो ॥ ११६ ॥ हड्डियो पर बैठे हुए कौओ के विभिन्न प्रकार के शब्द हो रहे थे, मृतको के बाँधव आर्त्तनाद कर रहे थे, अग्नि के चट चट और चाण्डालो के आनन्द सूचक शब्दो से श्मशान भर रहा था ॥ ११७ ॥ कही भूत, पिशाच, बेताल और राक्षसो के नृत्य-गान के स्वर उठ रहे थे, जिससे वह स्थान भयकर प्रलयात्मक प्रतीत होता था ॥ ११८ ॥ कही कही भस्म के और गोबर के ढेर दिखाई देरहे थे, वे भस्म कण कभी उड उड कर अस्थियो पर गिरती हुई पर्वत जैसी सुन्दरता दिखाती थी ॥ ११९ ॥

नानोपहारस्रग्दीपकाकविक्षेपसकुलम् ।
अनेकशब्दबहुलश्मशाननरकायते ॥१२०॥
सवह्निगर्भैरशिवै शिवारुतैर्निनादितभीषणारावगह्वरम् ।
भयंभयस्याप्युपसजनैर्भृ शश्मशानमाक्रन्दविरावदारुणम् ॥१२१॥
सराजातत्रसप्राप्तोदु खित शोचनोद्यत ।
हाभृत्यामन्त्रिणोविप्रा क्वतद्राज्यविधेगतम् ॥१२२॥
हाशैब्येपुत्रहाबालमात्यक्त्वामन्दभाग्यकम् ।
श्वामित्रस्यदोषेणगता कुत्रापितेमम ॥१२३॥
इत्येवचिन्तयस्तत्रचण्डालोक्त पुन पुन ।

मलिनोरूक्षसवांग केशवान्गन्धवान्ध्वजी ॥१२४॥
लगुडीकालकल्पश्चधावश्चापिततस्तत ।
अस्मिञ्शवइदमूल्यप्राप्त प्राप्स्यामिचाप्युत ॥१२५॥
इदममइद राज्ञेमुख्यच डालकेत्विदम् ।
इतिधावन्दिशोराजाजीवन्योन्यन्तरगत ॥१२६॥

कही काकवली की माला और दीपक पडे थे, कही सियार अमगल सूचक शब्द बोल रहे थे, इस कारण वह स्थान नरक तुल्य प्रतीत हो रहा था ॥ १२० ॥ कही सियारो का भयकर शब्द, मनुष्यो की क्र दन ध्वनि सुनाई पड रही थी, जिससे भय भी अत्यन्त भीत होरहा हो ॥ १२१ ॥ राजा हरिश्चन्द्र उस घोर श्मशान मे जाकर सोचने लगे—वह सेवक गण, मन्त्रिगण, विप्रगण और वह राज्य कहाँ गया ? ॥ १२२ ॥ हा शैव्या ! हा पुत्र ! तुम इस अभागे को त्याग कर कहाँ गये ? देखो ! अकेले विश्वामित्र के क्रोध से ही मेरा सर्वस्व छिन गया ॥ १२३ ॥ इस प्रकार चिन्ता करते हुए भी चाण्डाल के वचन की चिन्ता अधिक थी । उनका मलिन वेश, रूखा शरीर, सब देह मे बाल और दुर्गध तथा ध्वजा ॥ १२४ ॥ और लाठी लेकर यमराज के समान चलना तथा इस पर विचार करना कि इस मृतक का इतना मूल्य हुआ, इसमे इतना मिल गया और इतना अभी लेना है ॥ १२५ ॥ यह मेरा, यह राजा का और यह उसी चाण्डाल का, ऐसी चिन्ता करते हुए इधर-उधर घूमते तब प्रतीत होता कि जीवित ही प्रेत होगये है ॥ १२६ ॥

जीर्णकर्पटसुग्रन्थिकृतकन्थापरिग्रह ।
चिताभस्मरजोलिप्तमुखबाहूदराङ्घ्रिक ॥१२७॥
नानामेदोवसामज्जलिप्तपाण्यगुलि श्वसन् ।
नानाशवौदनकृताहारतृप्तिपरायण ॥१२८॥
तदीयमाल्यसश्लेषकृतमस्तकमण्डन ।
नरात्रौनदिवाशेतेहाहेतिप्रवदन्मुहु ॥१२९॥
एवद्वादशमासास्तुनीता शतसमोपमा ।
सकदाचिन्नृपश्रेष्ठ श्रान्तोबन्धुवियोगवान् ॥१३०॥
निद्राभिभूतोरूक्षाङ्गोनिश्चेष्ट सुप्तएवच ।

तत्रापिशयनीयेसद्दृष्टवानद्भुतमहत् ।।१३१।।
श्मशानाभ्याशयोगेनदेवस्यबलवत्तया ।
अन्यदेहेनदत्वातुसुखेनगुरुदक्षिणाम् ।।१३२।।
तदाद्वादशवर्षाणिदु.खदानात्तु निष्कृति. ।
आत्मानसददर्शाथपुल्कसीगर्भसभवम् ।।१३३।।
तत्रस्थश्चाप्यसौराजासोऽचिन्तयदिदतदा ।
इतोनिष्क्रान्तमात्रोहिदानधर्मकरोम्यहम् ।।१३४।।

फटे हुए वस्त्र मे गाँठ लगाकर कन्था धारण किये हुए तथा मुख, भुजा, उदर और पावो मे चिता-भस्म लगाये हुए ।। १२७ ।। हाथ की अँगुलियो मे मेद, वसा और मज्जा लगी रहती थी और मृत पिण्डो से शेष भात का आहार करके रहते थे ।। १२८ ।। मृतक की उतारी हुई माला को धारण कर 'हा, हा, शब्द कहते हुए, दिन या रात्रि कभी भी नही सोते थे ।। १२९ ।। इस प्रकार श्मशान मे रहते हुए उनका एक वर्ष सौ वर्षो के समान व्यतीत हुआ फिर किसी दिन वे बधु वियोग से श्रान्त होकर ।। १३० ।। रूखे शरीर से निश्चेष्ट सोगए, तब स्वप्न मे उन्हे एक अत्यन्त अद्भुत बात दिखाई पडी ।। १३१ ।। श्मशान के अभ्यास य। दैवेच्छा से उन्होने देखा कि अन्य देह धारण करके गुरु को दक्षिणा देकर ।। १३२ ।। बारह वर्ष दु ख भोग लेने पर मुझे मुक्ति मिलेगी, फिर उन्होने देखा कि मै डोमनी के गर्भ मे स्थित हुँ ।। १३३ ।। उस डोमनी के गर्भ मे पडे हुए ही वे सोचने लगे कि इस गर्भ से निकलते ही दान-धर्म का आचरण करूँगा ।। १३४ ।।

अनन्तरसजातस्तुतदापुल्कसबालक ।
श्मशानमृतसस्कारकरणेषुसदोद्यत ।।१३५।।
प्राप्तेतुसप्तमेवर्षेश्मशानेऽथमृतोद्विज ।
आनीतोबन्धुभिर्दृष्टस्तेनतत्राधनोगुणी ।।१३६।।
मूल्यार्थिनातुतेनापिपरिभूतास्तुब्राह्मणा ।
ऊचुस्तेब्राह्मणास्तत्रविश्वामित्रस्यचेष्टितम् ।।१३७।।
पापिष्ठमशुभकर्मकुरुत्वपापकारक ।
हरिश्चन्द्र.पुराराजाविश्वामित्रेणपुल्कस ।।१३८।।

कृत पुण्यविनाशेनब्राह्मणस्वापनाशनात् ।
यदानक्षमतेतेषातै सशप्तोरुषातदा ।।१३९।।

तभी पुन दिखाई दिया कि उसी गर्भ से उत्पन्न होकर उसी जाति के कर्म मे उद्यत हूँ ।। १३५ ।। जब चाडाल के बालक रूप मे सात वर्ष की आयु हुई तब किसी गुणज्ञ एव अनाथ ब्राह्मण के शव को लोग श्मशान मे लाये ।।३६।। उस समय दाह करने का मूल्य देने मे असमर्थ वे ब्राह्मण उनसे अत्यत तिरस्कृत होते हुए बोले कि विश्वामित्र का कौन सा पापमय कार्य था ? अरे, पापकर्मा ! तू ऐसे ही अशुभ कर्म करता रहता है, पूर्व जन्म मे तू राजा हरिश्चन्द्र था, तुझे विश्वामित्र ने चाण्डाल बना दिया है ।। १३७ ।। १३८ ।। तूने ब्रह्मस्व न देकर पुण्य नष्ट किया, इससे विश्वामित्र के द्वारा तुझे चाण्डाल-योनि मे आना पडा ? जब वे ब्राह्मण शवदाह का मूल्य न देने के कारण दाह न कर सके, तब उन्होने अत्यत क्रोध पूर्वक राजा को शाप दिया ।। १३९ ।।

गच्छत्वनरकघोरमधुनैवनराधम ।
इत्युक्तमात्रेवचनेस्वप्नस्थ सनृपस्तदा ।।१४०।।
अपश्यद्यमदूतान्वैपाशहस्तान्भयावहान् ।
तै सगृहीतमात्माननीयमानतदाबलात् ।।१४१।।
पश्यतिस्मभृशखिन्नोहामात पितरद्यमे ।
एववादीसनरकेतैलद्रोण्यानिपातित. ।।१४२।।
क्रकचै पाटचमानस्तुक्षुरधाराभिरप्यध ।
अन्धेतमसिदु खार्त्त पूयशोणितभोजन ।।१४३।।
सप्तवर्षमृतात्मानपुल्कसत्वेददर्शह ।
दिनदिनतुनरकेदह्यतेपच्यतेऽन्यत ।।१४४।।
खिद्यतेक्षोभ्यतेऽन्यत्नमार्यतेपाटचतेऽन्यत ।
क्षार्यतेदीप्यतेऽन्यत्नशीतवाताहतोऽन्यत ।।१४५।।
एकदिनवर्षशतप्रमाणनरकेऽभवत् ।
तथावर्षशतत्नश्रावितनरकेभटै ।।१४६।।
ततोनिपातितोभूमौविष्ठाशीश्वाव्यजायत ।
वान्ताशीशीतदग्धश्चमासमात्रेमृतोऽपिस. ।।१४७।।

अरे नराधम ! तू अभी घोर नरक को प्राप्त हो, ब्राह्मणो की बात सुन कर स्वप्न देखते हुए उस राजा ने ।। १४० ।। देखाकि भयङ्कर यमदूत अपने हाथो मे पाश लिए हुए चले आते है और बल पूर्वक मेरी आत्मा को बाँध ले चले ।। १४१ ।। तब वे खेद पूर्वक 'हा माता' हा पिता, आज मेरी ऐसी दशा होगई, इस प्रकार विलाप करने लगे, तभी यमदूतो ने उन्हे नरक मे लेजाकर तैल-द्रौणी मे डाल कर ।। १४२ ।। तीक्ष्ण धार वाले आरो से चीर कर अन्धतम नरक मे गिरा कर पीव और रक्त का आहार किया ।। १४३ ।। इस प्रकार वह आत्मा सात वर्ष तक नरक मे पडी हुई दिखाई देने लगी, कभी जलता हूँ, कभी कोल्हू मे पिलता हूँ ।। १४४ ।। कभी खिन्न और कभी क्षुब्ध होता हूँ, कभी मारा जाता, कभी चीरा जाता, कभी खायी मे फैका जाता और कभी शीत वा वायु से आहत होता ।। १४५ ।। उनका एक-एक दिन सौ-सौ वर्ष के समान व्यतीत होरहा था, इस प्रकार दु ख-भोग करते-करते एक दिन नरक रक्षको से सुना कि सौ वर्ष पूरे होगये है ।। १४६ ।। तब उन्हे यमदूतो ने पृथिवी मे गिराया और उन्होने विष्ठा खाने वाले श्वान की योनि मे जन्म लिया और एक दिन भयङ्कर शीत से व्याकुल होकर एक मास मे ही मर गये ।। १४७ ।।

अथापश्यत्खरदेहहस्तिनवानरपशुम् ।
छागबिडालकङ्कचगामविपक्षिणक्रिमिम् ।।१४८।।
मत्स्यकूर्मवराहचश्वाविधकुक्कुटशुकम् ।
शरिकास्थावराश्चैवसर्पमन्याश्चदेहिन ।।१४९।।
दिवसेदिवसेजन्मप्राणिन प्राणिनस्तदा ।
अपश्यद्दु खसन्तप्तोदिनवर्षशततथा ।।१५०।।
एववर्षशतपूर्णगततत्रकुयोनिषु ।
अपश्यच्चकदाचित्सराजातत्स्वकुलोद्भवम् ।।१५१।।
तत्रस्थितस्यतस्यापिराज्यद्यूतेनहारितम् ।
भार्य्याहृताचपुत्रश्चसचैकाकीवनगत ।।१५२।।
तत्रापश्यत्ससिहवैव्यादितास्यभयावहम् ।
बिभक्षयिषुमायातशरभेणसमन्वितम् ।।१५३।।

पुनश्चभक्षित सोऽपिभार्याशोचितुमुद्यत ।
हाशैब्येक्वगतास्यद्यमामिहापास्यदु खितम् ।।१५४।।
अपश्यत्पुनरेवापिभार्यास्वाहतपुत्रकाम् ।
त्रायस्वत्वहरिश्चद्रकिद्य तेनतवप्रभो ।।१५५।।
पुत्रस्तेशोच्यताप्राप्तोभार्य्ययाशैब्ययासह ।
सनापश्यत्पुनरपिधावमान पुन पुन ।।१५६।।

फिर गधे की योनि मे, फिर हाथी, बन्दर, छाग, बिलाव, कौआ, गं मैढा, पक्षी और कृमि ।। १४८ ।। फिर मछली, कछुआ, शूकर, भृग, मुरग तोता, मैना, ऋक्ष, अजगर आदि विभिन्न योनियो मे ।। १४९ ।। तथा अन कुयोनियो मे जन्म लेकर दु ख भोगते हुए सौ वर्ष व्यतीत होगये ।। १५० फिर देखा कि वह पुन अपने ही कुल मे उत्पन्न होकर राजा बने है ।। १५१ वहाँ कभी जुआ खेल कर राच्य, स्त्री और पुत्रादि को हार गये और एकाव वन मे गये ।। १५२ ।। वहाँ देखा कि एक भयानक सिह मुख फैलाये हु उनका भक्षण करने के निमित्त उनकी ओर आरहा है ।। १५३ ।। फिर उस द्वारा खाये जाते हुए 'हा शैव्ये ! इस दु खी हृदय का त्याग कर तुम कह जाती हो' इस प्रकार जैसे ही शोक विह्वल हुए ।। १५४ ।। वैसे ही देखा f रानी शैव्या पुत्र सहित वहाँ आकर 'हा राजन् ! हमारी रक्षा करो, जुअ खेलने से आपका क्या कार्य है ।।१५५ ।। देखिये आपकी पत्नी शैव्या अप पुत्र के सहित किस शोचनीय दशा मे पड गयी है, इस प्रकार विलाप कर रा है, वे बारबार उसे देखने के लिए इधर-उधर जाते है, परन्तु उसे देख नह पाते ।। १५६ ।।

अथापश्यत्पुनरपिस्वर्गस्थ सनराधिप ।
नीयतेमुक्तकेशीसादीनाविवसनाबलात् ।।१५७।।
हाहावाक्यप्रमु चन्तीत्रायस्वेत्यसकृत्स्वना ।
अथापश्यत्पुनस्तत्रधर्मराजस्यशासनात् ।।१५८।।
आक्रन्दन्त्यन्तरिक्षस्थाआगच्छेहनराधिप ।
विश्वामित्रेणविज्ञप्तोयमोराजस्तवार्थत ।।१५९।।
इत्युक्त्वासर्पपाशैस्तुनीयतेबलवद्भिभुः ।

श्राद्धदेवेनकथितविश्वामित्रस्यचेष्टितम् ॥१६०॥
तत्रापितस्यविकृतिर्नाधर्मोत्थाव्यवर्द्धत ।
एता सर्वादशास्तस्यया स्वप्नेमम्प्रदर्शिना ॥१६१॥
सर्वास्तास्तेनसम्भुक्तायावद्वर्षाणिद्वादश ।
अतीतेद्वादशेवर्षेनीयमानोभटैर्बलात् ॥१६२॥

फिर राजा हरिश्चन्द्र ने अपने को स्वर्ग मे वास करते हुए देखा तथा दीन, वस्त्र विहीन और खुले केश वाली रानी शैव्या को किसी पुरुष द्वारा बल पूर्वक हरण करते हुए देखा ॥ १५७ ॥ वह 'महाराज' रक्षा करो, रक्षा करो, कहती हुई बारबार चिल्ला रही है, फिर देखा कि यमराज के शासन मे स्थित यमदूत ॥ १५७ ॥ आकाश मे कह रहे है कि राजन्! विश्वामित्रजी ने यमराज को आपके विषय मे सूचना दी है, अत आप यहाँ आये, ऐसा कह कर घोर शब्द करते है ॥ १५९ ॥ फिर देखा कि इतना कहने के पश्चात् यमदूत मुझे नागपाश मे दृढ़ता से बाँध कर ले चले और यमराज तथा विश्वामित्र के चरित्र को कहते है ॥ १६० ॥ यद्यपि राजा हरिश्चन्द्र विभिन्न प्रकार के यत्रणा भोग रहे थे, फिर भी उनके चित्त मे कोई अधार्मिक विकार नही आया । इसभाँति जो-जो दशा उन्होने स्वप्न मे देखी ॥ १६१ वह सब उन्होने इस बारह वर्ष के समय मे निरन्तर भोगी थी, बारह वर्ष व्यतीत होने पर यमदूतो के द्वारा वे बल पूर्वक ले जाये गये ॥ १६२ ॥

यमसोऽपश्यदाकारादुवाचचनराधिपम् ।
विश्वामित्रस्यकोपोऽयदुर्निवार्य्योमहात्मन ॥१६३॥
पुत्रस्यतेमृत्युमपिप्रदास्यतिसकौशिक ।
गच्छत्वमानुषलोकदु खशेषचभु क्ष्ववै ।
गतस्यतत्रराजेन्द्रश्रेयस्तवभविष्यति ॥१६४॥
व्यतीतेद्वादशेवर्षेदु खस्यान्तेनराधिप ।
अन्तरिक्षाच्चपतितोयमदूतै प्रणोदित ॥१६५॥
पतितोयमलोकाच्चविबुद्धोभयसभ्रमात् ।
अहोकष्टमितिध्यात्वाक्षतेक्षारावसेचनम् ॥१६६॥
स्वप्नेदु खमहद्दृष्ट यस्यान्तोनोपलभ्यते ।

स्वप्नेदृष्टंमयायत्त्तु किन्तुमेद्वादशी समा ॥१६७॥
गतेत्यपृच्छत्तत्रस्थान्पुल्कसास्तुससभ्रमात् ।
नेत्यूचु केचित्तत्रस्थाएवमेवापरेऽब्रुवन् ॥१६८॥

वहाँ उन्होने यमराज का दर्शन किया तब यमराज बोले—राजन् ! यह महात्मा विश्वामित्रजी के क्रोध का दुर्निवार्य फल है ॥ १६३ ॥ वे विश्वामित्रजी आपके पुत्र की भी मृत्यु करायेगे, इमलिए आप मर्त्यलोक मे जाकर शेष दु खो को भोगिये, वहाँ जाने पर तुम्हारा कल्याण होगा ॥ १६४ ॥ वहाँ बारह वर्ष व्यतीत होने पर दु खो का अन्त हो जायगा, यमराज के ऐसा कहने पर यमदूतो ने उन्हे आकाश मे फेक दिया ॥ १६५ ॥ यमलोक से गिरते ही भय और भ्रम से वे महात्मा जाग पडे और सोचने लगे कि घाव मे नमक लगाने के समान अब यह क्या हुआ ? ॥ १६६ ॥ जैसे स्वप्न मे घोर दु ख दिखाई दिये है, वे तो असीमित ही है । मैने स्वप्न मे जो देखा क्या वे बारह वर्ष व्यतीत हो चुके ॥ १६७ ॥ यह कह कर उन्होने अपने पास के चाण्डालो से पूछा तो उनमे से किसी ने कहा कि अभी बारह वर्ष व्यतीत नही हुए और किसी ने कहा बीत भी सकते है ॥ १६८ ॥

श्रुत्वादु खीतदाराजादेवाञ्शरणमीयिवान् ।
स्वस्तिकुर्वन्तुमेदेवा शैव्यायाबालकस्यच ॥१६९॥
नमोधर्मायमहतेनम कृष्णायवेधसे ।
परावरायशुद्धायपुराणायाव्ययायच् ॥१७०॥
नमोबृहस्पतेतुभ्यन्नमस्तेवासवायच ।
एवमुक्त्वासराजातुयुक्त पुल्कसकर्मणि ॥१७१॥
शवानामूल्यकरणेपुनर्नष्टस्मृतिर्यथा ।
मलिनोजटिल कृष्णोलगुडीविह्वलोनृप ॥१७२॥
नैवपुत्रोनभार्य्यातुतस्यवैस्मृतिगोचरे ।
नष्टोत्साहोराज्यनाशाच्छ्मशानेनिवसस्तदा ॥१७३॥
अथाजगामस्वसुतमृतमादायलापिनी ।
भार्यातस्यनरेन्द्रस्यसर्पदष्ट हिबालकम् ॥१७४॥
हावत्सहापुत्रशिशोइत्थवैवदतीमुहु ।

कृशाविवर्णाविमना पांसुध्वस्तशिरोरुहा ॥१७५॥

यह सुन कर राजा हरिश्चन्द्र ने देवताओं की शरण लेते हुए कहा—हे देवगण ! आप मेरी रानी शैव्या और पुत्र का मंगल करें ॥ १६९ ॥ सर्व प्रधान धर्म को नमस्कार है, विधाता रूप कृष्ण को नमस्कार है, सर्वश्रेष्ठ, अव्यय एवं पुराण पुरुष को नमस्कार है ॥ १७० ॥ हे वृहस्पते ! आपको नमस्कार है, हे वासव ! आपको नमस्कार है, ऐसा कह कर राजा हरिश्चन्द्र पुनः चाण्डाल रूप कार्य ॥ १७१ ॥ मृतक का मूल्य निर्धारण करने में लगे और उसी प्रकार मलिनवेष, जटा धारण किये हुए, लकुटिधारी कृष्णवर्ण युक्त स्मृति को भुलाये हुए विह्वल हो उठे ॥ १७२ ॥ उस समय उनकी स्मृति में भार्या या पुत्र कोई भी नहीं आया, क्योंकि राज्य से भ्रष्ट होकर श्मशान में उत्साहहीन रहते थे ॥ १७३ ॥ तभी उनका जो पुत्र सर्पदंश से मृत्यु को प्राप्त होगया था, उसे लेकर उनकी पत्नी रोती हुई श्मशान में आयी ॥ १७४ ॥ वह अत्यन्त कृश देह, दुःखी हृदय वाली, शिर में धूलि-धूसरित थी, वह बारम्बार 'हा पुत्र' पुकारती हुई रुदन कर रही थी ॥ १७५ ॥

हाराजन्नद्यबालत्वंपश्यसीममहीतले ।
रममाणंपुरादृष्टं दष्टंपुष्टाहिनामृतम् ॥१७६॥
तस्याविलापशब्दंमाकर्ण्यसनराधिपः ।
जगामत्वरितोऽनैनिर्भवितामृतकम्बलः ॥१७७॥
सतारोरूयतीभार्यानाभ्यजानात्तुपार्थिवः ।
चिरप्रवाससन्तप्तांपुनर्जातामिवाबलाम् ॥१७८॥
सापितंचारुकेशान्तंपुरादृष्ट्वाजटालकम् ।
नाभ्यजानान्नृपंसुताशुष्कवृक्षोपमंनृपम् ॥१७९॥
सोऽपिकृष्णपटेबालंदृष्ट्वाशीविषपीडितम् ।
नरेन्द्रलक्षणोपेतंचिन्तामापनरेश्वरः ॥१८०॥

रानी कहने लगी—राजन् ! जिस चन्द्रमा के समान बालक को आप खिलाते थे, उसने आज सर्पदंश से प्राण छोड दिया है, उसे एक बार तो देखो ॥ १८० ॥ उस विलाप को सुन कर 'मृतक-वस्त्र प्राप्त होगा' ऐसा विचार करते हुए राजा हरिश्चन्द्र शीघ्रता पूर्वक वहाँ पहुँचे ॥ १७७ ॥ वे प्रवास के

सन्ताप से और पुत्र शोक मे दु खित हुई अबला पत्नी को न पहिचान सके ।। १७८ ।। रानी शैव्या ने भी राजा को मनोहर केश युक्त देखा था और अब वे जटिल तथा शुष्क वृक्ष के समान हो रहे थे, इसलिए वह उन्हे न पहिचान सकी ।। १६६ ।। उस समय सर्प-दश से मृत उस बालक को काले वस्त्र मे लपेटा हुआ, परन्तु राजचिह्नो से युक्त देख कर राजा विचार करने लगे ।। १८० ।।

तस्यास्यचन्द्रबिबाभसुभ्रु रम्यसमुन्नसम् ।
नीला केशा कु चिताश्चसमादीर्घास्तरगिता ।।१८१।।
राजीवनेत्रयुगुलोबिबोष्ठपुटसवृत ।
चतुर्दष्ट्रश्चतु किष्कुर्दीघायोदीर्घबाहुक ।।१८२।।
चतुर्लेख करोमत्स्ययवयुक्चैकपर्वत ।
शिरालुपादोगभीर सूक्ष्मत्वक्त्रिवलीधर ।।१८३।।
अहोकष्टनरेन्द्रस्यकस्याप्येपकुलेशिशु ।
जातोनीत कृतान्तेनकामप्याशादुरात्मना ।।१८४।।
एवदृष्ट्वाहितंबालमातुरुत्सङ्गशायिनम् ।
स्मृतिमभ्यागतोबालोरोहिताश्वोब्जलोचन ।।१८५।।
सोऽप्येतामेवमेवत्सोवयोऽवस्थामुपागत ।
नीतोयदिनघोरेणकृतान्तेनात्मनोवशम् ।।१८६।।
हावत्सकस्यपापस्यअपध्यानादिदमहत् ।
दु खमापतितघोरयस्यान्तोनोपलभ्यते ।।१८७।।
हानाथराजन्भवतामामानाश्वास्युदु खिताम् ।
क्वापिसन्तिष्ठतास्थानेविश्रब्धस्थीयतेकथम् ।।१८८।।
राज्यनाश सुहृत्त्यागोभार्य्यातनयविक्रय ।
हरिश्चन्द्रस्यराजर्पे किविधेनकृतत्वया ।।१८९।।

जिसका चन्द्र के समान मुख, सुन्दर भौ, उच्च नासिका, घुँघराले केश, समान तथा दीर्घ तरग युक्त ।। १८१ ।। पद्म जैसे दोनो ओष्ठ, चार दाढे, सुशोभित मुख और विशाल भुजाएँ ।। १८२ ।। हाथ मे मत्स्य, जौ युक्त तथा पर्वत रेखा, कठ के पीछे की नाडी और पैर गभीर, पतली त्वचा एव उदर,

कठ मे त्रिवली रेखा का दिखायी देना ।। १८३ ।। इमसे इमने किसी राजकुल मे जन्म लिया प्रतीत होता है, अहो, काल ने इसकी क्या दशा करदी है ।। १८४ ।। फिर माता की गोद मे पड़े हुए उम बालक को भले प्रकार देखने पर उन्हे रोहिताश्व की याद आगई ।। १८५ ।। उन्होने सोचा कि यदि दुरात्मा काल के वशीभूत न हुआ हो तो मेरा रोहिताश्व भी इतनी ही अवस्था का होगया होगा ।। १८६ ।। इधर रानी बोली—हा पुत्र ! किस पाप के कारण इम असीम घोर दु ख की प्राप्ति हुई है ।। १८७ ।। हे नाथ ! हे राजन् ! तुम इम सतप्ता को त्याग कर निष्ठुर चित्त से कहाँ किम प्रकार रहते हो ।। १८८ ।। एक राज्ज का छिनना, उम पर भी बधुओ से वियोग, फिर पत्नी-पुत्र का विक्रय, हा विधाता ! क्या तूने राजर्षि हरिश्चन्द्र का सर्वनाश ही नही कर डाला ? ।। १८९ ।।

इतितस्यावच श्रुत्वाराजास्वस्थानतश्च्युत ।
प्रत्यभिज्ञायदयितापुत्रचनिधनगतम् ।।१९०।।
कैषानामगृहेयुक्ताममयोपिद्वराभवेत् ।
बालश्चसमृत क स्यादिनिराजाविचारयन् ।।१९१।।
कष्टशैब्येयमेषाहिसबालोऽयमितीरयन् ।
रुरोददु खसन्तप्तोमूर्च्छामभिजगामच ।।१९२।।
साचतप्रत्यभिज्ञायतामवस्थामुपागतम् ।
मूच्छितानिपपातार्तानिश्चेष्टाधरणीतले ।।१९३।।
चेत सप्राप्यराजेन्द्रोराजपत्नीचतौसमम् ।
विलेपतु सुसन्तप्तौशोकभारातिपीडितौ ।।१९४।।
हावत्ससुकुमारतेस्वक्षिभ्रू नासिकालकम् ।
पश्यतोमेमुखदीनहृदयकिनदीर्यते ।।१९५।।
तातताततिमधुरब्रुवाणस्वयमागतम् ।
उपगुह्यवदिष्येकवत्सवत्सेतिसौहृदात् ।।१९६।।

उसके वचन सुनकर राजा ने अपने पुत्र और स्त्री को पहिचान लिया तथा अपने स्थान से गिर पड़े ।। १९० ।। यह स्त्री कौन है, क्या मेरी पत्नी है ? यह मृत बालक कौन है ? इस प्रकार विचार करते हुए राजा हरिश्चन्द्र

व्याकुल हो उठे ।। १९१ ।। हा, कैसा दुःख है ? यही वह शैव्या है और यही वह बालक है ऐसा कहते हुए अत्यन्त सन्ताप से रोने लगे और मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े ।। १९२ ।। रानी भी राजा को पहिचान कर मूर्च्छा को प्राप्त होकर पृथिवी मे गिर पड़ी ।। १९३ ।। फिर दोनों ही चैतन्य होकर शोक से सतप्त होकर अत्यन्त विलाप करने लगे ।। १९४ ।। राजा ने कहा—हे वत्स ! तुम्हरे सुन्दर नेत्रादि से युक्त सुकोमल वदन को इस प्रकार मलोन देख कर हृदय फट क्यो नही जाता ? ।। १९५ ।। मीठे स्वरों से तात, तात, कहता हुआ अब कौन मेरे पास आयेगा ? अब मैं किसे स्नेह पूर्वक गोदी मे लेकर वत्स, वत्स करूँगा ।। १९६ ।।

कस्यजानुप्रणीतेनपिङ्गेनक्षितिरेणुना ।
ममोत्तरीयमुत्सङ्ग तथाङ्ग मलमेष्यति ।।१९७।।
अङ्गप्रत्यङ्गसम्भूतोमनोहृदयनन्दन ।
मयाकुपित्राहावत्सविक्रीतोयेनवस्तुवत् ।।१९८।।
हृत्वाराज्यमशेषमेसबाधवधनमहत् ।
दैवाहिनानृशसेनदष्टोमेतनयस्तत ।।१९९।।
अहदैवाहिदष्टस्यपुत्रस्याननपङ्कजम् ।
निरीक्षन्नपिघोरेणविषेणान्धीकृतोऽधुना ।।२००।।
एवमुक्त्वातमादायबालकबाष्पगदगद ।
परिष्वज्यचनिश्चेष्टोमूर्च्छयानिपपातह ।।१।।
अयसपुरुषव्याघ्र स्वरेणैवोपलक्ष्यते ।
विद्वज्जनमनश्चन्द्रोहरिश्चन्द्रोनसशय ।।२।।
तथास्यनासिकातुङ्गाअग्रतोऽधोमुखगता ।
दन्ताश्चमुकुलप्रख्या ख्यातकीर्त्तेर्महात्मन ।।३।।
श्मशानमागत कस्मादद्यैपसनरेश्वर ।
अपहायपुत्रशोकसापश्यत्पतितपतिम् ।।४।।

अब किसी की जाँघ मे लगी धूल मे मेरा उत्तरीय और शरीर मैला होगा ? ।। १९७ ।। हा, तुम मेरे अंग-प्रत्यग उत्पन्न होकर मन और हृदय के लिए आनन्द देने वाले थे, तो भी मैने तुम्हे सामान्य वस्तु के समान बेच दिया

॥ १९८ ॥ हा दैव रूपी दुष्ट नाग ने मेरा राज्य, साधन तथा सर्वस्व हरण करके अन्त मे तुम्हे भी डस लिया ॥ १९९ ॥ दैव रूपी सर्प द्वारा इस पुत्र का मुखारविंद देखते हुए मै भी उसके भीषण विष से अधा हो रहा हूँ ॥ २०० ॥ राजा ने गद्गद कंठ से इस प्रकार विलाप करते हुए बालक को अपने गोद मे उठाया और तुरन्त मूर्च्छित होकर गिर गये ॥ २०१ ॥ रानी बोली—स्वर मे प्रतीत होता है कि यही वह पुरुष सिंह महाराज हरिश्चन्द्र है, इसमे संशय नही है ॥ २०२ ॥ इनकी ऊँची नासिका अग्रभाग मे उन्ही के समान अधोमुख हुई है, इनकी दंत-पंक्ति भी उन्ही के समान कली जैसी है ॥ २०३ ॥ परन्तु, वह राजा हरिश्चन्द्र आज श्मशान मे क्यो है, यह कहती हुई रानी मूर्च्छित पडे हुए अपने स्वामी को देखने लगी ॥ २०४ ॥

प्रहृष्टाविस्मितादीनाभर्तृ पुत्राधिपीडिता ।
वीक्षन्तीसाततोऽपश्यद्भर्तृ दण्डजुगुप्सितम् ॥५॥
श्वापाकार्हमनोमोहजगामायतलोचना ।
प्राप्यचेतश्चशनकै सगदगदमभाषत ॥६॥
धिक्त्वादैवात्यकरुणनिर्मर्यादजुगुप्सितम् ।
येनायममरप्रख्योनीतोराजाश्वपाकताम् ॥७॥
राज्यनाशसुहृत्त्यागभार्यातनयविक्रयन् ।
प्रापयित्वापिनोमुक्तश्चण्डालोऽयकृतोनृप ॥ ८ ॥
हाराजञ्ज्ञातसन्तापामित्थमाधरणीतलात् ।
उत्थाप्यनाद्यपर्यङ्कमारोहनिकिमुच्यते ॥ ९ ॥
नाद्यपश्यामितेच्छत्र श्रृङ्गारमथवापुन ।
चामरव्यजनचापिकोऽयविधिविपर्यय ॥ २१० ॥

उस दुर्बलाङ्गी शैव्या ने विस्मय पूर्वक पीडा से इधर-उधर देखते हुए राजा के उस चाण्डाल दंड को देखा ॥ २०५ ॥ मै चाण्डाल की पत्नी हूँ ऐसा कहती हुई रानी मोहित होकर गद्गद कंठ से बोली ॥ २०६ ॥ अरे, मर्यादा-हीन, निन्दित, नृशंस दैव ! तुझे धिक्कार है, जो तूने मेरे देव-तुल्य स्वामी को चाण्डाल बनाया है ॥ २०७ ॥ तू राज्य से भ्रष्ट करके, बंधुओ से वियोग करा कर तथा पत्नी-पुत्र को बिकवा कर भी शान्त न हुआ और अब चाण्डालत्व

प्राप्त करा दिया ।। २०८ ।। हे राजन् ! इस प्रकार संताप ग्रस्त हुई इस पृथ्वी पर पडी हूँ, आज आप वहाँ से उठा कर पलग बैठने को क्यो नही कहते ।। २०९ ।। आज आपका छत्र और शृंगार दिखाई क्यो नही देता ? वह चमर, वह पखा कहाँ है ? दव की कैसी विडम्बना है ? ।। २१० ।।

यस्याग्रे व्रजत पूर्वराजानोभृत्यतागता ।
स्वोत्तरीयैकुर्वन्तनीरजस्कमहीतलम् ।।११।।
सोयकपालसलग्नघटीघटनिरन्तरे ।
मृतनिर्माल्यसूत्रान्तर्गूढकेशेसुदारुणे ।।१२।।
वसानिष्यन्दसंशुष्यमहीपुटकमण्डिते ।
भस्माङ्गारार्द्धदग्धास्थिमज्जासघट्टभीषणे ।।१३।।
गृध्रगोमायुनादार्त्तनष्टक्षुद्रविहगमे ।
चिताधूमायतिरुचानीलीकृतदिगन्तरे ।।१४।।
कुणपास्वादनमुदासप्रहृष्टनिशाचरे ।
चरत्यमेध्येराजेन्द्र श्मशानेदु खपीडित ।।१५।।
एवमुक्त्वासमाश्लिष्यकण्ठराज्ञोनृपात्मजा ।
कष्टशोकशताधाराविललापार्त्तयागिरा ।।१६।।

जिन राजा हरिश्चन्द्र के चलते समय राजा लोग मार्ग की धूल अपने दुपट्टे से झाडते थे, वही आज असह्य दु ख से दु खित हुए इस अपवित्र श्मशान मे एकाकी घूमते है ।। २११ ।। जहाँ मृतको के कपालो के साथ घडे चारो दिशाओ मे पडे है तथा मृतको के निर्माल्य सूत्र मे बहुत-से बाल लगे रहने के कारण जो घोर दिखाई दे रहा है ।। २१२ ।। मृत-देह से टपकती वसा और शुष्क काष्ठ से चारो दिशाऐ भर रही है और जो भस्म, अंगार और अधजली हड्डी और मज्जा के कारण अत्यन्त भयकर हो गया है ।। २१३ ।। गृध्र तथा गोमायु के शब्द से छोटे-छोटे पक्षी जहाँ से भागते है तथा जहाँ चिता के धूम्र से दिशा-विदिशा नील वर्ण की होगई है ।। २१४ ।। और माँस भक्षण से प्रसन्न हुए राक्षस इधर-उधर घूमते है, उसी स्थान मे यह महाराज सतप्त हुए एकाकी फिरते है ।। २१५ ।। इस प्रकार कहती हुई रानी शैव्या राजा के कठ से लिपट कर विलाप करने लगी ।। २१६ ।।

राजन्स्वप्नोऽथतथ्यवायदेतन्मन्यतेभवान्।
तत्कथ्यतामहाभागमनोवैमुह्यतेमम ।।१७।।
यद्ये तदेवंधर्मज्ञानास्तिधर्मेसहायता ।
तथैवविप्रदेवादिपूजनेपालनेभुव ।।१८।।
नास्तिधर्मं कुत सत्यमार्जवचानृशसता ।
यत्रत्वधर्मपरम स्वराज्यादवरोपित ।।१९।।
इतितस्यावच श्रुत्वानिश्वस्योष्णसगदग्दम् ।
कथयामासतन्वग्यायथाप्राप्ताश्वपाकता ।।२२०।।
रुदित्वासापिसुचिरनि श्वस्योष्णचदु खिता ।
स्वपुत्रमरणभीरुर्यथावृत्त न्यवेदयत् ।।२१।।
श्रुत्वाराजातदावाक्य निपपातमहीतले ।
मृतस्यपुत्रस्यतदा जिह्वयालेलिहन्मुखम् ।।२२।।
यमस्यभिक्षायाचाव कृपणौपुत्रग द्धिनौ ।
तस्माच्छीघ्र व्रजावोद्यपुत्रोयत्रप्रियोगत ।।२३।।
प्रियेनरोचयेदीर्घकालक्लेशमुपासितुम् ।
नात्मायत्तश्चतन्वङ्गिपश्यमेमन्दभाग्यताम् ।।२४।।

रानी बोली—हे राजन् ! मै जो देख रही ढे वह स्वप्न है अथवा सत्य ? आपको जो ज्ञात हो वह बताइये, क्योकि मै तो मोहवश विचारशक्ति को खो चुकी हूँ ।। २१७ ।। यदि यह सत्य है तो धर्म सहायक नही हुआ तथा देवताओ ओर ब्राह्मणो का पूजन भी निष्फल हुआ तथा पृथिवी का पालन भी व्यर्थ ही रहा ।। २१८ ।। इसलिए धर्म नही, सत्य नही, सरलता और सदयता भी नही, आपका तो धर्म ही परम बल है, फिर भी राज्य से भ्रष्ट होगये ।। २१९ ।। रानी शैव्या की बात सुन कर उष्ण श्वास छोडते हुए राजा ने चाण्डालत्व प्राप्ति का यथावत वर्णन किया ।। २२० ।। उनका वृत्तान्त सुन कर रानी भी वहुत समय तक रोती रही और उसने मृत्यु का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा ।। २२१ ।। रानी की बात मुन कर राजा पृथिवी पर गिर पडे और अपने मृतक पुत्र के मुख को चाटने लगे ।। २२२ ।। राजा ने कहा—हम उस पुत्रलोभी यमराज से भिक्षा माँगे, हमारा पुत्र जहाँ गया है, हम भी अब वही

चल ॥ २२३ ॥ हे प्रिये ! मै अब अधिक क्लेश नही सहना चाहता, परन्तु मै कैसा मद भाग्य हूँ कि मेरा आत्मा भी मेरे वश मे नही है ॥ २२४ ॥

चण्डालेनाननुज्ञात प्रवेक्ष्येज्वलनयदि ।
चाण्डालदासतायास्येपुनरप्यन्यजन्मनि ॥२५॥
नरकेचपतिष्यामिकीटक कृमिभोजन ।
वैतरण्यामहापूयवसासृक्स्नायुपिच्छिले ॥२६॥
असिपत्रवनेप्राप्यछेदप्राप्यस्यामिदारुणम् ।
तापप्राप्स्यामिवाप्राप्यमहारौरवरौरवौ ॥२७॥
मग्नस्यदु खजलधौपार प्राणवियोजनम् ।
एकोऽपिबालकोयोयमासीद्व शकर सुत ॥२८॥
ममदैवाम्बुवेगेनमग्न सोऽपिबलीयसा ।
कथप्राणान्विमु चामिपरायत्तोऽस्मिदुर्गत ॥२९॥
अथवानार्तिनाक्लिष्टोनर पापमवेक्षते ।
तिर्यक्त्वेनास्तितद्दु खनासिपत्रवनेतथा ॥२३०॥
वैतरण्याकुतस्तादृग्यादृशपुत्रविप्लवे ।
सोऽहसुतशरीरेणदीप्यमानेहुताशने ॥२३१॥
निपतिष्यामितन्वङ्गिक्षन्तव्यकुकृतमम ।
अनुज्ञाताचगच्छत्वविप्रवेश्मशुचिस्मिते ॥२३२॥

यदि मैं चाण्डाल की आज्ञा के बिना अग्नि-प्रवेश करूँगा तो मुझे नुनर्जन्म मे भो चाण्डाल का ही दास होना होगा ॥ २२५ ॥ अथवा कृमि भक्षक कीट होकर नरक मै पडना होगा अथवा वैतरणी, पवि, वसा, रुधिर आदि से युक्त नरक की यत्रणा भोगनी होगी ॥ २२६ ॥ अथवा असिपत्र वन को प्राप्त होकर दारुण छेदन यत्रण भोगूँगा या रौरव अथवा महारौरव मे दु सह ताप मे गडूँगा ॥ २२७ ॥ दु ख रूपी सागर मे डूबने वाले के लिए पार भूमि प्राण त्याग ही है अहो, मेरा जो एक बालक वश की वृद्धि वाला था ॥ २२८ ॥ वह भी दैव रूपी जल मे डूब गया, इस असीम दुर्गति रूप भोग के होते हुए भी पराधीन होने के कारण प्राण भी कैसे त्याग सकता हूँ ॥ २२९ ॥ अथवा आर्त्त पुरुष को पाप का क्या देखना ? जो असह्य दु ख पुत्र मे है, वैसा तिर्यग्

योनि, असिपत्र वन ।। २३० ।। अथवा वैतरणी मे भी नहीं है, इसलिए पुत्रदेह के साथ मैं भी प्रज्वलित अग्नि मे जल जाऊँगा, हे तन्वङ्गी ! मेरे द्वारा हुए अन्याय आचरण को क्षमा करो और मेरी आज्ञा से उसी ब्राह्मण के गृह जाओ ।। २३१ ।। ।। २३२ ।।

ममवाक्यचतन्वङ्गिनिबोधादृतमानसा ।
यदिदत्त यदिहुतगुरवोयदितोपिता ।।२३३।।
परत्रसङ्गमोभूयात्पुत्रेणसहचत्वया ।
इहलोकेकुतस्त्वेतद्भविष्यतिममेङ्गितम् ।।२३४।।
त्वयासहममश्रेयोगमनपुत्रमार्गणे ।
यन्मयाहसताकिञ्चिद्रहस्येवाशुचिस्मिते ।।२३५।।
अश्लीलमुक्त तत्सर्वंक्षन्तव्यममयाचत ।
राजपत्नीतिगर्वेणनावज्ञेय स्तेद्विज ।
सर्वयत्नेनतेतोष्य स्वामीदेववत्वच्छुभे ।।२३६।।
अहमप्यत्रराजर्षेदीप्यमानेहुताशने ।
दु खभारासहाद्यैवसहयास्यामिवैत्वया ।।२३७।।
सहस्वर्गचनरकसहैवावाहिभु क्ष्वहे ।
श्रुत्वाराजातदोवाचएवमस्तुपतिव्रते ।।२३८।।

मेरे कथन को आदर पूर्वक सुनो यदि मैंने दान, हवन अथवा गुरुजनो की सतुष्टि की है ।। २३३ ।। तो मैं इस पुत्र और तुम्हारे साथ पुनर्जन्म मे भेट करूँगा, अब, इसलोक मेरा यह अभिप्राय सिद्ध होना सभव नही है ।। २३४ ।। अथवा तुम्हे भी मेरे साथ पुत्र के मार्ग का अनुसरण करना चाहिये, यदि हास्य के रूप मे इस निर्जन स्थान मे ।। २३५ ।। कुछ अनुचित बात निकल गयी हो तो उसे क्षमा करना, उस ब्राह्मण का राजपत्नी होने के अह-मे निरादर मत करना उसको स्वामी अथवा देवता के समान सतुष्ट रखना ।। २३६ ।। रानी बोली—हे राजर्षि ! मैं भी अब इस दु ख भार को सहन करने मे समर्थ नही हूँ, इसलिए इस प्रज्वलित अग्नि मे आपके साथ ही प्रवेश करूँगी ।। २३७ ।। वहाँ मैं, पुत्र और आप हम तीनो ही एक स्थान मे रह कर स्वर्ग या नरक का भोग करेगे, रानी की बात सुन कर राजा ने कहा—

हे पतिव्रते ! ऐसा ही करना ।। २३८ ।।

तत कृत्वाचितिताराजाआरोप्यतनयस्वकम् ।
भार्ययासहितश्चासौबद्धाजलिपुटस्तदा ।।२३९।।
चिन्तयन्परमात्मानमीशनारायणहरिम् ।
हृत्कोटरगुहासीनवासुदेवसुरेश्वरम् ।
अनादिनिधनब्रह्मकृष्णपीताम्बरशुभम् ।।२४०।।
तस्यचिन्तयमानस्यसर्वे देवा सवासवा ।
धर्मप्रमुखत कृत्वासमाजग्मुस्त्वरान्विता ।।२४१।।
आगत्यसर्वेप्रोचुस्तेभोभोराजञ्शृणुप्रभो ।
अयपितामह साक्षाद्धर्मश्चभगवान्स्वयम् ।।२४२।।
साध्याश्चविश्वेमरुतोलोकपाला सचारणा ।
नागा सिद्धा सगन्धर्वारुद्राश्चैवतथाश्विनौ ।।२४३।।
एतेचान्येचबहवोविश्वामित्रस्तथैवच ।
विश्वत्रयेणयोमित्वकर्त्तुं वैनाशकत्पुरा ।।२४४ ।।
विश्वामित्रस्तुतेमैत्रीमिष्ट चाहर्तुं मिच्छति ।
आरुरोहतत प्राप्तोधर्म शक्रोऽथगाधिज ।।२४५।।

पक्षियो ने कहा—राजा हरिश्चन्द्र ने चिता बना कर अपने पुत्र को उस पर रखा और पत्नी के सहित हाथ जोड कर जैसे ही ।। २३९ ।। परमात्मा, ईस, वासुदेव, सुरेश्वर, परब्रह्म, कृष्ण, पीताम्बरधारी, शुभदायक, हृदय मे वास करने वाले, अनादि निधन, नायायण, हरि का चिन्तन किया ।। २४० ।। वैसे ही धर्म को आगे करके इन्द्रादि थेवगण शीघ्रता पूर्वक वहाँ पहुँचे ।। २४१ ।। वे सभी देवता कहने लगे—हे राजन् ! हय साक्षात् ब्रह्मा है, यह साक्षात् धर्म है ।। २४२ ।। यह साध्यगरा, मरुद्गण, विश्वेदेवा, सब लोकपाल नागगण, सिद्धगण, गधर्वो सहित रुद्रगण तथा दोनो अश्विनीकुमार ।। २४३ ।। अथवा अन्यान्य सभी देवता अपने-अपने वाहन सहित उपस्थित है और जो त्रैलोक्य के साथ मित्रता नही कर सकते वह विश्वामित्र भी आये है ।। २४४ ।। यह सभी आपके साथ मित्रता करने को आये है, धर्म, इन्द्र और विश्वामित्र यह तीनो राजा के पास आये ।। २४५ ।।

मा राजन्साहसकार्षीर्धर्मोऽहत्वामुपागत ।
तितिक्षादमसत्याद्यै स्वगुणै परितोषित ॥२४६॥
हरिश्चन्द्रमहाभागप्राप्त शक्रोस्मितेऽन्तिकम् ।
त्वयासभार्यापुत्रेणजितालोका सनातना ॥२४७॥
आरोहत्रिदिव राजन्भार्यापुत्रसमन्वित ।
सुदुष्प्रापनरैरन्यैर्जितमात्मीयकर्मभि ॥२४८॥
ततोऽमृतमयवर्षमपमृत्युविनाशनम् ।
इन्द्र प्रासृजदाकाशाच्चितास्थानगत प्रभु ॥२४९॥
पुष्पवर्षचसुमहद्दे वदुन्दुभिनि स्वनम् ।
ततस्ततोवर्तमानेसमाजेदेवसकुले ॥२५०॥
समुत्तस्थौतत पुत्रोराज्ञस्तस्यमहात्मन ।
सुकुमारतनु सुस्थ प्रसन्नेन्द्रियमानस ॥२५१॥
ततोराजाहरिश्चन्द्र परिष्वज्यसुतक्षणात् ।
सभार्य्य सुश्रियायुक्तोदिव्यमाल्याम्बरान्वित ॥२५२॥

धर्म बोला—राजन् ! अब इस साहसिक कार्य से निवृत्त होइये, मै धर्म हूँ, मुझे आपने तितिक्षा, दम, सत्य इत्यादि गुणो से सन्तुष्ट किया है इसलिए स्वय यहाँ उपस्थित हूँ ॥ २४६ ॥ इन्द्र बोले—हे महाभाग ! मै इन्द्र हूँ आपने पत्नी पुत्र के सहित सभी सनातन लोको को जीता है ॥ २४७ ॥ इसलिए आप अन्य मनुष्यो को दुर्लभ स्वर्ग मे पत्नी और पुत्र के सहित चलो ॥ २४८ ॥ पक्षियो ने कहा—इसके पश्चत् इन्द्र चिता स्थान मे गये और वहाँ उन्होने अपमृत्यु का क्षय करने वाले अमृत की वर्षा की ॥ २४९ ॥ तथा उस सभा मे देवताओ ने पुष्प वृष्टि की और दुदुभी बजने लगी ॥ २५० ॥ फिर उस महात्मा राजा का कोमल अग वाला पुत्र रोहिताश्व भी स्वस्थ होकर प्रसन्न मन से उठ बैठा ॥ २५१ ॥ उस समय राजा ने क्षणभर को पुत्र का आलिगन किया तथा दिव्य वस्त्र और माला धारण कर पत्नी सहित सुशोभित हुए ॥ २५२ ॥

स्वस्थ सम्पूर्णहृदयोमुदापरमयायुत ।
बभूवतत्क्षणादिन्द्रोभूयश्चैनमभाषत ॥२५३॥

सभार्यस्त्वसपुत्रश्चप्राप्स्यसेसद्गतिपराम् ।
समारोहमहाभागनिजानाकर्मणाफलै १२५४।।
देवराजाननुज्ञात स्वामिनाश्वपचेनवै ।
अगत्वानिष्कृतितस्यनारोक्ष्येऽहसुरालयम् ।।२५५।।
तवैनशाविनक्लेशमवगम्यात्ममायया ।
आत्माश्वपाकतानीतोदर्शिततच्चचापलम् ।।२५६।।
प्राथ्र्यतेयत्परस्थानसमस्तैर्मनुजैर्भुवि ।
तदारोहहरिश्चन्द्रस्थानपुण्यकृतानृणाम् ।।२५७।।
देवराजनमस्तुभ्यवाक्यचैतन्निबोधमे ।
प्रसादसुमुखयस्त्वाब्रवीमिप्रश्रयान्वित ।।२५८।।
मच्छोकमग्नमनस कोसलानगरेजना ।
तिष्ठन्तितानपोह्याद्यकथयास्याम्यहदिवम् ।।२५९।।

तथा पहले प्रकार स्वस्थ और आनदित हुए, तब इन्द्र ने उससे कहा ।। २५३ ।। हे महाभाग ! आप पत्नी पुत्र सहित परम सद्गति पायेगे इसलिए अपने कर्मफल के द्वारा स्वर्ग मे निवास कीजिए ।। २५४ ।। हरिश्चन्द्र ने कहा—मैं अपने स्वामी चाण्डाल की अनुमति के बिना स्वर्ग मे नही जा सकता ।। २५५ ।। धर्म ने कहा—राजन् ! तुम्हारे भावी क्लेश को जानकर मैने ही चाण्डाल का रूप धारण किया था ।। २५६ ।। इन्द्र कहा—जिस परम स्थान मे पहुँचने के लिए पृथिवी के सब मनुष्य प्रार्थना करते है, तुम उस स्थान को गमन करो ।। २५७ ।। हरिश्चन्द्र ने कहा—हे सुरपते ! आपको नमस्कार है, मै आपसे विनम्र निवेदन करता हूँ, उसे सुनिये ।। २५८ ।। नगर के सभी मनुष्य मेरे शोक मे पडे है, मै उन्हे छोडकर स्वर्ग मे कैसे जाऊँ ।। २५९ ।।

ब्रह्महत्यागुरोर्घातोगोवध स्त्रीवधस्तथा ।
तुल्यमेभिर्महापापभक्तत्यागेऽप्युदाहृतम् ।।२६०।।
भजन्तभक्तमत्याज्यमदुष्ट त्यजत सुखम् ।
नेहनामुत्रपश्यामितस्माच्छक्रदिवव्रज ।।२६१।।
यदितेसहिता स्वर्गमयायान्तिसुरेश्वर ।

ततोऽहमपियास्यामिनरकवापितै सह ।।२६२।।
बहूनिपुण्यपापानितेपाभिन्नानिवैपृथक् ।
कथसघातभोग्यत्वभूय स्वर्गमवाप्स्यसि ।।२६३।।
शक्रभु क्तेनृपोराज्यप्रभावेणकुटुम्बिनाम् ।
यजतेचमहायज्ञै कर्मपौर्त्तकरोतिच ।।२६४।।
तच्चतेपाप्रभावेणमयासर्वमनु_ितम् ।
उपकर्तृ न्नसन्त्यक्ष्येतानहस्वर्गलिप्सया ।।२६५।।
तस्माद्यन्ममदेवेशकिचिदस्तिमुचेष्टितम् ।
दत्तमिष्टमथोजप्तसामान्यतैस्तदस्तुन ।।२६६।।
वहुकालोपभोग्यहिफलयन्ममकर्मण ।
तदस्तुदिनमप्येकतै ममत्वत्प्रमादत ।।२६७।।

ब्रह्महत्या, गुरुहत्या, गोहत्या अथवा स्त्री हत्या का जो पाप होता है, वही पाप भक्त का त्याग करने मे है ।। २६० ।। अपने भक्तो का त्याग करने पर लोक-परलोक मे कोई सुख नही है, अत आप स्वर्ग को गमन करे ।। २६१ ।। हे देवेश्वर ! मेरे साथ वह भी स्वर्ग मे जाय तो मै भी वहाँ जाऊंगा, अन्यथा उनके साथ नरक मे ही निवास करूँगा ।। २६२ ।। इन्द्र बोले—उन प्रजाजनो के द्वारा विभिन्न प्रकार के पाप-पुण्य हुए है, तो वे आपके साथ स्वर्ग मे कैसे जा सकते है ।। २६३ ।। हरिश्चन्द्र ने कहा—हे सुरेश्वर ! कुटुम्बियो के प्रभाव से ही राजा राज्य भोगता और बावडी, कुए आदि बनाता है ।। २६४ ।। मैने भी जो धर्म कार्य किये है, वह उनके सहयोग से किये है, इसलिए सामान्य स्वर्ग के लोभ मे उन उपकार करने वालो का त्याग नही करूँगा ।। २६५ ।। इसलिए मैने जो कुछ भी जप, दान, पुण्य किया है, वह उनके सहित सब मे समान हो ।। २६५ ।। मेरे पुण्य फल का जो भोग बहुत समय तक भोगने योग्य हो, वह उनके साथ चाहे एक दिन को ही भोग सकूँ, ऐसा कीजिये ।। २६७ ।।

एवभविष्यतीत्युक्त्वाशक्रस्त्रिभुवनेश्वर ।
प्रसन्नचेताधर्मश्चविश्वामित्रश्चगाधिज ।।२६८।।
गत्वाशुनगरसर्वेचातुर्वर्ण्यसमायुतम् ।

हरिश्चन्द्रस्यनिकटेप्रोवाचविबुधाधिप ।।२६६।।
आगच्छतुजना शीघ्र स्वर्गलोकसुदुर्लभम् ।
धर्मप्रसादात्सप्राप्तसर्वेर्युष्माभिरेवतु ।।२७०।।
विमानकोटिसम्बद्ध स्वर्गलोकान्महीतलम् ।
गत्वायोध्याजनप्राहदिवमारुह्यतामिति ।।२७१।।
तदेन्द्रस्यवच श्रुत्वाप्रीत्यातस्यचभूपते ।
आनीयरोहिताश्व चविश्वामित्रोमहातप ।।२७२।।
अयोध्याख्येपुरेरम्येसोऽभ्यषिचन्नृपात्मजम् ।
देवैश्चमुनिभि सिद्धैरभिषिच्यनराधिप ।।२७३।।
राज्ञासहतदासवेहृष्टपुष्टसुहृज्जना ।
सपुत्रभृत्यदारास्तेदिवमारुरुहुर्जना ।।२७४।।

पक्षियो ने कहा—'ऐसा ही होगा' कह कर इन्द्र, धर्म और विश्वामित्रजी ।। २६८ ।। सभी उस नगर मे गये और सब प्रजाजनो को राजा हरिश्चन्द्र के सहित एकत्र किया, तब इन्द्र बोले ।। २६९ ।। हे मनुष्यो ! तुमने धर्म के प्रसाद से अत्यन्त कठिनता से प्राप्य स्वर्गलोक को प्राप्त किया है, इसलिए वही चलो ।। ९७० ।। इसके पश्चात् स्वर्ग से करोडो विमान वहाँ आये और अयोध्यावासियो से कहा गया कि स्वर्ग मे जाने के लिए इन विमानो पर शीघ्र चढो ।। २७१ ।। फिर विश्वामित्र राजा को प्रसन्न करने के निमित्त इन्द्र के वचन से रोहिताश्व को वहाँ लाये ।। २७२ ।। और उसे अयोध्यानगरी के राज्य सिहासन पर अभिषिक्त किया, उस समय सब अयोध्या बन्धु बाधव, सिद्ध, मुनि और देवगणो के समक्ष अभिषेक कर भार्या, पुत्र, सेवक आदि से मिलकर सभी स्वर्ग को चले ।। २७१ ।। ।। २७४ ।।

पदेपदेविमानात्ते विमानमगमत्नरा ।
तदासभूतहर्षोसौहरिश्चन्द्रश्चपार्थिव ।।२७५।।
सप्राप्यभूतिमतुलाविमानै समहीपति ।
आसाचक्रेपुराकारेवप्रप्राकारसवृते ।।२७६।।
ततस्तस्यर्द्धिमालोक्यश्लोकतत्रोशनाजगौ ।
दैत्याचार्योमहाभाग सर्वशास्त्रार्थतत्वतित् ।।२७७।।

हरिश्चन्द्रसमोराजानाभूतोनभविष्यति ।
यश्चैतच्छृणुयाद्भक्त्यानैरन्तर्येणमानव ।।२७८।।
तेनवेदा पुराणानिसर्वैमत्रा सुसग्रहा ।
घुष्टा स्यु पुष्करेतीर्थेप्रयागेसिन्धुसागरे ।।२७९।।
देवागारेकुरुक्षेत्रेवाराणस्याविशेषत ।
विषुवद्ग्रहणेचैवयत्फलजपतोलभेत् ।।२८०।।

मार्ग मे वे एक से दूसरे विमान मे चढ रहे थे, उस समय राजा हरिश्चन्द्र भी बहुत प्रसन्न हुए ।। २७५ ।। तब उन्हे विमान मे चढने की महान् विभूति का अनुभव हुआ और वे वलयाकार परकोटे से सयुक्त स्थित रहे ।। २७६ ।। उस समय सर्व शास्त्रो के तत्व ज्ञाता दैत्यो के आचार्य शुक्राचार्यजी ने राजा के इस ऐश्वर्य को देख कर प्रशस्ति गान किया ।। २७७ ।। वे बोले— राजा हरिश्चन्द्र के समान विश्व मे न कोई हुआ न भविष्य मे होगा, क्योकि वे तितिक्षा और दान के फल मे अपने नगर निवासियो को भी स्वर्ग मे ले गये, इन राजा हरिश्चन्द्र की कथा को भक्ति सहित जो कोई श्रवण करेगा ।। २७८ ।। वह वेद, पुराण तथा सभी मत्रो के फल को पायेगा, जो कोई पुष्कर, प्रयाग, सिधु सागर ।। २७९ ।। देव मदिर, कुरुक्षेत्र और वाराणसी मे पाठ करेगा उसे विशेष फल मिलेगा, तथा जो फल विपुवती और ग्रहण मे जप करने से होता है ।। २८० ।।

तत्फलद्विगुणचैवसयतात्माश्रृणोतिय ।
श्रुत्वातुपूजयेद्भक्त्यापुराणज्ञद्विजोत्तमम् ।।२८१।।
गोभूहिरण्यवस्त्रैश्चतथैमान्नैनजैमिने ।
येनैवयत्कृतपुण्यतच्छक्यनमयोदितुम् ।।२८२।।
अहोतितिक्षामाहात्म्यमहोदानफलमहत् ।
यदागतोहरिश्चन्द्र पुरीचेन्द्रत्वमाप्तवान् ।।२८३।।
एतत्ते सर्वमाख्यातहरिश्चन्द्रविचेष्टितम् ।
य श्रृणोतिदु खार्त्त ससुखमहदाप्नुयात् ।।२८४।।
स्वर्गार्थीप्राप्नुयात्स्वर्गपुत्रार्थीपुत्रमाप्नुयात् ।
भार्यार्थीप्राप्नुयाद्भार्या राज्यार्थीराज्यमाप्नुयात् ।।२८५।।

अत परकथाशेप श्रूयतामुनिसत्तम ।
विपाकोराजसूयस्यपृथिवीक्षयकारणम् ।
तद्विपाकनिमित्त चयुद्धमाडिबकमहत् ॥२८६॥

उससे द्विगुण फल इसे इद्रिय के सयम पूर्वक सुनने से होता है, इस कथा को सुन कर पुराण ज्ञाता ब्राह्मण को सतुष्ट करे ॥ २८१ ॥ उसे गौ, भूमि, स्वर्ण, वस्त्र तथा अन्न प्रदान करने से जो पुण्य होता है, वह अवर्णनीय है ॥ २८२ ॥ तितिक्षा और दान का महान् फल होता है, उसी के प्रभाव से राजा हरिश्चन्द्र को इद्रत्व की प्राप्ति हुई और वे अपने नगर निवासियो सहित स्वर्ग को प्राप्त हुए ॥ २८३ ॥ पक्षियो ने कहा—हे जैमिने ! आपसे हरिश्चन्द्र का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा गया, दु खो से आर्त्त मनुष्यो को इसके श्रवण से अत्यन्त सुख की प्राप्ति होती है ॥ २८४ ॥ इससे स्वर्गाकाक्षी को स्वर्ग, पुत्रेच्छु को पुत्र, पत्नी की कामना वाले को पत्नी तथा राज्य की इच्छा वाले को राज्य की प्राप्ति होती है ॥ २८५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! अब तुम्हारे प्रति पृथिवी के क्षय का कारण, राजसूय यज्ञ का विपाक तथा उस विपाक से महत् आडि-बक युद्ध स्वरूप शेप कथा को कहता हूँ, श्रवण करो ॥ २८६ ॥

इति श्री मार्कण्डेय पुराणे हरिश्चन्द्रोपारव्यान नाम अष्टमोऽध्याय ॥ ८ ॥

९—आडिबकयुद्ध

राज्यच्युतेहरिश्चन्द्रेगतेचत्रिदशालयम् ।
निश्चक्रामममहातेजाजलवासात्पुरोहित ॥१॥
वसिष्ठोद्वादशाब्दान्तेगङ्गापर्यु षितोमुनि ।
शुश्रावचसमस्तन्तुविश्वामित्रविचेष्टितम् ॥२॥
हरिश्चन्द्रस्यनाशश्चराज्ञश्चोदारकर्मण ।
चण्डालसप्रयोगश्चभार्यातनयविक्रयम् ॥३॥
सश्रुत्वासुमहाभाग प्रीतिमानवनीपतौ ।
चकारकोपतेजस्वीविश्वामित्रमृषिम्प्रति ॥४॥
ममपुत्रशततेनविश्वामित्रेणघातितम् ।

श्रुत्वानराधिपमिमस्वराज्यादवरोपितम् ।
महात्मानमहाभागदेवब्राह्मणपूजकम् ॥६॥
यस्मात्ससत्यवाक्छान्त शत्रावपिविमत्सर ।
अनागाश्चैवधमात्मांअप्रमत्तोमदाश्रय ॥७॥
सपत्नीभृत्यपुत्रस्तुप्रापितोऽन्त्यादशानृपः ।
सराज्याच्च्यावितोऽनेनवहुशश्चखिलीकृत ॥८॥
तस्माद्दुरात्माब्रह्मद्विड्यज्विनामवरोपक ।
मच्छापोपहतोमूढ सबकत्वामवाप्स्यति ॥९॥

पक्षियो ने कहा—जब राजा हरिश्चन्द्र राज्य से मुक्त होकर स्वर्ग को गये, उसके पश्चात् राजा के पुरोहित महातेज वाले वसिष्ठ जी जलमे बाहर निकले ॥ १ ॥ वसिष्ठजी बारह वर्ष जलवास करके निकले थे, उन्होने बाहर निकल कर विश्वामित्र का वृत्तान्त सुना ॥ २ ॥ उदारकर्मा हरिश्चन्द्र जिस प्रकार राज्य मे भ्रष्ट हुए और उन्हे चाण्डालत्व की प्राप्ति हुई तथा उनके पुत्र का विक्रय हुआ ॥ ३ ॥ यह सब वृत्तान्त सुन कर वसिष्ठजी ने विश्वामित्र पर अत्यन्त क्रोध किया, क्योकि वह राजा से बडे प्रसन्न थे ॥ ४ ॥ वसिष्ठजी ने कहा-इतना क्रोध उस विश्वामित्र के हाथ से अपने सौ पुत्रो के मरने पर भी मुझे नही हुआ था, जितना कि देव-ब्राह्मणो का पूजन करने वाले राजा के राज्य से भ्रष्ट होने का वृत्तान्त सुन कर हुआ है ॥ ५ ॥ मेरे आश्रित सत्यवादी, निर्वैर निरपराधी, अप्रमत्त और धर्मात्मा राजा को ॥ ७ ॥ भार्या, पुत्र तथा सेवको के सहित दुर्दशा को पहुँचाया, अपने राज्य से च्युत करके भाँति भाँति के दुख दिये है ॥ ८ ॥ इसलिए वह ब्रह्मद्वेषी, दुरात्मा, मूर्ख एव याज्ञियो के यज्ञ को नष्ट करने वाला विश्वामित्र मेरे शाप से अन्त को प्राप्त हो कर तिर्यग् योनि को प्राप्त हो ॥ ९ ॥

श्रुत्वाशापमहातेजाविश्वामित्रोऽपिकौशिक ।
त्वमप्याडिर्भववेतितस्मैशापमयच्छत ॥१०॥
अन्योन्यशापात्तौप्राप्तौतिर्यक्त्वपरमद्युती ।
वसिष्ठ समहाराजाविश्वामित्रश्चकौशिक ॥११॥
अन्यजातिसमायोगगतावप्यमितौजसौ ।

युयुधातेऽतिसरब्धौमहाबलपराक्रमौ ॥१२॥
योजनानासहस्रे द्वे प्रमाणेनाडिरुच्छ्रित ।
षण्णवत्यधिकब्रह्मसहस्रत्रितयबक ॥१३॥
तौतुपक्षप्रहाराभ्यामन्योन्यस्योरुविक्रमौ ।
प्रहारन्तौभयतीव्र प्रजानाचक्रतुस्तदा ॥१४॥

पक्षियो ने कहा—विश्वामित्रजी ने भी शाप की बात सुन कर वसिष्ठजी को शाप दिया-तुझे चील की योनि प्राप्त हो ॥१०॥ वसिष्ठ एव विश्वामित्र दोनो ही अत्यन्त तेजस्वी थे, इसलिए पारस्परिक शाप के वश दोनो ही खग-योनि को प्राप्त हुए ॥ ११ ॥ वे दोनो अत्यन्त तेजस्वी महान् बली थे, अत अत्यन्त क्रोध पूर्वक परस्पर युद्ध करने लगे ॥ १२ ॥ हे ब्रह्मन् ! आडि रूपी वसिष्ठ दो हजार योजन ऊँचा और बगुला रूपी विश्वामित्र तीन हजार छियानवे योजन ऊँचा उडा ॥ १३ ॥ उन दोनो अत्यन्त पराक्रमी पक्षियो के परस्पर प्रहारो को देख कर प्रजा को अत्यन्त भय प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥

विधूयपक्षाणिबकोरक्तोद्वृत्ताक्षिराहनत् ।
आडिसोऽप्युन्नतग्रीवोबकपद्भ्यामताडयत् ॥१५॥
तयो पक्षानिलापास्ता प्रपेतुर्गिरयोभुवि ।
गिरिप्रपाताभिहताचकम्पेचवसुन्धरा ॥१६॥
क्ष्माकम्पमानाजलधीनुद्वृत्ताम्बू श्चकारच ।
ननामचैकपार्श्वेनपातालगमनोन्मुखी ॥१७॥
केचिद्गिरिनिपातेनकेचिदभोधिवारिणा ।
केचिन्महीसचलनात्प्रययु प्राणिन क्षयम् ॥१८॥
इतिसर्वपरित्रस्तहाहाभूतमचेतनम् ।
जगदासीत्सुसभ्रातपर्यस्तक्षितिमण्डलम् ॥१९॥
हावत्सहाकातशिशोप्रयाह्य षोऽस्मिसस्थित ।
हाप्रियेकातशैलोऽयपतत्याशुपलायताम् ॥२०॥
इत्याकुलीकृतेलोकेसत्रासविमुखेतदा ।
सुरै परिवृत सर्वैराजगामपितामह ॥२१॥

बगुले ने रक्तवर्ण वाले नेत्रो से सभी फैलाए हुए पखो को चला कर

चील को आहत किया, तभी चील ने कठ उठा कर अपने पर से बगुले पर आघात किया ।। १५ ।। उनके पखो की हवा से अनेक पर्वत टूट कर गिरने लगे, जिससे पृथिवी भी कपायमान हो उठी ।। १६ ।। पृथिवी के काँपने से समुद्र का जल उछलने लगा तथा पृथिवी पार्श्व की ओर झुक गई ।। १७ ।। उस समय भूमडल के सभी जीव कोई पर्वत के गिरने से, कोई समुद्र की तरगो से नष्ट होने लगे ।। १८ ।। इस प्रकार त्रास को प्राप्त हुआ विश्व हा हाकार करता हुआ भ्रान्त हो उठा और पृथिवी मे विपरीतता होने पर ।। १९ ।। सभी मनुष्य व्याकुल चित्त से स्वजनो को पुकारते हुए 'भागो, भागो' कहने लगे ।। १२० ।। भय मे इस प्रकार चिल्लाते हुए कोई कही, कोई कही गये, तब पितामह ब्रह्माजी स्वय ही सब देवताओ के सहित वहाँ आये ।। ११ ।।

प्रत्युवाचचविश्वेशस्तावुभावतिकोपितौ ।
युद्ध वाविरमत्वेतल्लोका स्वास्थ्यव्रजन्तुच ।।२२।।
शृण्वन्तावपितौवाक्यब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन ।
कोपामर्पसमाविष्टौयुयुधातेनतस्थतु ।।२३।।
तत पितामहोदेवस्तद्दृष्ट्वालोकसक्षयम् ।
तयोश्चहितमन्विच्छस्तिर्यग्भावमपानुदत् ।।२४।।
तास्तौपूर्वदेहस्थौप्राहदेव प्रजापति ।
व्युदस्तेतामसेभावेवसिष्ठकौशिकर्षभौ ।।२५।।
जहिवत्सवसिष्टत्वत्वचकौशिकसत्तम ।
तामसभावमाश्रित्यईदृग्युद्ध चिकीर्पितम् ।।२६।।
राजसूयविपाकोयहरिश्चन्द्रस्यभूपते ।
युवयोर्विग्रहश्चायपृथिवीक्षयकारक ।।२७।।
नचापिकौशिकश्रेष्ठस्तस्यराज्ञोऽपराध्यति ।
स्वर्गप्राप्तिकरोब्रह्मन्नुपकारपदेस्थित ।।२८।।

और कपित हुए दोनो पक्षियो से बोले कि तुम्हारा युद्ध समाप्त हो और भूमडल के सभी जीव स्वस्थ हो ।। २२ ।। ब्रह्माजी की यह बात सुन कर भी दोनो पक्षी युद्ध करने से किसी प्रकार न रुके ।। २३ ।। तब ब्रह्माजी ने

प्रजा का सहार देख कर, उसके हितार्थ दोनो का खगत्व हर लिया ।। २४ ।। जब उन्हे पूर्व देह की प्राप्ति हुई तब उनका तमोगुण मिटा, यह देख कर ब्रह्मा-जी ने उन दोनो से कहा ।। २५ ।। हे वसिष्ठ ! हे विश्वामित्र ! तुम तमोगुण के अवलम्बन से जो युद्ध करते थे, उसे छोडो ।। २६ ।। पृथिवी को नष्ट करने वाले जिस युद्ध को तुम कर रहे थे वह राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ करने का फल है ।। २७ ।। इन विश्वामित्र ने राजा का कोई अपराध नही किया, इसके विपरीत उनको स्वर्ग प्राप्त करा कर उपकार ही किया है ।। २८ ।।

तपोविघ्नस्यकर्त्तारौकामक्रोधवशगतौ ।
परित्यजतभद्रवोब्राह्म हिप्रचुरबलम् ।।२९।।
एवमुक्तौततस्तेनलज्जितौतावुभावपि ।
क्षमयामासतु प्रीत्यापरिष्वज्यपरस्परम् ।।३०।।
तत सुरैर्वन्द्यमानौब्रह्मालोकनिजययौ ।
वसिष्ठोऽप्यात्मन स्थानकौशिकोऽपिस्वमाश्रमम् ।।३१।।
एतदाडिबकयुद्ध हरिश्चन्द्रकथातथा ।
कथयिष्यन्तियेमर्त्या सम्यक्श्रोष्यन्तिचैवये ।।३२।।
तेषापापापनोदतुश्रु तह्यॆवकरिष्यति ।
नचैवविघ्नकार्याणिभविष्यन्तिकदाचन ।।३३।।

तुम काम, क्रोध के वश मे पड कर तप मे विघ्न कर रहे हो, इसलिए इन दोनो का त्याग करो, ब्रह्मत्व से बढ कर अन्य कोई बल नही है, तुम्हारा कल्याण हो ।। २९ ।। ब्रह्माजी की बात सुन कर दोनो अत्यन्त लज्जित हुए और परस्पर क्षमा माँगते हुए आलिगन करने लगे ।। ३० ।। फिर देवताओ से पूजित हुए ब्रह्माजी अपने लोक को गये और वसिष्ठ तथा विश्वामित्र ने भी अपने-अपने स्थान को गमन किया ।। ३१ ।। जो व्यक्ति आडिबक युद्ध और हरिश्चन्द्र की कथा कहेगा अथवा श्रवण करेगा ।। ३२ ।। उसके सभी पाप नष्ट होगे और इसे सुन कर कार्यारम्भ करेगा तो उसके कार्य मे कभी विघ्न उपस्थित न होगा ।। ३३ ।।

१०—मृत्युदशा वर्णन

सशयद्विजशार्दूला प्रब्रूतममपृच्छत ।
आविर्भावतिरोभावौभूतानायत्रसस्थितौ ॥१॥
कथसञ्जायतेजन्तुकथवासविवर्धते ।
कथवोदरमध्यस्थस्तिष्ठत्यङ्गनिपीडित ॥२॥
निष्क्रान्तिमुदरात्प्राप्यकथवावृद्धिमृच्छति ।
उत्क्रान्तिकालेचकथचिद्भावेनवियुज्यते ॥३॥
कृत्स्नोमृतस्तथाश्नातिउभेसुकृतदुष्कृते ।
कथतेचतथातस्यफलसम्पादयन्त्युत ॥४॥
कथनजीर्यतेतत्रपिण्डीकृतइवाशये ।
स्त्रीकोष्ठेयत्रजीर्यन्तेभुक्तानिसुगुरूण्यपि ॥५॥
भक्ष्याणितत्रनोजन्तुर्जीर्य्यतेकथमल्पक ।
कथभोक्तासससर्वस्यकमर्णसुकृतस्यवै ॥६॥
एतन्मेब्रूतसकलसन्देहोक्तिविवर्जितम् ।
तदेतत्परमगुह्य यत्रमुह्यन्तिजन्तव ॥७॥

जैमिनि बोले—हे द्विजशार्दूल ! जिसमे प्राणियो का जन्म-मरण सघटित है, उस विपयक मेरे सदेह को दूर करिये ॥ १ ॥ जीव की उत्पत्ति और वृद्धि किस प्रकार होती है तथा वह पीडा को सहन करता हुआ गर्भ मे किस प्रकार रहता है ! ॥ २ ॥ फिर गर्भ से निकल कर वृद्धि को प्राप्त होना, मृत्यु के समय उसका प्राण कैसे निकल जाता है ? ॥ ३ ॥ काल के गाल मे जाकर जीव पुण्य पाप का कैसे भोगता है और पाप पुण्य अपने-अपने फल का सपादन किस प्रकार करते है ॥ ४ ॥ जठराशय मे जाकर कठिनता से पाक वस्तु भी पच जाती है, तो साधारण पिण्डी बना हुआ जीव स्त्री के जठर मे क्यो नही पच जाता ? ॥ ५ ॥ जठराग्नि मे पच कर जीव नष्ट क्यो होता है तथा सुकृत से फल को किस प्रकार भोगता है ॥ ६ ॥ जिस प्रकार मेरा सदेह दूर हो सके, उस प्रकार मुझे बताइये, इस गूढ रहस्य मे प्राणी मोहित है ॥ ७ ॥

प्रश्नभारोऽयमतुलस्त्वयास्मासुनिवेशित ।

दुर्भाव्य सर्वभूतानाभावाभावसमाश्रित ॥८॥
तश्रृणुष्वमहाभागयथाप्राहपितु पुरा ।
पुत्र परमधर्म्मत्मासुमतिर्नामिनामत ॥६॥
ब्राह्मणोभार्गव कश्चित्सुतमाहमहामति ।
कृतोपनयनंशान्तसुमतिजडरूपिणम् ॥१०॥
वेदानधीत्यसुमतेयथानुक्रममादित ।
गुरुशुश्रूषणेव्यग्रोभैक्षान्नकृतभोजन ॥११॥
ततोगार्हस्थ्यमास्थायचेष्ट्वायज्ञाननुत्तमान् ।
इष्टमुत्पादयापत्यमाश्रयेधावनतत ॥१२॥
वनस्थश्चततोवत्सपरिव्राड्निष्परिग्रह ।
एवमाप्स्यसितद्ब्रह्मयत्रगत्वानशोचसि ॥१३॥

पक्षियो ने कहा—आपने प्राणियो के भावाभाव वाला जो प्रश्न किया है, वह अत्यन्त गूढ है ८ ॥ पुराकाल मे अपने पिता के प्रति सुमति नामक एक धर्मात्मा पुत्र ने जो कहा था, वह हम तुम्हारे प्रति वर्णन करते है, ध्यान से सुनो ॥ ९ ॥ एक समय भार्गव वश के किसी महामति नामक ब्राह्मण ने अपने जड भाव युक्त पुत्र सुमति से कहा ॥ १० ॥ हे सुमते ! गुरु की सेवा मे रह कर भिक्षान्न से जीवन निर्वाह करता हुआ प्रथम वेदाध्ययन कर ॥११ ॥ फिर गृहस्थ धर्म का पालन करता हुआ इच्छित पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् वन को प्राप्त हो ॥ १२ ॥ वन मे वास करके सन्यासी होकर ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त होगा, जिसकी प्राप्ति होने पर सोच नही रहता ॥ १३ ॥

इत्येवमुक्तोबहुशोजडत्वान्नाहकिञ्चन ।
पितापितंसुबहुश प्राहप्रीत्यापुन पुन ॥१४॥
इतिपित्रासुतस्नेहात्प्रलोभिमधुराक्षरम् ।
सचोद्यमानोबहुश प्रहस्येदमथाब्रवीत् ॥१५॥
तातैतद्बहुशोभ्यस्तयत्वयाद्योपदिश्यते ।
तथैवान्यानिशास्त्राणिशिल्पानिविबिधानिच ॥१६॥
जन्मनामयुतसाग्रममस्मृतिपथगतम् ।
उत्पन्नज्ञानबोधस्यवेदै किमेप्रयोजनम् ।

निर्वेदा परितोषाश्चक्षयवृद्धयुदयेरता ॥१७॥
शत्रुमित्रकलत्राणावियोगा सङ्गमास्तथा ।
मातरोविविधादृष्टा पितरोविविधास्तथा ॥१८॥
अनुभूतानिसौख्यानिदु खानिचसहस्रश ।
बान्धवाबहव प्राप्ता पितरश्चपृथग्विधा ॥१९॥
विण्मूत्रपिच्छिलेस्त्रीणातथाकोष्ठेमयोषितम् ।
पीडाश्चसुभृशप्राप्तारोगाणाश्चसहस्रश ॥२०॥
गर्भदु खान्यनेकानिबालत्वेयौवनेतथा ।
वृद्धतायातथाप्तानितानिसर्वाणिसस्मरे ॥२१॥

पक्षियो ने कहा—इस प्रकार पिता द्वारा बहुत-सी बाते कहने पर भी इता प्राप्त पुत्र ने कोई उत्तर न दिया, परन्तु स्नेह के वशीभूत हुए पिता नसे बारबार कहने लगे ॥ १४ ॥ पिता के प्रलोभन युक्त वचनो को बारबार न कर सुमति कुछ हसा और उसने पिता से कहा ॥ १५ ॥ आप इस समय स विषय का उपदेश मुझे दे रहे है, उसका अनेक बार अभ्यास कर चुका इसके अतिरिक्त अनेको शास्त्र एव शिल्प शास्त्र का भी अभ्यास कर चुका ॥ १६ ॥ कुछ अधिक दश हजार वर्ष की बात मुझे याद है, मै अनेक बार ख पा चुका हूँ, अनेक बार सतुष्ट हुआ हूँ, अनेक बार क्षीणता और वृद्धि प्राप्त हो चुका हूँ, अब मुझे ज्ञान उपलब्ध है तो वेदाध्ययन से क्या लाभ ? ॥ १७ ॥ अनेक बार मेरा शत्रु, मित्र, कलत्र सहित सयोग और वियोग चुका है, मैने अपने अनेक माता-पिता देखे है, ॥ १८ ॥ सहस्रो प्रकार के ख-दु ख का मुझे अनुभव है, बाँधव और पिता सभी अनेक प्रकार से देख का हूँ ॥ १९ ॥ मैने अनेक बार मल मूत्र युक्त नारी-जठर मे निवास किया तथा हजारो बार रोगो की यत्रणा प्राप्त की है ॥ २० ॥ गर्भ की यत्रणा, ल्य काल, युवावस्था तथा वृद्धावस्था मे जितनी बार जो दु ख प्राप्त किया, सब मुझे याद है ॥ २१ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशाशूद्राणाञ्चापियोनिषु ।
पुनश्चपशुकीटानामृगाणामथपक्षिणाम् ॥२२॥

समुत्पन्नोऽस्मिगेहेषुतथैवतववेश्मनि ।।२३।।
भृत्यतादासताचैवगतोऽस्मिबहुशोनृणाम् ।
स्वामित्वमीश्वरत्वचदरिद्रत्वतथागत ।।२४।।
हतमयाहतश्चान्यैर्हत मेघातिततथा ।
दत्तामभान्यैरन्येभ्योमयादत्तमनेकश ।।२५।।
पितृमातृसुहृद्भ्रातृकलत्रादिकृतेनच ।
तुष्टोऽसकृत्तथादैन्यमश्रुधौताननोगत ।।२६।।
एवससारचक्रेऽस्मिन्भ्रमतातातसङ्कटे ।
ज्ञानमेतन्मयाप्राप्तमोक्षसम्प्राप्तिकारकम् ।।२७।।
विज्ञातेयत्रसर्व्वोऽयमृग्यजु सामसज्ञित ।
क्रियाकलापोविगुणोनसम्यक्प्रतिभातिमे ।।२८।।

मै बहुत बार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पशु, कीट, पक्षी आदि योनियो मे उत्पन्न हो चुका हूँ ।। २२ ।। जैसे आपके यहाँ उत्पन्न हुआ हूँ, वैसे ही अनेको बार राज सेवको अथवा वीरो के यहाँ उत्पन्न हो चुका हूँ ।। २३ ।। मै अनेक बार सेवक एव भृत्य हुआ हूँ, अनेक बार स्वामी तथा प्रधान हुआ हूँ और अनेक बार दरिद्रता भोग चुका हूँ ।। २४ ।। मैने बहुत से मनुष्यो को मारा और बहुतो ने मुझे भी मारा है, मैने अनेक बार दान दिया तथा अनेक बार दान ग्रहण किया है ।। २५ ।। पिता, माता, भ्राता, सुहृद्, भार्या आदि मे अनेक बार सतुष्ट हुआ और अनेक बार दीन दशा को प्राप्त होकर अश्रु बहाता रहा ।। २६ ।। इस प्रकार इस सकट से परिपूर्ण ससार चक्र मे निरन्तर भ्रमण करते-करते मुझे मोक्ष के देने वाले ज्ञान की प्राप्ति हो चुकी है ।। २७ ।। इस प्रकार ज्ञान मिलने से ऋक्, यजु , साम नामक सम्पूर्ण क्रिया कलाप का मुझे भले प्रकार ज्ञान है ।। २८ ।।

तस्मादुत्पन्नबोधस्यवेदै किमेप्रयोजनम् ।
गुरुविज्ञानतृप्तस्यनिरीहस्यसदात्मन ।।२९।।
षट्प्रकारक्रियादु खसुखहर्षरसैश्चयत् ।
गुणैश्चवर्जितब्रह्मतत्प्राप्स्यामिपरपदम् ।।३०।।
रसहर्षभयोद्वेगक्रोधामर्षजवागुरा ।

विज्ञातानृमृगग्राहिसघपाशशताकुला ॥३१॥
तस्माद्यास्याम्यहतातत्यक्त्वेमादु खसन्ततिम् ।
त्रयीधर्ममधर्माढ्य किपापफलसन्निभम् ॥३२॥
तस्यतद्वचनश्रुत्वाहर्षविस्मयगदगदम् ।
पिताप्राहमहाभाग स्वसुतहृष्टमानस ॥३३॥
किमेतद्वदसेवत्सकुतस्तेज्ञानसम्भव ।
केनतेजडतापूर्वमिदानीचप्रवुद्धता ॥३४॥
किन्नुशापविकारोऽयमुनिदेवकृतस्तव ।
यत्ते ज्ञानतिरोभूतमाविर्भावमुपागतम् ॥३५॥

इसलिए जब मुझे ज्ञान प्राप्त ही है और मे गुरु विज्ञान मे तृप्त तथा चेष्टा हीन और सदात्मा हूँ तो वेदज्ञान से मेरा क्या प्रयोजन है ? ॥ २९ ॥ मै सुख, दु ख, हर्ष, रम तथा निर्गुण ब्राह्म पद को मै प्राप्त हूँ ॥ ३० ॥ तथा रस, हर्ष, भय, उद्वेग, क्रोध अमर्ष और वृद्धावस्था द्वारा नितात व्याकुल और सैंकडो बन्धनो मे व्याप्त रहा हूँ ॥ ३१ ॥ अत इस दु ख रूपी प्रवाह का त्याग करके मुझे जाना है, त्रयी विद्या का धर्म अधर्म जैमा लगता है, मै इसे छोड कर ब्रह्मपद पाऊँगा ॥ ३२ ॥ पक्षियो ने कहा—पुत्र के इस वचन को सुन कर प्रसन्न चित्त हुए पिता ने हर्ष विस्मय से युक्त गद्गद् वचन कहे ॥ ३३ ॥ पिता ने कहा—हे पुत्र ! तुम यह क्या कहते हो ? तुम्हे ऐसा ज्ञान कहाँ से प्राप्त हुआ ? तुम तो जड स्वभाव वाले थे, अब ऐसी ज्ञान-बुद्धि किस प्रकार उत्पन्न हो गई ? ॥ ३४ ॥ तुम्हारा जो छिपा हुआ ज्ञान अब प्रकट हुआ है, वह क्या किसी मुनि या देवता के शाप से अप्रकट था ? ॥ ३५ ॥

श्रृणुतातयथावृत्त ममेदसुखदु खदम् ।
यश्चाहमासमन्यस्मिञ्जन्मन्यस्मत्परन्तुयत् ॥३६॥
अहमासपुरविप्रोन्यन्यस्तात्मापरमात्मनि ।
आत्मविद्याविचारेषुपरानिष्ठामुपागत ॥३७॥
सततयोगयुक्तस्यसतताभ्याससङ्गमात् ।
सत्सयोगात्स्वभावाद्वाविचारविधिशोधनात् ॥३८॥
तस्मिन्नेवपराप्रीतिर्ममासीद्यु जत सदा ।

आचार्यताचसप्राप्त शिष्यसन्देहहृत्तम ।।३९।।
तत कालेनमहताऐकान्तिकमुपागत ।
अज्ञानाकृष्टसद्भावोविपन्नश्चप्रमादत ।।४०।।
उत्क्रान्तिकालादारभ्यस्मृतिलोपोनमेऽभवत् ।
यावदब्दगतचैवजन्मनास्मृतिमागतम् ।।४१।।

पुत्र बोला—मै अपने सुख दु ख को देने वाले सभी वृत्तान्तो को कहता हूँ, उन्हे सुनो ।। ३६ ।। मै पूर्व जन्म मे एक ब्राह्मण था, उस समय ब्रह्म मे आत्मा को लीन करके मैने आत्मविद्या प्राप्त की थी ।। ३७ ।। सदैव योगरत रहने के कारण अभ्यास, सत्सग, सत्स्वभाव, विचार एव विधियो का उद्धार ।। ३८ ।। तथा निरन्तर ब्रह्म मे रत रहने के कारण मै उस जन्म मे अत्यन्त प्रसन्न था तथा शिष्यो के सन्देहो का निवारण करने वाला आचार्य था ।। ३९ ।। कुछ समय व्यतीत होने पर एकान्त मै रहने लगा, फिर अज्ञान वश प्रमादी होकर अत्यन्त व्याकुल हुआ ।। ४० ।। फिर भी मरण पर्यन्त मेरी स्मृति नष्ट नही हुई, इसलिए जन्म समय से जितने वर्ष व्यतीत हुए उन सभी का मुझे स्मरण है ।। ४१ ।।

पूर्वाभ्यासेनतेनैवसोऽहतातजितेन्द्रिय ।
यतिष्यामितथाकर्तु नभविष्येयथापुन ।।४२।।
ज्ञानवानफलह्येतद्यज्जातिस्मरणमम ।
नह्येतत्प्राप्यतेतातत्रयीधर्माश्रितैर्नरै ।।४३।।
सोऽहपूर्वाश्रमादेवनिष्ठाधर्ममुपाश्रित ।
एकान्तित्वमुपागम्ययतिष्याम्यात्ममोक्षणे ।।४४।।
तद्ब्रूहित्वमहाभागयत्तेसाशयिकहृदि ।
एतावतापितेप्रीतिमुत्पाद्यानृण्यमाप्नुयाम् ।।४५।।
पिताप्राहतत पुत्रश्रद्दधत्तस्यतद्वच ।
भवतायद्वयपृष्टा ससारग्रहणाश्रयम् ।।४६।।
शृणुतातयथातत्वमनुभूतमयाऽसकृत् ।
ससारचक्रमजरस्थितिर्यस्यनविद्यते ।।४७।।
सोऽहवदामितेसर्वतवैवानुज्ञयापित ।

उत्क्रान्तिकालादारभ्ययथानान्योवदिष्यति ॥४८॥

पूर्वाभ्यास के कारण मै जितेन्द्रिय होकर अव पुन उसी प्रकार का यत्न करूँगा ॥ ४५ ॥ जिससे ज्ञान और दान के फल-स्वरूप मुझे सब जन्मो का वृत्तान्त याद है, परन्तु त्रयी धर्म के आश्रय वालो को जन्म जन्मान्तर वृत्त याद नही रह सकता ॥ ४३ ॥ पूर्व जन्म मे अर्जित निष्ठा धर्म से ही मै आत्म मोक्ष मे यत्न करने वाला हुआ हूँ ॥ ४४ ॥ इसलिए आपके हृदय मे जो सशय है, उसे कहिये, मै एक उपाय से ही उस विषय मे आपको प्रीतिमान् करके उऋण हो जाऊँगा ॥ ४५ ॥ पक्षियो ने कहा कि—पिता ने यह बाते सुन कर, जो प्रश्न आपने किया है, वही श्रद्धा सहित अपने पुत्र से किया ॥ ४६ ॥ पुत्र बोला—इसका जो बारम्बार मुझे अनुभव हुआ हे, वह यथावत् कहता हूँ, इस ससार चक्र की स्थिति कही भी नही है ॥ ४७ ॥ हे पिता! आपकी आज्ञा मे वह सब वृत्तान्त कहता हूँ, जिसका वर्णन करने मे अन्य कोई भी समर्थ नही होगा ॥ ४८ ॥

ऊष्माप्रकुपित कायेतीव्रवायुसमीरित ।
भिनत्तिमर्मस्थानानिदीप्यमानोनिरिन्धन· ॥४९॥
उदानोनामपवनस्ततश्चोर्ध्वप्रवर्त्तते ।
भुक्तानामम्बुभक्ष्याणामधोगतिनिरोधकृत् ॥५०॥
ततोयेनाम्बुदानानिकृतान्यन्नरसास्तथा ।
दत्ता सतस्यआह्लादमापदिप्रतिपद्यते ॥५१॥
अन्नानियेनदत्तानिश्रद्धापूतेनचेतसा ।
सोऽपितृप्तिमवाप्नोतिविनाप्यन्नेनवैतदा ॥५२॥
येनानृतनिनोक्तानिप्रीतिभेद कृतोनच ।
आस्तिक श्रद्दधानश्चससुखंमृत्युमृच्छति ॥५३॥
देवब्राह्मणपूजायायेरतानोनसूयव ।
शुक्लावदान्याह्रीमन्तस्तेनरा:सुखमृत्यव ॥५४॥
योनकामान्नसरम्भान्नद्वेषाद्धर्ममुत्सृजेत् ।
यथोक्तकारीसौम्यश्चससुखमृत्युच्छति ॥५५॥
अवारिदायिनोदाहंक्षुधाचानन्नदायिन ।

प्राप्नुवन्तिनरा कालेतस्मिन्मृत्यावुपस्थिते ॥५६॥

देह-स्थित पित्त कुपित होकर बिना ईंधन के ही तीव्र वायु के चलने से दीप्त होकर सब मर्म स्थान को भेदता है ॥ ४६ ॥ और देह का उदान वायु उस पर वर्तमान होकर सब जलीय भक्ष्य वस्तु की अधोगति को रोकता है, उस समय प्राणी का आत्मा वियुक्त होता है ॥ ५० ॥ जिसने जल, अन्न, रस का दान किया है, वही उस मरण रूप आपत्काल मे प्रसन्न रहता है ॥ ५१ ॥ जो पवित्र मन और श्रद्धा पूर्वक अन्नदान करते है, वह उस समय बिना अन्न के भी तृप्त रहते है ॥ ५२ ॥ जो पुरुष कभी मिथ्या भाषण नही करते, किसी की प्रीति मे मन मुटाव नही कराते तथा जो आस्तिक एव श्रद्धालु है, उनकी ही सुख पूर्वक मृत्यु होती है ॥ ५३ ॥ जो देव ब्राह्मण का पूजन करते है, असूया रहित शुद्ध चित्त वाले एव श्रेष्ठ वचन कहने वाले तथा लज्जावान् है, वे सुख से प्राण त्यागते है ॥ ५४ ॥ जो काम, क्रोध, द्वेष से धर्म का त्याग नही करते, सत्य वचन कहते है तथा जो सौम्य स्वरूप है, उनका प्राण त्याग सुख पूर्वक होता है ॥ ५५ ॥ जो प्यासे को जल और क्षुधार्त को अन्न नही देते वह मरण काल मे भूख प्यास से पीडित होते है ॥ ५६ ॥

शीतजयन्तिधनदास्तापचन्दनदायिन ।
प्राणघ्नीवेदनाकष्टायेचानुद्वेगकारिण ॥५७॥
मोहाज्ञानप्रदातार प्राप्नुवन्तिमहद्भयम् ।
वेदनाभिरुदग्राभि प्रपीडयन्तेऽधमानरा ॥५८॥
कूटसाक्षीमृषावादीयश्चासदनुशास्तिवै ।
तेमोहमृत्यव सर्वेतथान्येवेदनिन्दका ॥५९॥
विभीषणा पूतिगन्धा कूटमुद्गरपाणय ।
आगच्छन्तिदुरात्मानोयमस्यपुरुषास्तदा ॥६०॥
प्राप्तेषुदृक्पथतेषुजायतेतस्यवेपथु ।
क्रन्दत्यविरतसोऽथभ्रातृमातृसुतानथ ॥६१॥
सास्यवागस्फुटातातएकवर्णाविभाव्यते ।
दृष्टिश्चभ्राम्यतेत्रासाच्छ्वासाच्छुष्यत्यथाननम् ॥६२॥

ऊर्ध्वश्वासान्वित सोऽथदृष्टिभङ्गसमन्वित ।
तत सवेदनाविष्टस्तच्छरीरविमु ञ्चति ।।६३।।

काष्ठ का दान करने वालो को मरण काल मे शीत तथा चन्दन-दान करने वालो को ताप नही सताता तथा प्राणियो को भयभीत करने वालो को उस समय अत्यन्त यन्त्रणा भोगनी होती है ।। ५७ ।। जो मोह और अज्ञान की शिक्षा देते है, उन अधमो को अत्यन्त भय तथा घोर पीडा की प्राप्ति होती है ।। ५८ ।। मिथ्या साक्षी देने वाले, मृषावादी, वेदनिन्दक तथा कुशासको की अज्ञान मे मृत्यु होती है ।। ५९ ।। तथा उनके मरण काल मे अत्यन्त घृणित वेश वाले भयङ्कर यमदूत मुद्गर हाथ मे लिये हुए आते है ।। ६० ।। जैसे ही उन्हे यमदूत दिखाई पडते है, वैसे ही वे कपित शरीर से भ्राता माता और पुत्र को पुकारते हुए रुदन करते है ।। ६१ ।। उस समय उनकी बात समझने मे नही आती, वर्ण विकृत होता है और दृष्टि घूमने लगती है, श्वास और उच्छवास से मुख भी सूख जाता है ।। ६२ ।। फिर ऊर्ध्वश्वास चलती है, नेत्र की दृष्टि नष्ट होती है और वेदना से ग्रसित होकर प्राण छूट जाते है ।। ६३ ।।

वाय्वग्रसारीतद्रूपदेहमान्यत्प्रपद्यते ।
तत्कर्मजयातनार्थनमातृपितृसम्भवम् ।
तत्प्रमाणवयोवस्थासस्थानै प्राग्भवयथा ।।६४।।
ततोदूतोयमस्याशुपाशैर्बध्नातिदारुणै ।
दण्डप्रहारसभ्रान्तकर्षतेदक्षिणादिशम् ।।६५।।
कुशकण्टकवल्मीकशकुपाषाणकर्कशै ।
तथाप्रदीप्तज्वलनेक्वचिच्छ्वभ्रशतोत्कटे ।।६६।।
प्रदीप्तादित्यतप्तेनदह्यमानेनदशुभि ।
कृष्यतेयमदूतैश्चशिवासन्नादभीषणै ।।६७।।
विकृष्यमाणस्तैर्घोरैर्भक्ष्यमाण शिवाशतै ।
प्रयातिदारुणेमार्गेपापकर्मायमक्षयम् ।।६८।।
छत्रोपानत्प्रदातारोयेचवस्त्रप्रदानरा ।
तेयान्तिमनुजामार्गतंसुखेनतथान्नदा. ।।६९।।

विमानै सोज्ज्वलैर्यान्तिभूमिदानप्रदानरा ।
एवक्लेशाननुभवन्नवश पापपीडित ।
नीयतेद्वादशाहेनधर्मराजपुरनर ॥७०॥

फिर वायु के आगे होकर कर्म फल रूप यन्त्रणा का भोग करने के लिये बिना माता पिता के उत्पन्न होने वाले अन्य शरीर को धारण करते है, वह शरीर पहिले के ममान वय, अवस्था और सस्थान वाला होता है ॥ ६४ ॥ फिर यमदूत उन्हे दारुण पाश मे बाँध, दण्ड प्रहार करते हुए दक्षिण की ओर खीचते है ॥ ६५ ॥ कुश, काँटे, वल्मीक, शकु तथा पत्थरो से भी कठोर शस्त्र एव कही प्रज्वलित अग्नि से व्याप्त, कही सैकडो गर्त से युक्त ॥ ६६ ॥ कही सूर्य की अत्यन्त उष्णता से जलते हुए, कही सैकडो गीदडो के शब्द से व्याप्त तथा यमदूतो से खीचे जाते हुए ॥ ६७ ॥ इस प्रकार उस प्राणी को सैकडो गीदड खाते है, ऐसे मार्ग से पापी पुरुषो को यमलोक मे जाना होता है ॥ ६८ ॥ जिन्होने छत्री, जूता, वस्त्र, अन्न दिया है, वे उस मार्ग मे सुख से जाते है ॥ ६९ ॥ जो भूमिदान करते है, वे शुभ विमान मे बैठ कर वहाँ पहुँचते है, पापी मनुष्य क्लेशो को पाते हुए बारहवे दिन धर्मराज के पुर मे पहुँचते है ॥ ७० ॥

कलेवरेदह्यमानेमहान्तदाहमृच्छति ।
ताडचमानेतथैवार्तिछिद्यमानेचदारुणाम् ॥७१॥
क्लिद्यमानेच्चिरतरजन्तुर्दुःखमवाप्नुते ।
स्वेनकर्मविपाकेनदेहान्तरगतोऽपिसन् ॥७२॥
तत्रयद्वान्धवास्तोयप्रयच्छन्तितिलै सह ।
यच्चपिण्डप्रयच्छन्तिनीयमानस्तदश्नुते ॥७३॥
तैलाभ्यङ्गोबान्धवानामङ्गसंवाहनचयत् ।
तेनचाप्यायतेजन्तुर्यच्चाश्नन्तिस्वबान्धवा ॥७४॥
भूमौस्वपद्भिर्नात्यन्तक्लेशमाप्नोतिबान्धवै ।
दानददद्भिश्चतथाजन्तुराप्याय्यतेमृत ॥७५॥
नीयमान स्वकगेहद्वादशाहसपश्यति ।
उपभुङ्क्तेतथादत्त तोयपिण्डादिकंभुवि ॥७६॥

द्वादशाहात्परघोरमावासभीषणाकृतिम् ।
याम्यपश्यत्यथोजन्तु घृष्यमाण पुरतत ।।७७।।

शरीर के जलने पर भीषण जलन तथा ताडित या छेदित होने पर घोर वेदना भोगनी होती है ।। ७१ ।। यह शरीर जब जल मे भीगता है, तब देहान्तर के आश्रय मे भी कर्म फल से सदा दु.ख का अनुभव होता है ।। ७२ ।। उसके निमित्त उसके बाँधव जिस तिल जौ को जल सहित देते है, उस समय वह उसी का भोजन करता है ।। ७३ ।। बाँधवो को तेल या उबटन लगाना इसलिए वर्जित है कि मृतक के लिए भोजन मे वही वस्तु मिलती है ।। ७४ ।। बाँधवो के धरती मे सोने से उसका क्लेश मिटता है और दान करने से उसे प्रसन्नता प्राप्त होती है ।। ७५ ।। बारहवे दिन उसको फिर उसी घर मे जाना होता है और वहाँ उसके निमित्त जो जल पिण्डादि दिया जाता है, उसका वह भोजन करता है ।। ७६ ।। बारहवाँ दिन बीतने पर पुनः यमदूतो द्वारा खीचा जाकर अत्यन्त भीषण आकार वाले लौहमय यमपुर को जाता है ।। ७७ ।।

गतमात्रोऽतिरक्ताक्ष भिन्नाञ्जनचयप्रभम् ।
मृत्युकालान्तकादीनामध्येपश्यतिवैयमम् ।।७८।।
दष्टाकरालवमनभ्रुकुटीदारुणाकृतिम् ।
विरूपैर्भीषणैर्वक्रैर्वृतव्याधिशतै प्रभुम् ।।७९।।
दडासक्त महाबाहु पाशहस्तसुभैरवम् ।
तन्निर्दिष्टाततोयातिगतिजन्तु शुभाशुभाम् ।।८०।।
रौरवेकूटसाक्षीतुयातियश्चानृतीनर ।
ब्रह्मघ्नोहत्ययादष्टोगोघ्नश्चपितृघातक ।।८१।।
क्षेत्रदारापहारीचसीमानिक्षेपहारक ।
गुरुपत्न्यभिगामीचकन्यागामीतथैवच ।।८२।।
तस्यस्वरूप गतोरौरवस्यनिशामय ।
योजनानासहस्रे द्वे रौरवोहिप्रमाणत ।
जानुमात्रप्रमाणश्चतत श्वभ्रसुदुस्तर ।।८३।।
तत्राङ्गारचयोपेतकृतचधरणीसमम् ।

जाज्वल्यमानस्तीव्रेणतापिताङ्गारभूमिना ॥८४॥

वहाँ पहुँच कर मृत्यु, काल, अन्तक आदि पार्षदो के सहित यमराज के दर्शन करता है ॥ ७८ ॥ वह यमराज अत्यन्त विकराल वदन, भीषणाकार, विरूप तथा वक्र आकृति की असख्य व्याधियो से घिरे हुए है ॥ ७९ ॥ वह दण्ड और पाश धारण किये हुए अत्यक भयङ्कर आकार वाले है, उन्ही के द्वारा निर्दिष्ट श्रेष्ठ अथवा निम्न गति को प्राणी प्राप्त करते है ॥ ८० ॥ मिथ्यावादी तथा मिथ्या साक्षी देने वालो को रोरव नरक मे डाला जाता है, ब्रह्म—हत्यारे, गौ हत्यारे तथा पिता की हत्या करने वाले ॥ ८१ ॥ खेत, सीमा, धरोहर या स्त्री का हरण करने वाले, गुरु—पत्नी या कन्या से समागम करने वाले भी उसी रौरव नरक को प्राप्त होते है ॥ ८२ ॥ अब उस रौरव नरक का स्वरूप बताता हूँ, उसे सुनो—वह दो सहस्र योजन लम्बा है, उसमे जघा के बरावर गहरा गर्त है ॥ ८३ ॥ उस गर्त मे मिट्टी जैसे अगार भरे है, उन अगारो के ताप से प्राणी सदा जलता रहता है ॥ ८४ ॥

तन्मध्येपापकर्माणविमुचन्तियमानुगा ।
सदह्यमानस्तीव्रेणवह्निनातत्रधावति ॥८५॥
पदेपदेचपादोऽस्यशीर्यतेजीर्यतेपुन ।
अहोरात्रेणोद्धरणपादन्यासचगच्छति ॥८६॥
एवसहस्रमुत्तीर्णोयोजनानाविमुच्यते ।
ततोऽन्यत्पापशुद्ध्यर्थताद्दड् निरयमृच्छति ॥८७॥
तत सर्वेषुनिस्तीर्ण पापीतिर्यक्त्वमश्नुते ।
कृमिकीटपतङ्गेषुश्वापदेमशकादिषु ॥८८॥
गत्वागजद्रुमाद्येषुगोष्वश्वेषुतथैवच ।
अन्यासुचैवपापासुदु खदासुचयोनिषु ॥८९॥
मानुष्यप्राप्यकुब्जोवाकुत्सितोवामनोऽपिवा ।
चण्डालपुल्कसाद्यासुनरोयोनिषुजायते ॥९०॥

पापी मनुष्यो को यमदूत उसमे फैकते है, वे उस तीव्र अग्नि मे दाह को प्राप्त हुए इधर-उधर भागते है ॥ ८५ ॥ इस प्रकार पग पग पर उसके पॉव अग्नि से जल कर फटते और नष्ट होते है, दिन—रात्रि मे केवल एक बार

ही पैर रखने और उठाने का सामर्थ्य उसमे होता है ।। ८६ ।। इस प्रकार पैर रखने पर हजार योजन चलने पर वहाँ से मुक्त होकर उसी जैसे अन्य नरक को प्राप्त होता है ।। ८७ ।। इस प्रकार सब नरकों को भोग कर तिर्यक् योनि मे जन्म लेता है, फिर क्रमश कृमि, कीट, पतग, श्वापद, और मच्छर होता है ।। ८८ ।। फिर गौ, अश्व, गज, वृक्ष, लता आदि अनेक पाप-योनियो को प्राप्त होता हुआ ।। ८९ ।। मनुष्य जन्म ग्रहण करता है उसमे भी कुबडा, कुत्सित, बौना, चाण्डाल, पुल्कस आदि निदनीय योनियो मे उत्पन्न होता है ।। ९० ।।

अवशिष्टेनपापेनपुण्येनचसमन्वित ।
ततश्चारोहणीजातिशूद्रवैश्यनृपादिकाम् ।।९१।।
विप्रदेवेन्द्रताञ्चापिकदाचिदवरोहणीम् ।
एवन्तुपापकर्म्मणोनरकेषुपतन्त्यध ।।९२।।
यथापुण्यकृतोयान्तितन्मेनिगदत शृणु ।
तेयमेनविनिर्दिष्टायान्तिपुण्यागतिनरा ।।९३।।
प्रगीतगन्धर्वगणै प्रनृत्ताप्सरसागणै ।
हारनूपुरमाधुर्यशोभितात्युत्तमानिच ।।९४।।
प्रयान्त्याशुविमानानिनानादिव्यस्रगुज्ज्वला ।
तस्माच्चप्रच्युताराज्ञामन्येषाचमहात्मनाम् ।।९५।।
जायन्तेचकुलेतत्रसद्वृत्तपरिपालका ।
भोगान्सप्राप्नुवन्त्यग्र्यास्ततोयान्त्यूर्ध्वमन्यथा ।।९६।।
अवरोहणीञ्चसम्प्राप्यपूर्ववद्यान्तिमानवा ।
एतत्तेसर्वमाख्यातयथाजन्तुर्विपद्यते ।
अत शृणुष्वविप्रर्षेयथागर्भप्रपद्यते ।।९७।।

फिर शेष रहे पुण्य से मनुष्य योनि मे क्रमश शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय ।। ९१ ।। ब्राह्मण होता हुआ सुरपति तक हो सकता है और (पाप चरण करे तो) अवरोहिणी गति से क्रम पूर्वक उन्ही योनियो मे गिरता है ।। ९२ ।। अब उस गति को कहता हूँ, जिसे पुण्यवान् मनुष्य पाते है। वह भी यमराज के द्वारा निर्दिष्ट गति को प्राप्त करते है ।। ९३ ।। उनके गमन काल मे उनके

चारो ओर गधर्व गान करते और अप्सराएँ नृत्य करती है तथा हार, नूपुर, माधुर्य आदि से युक्त अति श्रेष्ठ ।। ९४ ।। विमान उनके पास आते है और वे दिव्य मालादि धारण पूर्वक उनमे चढ कर जाते है, फिर पुण्य शेष होने पर विमान से पतित होकर महात्मा ।। ९५ ।। या राजवश मे उत्पन्न होकर सदाचार का पालन करते ओर अनेक प्रकार के सुख भोग कर क्रमश ऊर्ध्व गति को पाते है ।। ९६ ।। यदि अवरोहिणी दशा को प्राप्त होते है तो प्रथम पूर्वोक्त सब भोग करते है, हे तात ! जीवो की जिस प्रकार मृत्यु होती है, वह कह दिया, अब गर्भ धारण का प्रकार सुनिये ।। ९७ ।।

११--गर्भस्थित वर्णन

निषेकमानवस्त्रीणाबीजप्रोक्त रजस्यथ ।
विमुक्तमात्रोनरकात्स्वर्गाद्वापिप्रपद्यते ।।१।।
तेनाभिभूततत्स्थैर्ययातिबीजद्वयचतत् ।
कललत्वंबुद्बुदत्वतत प्रेशित्वमेवच ।।२।।
पेश्यास्तथायथाबीजादकुरादिसमुद्भव ।
अङ्गानाचतथोत्पत्ति पचानामनुभागश ।।३।।
उपाङ्गान्यगुलीनेत्रनासास्यश्रवणानिच ।
प्ररोहयान्तिचाङ्गेभ्यस्तद्वत्तेभ्योनखादिकम् ।।४।।
त्वचिरोमाणिजायन्तेकेशाश्चैवतत परम् ।
समसमृद्धिमायातितेनैवोद्भवकोशक ।।५।।
नारिकेलफलयद्वत्सकोशवृद्धिमृच्छति ।
तद्वत्प्रयात्यसौवृद्धिसकोशोऽधोमुख स्थित ।।६।।

पुत्र ने कहा—स्त्री-पुरुष के रज-वीर्य मिश्रण काल मे स्वर्ग या नरक से छूटते ही मनुष्य उसका अवलम्बन करता है ।। १ ।। तथा उससे अभिभूत होकर दोनो बीज स्थिर होकर बुलबुले के लम्बे या गोल आकार को प्राप्त होते है ।। २ ।। उस अण्डाकार मे स्थित सूक्ष्म बीज को अकुर कहते है, उस अकुर के विभाग से पाँचो अग उत्पन्न होते है ।। ३ ।। फिर सभी उपाङ्ग उत्पन्न होकर उनसे अकुर और उससे नखादि उत्पन्न होते हैं ।। ४ ।। फिर

त्वचा पर रोमावली और केशो की उत्पत्ति होती है, और फिर सब अ ग और उद्भवेकोशो की समान भाव से वृद्धि होती है ।। ५ ।। अर्थात् जैसे नारियल का फल कोष सहित वृद्धि को प्राप्त होता है, वैसे ही गर्भ कोष सहित नीचे की ओर मस्तक किये बढता है ।। ६ ।।

तलेतुजानुपार्श्वाभ्याकरौन्यस्यसवर्द्धते ।
अ गुष्ठौचोपरिन्यस्तौजान्वोरग्रे तथागुली ।।७।।
जानुपृष्ठे तथानेत्रेजानुमध्येचनासिका ।
स्फिचोपार्ष्णिद्वयस्थेचवाहुजघेवहि स्थिते ।।८।।
एववृद्धिक्रमाद्यातिजन्तु स्त्रीगर्भसस्थित ।
अन्यसत्वोदरेजन्तोर्यथारूपतथास्थिति ।।९।।
काठिन्यमग्निनायातिभुक्तपीतेनजीवति ।
पुण्यापुण्याश्रयमयीस्थितिर्जन्तोस्तथोदरे ।।१०।।
नाडीचाप्यायनीनामनाभ्यातस्यनिबध्यते ।
स्त्रीणातथान्त्रशुषिरेसातिबद्धोपजायते ।।११।।
क्रामन्तिभुक्तपीतानिस्त्रीणागर्भोदरेयथा ।
तैराप्यायितदेहोऽसौजन्तुर्वृद्धिमुपैतिवै ।।१२।।
स्मृतितलप्रभान्त्यस्यबह्वच ससारभूमय ।
ततोनिर्वेदमायातिपीडयमानइतस्तत ।।१३।।

जब निम्न मुख किये प्राणी गर्भ कोष मे रहता है, तब जानु और पार्श्व सहित दोनो हाथ नीचे के भाग मे रहते है, दोनो अ गूठे जानु पर तथा सब अँगुलियाँ जानु के अगले भाग मे फैली रहती है ।। ७ ।। दोनो चक्षु जानु के पीछे और नासिका जानु के मध्य मे रहती है, दोनो कूल्हे पार्ष्णि पर तथा बाहु और जघा बाहरी भाग मे रहती है ।। ८ ।। गर्भ मे प्राणी इस प्रकार बढता है, अन्यान्य जीवो मे अपनी-अपनी आकृति के अनुसार वहाँ रहता हुआ बढता है ।। ९ ।। उदर की अग्नि से कठिन होता जाता है और खाये-पिये पदार्थ द्वारा जीवन धारण होता है, पाप या पुण्य की अधिकता के भेद से गर्भ वास भी विभिन्न प्रकार का है ।। १० ।। उसकी नाभि मे निबद्ध आप्यायनी नामक नाडी स्त्री की आँत से लगी रहती है ।। ११ ।। उसी के

छिद्र से सब खाये-पिये हुए पदार्थ उसके देह मे जाकर देह को तृप्त करते हुए बढाते है ॥ १२ ॥ उस समय उसे ससार के अनेक जन्म याद आते है और तब वह अत्यन्त दु खित होता है ॥ १३ ॥

पुनर्नैवकरिष्यामिमुक्तमात्रइहोदरात् ।
तथातथायतिष्यामिगर्भनाप्स्याम्यहयथा ॥१४॥
इतिचिन्तयतेस्मृत्वाजन्मदु खशतानिवै ।
यानिपूर्वानुभूतानिदैवभूतानियानिवै ॥१५॥
तत कालक्रमाज्जन्तु परिवर्तत्यधोमुख ।
नवमेदशमेवापिमासिसञ्जायतेतत ॥१६॥
निष्क्राम्यमाणोवातेनप्राजापत्येनपीडयते ।
निष्क्राम्यतेचविलपन्हृदिदु खनिपीडित ॥१७॥
निष्क्रान्तश्चोदरान्मूर्च्छामसह्याप्रतिपद्यते ।
प्राप्नोतिचेतनाचासौवायुस्पर्शसमन्वित ॥१८॥
ततस्तवैष्णवीमायासमास्कन्दतिमोहिनी ।
तयाविमोहितात्मासौज्ञानभ्र शमवाप्नुते ॥१९॥
भ्रष्टज्ञानोबालभावततोजन्तुप्रपद्यते ।
तत कौमारकावस्थायौवनवृद्धतामपि ॥२०॥
पुन श्चमरणतद्वज्जन्मचाप्नोतिमानव ।
तत ससारचक्रेस्मिन्भ्राम्यतेघटियन्त्रवत् ॥२१॥

दैव प्रदत्त शत-शत जन्म के दु खो को याद कर वह सोचता है कि उदर से निकल कर फिर कभी ऐसे कार्य न करूँगा, जिससे फिर कभी गर्भ मे रहने का दु ख न भोगना पडे ॥ १४–१५ ॥ फिर उस अधोमुखी जीव का जन्म नौवे या दशवे महीने मे होता है ॥ १६ ॥ उस समय प्राजापत्य वायु से अत्यन्त पीडा को प्राप्त हुआ, दु ख से पीडित तथा विलाप करता हुआ बाहर निकलता है ॥ १७ ॥ उदर से निकलते ही उसे मूर्च्छा होती और वायु के स्पर्श से चेत होता है ॥ १८ ॥ फिर मोहिनी माया उसे मोहित कर देती है, जिससे उसका ज्ञान नष्ट हो जाता हे ॥ १९ ॥ ज्ञान के नष्ट होने पर बाल्य, कौमार, युवा, ओर वृद्धावस्था आदि दशाओ की उसे क्रमश प्राप्ति

होती है ।। २० ।। फिर मर कर उसी रूप मे जन्म लेता है, इस प्रकार ससार चक्र मे वह घटी यन्त्र की भाँत निरन्तर घूमता रहता है ।। २१ ।।

कदाचित्स्वर्गमाप्नोतिकदाचिन्निरयनर ।
निरयचैवस्वर्गचकदाचिच्चमृतोश्नुते ।।२२।।
कदाचिदत्रैवपुनर्जात स्वकर्मसोश्नुते ।
कदाचिद्भुक्तकर्माचमृत स्वल्पेनगच्छति ।।२३।।
कदाचिदल्पैश्चततोजायतेत्रशुभाशुभै ।
स्वर्लोकेनरकेवापिभुक्तप्रायोद्विजोत्तम ।।२४।।
नरकेषुमहद्दु खमेतद्यत्स्वर्गवासिन. ।
दृश्यन्तेतातमोदन्तेपात्यमानाश्चनारका ।।२५।।
स्वर्गेपिदु खमतुलयदारोहणकालत ।
प्रभृत्यहपतिस्यामीत्येतन्मनसिवर्तते ।।२६।।
नरकाश्चैवसप्रेक्ष्यमहद्दु खमवाप्यते ।
एतागतिमहगतेत्यहर्निशमनिर्वृत ।।२७।।
गर्भवासेमहाद्दुखजायमानस्ययोनित ।
जातस्यवालभावेचवृद्धत्वेदु खमेवच ।।२८।।

कभी स्वर्ग, कभी नरक तथा कभी दोनो स्थानो मे जाता रहता है ।। २२ ।। कभी पुन इसी स्थान मे जन्म धारण पूर्वक कर्म फल भोगता और कभी सब कर्मो का भोग कर लेने पर अल्प काल मे ही प्राण छोड देता है ।। २३ ।। कभी साधारण से शुभ या अशुभ कर्म से स्वल्प काल को स्वर्ग या नरक मे पडता है ।। २४ ।। स्वर्ग मे निवास करने वालो को अनेक प्रकार के आमोद प्रमोद करते देख कर पापियो को बडा दु ख होता है ।। २५ ।। परन्तु स्वर्ग मे भी असीमित दु ख है, वहाँ के निवास काल मे यह भय लगा रहता है कि पुण्य के क्षीण होने पर पुन उसी मे गिरना पडेगा ।। २६ ।। उन नरक वासियो की गति देख कर सोचने है कि हम भी फिर ऐसी ही गति को पायेगे ऐसा विचार उन्हे अत्यन्त दु ख होता रहता है ।। २७ ।। प्रथम तो गर्भ वास ही अत्यन्त दु ख पूर्ण है, फिर योनि-छिद्र द्वारा वाहर निकलना तो नितान्त ही कष्ट मय है और जन्म होने पर बाल्यावस्था और वृद्धावस्था

यह दोनो ही कष्ट देने वाली है ॥ २८ ॥

कामेर्ष्याक्रोधसम्बन्धयौवनचातिदु सहम् ।
दु खप्रायावृद्धताचमरणेदु खमुत्तमम् ॥२९॥
कृष्यमाणश्चयाम्यैश्चनरकेषुचपात्यत ।
पुनश्चगर्भजिन्माथमरणनरकस्तथा ॥३०॥
एवंससारचक्रेस्मिञ्जन्तवोघटियन्त्रवत् ।
भ्राम्यन्तेप्राकृतैर्बद्धावध्यन्तिचासकृत्तदा ॥३१॥
नास्तितातसुखकिंचिदत्रदु खशताकुले ।
तस्मान्मोक्षाययतताकथसेव्यामयात्रयी ॥३२॥

काम, क्रोध, ईर्ष्या आदि से परिपूर्ण युवावस्था तो अत्यन्त ही दु ख मय है, उस पर भी वृद्धावस्था को तो दु ख की खान ही समझिये, उससे भी बढ कर मरण मे तो अत्यन्त घोर दु ख है ॥ २९ ॥ इसके पश्चात् जब यमदूत खीच कर नरक मे ढकेलते है, तब तो दु खो की सीमा ही नही रहती, फिर भी गर्भ मे रहना, जन्म लेना, मरना और पुन नरक की प्राप्ति होती है ॥ ३० ॥ इस प्रकार प्राणी इस ससार चक्र मे घटी यन्त्र के समान निरन्तर घूमते हुए बन्धन के दु ख को बारम्बार भोगते है ॥ ३१ ॥ असख्य दु खो वाले इस ससार मे लेश मात्र भी सुख नही है, इसलिए जब मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हूँ तो त्रयीविद्या धर्म का क्यो सेवन करूँ ? मुझे तो अपरा विद्या को प्राप्त करना है ॥ ३२ ॥

१२--महारौरवादिनर्क वर्णन

साधुवत्सत्वयाख्यातससारगहनपरम् ।
ज्ञानप्रदानसभूतसमाश्रित्यमहाफलम् ॥१॥
तत्रतेनरका सर्वेयथावैरौरवास्तथा ।
वर्णितास्तान्समाचक्ष्वविस्तरेणमहामते ॥२॥
रौरवस्तेसमाख्यात प्रथमनरकोमया ।
महारौरवसज्ञतुश्शृणुष्वनरकपित ॥३॥
अगम्यागमनेयेचयेचअभ्यक्षणेरता ।

मित्रद्रोहकराश्चैवस्वामिविश्रभघातका ॥४॥
परदाररताश्चैवस्वदारपरिर्वाजिन ।
मार्गभगकरायेचतडागारामभेदका ॥५॥
एतेन्येचदुराचारादह्यन्तेतत्रकिकरै ।
योजनानासहस्राणिसप्तपचसमन्तत ।
तत्रताम्रमयीभूमिरधस्तस्याहुताशन ॥६॥
तत्तापतप्तासासर्वाप्रोद्यद्विद्यु त्समप्रभा ।
विभात्यतिमहारौद्रादर्शनस्पर्शनादिषु ॥७॥

पिता ने कहा—हे वत्स ! ज्ञान देने के रूप मे महा फल दायक परम ससार—रहस्य का तुमने भले प्रकार वर्णन किया है ॥ १ ॥ रौरव नरक तथा अन्यान्य नरको का जो वर्णन किया, अब उसी को विस्तार सहित कहो ॥ २ ॥ पुत्र ने कहा—हे पिताजी ! मैने प्रथम आपको रौरव नरक का वर्णन किया था, अब महा रौरव नरक का वर्णन सुनिये ॥ ३ ॥ गमन के अयोग्य मार्ग मै जाने वाले, अभक्ष्य भोजन करने वाले, मित्र द्रोही तथा स्वामी से विश्वास घात करने वाले ॥ ४ ॥ पर स्त्री का सेवन करने वाले, अपनी पत्नी को त्यागने वाले, मार्ग, तडाग और उपवनो को नष्ट करने वाले ॥ ५ ॥ पापियो को वहाॅ ले जाकर यमदूत दग्ध करते है, उसका प्रमाण चारो ओर बारह योजन है, उसकी भूमि ताम्रमयी तथा नीचे अग्नि की खान वाली है ॥ ६ ॥ अग्नि के ताप से तप्त हुई वह ताम्र वर्ण वाली भूमि बिजली की चमक के समान सब दिशाओको प्रकाशित करती है, उसे देखना या छूना अत्यन्त भयङ्कर है ॥ ७ ॥

तस्याद्ध कराभ्याचपद्भ्याचैवयतानुगै ।
मुच्यतेपापकृन्मध्येलु ठ्यमान सगच्छति ॥८॥
काकैर्बकैर्वृ कोलूकैर्वृ श्चिकैर्मशकैस्तथा ।
भक्ष्यमाणस्तथागृध्रै र्द्रु तमार्गेविकृष्यते ॥९॥
दह्यमान पितर्मातर्भ्रातस्तातेतिचाकुल ।
वदत्यसकृदुद्विग्नोनशान्तिमधिगच्छति ॥१०॥
एवतस्मान्नरैर्मोक्षोह्यतिक्रान्तैरवाप्यते ।

वर्षायुतायुतै पापय कृतदुष्टबुद्धिभि ॥११॥
तथान्यस्तुतमोनामसोऽतिशीत स्वभावत ।
महारौरववद्दीर्घस्तथातितमसावृत ॥१२॥
गोवध्रश्चकृतोयेनभ्रातृणाघातएवच ।
अवन्नबालघातीचनीयतेशीतसकरे ॥१३॥
शीतार्त्तास्तत्रधावतिनरास्तमसिदारुणे ।
परस्परसमासाद्यपरिरभ्याश्रयन्तिच ॥१४॥

पापियो के हाथ—पाँव बाँध कर यमदूत उन्हे उसमे डालते है तब वे उसमे पडे लेटते है ॥ ८ मार्ग मे काक, बगुले, भेडिये, उलूक, बिच्छू, मच्छर और गृध्रादि द्वारा खाये जाते है ॥ ९ ॥ फिर दग्ध होते हुए 'माता, पिता, भ्राता, इत्यादि चिल्लाते हुए अत्यन्त उद्विग्न तथा अशान्त रहते है ॥ १० ॥ सदा पाप करने वाले दुष्ट बुद्धि मनुष्य हजार-हजार वर्ष मे उसका अतिक्रमण करके मुक्त हो पाते है ॥ ११ ॥ उसके पीछे ही घोर अन्धकार से आवृत तम नामक नरक है, वह महा रौरव के समान ही विशाल तथा अत्यन्त शीतल है ॥ १२ ॥ उसमे गौ–हत्यारे, भ्रातृ—हत्यारे और बालघातियो को डाला जाता है ॥ १३ ॥ इस नरक मे गिरने वाले जीव उस महान् अन्धकार मे शीत से आर्त्त होकर इधर-उधर दौडते फिरते है तथा दूसरे नारकीयो से मिल कर उन से लिपट कर वहाँ रहते है ॥ १४ ॥

दन्तास्तेषाचभज्यन्तेशीतार्त्तिपरिकम्पिता ।
क्षुतृष्णाप्रबलातत्रतथैवान्येऽप्युपद्रवा ॥१५॥
हिमखण्डवहोवायुर्भिनत्यस्थीनिदारुण ।
मज्जासृग्गलिततस्मादश्नुवन्तिक्षुधान्विता ॥१६॥
लेलिह्यमानाभ्राम्यन्तेपरस्परसमागमे ।
एवतत्रापिसुमहान्क्लेशस्तमसिमानवै ॥१७॥
प्राप्यतेब्राह्मणश्रेष्ठयावद्दुष्कृतसक्षय ।
निकृन्तनइतिख्यातस्ततोऽन्योनरकोत्तम ॥१८॥
तस्मिन्कुलालचक्राणिभ्राम्यन्त्यविरतपित ।
अदृष्ट दृष्टवद्ब्रूयादश्रुतश्रुतमेवच ॥१९॥

एकाक्षरगुरु यस्तुदुराचारोनमन्यते ।
नश्रृणोतिगुरोर्वाक्यशास्त्रवाक्यतथैवच ।।२०।।
एतेपापादुराचारास्तत्रतैर्यमपूरुषै ।
तेष्वारोप्यनिकृत्यन्तेकालसूत्रेणमानवा ।।२१।।
यमानुगागुलिस्थेनआपादतलमस्तकम् ।
नचैपाजीवितभ्र शोजायतेद्विजसत्तम ।।२२।।

शीत से काँपते रहने के कारण उनके दाँत टूट जाते है तथा भूख-प्यास आदि सभी उपद्रव प्रबल हो जाते है ।। १५ ।। हिम-खण्डो को बहाने वाली दारुण वायु उनकी हड्डियो को तोड देती है, जिससे मज्जा ओर रक्त गिरता है, वे प्राणी क्षुधातुर होकर उसी का भोजन करते है ।। १६ ।। परस्पर मिल कर शरीरो को चाटते हुए घूमते है, इस प्रकार उन्हे अत्यन्त क्लेश रहता है ।। १७ ।। जब तक भले प्रकार पापो का क्षय नही हो जाता, तब तक तम नामक नगर मे महान् क्लेशो को भोगते है, उसके पीछे निकृन्तन नामक एक प्रधान नरक है ।। १८ ।। वह कुम्हार के चाक के समान निरन्तर घूमता रहँता है, उस चक्र मे पापियो को काल सूत्र से काटा जाता है और न देखे हुए का देखे हुए के समान तथा न सुने हुए को सुने हुए के समान ही वर्णन करता है ।। १९ ।। जो दुराचारी मनुष्य एकाक्षर दाता गुरु को ईश्वर के समान नही मानता या गुरु और शास्त्र के वचन को नही पालता ।। २० ।। वे पापी मनुष्य उस चक्र पर चढाये जाकर काल सूत्र मे, पैरौ से मस्तक तक काटे जाते है तो भी उनका जीवन नष्ट नहीं हो पाता ।। २१–२२ ।।

छिन्नानितेषाशतश खण्डान्यैक्यव्रजन्तिच ।
एववर्षसहस्राणिछिद्यन्तेपापकर्मिण ।।२३।।
तावद्यावदशेषवैतत्पापहिक्षयगतम् ।
अप्रतिष्ठ चनरकश्रृणुष्वगदतोमम ।।२४।।
यत्रस्थैर्न्नारकैदु खमसह्यमनुभूयते ।
स्वधर्मरतविप्राणाविघ्नयस्तुसमाचरेत् ।।२५।।
सबद्धै दारुणै पाशैर्नीयतेचक्रसकरै ।
तान्येवतत्रचक्राणिघटीयत्राणिचान्यत. ।।२६।।

दु खस्यहेतुभूतानिपापकर्मकृतानृणाम् ।
चक्रेष्वारोपिता केचिद्भ्राम्यन्तेतत्रमानवा ॥२७॥
यावद्वर्षसहस्राणिनतेषास्थितिरन्तरा ।
घटीयन्त्रेषुचैवान्योबद्धस्तोयेयथाघटी ॥२८॥

फिर यह सौ-सौ टुकडे होकर भी पूर्ववत् मिल जाते है और हजार वर्ष तक इसी प्रकार काटे और जोडे जाते है ॥ २३ ॥ जब तक कि उनके पाप नष्ट नही हो जाते, अब अप्रतिष्ठ नामक नरक का वर्णन सुनो ॥ २४ ॥ जहाँ रह कर असह्य क्लेश होते है, जो मनुष्य स्वधर्म मे तत्पर ब्राह्मणो के समक्ष विघ्न उपस्थित करता है ॥ २५ ॥ उसे दारुण पाश मे बाँध कर चक्र सकर नरक मे डालते है, वह चक्र और घटीयन्त्र ॥ २६ ॥ पापियो के लिए दु खो के कारण रूप होते है, कुछ प्राणी उस चक्र पर चढा कर घुमाये जाते है ॥ २७ ॥ उनको उस नरक मे एक हजार वर्ष रहना होता है, कोई पापी छोटे घडे के समान बाँधा जाकर ॥ २८ ॥

भ्राम्यन्तेमानवारक्तमुद्गिरन्त पुन पुन ।
अन्त्रैर्मुखेविनिष्क्रान्तैर्नेत्रैरग्रावलम्बिभि ॥२९॥
दु खानितेप्राप्नुवन्तियान्यसह्यानिजन्तुभि ।
असिपत्रवननामनरकश्शृणुचापरम् ॥३०॥
योजनानासहस्र योज्वलदग्न्यास्तृतावनि ।
ब्रह्मचारिव्रतानाचतपसाविघ्नमाचरेत् ॥३१॥
असिपत्रवनयातियेसदोद्वेगकारिण ।
तप्ता सूर्यकरैश्चडैर्यत्रातीवसुदारुणै ॥३२॥
प्रपतन्तिसदातत्रप्राणिनोनरकौकस ।
तन्मध्येचवनरम्यस्निग्धपत्रविभाव्यते ॥३३॥
पत्राणितत्रखड्गानाफलानिद्विजसत्तम ।
श्वानश्चतत्रसबला स्वनन्त्ययुतशोऽभित. ॥३४॥
महाबक्त्रामहाद्र ष्ट्राव्याघ्राइवभयानका. ।
ततस्तद्वनमालोक्यशिशिरच्छायमग्रत ॥३५॥
प्रयान्तिप्राणिनस्तत्रतृट्तापपरिपीडिता. ।

समान ही जाते है ॥ ४६ ॥ मस्तक स्नायु, मास, त्वचा, आस्थि आदि सभी द्रवी भूत होकर तैल मे मिल जाते है तब उन पापियो को दर्वी द्वारा कूटा जाकर ॥ ४७ ॥ महा तैल के गढे मे डाल कर मथा जाता है, इस प्रकार तप्त कुम्भ आदि नरको का सविस्तर वर्णन आपके प्रति किया है ॥ ४८ ॥

१३—गतलोक वर्णन

अहवैश्यकुलेजातोजन्मन्यस्मात्तु सप्तमे ।
समतीतेगवारोधनिपानेकृतवान्पुरा ॥१॥
विपाकात्कर्मणस्तस्यनरकभृशदारुणम् ।
सप्राप्तोऽग्निशिखापूर्णमयोमुखखगाकुलम् ॥२॥
यन्त्रपीडनगात्रासृक्प्रवाहोद्भूतकर्दमम् ।
विकृष्यमाणदुष्कर्मितन्निपातरवाकुलम् ॥३॥
पात्यमानस्यमेतत्रमाग्रवर्षशतगतम् ।
महातापार्त्तितप्तस्यतृष्णादाहान्वितस्यच ॥४॥
तत्राह्लादकर सद्य पवन सुखशीतल ।
करम्भवालुकाकुम्भमध्यस्थेवैसमागत ॥५॥
अकस्मादेवभोस्तातनर रत्नसमागतम् ।
तत्सम्पर्कापशेषाणानाभवद्यातनानृणाम् ।
ममचापियथास्वर्गेस्वर्गिणानिर्वृति परा ॥६॥
किमेतदितिचाह्लादविस्तारस्तिमितेक्षणै ।
दृष्टमस्माभिरासन्न नररत्नमनुत्तमम् ॥७॥

पुत्र बोला—हे तात ! इस जन्म से सात जन्म पूर्व मै वैश्य योनि मे उत्पन्न हुआ था, तब मैने गौओ को जल पीने से रोका था ॥ १ ॥ उसी के फल से दारुण नरक को प्राप्त हुआ, वह नरक अग्नि की शिखाओ और लौहे के मुख वाले पक्षियो से परिपूर्ण था ॥ २ ॥ यन्त्र मे फैंके हुए जीवो के देह से निकले हुए रक्त के बहने से वहाँ कीचड रहता है, तथा यन्त्र मे पडे हुए उन पापियो के आर्त्तनाद से वह नरक गूँजता रहता था ॥ ३ ॥ उस नरक मे महापाप की पीडा से उत्पन्न पिपासा पूर्वक मैंने सौ से कुछ अधिक

वर्ष व्यतीत किये थे ॥ ४ ॥ तभी एक दिन करम्भ बालु का वाले घडे के बीच से प्रसन्नता प्रद ठडी वायु चलने लगी ॥ ५ ॥ उसके स्पर्श से मेरी तथा अन्य नरक वासियो की यन्त्रणा मिट गयी, उस समय हम सब स्वर्ग मे रहने वालो के समान परमानन्द का अनुभव करने लगे ॥ ६ ॥ हम प्रसन्नता से उत्पन्न हुए विस्मय के सहित इधर-उधर देखने लगे तभी हमे पास मे ही एक श्रेष्ठ मनुष्य हमको दिखाई दिया ॥ ७ ॥

याम्थश्चपुरुषोघोरोदण्डहस्तोल्लसत्प्रभ ।
पुरतोदर्शयन्मार्गामितएहीतिचब्रुवन् ॥८॥
ततस्तेजन्तव सर्वेमत्वातद्दर्शनात्सुखम् ।
ऊचु प्राजलयोभूपक्षणमात्रस्थितोभव ॥९॥
त्वद्गात्रसगोपवनोह्यस्माकसुखकारक ।
ततोसौनरकाभ्याशेउपविष्ट कृपान्वित ॥१०॥
पुरुष सतदादृष्ट्वायातनाशतसकुलम् ।
नरकप्राहतयाम्यकिङ्करकृपयान्वित ॥११॥
भोयाम्यपुरुषाचक्ष्वकिमयादुष्कृतकृतम् ।
येनेदयातनाभीमप्राप्तोऽस्मिनरकपरम् ॥१२॥
विपश्चिदितिविख्यातोजनकानामहकुले ।
जातोविदेहविषयेसम्यङ्मनुजपालक ॥१३॥
चतुर्वर्ण्यस्वधर्मस्थकृत्वासरक्षितमया ।
धर्मतोधर्मकल्पेनमनुनात्रयथापुरा ॥१४॥

उस समय वज्र के समान दण्ड हाथ मे लिये हुए एक भयङ्कर यमदूत उसे मार्ग दिखा रहा था ॥ ८ ॥ उस समय सभी प्राणी उसके दर्शन से सुखी होकर हाथ जोडे हुए बोले कि आप क्षण भर को यहाँ रुके ॥ ९ ॥ आपके शरीर के साथ चलने वाला वायु हमे सुख दे रहा है, तब वह मनुष्य अनुग्रह पूर्वक हमारे पास ठहर गये ॥ १० ॥ फिर उसने सैकडो कष्टो वाले नरक को देखा और अनुग्रह भरे हृदय से यमदूतो से कहने लगा ॥ ११ ॥ उसने कहा— हे यमदूतो ! मैने ऐसा कौन पाप किया है, जिसके कारण मुझे इस अत्यन्त भयानक नरक मे लाया गया हूँ, यह मुझे शीघ्र बताओ ॥ १२ ॥ मैं पितृ कुल

मे पण्डित कहा जाता था,इसलिए विदेह राज्य मे श्रेष्ठ प्रजा पालक था ।। १३ ।। चारो वर्णो की मैंने धर्म पूर्वक रक्षा की थी और सभी कार्य मनु के समान ही धर्म मे किया था ।। १४ ।।

यज्ञैर्मयेष्ट बहुभिर्धर्मत पालितामही ।
नोत्सृष्टश्चैवसग्रामोनातिथिर्विमुखोगत ।।१५।।
पितृदेवर्षिभृत्याश्चनचापचरितामया ।
महातापार्तितप्तस्यतृष्णादाहार्दितस्यच ।।१६।।
कृतास्पृहाचनमयापरस्त्रीविभवादिषु ।।१७।।
पर्वकालेषुपितरस्तिथिकालेषुदेवता ।
पुरुषस्वयमायान्तिनिपानमिवधेनव ।।१८।।
यतस्तेविमुखायान्तिनि स्वस्यगृहमेधिन ।
तस्मादिष्टश्चपूर्तश्चधर्मौद्वावपिनश्यत ।।१९।।
पितृनिस्वासविध्वस्तसप्तजन्मार्जितधनम् ।
त्रिजन्मप्रभवदैवोनिश्वासोहन्त्यसंशयम् ।।२०।।
तस्माद्दैवेचपित्र्येचनित्यमेवहितोऽभवम् ।
सोऽहकथमिमप्राप्तोनरकभृशदारुणम् ।।२१।।

मैंने अनेक यज्ञो के अनुष्ठान पूर्वक धर्म पूर्वक पृथिवी का पालन किया था, मैंने युद्ध का त्याग कभी नही किया और कभी किसी अतिथि को विमुख नही किया ।। १५ ।। मैंने पितृ, देव, ऋषि अथवा सेवको को भी कभी दुखी नही किया तथा महाताप मे तप्त और प्यास से आतुर ।। १६ ।। प्राणियो की रक्षा मे सदा तत्पर रहा हूँ, परधन या परनारी की कामना मैंने कभी नही की ।। १७ ।। जैसे गौएँ गोष्ठ मे आती है, वैसे ही पर्वकाल मे पितरगण और तिथि काल मे देवगण मेरे यहाँ आते थे ।। १८ ।। जिस गृहस्थ के यहाँ मे पितर या देवता विमुख होते है, जिसके यज्ञ और पूर्त्त का विनाश हो जाता है ।। १९ ।। पितरो के विमुख होने मे सात जन्म का सचित पुण्य तथा देवताओ के विमुख होने से तीन जन्म का एकत्र हुआ पुण्य नष्ट हो जाता है ।। २० ।। इस कारण मैं पितरों और देवताओ के कार्य मे सदा रहता था फिर इस दारुण नरक को क्यो प्राप्त हुआ हूँ ? ।। २१ ।।

१४—कर्मफल प्राप्ति

इतिपृष्टस्तदानेनश्रृण्वतातोमहात्मना ।
उवाचपुरुषोयाम्योघोरोऽपिप्रश्रितवच ॥१॥
महाराजयथात्थत्वंतथैतन्नात्रसंशय ।
किन्तुस्वल्पंकृतंपापंभवतास्मारयामितत् ॥२॥
वेदर्भीविषयापत्नीपीवरीनामनामत ।
ऋतुमत्याऋतुर्वन्ध्यस्त्वयातस्या कृत पुरा ॥३॥
सुशोभनायाःकैकेय्यामासक्तेनततोभवान् ।
ऋतुव्यतिक्रमात्प्राप्तोनरकघोरमीदृशम् ॥४॥
होमकालेयथावह्निराज्यपातमवेक्षते ।
ऋतौप्रजापतिस्तद्वद्बीजपातमवेक्षते ॥५॥
यस्तमुल्लंघ्यधर्मात्माकामेष्वासक्तिमान्भवेत् ।
सतुपित्र्यादृणात्पापमवाप्यनरकपतेत् ॥६॥
एतावदेवतेपापनान्यत्किञ्चनविद्यते ।
तदेह्यागच्छपुण्यानामुपभोगायपार्थिव ।
एतच्छ्रुत्वातुराजर्षि कृपयाजनकोब्रवीत् ॥७॥

पुत्र बोला—हे तात ! इस प्रकार उस पुरुष के प्रश्न करने पर यमदूत ने भयङ्कर होते हुए भी जिस नम्रता से उत्तर दिया, उसे मैने सुना ॥ १ ॥ यमदूत ने कहा—हे महाराज ! आप सत्य कहते है, परन्तु आपसे एक सामान्य पाप बन गया था, उसे आपको स्मरण कराता हूँ ॥ २ ॥ आपकी एक पत्नी विदर्भ देश की थी, उसका नाम पीवरी था, आपने उसके ऋतुमती होने पर ऋतु को विफल किया था ॥ ३ ॥ आप उस समय केकय देश की रानी सुशोभना के प्रति अत्यन्त आसक्त थे, इसलिए ऋतु काल का व्यतिक्रमण करने से आपको इस दारुण नरक की प्राप्ति हुई है ॥ ४ ॥ जैसे होम काल मे अग्नि आहुति की कामना करता है, वैसे ही प्रजापति ऋतु काल मे बीज की कामना करते है ॥ ५ ॥ इसका उल्लंघन करने वाले धर्मात्मा पुरुष भी पितर-ऋण के पाप रूप पंक मे लिप्त होकर नरक मे पडते है ॥ ६ ॥ आपने

यही एक मात्र पाप किया है, और कोई पाप आपसे नहीं हुआ, अब आप सभी पुण्यों का फल भोगने के लिए चलिये, यह सुन कर उन राजर्षि ने कृपा पूर्वक कहा ॥ ७ ॥

यास्यामिदेवानुचरयत्रत्वंमानयिष्यसि ।
किञ्चित्पृच्छामितन्मेत्वंयथावद्वक्तुमर्हसि ॥८॥
वज्रतुण्डास्त्वमीकाकाःपुंसांनेत्रापहारिणः ।
पुनःपुनश्चनेत्राणितद्वेचास्त्रवन्ति हि ॥९॥
किंकर्मकृतवन्तस्तेपापमेतज्जुगुप्सितम् ।
हरन्त्येषांतथाजिह्वाजायन्ते पुनर्नवाः ॥१०॥
करपत्रेणपाटयन्ते नराःकस्मादिमेऽतिदुःखिताः ।
करम्भवालुकास्वन्ये पच्यन्तेऽनेकदुःखिनः ॥११॥
अयोमुखैःखगैश्चैवकृष्यन्तेऽतिविलापिनः ।
विश्लिष्टदेहबन्धाश्चनिःस्वनन्तिविलापिनः ॥१२॥
•अयश्चञ्चुनिपातेनसर्वाङ्गाणांविदारणम् ।
किमेतैर्निःस्वनन्तोऽमीनुद्यन्तेऽहर्निशंनराः ॥१३॥
एताश्चान्याश्चदृश्यन्तेयातनाःपापकर्मिणाम् ।
येनकर्मविपाकेनतन्ममाचक्ष्वशेषतः ॥१४॥

राजा बोले—हे देवदूत ! अगर मुझे जहाँ ले जाओगे, वहाँ मैं जाऊँगा परन्तु मेरे प्रश्न का यथार्थ उत्तर दो ॥ ८ ॥ यह वज्र के समान चोंच वाले काक इन पुरुषों के नेत्रों का हरण करते हैं और उनके वे नेत्र पुनः उत्पन्न हो जाते है, ऐसा बारम्बार हो रहा है ॥ ९ ॥ इन्होंने ऐसा कौन-सा निन्दित कर्म किया है, जिससे इनके नेत्र निकाले जाने पर भी पुनः उत्पन्न होते हैं ॥ १० ॥ यह कर-पत्र की मार से क्यों इतना दुःख भोग रहे हैं तथा तप्त बालू और रेत में भूने जा रहे हैं ॥ ११ ॥ लोहमुख पक्षियों द्वारा नोचे जाने पर इनकी देह के बन्धन टूट रहे हैं, जिसकी पीड़ा के कारण यह आर्त्तनाद कर रहे हैं ॥ १२ ॥ तथा पक्षियों की लोहमय चोंच के आघात से इनके सभी अंग छिन्न-भिन्न हो रहे हैं, इन्होंने ऐसा क्या पाप किया है जिससे यह निरन्तर ऐसी यन्त्रणा प्राप्त कर रहे हैं ॥ १३ ॥ पापियों की अन्य प्रकार की पीडाएँ मिलते हुए भी देख

रहा हूँ, किस कर्म के कारण इन्हे इन दुःखो की प्राप्ति हो रही है, यह मुझे प्रारम्भ से अन्त तक बताओ ।। १४ ।।

यन्मापृच्छसिभूपालमापकर्मफलोदयम् ।
तत्तेऽहसप्रवक्ष्यामिसक्षेपेणयथातथम् ।।१५।।
पुण्यापुण्येहिपुरुष पर्यायेणसमश्नुते ।
भुञ्जतश्चक्षययातिपापपुण्यमथापिवा ।।१६।।
नतुभोगादृतेपुण्यपापवाकर्ममानव ।
परित्यजतिभोगाच्चपुण्यापुण्येनिबोधमे ।।१७।।
दुर्भिक्षादेवदुर्भिक्ष क्लेशात्क्लेशभयाद्भयम् ।
मृतेभ्य प्रमृतायान्तिदरिद्रा पापकर्मिण ।।१८।।
गतिनानाविधायान्तिजन्तव कर्मबन्धनात् ।
उत्सवादुत्सवयान्तिस्वर्गात्स्वर्गसुखात्सुखम् ।।१९।।
श्रद्दधानाश्चदान्ताश्चधनदा शुभकारिण ।
व्याघ्रकुञ्जरदुर्गाणिसर्पचौरभयानितु ।।२०।।
हता पापेनगच्छन्तिपापिन किमत परम् ।
सुगन्धिमाल्यसद्वस्त्रसाधुयानासनाशना ।।२१।।
स्तूयमाना सदायान्तिपुण्यै पुण्याटवीष्वपि ।
अनेकशतसाहस्रजन्मसचयसचितम् ।।२२।।

यमदूतो ने कहा—हे राजन् ! पाप के फलोदय के विषय मे जो प्रश्न आपने किया है, उसका वर्णन सक्षिप्त रूप से करता हूँ ।। १५ ।। क्रमानुसार ही मनुष्यो को पाप-पुण्य भोगने होते है, उसी से उनके पाप या पुण्य का क्षय होता है ।।१६।। बिना भोगे पुण्य या पाप से कभी मनुष्य की शुद्धि नही होती है भोगने से ही वह मिटता है, उसी से मनुष्य को मुक्ति प्राप्त होती है। जो पापी है वे दरिद्री होते है, वे दुर्भिक्ष, क्लेश, भय और मृत्यु को पाते हैं ।। १७–१८ कर्म के बन्धन से विभिन्न प्रकार की गतियाँ प्राप्त होती है पुण्यात्माओ को उत्सव, स्वर्ग तथा सुख पर सुख मिलते रहते है ।। १९ ।। वही श्रद्धावान्, शान्तचेता, दानी और सुख करने वाले होते है, तथा पापी मनुष्य व्याल, हाथी, सर्प, चोर आदि से भय युक्त स्थान मे ।। २० ।। पाप से मर

कर जाते है, उनकी अन्य गति क्या हो सकती है ? तथा श्रेष्ठ वस्त्र, सुगन्धित मालाएँ, विमान और भोजन ।। २१ ।। आदि की प्राप्ति महात्मा पुरुषो को अपने पुण्य के वल से होती है, वे प्रशसित होते हुए पवित्र स्थानो को प्राप्त होते है ।। २२ ।।

पुण्यापुण्यनृणातद्वत्सुखदु खाकुरोद्भवम् ।
यथावीजहिभूपालपयासिसमवेक्षते ।।२३।।
पुण्यापुण्येतथाकालदेशान्यकर्मकारकम् ।
स्वल्पपापकृतपु सादेशकालोपपादितम् ।।२४।।
पादन्यासकृतदु खकण्टकोत्थप्रयच्छति ।
तत्प्रभूततरस्थूलशकुकीलकसम्भवम् ।।२५।।
दु खयच्छतितद्वच्चशिरोरोगादिदु सहम् ।
अपथ्याशनशीतोष्णश्रमतापादिकारकम् ।।२६।।
तथान्योन्यमपेक्षन्तेपापानिफलसङ्गमे ।
एवमहान्तिपापानिदीर्घरोगादिका क्रिया ।।२७।।
तद्वच्छस्त्राग्निकृच्छ्रार्तिबन्धनादिफ्लायवै ।
स्वल्पपुण्यशुभगन्धहेलयासम्प्रयच्छति ।।२८।।
स्पर्शवाप्यथवाशब्दरसरूपमथापिवा ।
चिरादगुरुतरतद्वन्महान्तमपिकालजम् ।।२९।।

अनेक शत सहस्र जन्मो के पुण्य, पाप को प्राणी सचित करते रहते है, वही उनके सुख-दुख रूप मे उत्पन्न होते है, जैसे सभी बीज जल की कामना करते हैं ।।२३।। उसी प्रकार पुण्य,पाप भी काल,देश और पात्रकी कामना करते हैं, यदि देश, काल के अनुसार किचित् भी पाप किया हो तो ।। २४ ।। पैर रखने पर काँटा लगने जैसे दु ख का ही अनुभव होता है, परन्तु अधिक पापो का आचरण करने पर शूल या कील आदि से उत्पन्न होने वाले ।। २५ ।। शिरो-रोग आदि दारुण दु,खो का भोग करना होता है, जैसे अपथ्य अन्न, शीत ताप, श्रम आदि को उत्पन्न करता है ।। २६ ।। वैसे ही सब पाप फल के उत्पन्न होने के समय मे परस्पर की अपेक्षा करते है, महापाप कर्मसे दीर्घ रोगादि विकारो की प्राप्ति होती है ।। २७ ।। शस्त्र पीडा, अग्नि का दाह अथवा

[illegible] के [illegible] भोजन [illegible] क्रीडा के बहाने किंचित पुण्य करने से भी श्रेष्ठ [illegible] ॥ २८ ॥ सुखद स्पर्श, मधुर वाणी, मीठे रस और सुन्दर रूप का [illegible] के लिए [illegible] तथा बहुत पुण्य करने पर कालक्रम से अधिक [illegible] उपलब्ध होता है ॥ २९ ॥

> [illegible]दु[illegible]खानि पुण्यापुण्योद्भवानि वै ।
> भु[illegible]क्ष्म[illegible]संसारे[illegible]हति[illegible]ति ॥३०॥
> जातिदेशावरुद्धानि ज्ञानाज्ञानफलानि च ।
> नि[illegible]मनश्चपूर्वाणि चिह्नमा[illegible]त्मानि ॥३१॥
> कर्मणा मनसा वाचा न कदाचित्कथञ्चन ।
> अ[illegible]कृत्वा कर्म पुण्य वा पापं [illegible]ते ॥३२॥
> यद्यत्प्राप्नोति पुरुष सुखदुःखमथापि वा ।
> प्रभूतमथवास्वल्प विक्रियाकारि चेतस ॥३३॥
> तावन्मात्रस्य पुण्यस्य पापस्याप्यथ चेतरत् ॥३४॥
> उपभोगात्क्षयं याति भुज्यमानमिवाशनम् ।
> एवमनमह्नापयातनाभिर्हानिगम् ॥३५॥

इस प्रकार प्राणी पाप- पुण्य से उत्पन्न दुःख या सुख का भोग करता हुआ संसार में वास करता है ॥ ३० ॥ जाति, देश, काल आदि से अवरुद्ध ज्ञान-अज्ञान का सम्पूर्ण फल आत्मा में चिह्नित हो जाता है ॥ ३१ ॥ मन, वाणी, कर्म से कभी कोई पाप-पुण्य किये बिना उसका फल उत्पन्न नहीं हो सकता ॥ ३२ ॥ यह जो कुछ सुख-दुःख की प्राप्ति है, वह अल्प या अधिक चित्त का ही विकार है ॥ ३३ ॥ उसे उतने ही पाप पुण्य के फल की प्राप्ति होती है ॥ ३४ ॥ जैसे भोजन किये हुए अन्न का क्षय उसके उपभोग से ही होता, वैसे ही भोगे बिना पाप का क्षय नहीं हो सकता ॥ ३५ ॥

> क्षपयन्तिनराघोरनरकान्तविवर्तिन ।
> तथैवराजन्पुण्यानिस्वर्गलोकेमरैः सह ॥३६॥
> गन्धर्वसिद्धाप्सरसागीताद्यैरुपभुञ्जते ।
> देवत्वेमानुषत्वेचतिर्यक्त्वेचशुभाशुभम् ॥३७॥
> पुण्यपापोद्भवभुक्तं सुखदुःखोपलक्षणम् ।

यत्त्वपृच्छसिमाराजन्यातना पापकर्मिणाम् ॥३८॥
केनकेनेतिपापेनतत्ते वक्ष्याम्यशेषत ।
दुष्टेनचक्षुपादृष्टा परदारानराधमै ॥३९॥
मानसेनचदुष्टेनपरद्रव्यचसम्पृहै ।
वज्रतु डा खगास्तेपाहरत्येतेविलोचने ॥४०॥
पुन पुन श्चसभूतिरक्ष्णोरेपाभवत्यथ ।
यावतोऽक्षिनिमेपास्तुपापमेभिर्नृभि कृतम् ॥४१॥
तावद्वर्पसहस्त्राणिनेत्रार्तिप्राप्नुवत्युत ।
असच्चाखोपदेशास्तुयैर्दत्तायेश्चमत्रिता- ॥४२॥
सम्यग्दृष्टेर्विनाशायरिपूणामपिमानवे ।
यै शास्त्रमन्यथाप्रोक्त येरसद्वागुदाहृता ॥४३॥

इसलिए नरक मे रह कर जीव यातनाएं प्राप्त करके ही महापाप क्षय करते रहते है तथा इसी प्रकार पुण्यात्मा स्वर्गवासी भी देव के साथ रह कर पुण्य को भोगते है ॥ ३६ ॥ उन्हे सिद्ध, गधर्व, अप्सराओ के गान आदि से पुण्य फल मिलता है, तथा देवता, मनुष्य वा खग-योनि पाकर भी शुभाशुभ ॥ ३७ ॥ पुण्य ओर पाप से उत्पन्न सुख दु ख युक्त भोगते है, हे राजन् ! आपने प्रश्न किया कि पापीगण किस किस पापकर्म से ऐसी यत्रणा भोगते है ॥ ३८ ॥ अब मै इसे पूर्ण रूप से कहता हूँ, जिन नराधम मनुष्यो ने परनारी को दूपित नेत्रो से देखा है ॥ ३९ ॥ अथवा पराये धन को हडपने की इच्छा वाले नेत्रो से देखा है, बनके दोनो नेत्रो को यह वज्रतुण्डी पक्षी हरण करते है ॥ ४० ॥ तथा वही नेत्र बारम्बार उत्पन्न हो जाते है, इन मनुष्यो ने जितने पलक लगने तक यह पाप किये है ॥ ४१ ॥ उतने ही सहस्र वर्प यह इस नेत्र पीडा को प्राप्त करते रहेगे, जिन्होंने शत्रु की भी ज्ञान दृष्टि का हरण करने के लिए अन्याय पूर्वक विपरीत शास्त्रोपदेश अथवा भ्रमात्मक परामर्श दिया है या मिथ्या भाषण किया है ॥ ४२-४३ ॥

वेददेवद्विजातीनागुरोर्निन्दाचयै कृता ।
हरतितेषाजिह्वाश्चजायमाना पुन पुन ॥४४॥
तावतोवत्सरानेतेवज्रतु डा सुदारुणा ।

मित्रभेदतथापित्रापुत्रस्यस्वजनस्यच ।।४५।।
यज्वोपाध्याययोर्मात्रामुतस्यसहचारिण ।
भार्यापत्योश्चयेकेचिद्भेदचक्रुर्नराधमा ।।४६।।
तइमेपश्यपाट्य तेकरपत्रेणपार्थिव ।
परोपतापकायेचयेचाह्लादनिषेधका ।।४७।।
तालवृतानिलादिचन्दनोशीरहारिण ।
प्राणान्तिकददुस्तापमदुष्टानाचयेऽधमा ।।४८।।
करम्भवालुकासस्थास्तइमेपापभागिन ।
भुङ्क्ते श्राद्ध तुयोऽन्यस्यनरोन्येननिमत्रित ।।४९।।

जिन्होने वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरुजनो की निन्दा की है, यह यह वज्रतुण्डी पक्षी उनकी जीभ को काटते है, जीतनी बार यह पाप किया है, उनने ही वर्ष उन्हे ऐमी यत्रणा मिलती है तथा जिन्होने मित्रो मे या पिता-पुत्र मे भेद डलवाया है ।। ४४-४५ ।। अथवा याज्ञिक-यजमान मे, माता-पुत्र मे या पति-पत्नी मे मन मुटाव करा दिया है ।। ४६ ।। वे इस कर पत्र से आहत होते है अथवा जो किसी को क्रोध दिलाने या किसी की प्रसन्नता नष्ट करते है ।।४७।। जो ताड का पखा या खस याचन्दन का हरण करते अथवा साधुओ को प्राणान्तक पीडा देते है ।। ४८ ।। वे पापी तप्त रेत मे गिर कर पाप का फल पाते है अथवा जो एक श्राद्ध मे निमत्रित होकर दूसरे के यहाँ भोजन करते है उनको यह पक्षीगण व्यथित करते है ।। ४९ ।।

दैवेवाप्यथवापैत्र्येसद्विधाकृष्यतेखगै ।
मर्माणियस्तुसाधूनामसद्वाग्भिर्निकृन्तति ।।५०।।
तामिमेतुदमानास्तुखगास्तिष्ठन्त्यवारिता ।
य करोतिचपैशुन्यमन्यवागन्यथामति ।।५१।।
पाट्यतेहिद्विधाजिह्वातस्ययेत्थनिशितै क्षुरै ।
मातापित्रोर्गुरूणाचयेऽवज्ञाचक्रुरुद्धता ।।५२।।
तइमेपूयविण्मूत्रगर्त्ते मज्जन्त्यधोमुखा ।
देवतातिथिभूतेषुभृत्येष्वभ्यागतेषुच ।।५३।।
अभुक्तवत्सुयेऽश्नन्तितद्वत्पित्रग्निपक्षिषु ।

दुष्टास्तेपूयनिर्यासभुज सूचीमुखास्तुते।।५४।।
जायन्तेगिरिवर्ष्माण पश्यैतेयादृशानरा ।
एकपक्त्यातुयेविप्रमथवेतरवर्णजम् ।।५५।।
विषमभोजयन्तीहविड्भुजस्तइमेयथा ।
एकसार्थप्रयातयेनि स्वमर्थार्थिननरम् ।।५६।।

तथा जो झूँठी बात बना कर किसी की चुगली करते है ।। ५० ।। अर्थात् देवना या पितर-कार्य मे एक का निमत्रण स्वीकार करके दूसरे का भोजन करते है ।। ५१ ।। उनकी जिह्वा इम तीक्ष्ण छुरी के द्वारा दो टूक कर दी जाती है, जो मत्त होकर माता, पिता तथा गुरुजनो का तिरस्कार करते है ।। ५२ ।। वे इम पीक मल और मूत्र से परिपूर्ण कुण्ड मे अधोमुख गिराये जाते है, देवता, अतिथि, सेवक, अभ्यागत ।। ५३ पितरगण, अग्नि और पक्षियो को भोजन दिये विना स्वय खा लेते है, वे सूचीमुख होकर पीव और गोद खाते है ।। ५४ ।। उनका शरीर पर्वताकार होता है, जो ब्राह्मण और अन्य जाति वालो को एक पक्ति मे वैठा कर ।। ५५ ।। असमान भोजन कराते है, वह इसकी विष्ठा खाते है, जो व्यापार के लिए एक साथ जाते हुए भी अपने धनहीन साथी को छोड कर स्वय भोजन कर लेते है, उन्हे यहाँ कफ का भोजन प्राप्त होता है, ।। ५६ ।।

अपास्यस्वान्नमश्नन्तितइमेश्लेष्मभोजिन ।
गोब्राह्मणाग्नय स्पृष्टायैरुच्छिष्टैर्नरेश्वर ।।५७।।
तेषामेतेऽग्निकुण्डेषुप्रज्वलत्स्वाहिता करा ।
सूर्येन्दुतारकादृष्टायैरुच्छिष्टैस्तुकामत ।।५८।।
तेषायाम्यैर्नरैर्नेत्रेन्यस्तोवह्नि समिध्यते ।
गावोऽग्निर्जननीविप्रोज्येष्ठभ्राताअपितास्वसा ।।५९।।
जामयोगुरवोवृद्धायै स्पृष्टास्तुपदानृभि ।
बद्धाघ्रयस्तेनिगडैर्लोहैरग्निप्रतापितै ।।६०।।
अ गारराशिमध्यस्थास्तिष्ठन्त्याजानुदाहिन ।
पायसकृसरछागदेवान्नानिचयानिवै ।।६१।।
भुक्तानियैरसंस्कृत्यतेषानेत्राणिपापिनाम् ।

निपातितानामपृष्टे उद्वृत्ताक्षिनिरीक्षताम् ॥६२॥

जिन्होंने उच्छिष्ट कर गौ, ब्राह्मण या अग्नि का स्पर्श किया है ॥ ५७ ॥ उनके हाथ अग्नि कुण्ड मे गिर कर दग्ध होते है तथा उच्छिष्ट अवस्था मे जिन्होंने सूर्य, चन्द्र या तारागण के दर्शन किये है ॥ ५८ ॥ उनके नेत्रो पर यह यमदूत अग्नि रखते है. जिन्होंने गौ, ब्राह्मण, माता, पिता, ज्येष्ठ भ्राता, भगिनी, अग्नि ॥ ५९ ॥ वश की बहन गुरु अथवा वृद्ध ब्राह्मण का स्पर्श पैर से किया है, उनके पैर अग्नि मे तपाई हुई लौह-बेडियो मे जकडे गये है ॥ ६० ॥ तथा वे ही जाँघ तक अगारो के ढेर मे खडे किये गये है, जिन पापियो ने खीर, खिचड़ी या छाग अथवा अन्य किसी देवान्न को ॥ ६१ ॥ सस्कार किये बिना खा लिया है, उन पापात्माओं के नेत्र उखाड कर भूमि मे डाले हुए दिखाई दे रहे है तथा दमन करने वाले यमदूतो के मुख मे गिर रहे है ॥ ६२ ॥

मन्दशे पश्यकृष्यन्तेनरैर्याम्यैर्मुखात्तत ।
गुरुदेवद्विजातीनांवेदानाचनराधमै ॥६३॥
निन्दानिशामितायेश्चपापानामभिनन्दताम् ।
तेपामयोमयान्कीलानग्निवर्णान्पुन पुन ॥६४॥
कर्णेष्पूर्यन्त्येतेयाम्या विलपतामपि ।
यै प्रपादेवविप्रौकोदेवालयसभा शुभा ॥६५॥
भङ्क्त्वाविध्वसमानीता क्रोधलोभानुवर्त्तिभि ।
तेपामेतै शितै शस्त्रैर्मुहुर्विलपतात्वच ॥६६॥
पृथक्कुर्वन्तिवैयाम्या शरीरादतिदारुणा ।
गोब्राह्मणार्कमार्गास्तुयेऽवमेहन्तिमानवा ॥६७॥
तेषामेतानिकृष्यन्तेगुदेनात्राणिवायसै ।
दत्त्वाकन्यायएकस्मैद्वितीयायप्रयच्छति ॥६८॥
सत्वेवनैकधाछिन्न क्षारनद्याप्रवाह्यते ।
स्वपोपणपरोयस्तुपरित्यजतिमानव ॥६९॥
पुत्रभृत्यकलत्रादिबन्धुवर्गमकिंचनम् ।
दुर्भिक्षेसभ्रमेवापिसोऽप्येवयमकिंकरै. ॥७०॥
उत्कृत्यदत्तानिमुखेस्वमासान्यश्नुतेक्षुधा ।

शरणागतान्यस्त्यजनिलोभाद्रुत्कोचजीविक ॥७१॥

जो गुरु,देवता, ब्राह्मण अ र वेद की निन्दा सुन कर उसका अनुमोदन करते हैं, अग्नि वर्द्धक लोहे की कीलें यमदूत बारम्बार ॥ ६३-६४ ॥ उन विलाप करते हुए पापियो के कानो मे घुमाते हैं, जिन्होंने देवालय ब्राह्मण का गृह अथवा सभा भवन को ॥ ६५ ॥ [illegible] अथवा क्रोध के वश होकर विध्वस किया है, उनका चर्म तीक्ष्ण शस्त्रो के द्वारा ॥ ६६ ॥ शरीर से यमदूत अलग करते है तथा जो गौ, ब्राह्मण और सूर्य के मार्ग मे मल मूत्र का त्याग करते है ॥ ६७ ॥ उन पापियो की सब आँत गुह्य द्वार मे कौए [illegible] लेते है, जो एक बार किसी का कन्या दान करके, वही कन्या किसी अन्य को देते है ॥ ६८ ॥ उनको इस प्रकार टुकड़े-टुकड़े करके खारी नदी मे प्रवाहित किया जाता है, जो अन्य मनुष्यो का पोषण न करके, अपना ही करते है ॥ ६९ ॥ दुर्भिक्ष या अन्य सकट काल मे पुत्र, सेवक, कलत्र तथा बन्धु-बान्धव का त्याग करते है, यमदूत ॥ ७० ॥ उनके माँस को काट-काट कर उन्ही के मुख मे डालते है और वे क्षुधार्त्त हुए उसी को खाते है ॥ ७१ ॥

सोऽप्येवयत्रपीडाभि पीडयतेयमकिंकरै ।
सुकृतयेप्रयच्छन्तियावज्जन्मकृतनरा ॥७२॥
तेपिष्यन्तेशिलापेषैर्यथैतेपापकर्मिण ।
क्षुत्क्षामास्तृट्पतज्जिह्वानालवोवेदनातुरा ॥७४॥
दिवामैथुनिन पापा परदारभुजश्चये ।
तथैवकण्टकैस्तीक्ष्णैरायसे पश्यशाल्मलिम् ॥७५॥
आरोपिताविभिन्नागा प्रभूतासृक्स्रवाविला ।
मूपायामपिपश्यैतान्ध्मायामानान्यमानुगै ॥७६॥
पुरुषै पुरुपव्याघ्रपरदारावमर्शिन ।
उपाध्यायमध कृत्वास्तब्धोयोऽध्यायननर ॥७७॥
गृह्णातिशिल्पमथवासोऽप्येव शिरसाशिलाम् ।
बिभ्रत्क्लेशमवाप्नोतिजनमार्गेऽतिपीडित ॥७८॥

जो लोभवश वेतन भोगी अथवा शरणागत का त्याग करते है उनको इस प्रकार की यत्र पीडा दी जाती है। जो मनुष्य अपने सब जन्मो के पुण्य

को मूल्य लेकर बेच देते है ।। ७२ ।। वे इन पापियो के समान ही पाषाण के कोल्हू मे पेले जाते है, जो किसी की धरोहर हडपते है, उनका सम्पूर्ण देह बधन मे पडता है ।। ७३ ।। और उन्हे कृमि, वृश्चिक, काक, उल्लू आदि रात-दिन चौटने रहते है तथा उनकी जिह्वा और तालु सुधा पिपासा से शुष्क होजाते है ।। ७४ ।। जिन्होने दिन मे नारी समागम अथवा परस्त्री-गमन किया वह लोहे के तीक्ष्ण काँटो वाले शाल्मलि वृक्ष पर ।। ७५ ।। चढाये जाकर अँग भग पूर्वक रक्तपात से व्याकुल हो रहे हैं तथा वे धौकनी मे रख कर जलाये जा रहे है ।। ७६ ।।यह देखो, परस्त्री से समागम करने वालो की दशा ऐसी होती है तथा जो उपाध्याय को नीचा आसन देकर अहकार पूर्वक अध्ययन ।। ७७ ।। करते या शिल्प ग्रहण करते है, वह इसी प्रकार सिर पर शिला रख कर बोझ से अत्यन्त क्लेश पाते है ।। ७८ ।।

क्षुत्क्षामोऽहर्निशभारपीडाव्यथितमस्तक ।
मूत्रश्लेष्मपुरीषाणियैरुत्सृष्टानिवारिणि ।।७९।।
तइमेश्लेष्मविण्मूत्रदुर्गन्धनरकगता ।
परस्परचमासानिभक्षयन्तिक्षुधान्विता ।।८०।।
भुक्त नातिथ्यविधिनापूर्वमेभि परस्परम् ।
अपविद्धास्तुयैर्वेदावह्नयश्चाहिताग्निभि ।।८१।।
तइमेशैलश्रृ गाग्रात्पात्यन्तेऽध पुन पुन ।
पुनर्भू पतयोजीर्णायावज्जीवतियेनरा ।।८२।।
इमेकृमित्वमापन्नाभक्ष्यतेऽत्रपिपीलिकै ।
नीचप्रतिग्रहादानाद्याजनान्नित्यसेवनात् ।।८३।।
पाषाणमध्यकीटत्वनर.सततमश्नुते ।
पश्यतोभृत्यवर्गस्यमित्रस्याप्यतिथेस्तथा ।।८४।।
एकोमिष्टान्नभुग्भु क्ते ज्वलदगारसंचयम् ।
वृकैर्भयकरै पृष्ठ तित्यमस्योपभुज्यते ।।८५।।

बोझ के कारण मस्तक मे वेदना पाते हुए क्षुधा-पिपासा से सदा पीडित रहते है, जिन्होने मल, मूत्र या कफ का जल मे त्याग किया है ।। ७९ ।। वह इस मल, मूत्र और कफ वाले दुर्गंधियुक्त नरक को प्राप्त हुए है तथा यह

जो क्षुधातुर होकर एक-दूसरे का मॉस भक्षण कर रहे है ।। ८० ।। इन्होने आतिथ्य सत्कार पूर्वक भोजन नही किया था । जिन आहिताग्नि मनुष्यो ने वेद तथा अग्नि का निरादर किया है ।। ८१ ।। वह इस पर्वत-शिखर से बारम्बार गिराये जाते है, जिन्होने दुबारा व्याही हुई पत्नी का स्वामित्व प्राप्त कर उसके साथ जीवन व्यतीत किया है ।। ८२ ।। वह कृमि रूप होकर चीटियो द्वारा खाये जारहे है, जिसने नीच पुरुष का दान ग्रहण अथवा सेवा या यजन किया है ।। ८३ ।। वह पत्थर के भीतर होने वाला कीट होता है, जो अतिथि, बधुओ और भृत्यो का तिरस्कार कर ।। ८४ ।। मिष्ठान्न का एकाकी भोजन करता है, वह यहाँ प्रज्वलित अगार भक्षण करता है तथा उसकी पीठ के मॉस को भयकर भेडिये नित्य भक्षण करते है ।। ८५ ।।

पृष्ठमांसंनृपैतेनयतोलोकस्यभक्षितम् ।
अधोऽथबधिरोमूकोभ्राम्यतेत्रक्षुधातुर ।।८६।।
अकृतज्ञोऽधम पुसामुपकारिषुवर्त्तते ।
अयकृतघ्नोमित्राणामपकारीसुदुर्मति ।।८७।।
तप्तकुभेनिपतितोविलपन्यातिशोषणम् ।
कम्भवालुकातस्मात्ततोयत्रावपीडनम् ।।८८।।
असिपत्रवनतस्मात्करपत्रेणपाटनम् ।
कालसूत्रेतथाच्छेदमनेकाश्चैवयातना ।।८९।।
प्राप्यनिष्कृतिमेतस्मान्नवेद्मिकथमेष्यति ।
श्राद्धेसगतिनोविप्रा समुपेत्यपरस्परम् ।।९०।।
दुष्टाहिनि नृतफेनसर्वागेभ्य पिबतिवै ।
सुवर्णस्तेयीविप्रघ्न सुरापोगुरुतल्पग ।।९१।।
अधश्चोर्ध्वचदीप्ताग्नौदह्यमाना समतत ।।९२।।

जिन्होने किसी की पीठ पीछे निन्दा की, वह यहाँ अधे, वधिर और मूक होकर क्षुधार्त्त घूमते है ।। ८६ ।। इस अधम ने उपकारी के प्रति कृतज्ञता प्रकट नही की अत यह दुर्बुद्धि कृतघ्न तथा मित्रो का अपकार करने वाला है ।। ८७ ।। इसीलिए तप्तकुम्भ मे डाला गया है, यह घोर विलाप करता है, इसके पश्चात् इसे पीसा जायगा, फिर तप्त बालूयन्त्र कीडा को भोग कर

॥ ८८ ॥ असिपत्र नरक मे खड्ग की धार मे सतप्त होगा, फिर कालसूत्र नरक मे अग-अग का छेदन होगा इस प्रकार अनेक विधि यत्रणा भोग कर ॥ ८९ ॥ किस प्रकार इससे मुक्त होगा, इसे मै नही जानता, इन दुष्ट ब्राह्मणो ने परस्पर श्राद्ध-भोजन किया था ॥ ९० ॥ इसलिए उन्हे सर्पो के सर्वाग से निकला हुआ फेन ही खाना पडता है। इसने सुवर्ण की चोरी की है, यह ब्रह्महत्यारा है, इसने मद्य पान किया है, इसने गुरु पत्नी का अपहरण किया है ॥ ९१ ॥ इसलिए यह चारो ओर से प्रज्वलित अग्नि मे दग्ध किये जाते है ॥ ९२ ॥

निः स्यब्दसहस्राणिसुबहूनितत पुन ।
जायन्तेमानवा कु क्षयरोगादिचिह्निता ॥९३॥
मृता पुनश्चनरकपुनर्जानाश्चताद्दृशम ।
व्याधिमृच्छन्तिकल्पान्तपरिमाणनराधिप ॥९४॥
गोघ्नास्त्यनतरयान्तिनरकेऽयत्रिजन्मनि ।
तथोपपातकन्यामसर्वेषामितिनिश्चय ॥९५॥
नरकप्रच्युतायान्तियर्याविहितपातकै ।
प्रयान्तियोनिजातानितन्मेनिगदत शृणु ॥९६॥

यहाँ हजारो वर्ष रह कर फिर क्षय, क्षण आदि रोगो से युक्त मनुष्य देह प्राप्त कर ॥ ९३ ॥ प्राण त्याग करके पुन नरक मे जाते है, इसी प्रकार बारम्बार जन्म-मरण को प्राप्त होते हुए कल्प के अन्त तक दुख भोगते है गो हत्या या दूसरे-दूसरे पाप उपपातक करने से तीन जन्म तक नीचे से भी नीचे नरक भोगने होते है, इसमे सदेह नही है ॥ ९५ ॥ अब वह वर्णन करता हूँ, जिस प्रकार नरक से पडे हुए जीव जिस-जिस योनी मे जाते है ॥ ९६ ॥

१५—नरकस्थोद्धार वर्णन

पतितात्प्रतिगृह्याथखरयोनिं व्रजेद्द्विज ।
नरकात्प्रविमुक्तस्तु कृमि पतितयाजक ॥१॥
उपाध्याय यत्व्यलीकन्तुकृत्वाश्वाभवतिद्विज ।
तज्जायामनसावाचातद्द्रव्यवापिकामयेत् ॥२॥

गर्दभोजायतेजन्तु पित्रोश्चाप्यवमानक ।
मातापितरावाक्रुश्यसारिकासम्प्रजायत ।।३।।
भ्रातु पत्न्यवमन्ताचकपोतत्वप्रपद्यते ।
तावेवपीडयित्वातुकच्छपत्वप्रपद्यते ।।४।।
भर्तृ पिण्डमुपाश्नन्यस्तदिष्ट ननिषेवते ।
सोऽपिमोहसमापन्नोजायतेवानरोमृत ।।५।।
न्यासापहर्त्तानरकाद्विमुक्तोजायतेकृमि ।
असूयकश्चनरकान्मुक्तोभवतिराक्षस ।।६।।

यमदूत ने कहा—पतित मनुष्य से धन लेने वाला ब्राह्मण गधे की योनि को प्राप्त होता है तथा पतित पुरुष को यज्ञ कराने पर नरक से मुक्त होकर कृमि-योनि पाता है ।। १ ।। उपाध्याय के प्रति छल करने, उसकी स्त्री या अन्य वस्तु की इच्छा करने से श्वान—योनी मिलती है ।। २ ।। माता-पिता का अपमान करनेवाला गधा और उन्हे गाली देने वाला मैना होता है ।।३।। भाई की पत्नी का अपमान करने वाला कबूतर होता है, उसे पीडित करने से कछुआ बनता है ।। ४ ।। स्वामी का पिण्ड भोजन करके जो उसका अभिलषित नही करता वह मोह मे भर कर मरणान्तर बन्दर बनता है ।। ५ ।। किसी की धरोहर हडपने वाला नरक से मुक्त होने पर कृमि होता है, असूया करने वाला नरकान्त मे राक्षस होता है ।। ६ ।।

विश्वासहन्ताचनरोमीनयोनौप्रजायते ।
धान्ययवास्तिलान्माषान्कुलत्थान्सर्षपाश्चणान् ।।७।।
कलायन्कलमान्मुद्गान्गोधूमानतसीस्तथा ।
सस्यान्यन्यानिवाहृत्वामोहाज्जन्तुरचेतन ।।८।।
सञ्जायतेमहावक्त्रोमूषिकोबभ्रुसन्निभ ।
परदाराभिमर्शात्तुवृकोघोरोऽभिजायते ।।९।।
श्वासृगालोबकोगृध्रोव्याल कङ्कस्तथाक्रमात् ।
भ्रातृभार्य्याचदुर्बुद्धिर्योऽर्षयतिपापकृत् ।।१०।।
पुस्कोकिलत्वमाप्नोतिसचापिनरकाच्च्युत ।
सखिभार्य्यागुरोर्भार्य्याराजभार्य्याचपापकृत् ।।११।।

प्रधर्षयित्वाकामात्मासूकरोजायतेनर ।
यज्ञदानविवाहानाविघ्नकर्त्ताभवेत्क्रमि ॥१२॥
पुनर्द्दतातुकन्याया क्रमिरेवोपजायते ।
देवतापितृविप्राणामदत्वायोऽन्नमश्नुते ॥१३॥

विश्वासघाती को मछली की योनी मिलती है तथा जो धान्य, जौ, तिल, उडद, कुलथी, सरसो, चना ॥ ७ ॥ कैथा, मूज, मूगा, गेहूँ या तीसी आदि हरण करता है वह मोह से मदमत्त होता है ॥ ८ ॥ तथा नौले जैसे दीर्घ मुख वाला मूसा होता है, परनारी से समागम करने वाला भयकर भेडिया बन जाता है ॥ ९ ॥ फिर॰ क्रमि श्वान, गीदड, बगुला, गृध्र, सर्प या काक बनता है तथा जो भाई की पत्नी से समागम करता है ॥ १० ॥ वह नरक के दु ख भोग कर कोयल होता है, जो मित्र की पत्नी या राजा की पत्नी ॥ ११ ॥ से समागम करते है, वे शूकर होते है, यज्ञ, दान या विवाह कार्य मे विघ्न उपस्थित करने वाले क्रमि होते है ॥ १२ ॥ एक बार दान की हुई कन्या किसी दूसरे को देने वाले मनुष्य भी क्रमि योनि पाते है तथा जो देवता, पितर, ब्राह्मण को जिमाये बिना स्वयं भोजन करता है वह नरक यातना भोगने के पश्चात् काक होता है ॥ १३ ॥

प्रमुक्तोनरकात्सोऽपिवायस सम्प्रजायते ।
ज्येष्ठ पितृसमवापिभ्रातरयोवमन्यते ॥१४॥
नरकात्सोपिविभ्रष्ट·क्रौचयोनौप्रजायते ।
शूद्रश्चब्राह्मणीगत्वाक्रमियोनौप्रजायते ॥१५॥
तस्यामपत्यमुत्पाद्यकाष्ठान्त कीटकोभवेत् ।
सूकर क्रमिकोमद्गुश्चण्डालश्चप्रजायते ॥१६॥
अकृतज्ञोऽधम पु साविमुक्तोनरकान्नर ।
कृतघ्न क्रमिक कीट पतङ्गोवृश्चिकस्तथा ॥१७॥
मत्स्यस्तुवायस कर्म पुल्कसोजायतेतत ।
अशस्त्र पुरुषहत्वानर संजायतेखर. ।
क्रमि स्त्रीवधकर्त्ताचबालहताचजायते ॥१८॥
भोजनचोरयित्वातुमक्षिकाजायतेनरः ।

तत्राप्यस्तिविशेषोवैभोजनस्यश्रृणुष्वतत् ॥१९॥
हृत्वादुग्धतुमार्जारोजायतेनरकाच्च्युत ।
तिलपिण्याकसमिश्रमन्न हृत्वातुमूपक ॥२०॥
घृतहृत्वातुनकुल काकोमद्गुरजामिषम् ।
मत्स्यमांसापहृत्काक श्येनोमेषामिषापहृत् ॥२१॥

तथा ज्येष्ठ भ्राता का अपमान करने वाला नरक के पश्चात् क्रौंच पक्षी होता है, ब्राह्मण मे गमन करने वाला शूद्र कृमि योनि मे जन्म लेता है ॥ १४-१५ ॥ ब्राह्मण के गर्भ से पुत्र उत्पन्न करने पर काठ के भीतर का कीडा, शूकर, कृमि, मल,-कृमि अथवा चाण्डाल होता है ॥ १६ ॥ जो मनुष्यो मे अधम तथा कृतज्ञता रहित है, वह नरक से मुक्त होकर कृमि, कीट, पतग, या । बिच्छू ॥ १७ ॥ मत्स्य, कौआ, कूर्म अथवा डोम योनि मे उत्पन्न होता है, किमी नि शस्त्र की हत्या करने पर गधे की योनि मिलती है, स्त्री या बालक, की हत्या करने वाला कृमि होता है ॥ १८ ॥ भोजन चुराने वाला मक्षिका, अव भोजन के विपय मे जो विशेप है, उसे सुनो ॥ १९ ॥ अन्न चुराने से नरक भोगने के पश्चात् बिल्ली होता है, तिल दाना मुक्त अन्न हरण करने वाला मूषक होता है ॥ २० ॥ घृत हरण करने वाला नौला, छाग के माँस चुराने वाला काक तथा मृग का मास चुराने वाला गिद्ध होता है ॥ २१ ॥

चिरीवाकस्त्वपहृतेलवणेदध्निवाकृमि ।
चोरयित्वापयश्चापिबलाकासप्रजायते ॥२२॥
यस्तुचोरयतेतैलतैलपायीसजायते ।
मधुहृत्वानरोदशोऽपूपहृत्वापिपीलिका ॥२३॥
चोरयित्वाहविष्यान्नं जायतेगृहगोधिका ।
आसवचोरयित्वातुतित्तिरित्वामवाप्नुयात् ॥२४॥
अयोहृत्वातुपापात्मावायस सप्रजायते ।
पात्रेकास्येपिहारीत कपोतोरौप्यभाजने ॥२५॥
हृत्वातुकाचनभाडकृमियोनौप्रजायते ।
कौशेयचोरयित्वातुचक्रवाकत्वमृच्छति ॥२६॥
कोशकारश्चकौशेयेहृतेवस्त्रे भिजायते ।

दुकूलेशाङ्गक पापोहृतेचैवांशुकेशुक ॥२७॥
ऋक्षश्चैवाविकहृत्वावस्त्र क्षौमचजायते ।
कार्पासिकेहृतेक्रौंचोवह्नि हर्ताबिक खर ॥२८॥

नमक चुराने वाला जलकाक, दही चुराने वाला कृमि और दूध चुराने वाला बगुला होता है ॥ २२ ॥ तेल चुराने वाला तेली, मधु चुराने वाला डाँस और पूडे चुराने वाला चीटी होता है ॥ २३ ॥ हविष्यान्न की चोरी करने वाला गोध और आसव चुराने वाला तीतर होता है ॥ २४ ॥ लोहा चुराने वाला काक, पात्र चुराने वाला हारीत तथा चादी का पात्र-चोर कबूतर बनता है ॥ २५ ॥ स्वर्ण पात्र का चोर कृमि बनता है, रेशम चुराने वाले को चकवे की योनि ग्रहण करनी होती है ॥ २६ ॥ कौशेय वस्त्र चुराने से कोशकार होता है, दुपट्टा चुराने वाला मोर तथा अकुश चुराने वाला तोता होता है ॥२७॥ ऊनी और अलसी के वस्त्र चुराने वाला रीछ,कपास चुराने वाला क्रौंच तथा अग्नि चुराने वाला बगुला या गधा होता है ॥ २८ ॥

मयूरोवर्णकान्हृत्वापत्रशाकचजायते ।
जीवञ्जीवकतायातिरक्तवस्त्रापहृन्नर ॥२९॥
छुच्छु दरीशुभान्गधान्वासोहृत्वाशशोभवेत् ।
खज पलालहरणेकाष्ठहृद्घुणकीटक ॥३०॥
पुष्पापहृद्दरिद्रस्तुपगुर्यानापहृन्नर ।
शाकहर्त्ताचहारीतस्तोयहर्त्ताचचातक ॥३१॥
भूमिहृन्नरकान्गत्वारौरवादीन्सुदारुणान् ।
तृणगुल्मलतावल्लीत्वक्सारतरुतांक्रमात् ॥३२॥
प्राप्यक्षीणाल्पपापस्तुनरोभवतिवैतत ।
वृषस्यवृषणौछित्त्वाषंडत्वप्राप्नुयान्नर ॥३३॥
परिहृत्यतथाभूयोजन्मनामेकविशति ।
कृमि कीट पतगोवापक्षीतोयचरोमृग ॥३४॥
गोत्वचप्राप्यचाडालपुल्कसादिजुगुप्सितम् ।
पग्वधोबधिर कुष्ठीयक्ष्मणाचप्रपीडित ॥३५॥
मुखरोगाक्षिरोगैश्चगुदरोगैश्चबाध्यते ।

अपस्मारीचभवतिशूद्रत्वचसंगच्छति ॥३६॥

मनुष्य वर्णक या शाक पत्र चुराता है, और लाल वस्त्र चुराने वाला चकवा चकवी होता है ॥ २९ ॥ श्रेष्ठ गध द्रव्य का चोर छछुन्दर होता है, वस्त्र चोर खरगोश होता है, पराल चोर गजा और काष्ठ चोर घुन होता है ॥ ३० ॥ पुष्प चोर दरिद्री यान चोर लँगडा, शाक चोर हारीत पक्षी और जल का चौर चातक होता है ॥ ३१ भूमि हरण करने वाला रौरव आदि घोर गरको मे भ्रमता हुआ तृण, गुल्म, लता, गल्ली तथा वृक्ष रूप मे उत्पन्न होता है ॥३२॥ इस प्रकार क्रम पूर्वक पापो के क्षीण होने पर मनुष्यो की योनी प्राप्ति हो पाती है, बैल को वधिया करने वाले को जन्मान्तर मे नपू शक होना होता है ॥ ३३ ॥ फिर इक्कीम जन्म तक कृमि, कीट, पतग जलचर, पक्षी, मृग ॥ ३५ ॥ और गाय की योनि प्राप्त करता है, फिर चाण्डाल या डोम आदि होकर लँगडा, अन्धा, वधिर, कुष्ठी तथा क्षयी होता है ॥ ३४ ॥ तथा मुख रोग, नेत्र रोग और गुह्य रोग से सतप्त होकर मृगी रोग से आक्रान्त होता हुआ शूद्र बनता है ॥ ३६ ॥

एषएवक्रमोदृष्टोगोसुवर्णादिहारिणाम् ।
विद्यापहारिणाचैवनिष्क्रियभ्र शिनागुरो ॥३७॥
जायामन्यस्यपारक्यापुरुष प्रतिपादयेत् ।
प्राप्नोतिषढतामूढोयातनाभ्य परिच्युत ॥३८॥
य करोतिनरोहोममसमिद्धे हुताशने ।
सोजीर्णघनदु.खार्तोमदाग्निरभिजायते ॥३९॥
परनिंदाकृतघ्नत्वपरमर्मोपघट्टनम् ।
नैष्ठुर्यनिर्घृणत्वचपरदारोपसेवनम् ॥४०॥
परस्वहरणाशौचदेवतानाचकुत्सनम् ।
निकृत्यावचनानृ णाकार्पण्यचनृणावध ॥४१॥
यानिचप्रतिषिद्धानितद्वृत्तिचप्रशसताम् ।
उपलक्षणानिजानीयान्मुक्तानानरकादनु ॥४२॥

जिसने सुवर्ण आदि वस्तु चुरायी है, उसकी भी यही दशा होती है जो विद्या का हरण करता है या गुरु के धन का अपहरण करता है ॥ ३७ ॥ उसे

भी ऐसे ही उग्र दु खो को भोगना पडता है तथा जो दूसरे की पत्नी लेकर किसी और को दे देता है, वह अनेक प्रकार के दु ख भोगता हुआ नपु सक हो जाता है ।। ३८ ।। समाधि के बिना अग्नि मे होम करने वाले को अजीर्ण और मदाग्नि सताती है ।। ३९ ।। परनिन्दा, कृतघ्नता, निष्ठुरता, परमर्म छेदन, परनारि का सेवन तथा लज्जाहीनता ।। ४० ।। परधन हरण, देवनिन्दा, अपवित्रता, कृपणता, ठगी, हिसा ।। ४१ ।। तथा अन्यान्य निषिद्ध कर्मों का करना और उन-उन विपयो मे प्रवृत्त होना, ऐसे मनुष्य के विषय मे समझलो कि नरक की यातनाएँ भोगकर ही उमने जन्म लिया है ।। ४२ ।।

दयाभूतेषुसद्वाद परलोकप्रतिक्रिया ।
सत्याभूतहिताचोक्तिर्वेदप्रामाण्यदर्शनम् ।।४३।।
गुरुदेवर्षिसिद्धर्षिपूजनसाधुसगम ।
सत्क्रियाभ्यसनमैत्रीचैतद्बुध्येतपडित ।।४४।।
अन्यानिचैवसद्धर्मक्रियाभूतानियानिच ।
स्वर्गच्युतानालिगानिपुरुपाणामपापिनाम् ।।४५।।
एतदुद्दे शतोराजन्भवत कथितमया ।
स्वकर्मफलभोक्तृणापुण्यानांपापिनातथा ।।४६।।
तदेह्यन्यत्रगच्छामोदृष्ट सर्वत्वयाधुना ।
त्वयाचदृष्टोनरकस्तदेह्यन्यत्रगम्यताम् ।।४७।।
ततस्तमग्रत कृत्वासराजागतुमुद्यत ।
ततश्चसर्वैरुत्कृष्ट यातनास्थायिभिर्नृ भि ।।४८।।
प्रसादकुरुभूपेतितिष्ठतावन्मुहूर्त्त कम् ।
त्वदगसगीपवनोमनोह्लादयतेहिन ।।४९।।
परितापचगात्रेषुपीडाबाधाचकृत्स्नश ।
अपहतिनरव्याघ्रकृपाकुरुमहीपते ।।५०।।

सव जीवो के प्रति दया, परलोकार्थ शुभ कर्म, दूसरो के हित के लिए भाषण, वेद के लिए भाषण, वेद के दृष्टान्त का देखना ।। ४३ ।। गुरु, देवता सिद्ध ऋषियो का पूजन, साधुओ का सग, सत्कर्म का अभ्यास, सब के प्रति मित्रता ।। ४४ ।। तथा अन्यान्य सत्कर्म जिसमे हो, उसे समझे कि स्वर्ग का

का सुख भोग करने के पश्चात् उसने जन्म धारण किया है ।। ३५ ।। अपने कर्म फल को भोगने वाले पुण्यात्माओं और पापियों के सम्पूर्ण विषय कौ मैंने आपके प्रति कह दिया है ।। ४६ ।। आपको भी नरक देखना पडा है, अब आप अन्यत्र चलिये ।। ४७ ।। पुत्र बोला—जैसे ही वह महाराज यमदूत को आगे करके चलने को हुए वैसे ही नरक मे पडे सब जीव ऊँचे स्वर से क्रन्दन करते हुए बोले ।। ४८ ।। हे राजन् ! प्रसन्न हूजिये, एक मुहूर्त भर यहाँ ठहरिये, आपके ससर्ग वाली वायु मे हमारा चित्त अत्यन्त आह्लाद पूर्ण होरहा है ।। ४६ ।। इस वायु ने हमारे अङ्ग-अङ्ग का परिताप हर दिया है, अत हे पृथिवीपते ! हमारे ऊपर दया कीजिये ।। ५० ।।

एतच्छ्रुत्वावचस्तेपातयाम्यपुरुषतत ।
पप्रच्छकथमेतेपामाह्लादोमयितिष्ठति ।।५१।।
किमयाकर्मतत्पुण्यमर्त्यलोकेमहत्कृतम् ।
अह्लाददायिनीव्युष्टिर्यस्येयतदुदीरय ।।५२।।
पितृदेवातिथिप्रेष्यशिष्टेनान्नेनतेतनु. ।
पुष्टिमभ्यागतायस्मात्तद्गतचमनोयत ।।५३।।
ततस्त्वद्गात्रससर्गीपवनोह्लाददायक ।
पापकर्मकृतोराजन्यातनानप्रबाधते ।।५४।।
अश्वमेधादयोयज्ञास्त्वयेष्टाविधिवद्यत ।
ततस्त्वद्दर्शनाद्याम्यायत्रशस्त्राग्निवायसा ।।५५।।
पीडनच्छेददाहादिमहादु खस्यहेतव ।
मृदुत्वमागताराजस्तेजसोपहतास्तव ।।५६।।

उनके यह बचन सुन कर राजा ने यमदूत से पूछा—मेरे यहाँ खडे होने से यह इतने सुखी क्यो हो रहे हे ? ।। ५१ ।। मर्त्यलोक मे ऐसा कौन सा पुण्य मैंने किया है, जिससे मेरे कारण इन पर ऐसा आनन्द देने वाली वृष्टि हो रही है ? ।। ५२ ।। यमदूत ने कहा--हे राजन् ! पहिले आपने देवता,पितर, अतिथि, सयासी आदि को भोजन देकर उससे बचा हुआ अन्न खाकर अपनी उदर पूर्ति की थी,और आपका चित्त इसीमे रत था अत हर समय आपके देह के ससर्ग वाली वायु से इन पापियो की सब यातनाएँ मिट रही है ।।५४।। आपनें

अश्वमेध आदि यज्ञ विधिवत् किये है, इसलिए सम्पूर्ण महादु खो के कारण रूप यम के यत्र, अग्नि, शास्त्र, काक तथा अन्य पक्षियो ने आपके दर्शन से हत होकर कोमलता मे प्रवृत्ति की है ।। ५५-५६ ।।

नस्वर्गेब्रह्मलोकेवातत्सुखप्राप्यतेनरै ।
यदार्त्त जतुनिर्वाणदानोत्थमितिमेमति ।।५७।।
यदिमत्सन्निधावेतान्यातनानप्रबाधते ।
ततोभद्रमुखाऽत्राहस्थास्येस्थाणुरिवाचल ।।५८।।
एहिराजेन्द्रगच्छामिनिजपुण्यसमार्जितान् ।
भु क्ष्वभोगास्तुभुज्यतुयातना.पापकर्मिण ।।५९।।
तस्मान्नतावद्यास्यामियावदेतेसुदु खिता ।
मत्सन्निधानात्सुखिनोभवतिनरकौकस ।।६०।।
धिक्तस्यजीवितंपु स.शरणार्थिनमागतम् ।
योनार्त्त मनुगृह्णातिवैरिपक्षमपिध्रुवम् ।।६१।।
यज्ञदानतपासीहपरत्रचनभूतये ।
भवतितस्ययस्यार्त्त परित्राणेनमानसम् ।।६२।।
नरस्ययस्यकठिनमनोबालातुरादिषु ।
वृद्धेषुचनतमन्येमानुषराक्षसोहिस ।।६३।।

राजा बोले—मेरा विचार है कि जो सुख दुखियो की रक्षा मे मिलता है, वह स्वर्ग या ब्रह्मलोक मे भी नही मिलता ।। ५७ ।। यदि मेरे यहाँ खडे रहने मात्र से इनकी यत्रणा नष्ट होरही है तो मै अचल होकर यही निवास करूँगा ।। ५८ ।। यमदूत ने कहा—राजन् ! आप चलिए, अपने पुण्य से सचित सब शुभ फलो को भोगिये, यह स्थान तो पापात्माओ के के दु ख भोगने के लिए ही है ।। ५९ ।। राजा बोले—जब तक यह घोर दु ख पायेगे, तब तक मै नही जाऊँगा, क्योकि मेरे यहाँ रहने से इन सब को सुख मिलता है ।। ६० ।। यदि शत्रु भी दु ख से आतुर होकर शरण मे आवे तो जो उस पर कृपा न करे उसे धिक्कार है ।। ६१ ।। जिसका चित्त आर्त्त पुरुष की रक्षा मे नही है, उसके यज्ञ, दान, तप सब कुछ लोक-परलोक मे सुख नही पहुँचा सकते ।। ३२ ।। बाल, वृद्ध, आतुर आदि के प्रति कठोर चित्त वाले मनुष्य तो राक्षस

ही है । ऐसा समझो ॥६३॥

एषामत्सन्निकर्षात्तु यद्यग्निपरितापजम् ।
तथोग्रगधजवापिदु खनरकसभवम् ॥६४॥
क्षुत्पिपासोद्भवदु खयच्चमूर्च्छाप्रदमहत् ।
विनाशमेतितद्भद्रमन्येस्वर्गसुखात्परम् ॥६५॥
प्राप्स्यतेतेयदिसुखबहवोदु खितेमयि ।
किवाप्राप्तमयानस्यात्तस्मात्त्ववदमाचिरम् ॥६६॥
एषधर्मश्चशक्रश्चत्वानेतु समुपागतौ ।
अवश्यमस्माद्गन्तव्यंतस्मात्पार्थिवगम्यताम् ॥६७॥
नयामित्वामहस्वर्गत्वयासम्यगुपासित ।
विमानमेतदारुह्यमाविलबस्वगम्यताम् ॥६८॥
नरकेमानवाधर्मपीडचमाना.सहस्रश ।
त्राहीत्यमीचक्रदतिमामतोनव्रजाम्यहम् ॥६९॥
कर्मणानरकप्राप्तिरेषापापिष्ठकर्मणाम् ।
स्वर्गस्त्वयापिगतव्योनृपपुण्येनकर्मणा ॥७०॥

यद्यपि इनके पास रह कर मुझे नरकाग्नि के भीषण ताप से उत्पन्न तीव्र गध का दुःख झेलना पडेगा ॥ ३४ ॥ क्षुधा-पिपासा से उत्पन्न मूर्च्छादायक दु ख भोगना होगा,फिर भी इनकी रक्षा के विचार से मै उस महादु ख को भी स्वर्ग सुख से बढ कर समझूँगा ॥ ६५ ॥ यदि मेरे दु ख पाने मात्र से दु खी प्राणियो को सुख मिलेगा ? इसलिए हे यमदूत ! तुम यहाँ से चले जाओ, देर मत करो ॥ ६६ ॥ यमदूतो ने कहा—राजन् ! यह इन्द्र ओर धर्म आपको स्वर्ग मे लेजाने के निमित्त उपस्थित हुए है, आपको यहाँ से अवश्य जाना होगा, इस लिए यहाँ से चलिये ॥ ६७ ॥ धर्म ने कहा—राजन् ! आपने भले प्रकारसे मेरी उमासना की है, इसलिए मै आपको स्वर्ग मे ले जाऊँया, अब आप देर न करे, इस विमान मे शीघ्र ही बैठे ॥ ६८ ॥ राजा ने कहा—हे धर्म ! हजारो मनुष्य इस नरक मे पडे हुए आर्तनाद कर रहे है, इसलिए मै इस स्थान को छोड कर नही जा सकता ॥ ६९ ॥ इन्द्र बोले—इन पापियो को स्वकर्म फल से यह नरक-यातनाएँ भोगनी पड रही है, आपको अपने पुण्य फल से स्वर्ग

मे जाना चाहिए ॥ ७० ॥

यदिजानासिधर्मंत्वत्ववादेवशतक्रतो ।
ममयावत्प्रमाणतुशुभतद्वक्तुमर्हथ ॥७१॥
अब्बिन्दवोयथाभोधौयथावादिवितारका ।
यथावावर्षतोधारागगायासिकतायथा ॥७२॥
असख्येयामहाराजन्नानायोनिषुजतव ।
तथातवापिपुण्यस्यसख्यानैवोपपद्यते ॥७३॥
अनुकपामिमामद्यनारकेष्विहकुर्वता ।
तदेवशतसाहस्रसख्यानीतत्वयानृप ॥७४॥
तद्गच्छत्वनृपश्रेष्ठतद्भोक्तुममरालयम् ।
एतेतुनरकेपापक्षपयतुस्वकर्मजम् ॥७५॥
कथस्पृहाकरिष्यतिमत्सपर्कायमानवा ।
यदिमत्सनिधावेषामुत्कर्पोनोपपद्यते ॥७६॥
तस्माद्यत्सुकृतकिचिन्ममास्तित्रिदशाधिप ।
मुच्यतातेननरकात्पापिनोयातनागता ॥७७॥

राजा ने कहा—हे धर्म ! हे देवेन्द्र ! मेरा सचित पुण्य कितना है, यदि आपको ज्ञात हो तो मुझे बताइये ॥ ७१ ॥ धर्म बोले—राजन् ! समुद्र मे जितने जल-बिन्दु है, आकाश मे जितने तारे है, वर्पा मे जितनी जल-धारे है, तथा गगा मे जितनी बालू है, आपका उतना ही पुण्य है ॥ ७२ ॥ जिस प्रकार जल बिन्दु की गणना नही की जासकती उसी प्रकार आपका पुण्य भी सख्यातीत है ॥७३॥ तथा अब इन नरक वासियो के प्रति दया प्रकट करने से आपका पुण्य भी शतक सहस्र गुणा अधिक होगया है ॥ ७४ ॥ इसलिए आप अपने पुण्य का फल भोगने को वहाँ चले और यह पापी भी नरक मे रह कर अपने पापो को नष्ट करे ॥ ७५ ॥ राजा बोले—यदि मेरी निकटता से इन्हे कुछ सुख न हुआ होता तो यह मेरे साथ की अभिलाषा ही क्यो करते ? ॥ ७६ ॥ इसलिए मेरा जो कुच पुण्य है, उसी के द्वारा यह नरक-यातना को प्राप्त करने वाले पापी नरक से मुक्त हो ॥ ७७ ॥

एवमूर्ध्वतरस्थानत्वयाप्राप्तमहीपते ।

एतास्तुनरकात्पश्यविमुक्तान्पापकर्मिण ॥७८॥
ततोपतत्पुष्पवृष्टिस्तस्योपरिमहीपते ।
विमानचाधिरोप्यैनस्वर्लोकमनयद्धरि ॥७९॥
अहचान्येचयेतत्रयातनाभ्य परिच्युता ।
स्वकर्मफलनिर्दिष्ट ततोयोन्यतरगताः ॥८०॥
एवमेतेसमाख्यातानरकाद्विजसत्तम ।
येनयेनचपापेनयायायोनिमुपैतिवै ॥८१॥
तत्तत्सर्वसमख्यातयथादृष्ट मयापुरा ।
पुरानुभवजज्ञानमवाप्यकथिततव ।
अत परमहाभागकिमन्यत्कथयामिते ॥८२॥

इन्द्र बोले-हे राजन् ! इससे आपको और भी उच्च स्थान प्राप्त हुआ, यह देखिये सब पापी नरक से मुक्त होगए ॥ ७८ ॥ पुत्र बोला--फिर उन राजा के ऊपर पुष्प वृष्टि होने लगी और सुरपति उन्हे विमान मे चढा कर स्वर्गलोक को लेगये ॥ ७९ ॥ इधर मैंने भी अन्य नरकीयो सहित यन्त्रणा से मुक्त होकर स्वस्वकर्म के अनुसार विभिन्न योनियो मे जन्म धारण किया ॥ ८० ॥ हे द्विजोत्तम ! इन नरको की सब बात आपके प्रति यथार्थ रूप मे कहदी और यह भी बता दिया कि किस योनि में जाना होता है ॥ ८१ ॥ जो कुछ पूर्वकाल मे मैने देखा वह सब आप से कह दिया इस सब का मैने स्वय अनुभव किया हे, इसलिए यह नितान्त सत्य है, अब और क्या कहूँ, यह मुझे आज्ञा दीजिये ॥ ८२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्र सवादे पञ्चदशोऽध्याय ॥ १५ ॥

१६—दत्तात्रेय माहात्म्य वर्णन

कथितमेत्वयावत्ससंसारस्यव्यवस्थितम् ।
स्वरूपमपिदेहस्यघटीयत्रवदव्ययम् ॥१॥
तदेवमेतदखिलममावगतमीदृशम् ।
किमयावदकर्त्तव्यमेवमस्मिन्व्यवस्थिते ॥२॥
यदिमद्वचनंतातश्रद्धास्यविशकित ।

तत्परित्यज्यगार्हस्थ्यवानप्रस्थमनाभव ।।३।।
तमनुष्ठायविधिवद्विहायाग्निपरिग्रहम् ।
आन्मन्यात्मानमाधायनिर्द्वंद्वोनिष्परिग्रह ।।४।।
एकातशीलोवश्यात्माभवभिक्षुरतद्रित ।
तत्रयोगपरोभूत्वाबाह्यस्पर्शविवर्जित ।।५।।
तत प्राप्स्यसितयोगदु खसयोगभेषजम् ।
मुक्तिहेतुमनौपम्यमनाख्येयमसज्ञितम् ।।६।।
तत्सयोगान्नतेयोगोभूयोभूतैर्भविष्यति ।
वत्सयोगसमाचक्ष्वमुक्तिहेतुमत परम् ।।७।।
येनभूतै पुनर्भूतोनेदृग्दु खमवाप्नुयाम् ।
यत्रासक्तिपरस्यात्माममससारबधनै ।।८।।

पिता बोले—हे वत्स ! तुमने घटी यत्र के समान निरतर चलते हुए ससार चक्र का अतिशय स्वरूप तुमने मुझे बताया ।। १ ।। अब मुझे ज्ञान होगया कि सब ऐसा ही है, अब मुझे क्या करना उचित है ? ।। २ ।। पुत्र ने कहा—यदि आप शका रहित मन से मेरी बात माने तो गृहस्थाश्रम का त्याग कर वानप्रस्थ हो जाइये ।। ३ ।। विधान के अनुसार अग्नि परिग्रह त्याग, आत्मा मे आत्मा का सयोग स्थापित करके द्वन्द्व रहित और परिग्रह-रहित हो जाइये ।। ४ ।। एकान्त मे रह कर आत्मा को वश मे कर आलस्य त्याग करिये, इस प्रकार जब बाह्य स्पर्श से परे होगे ।। ५ ।। तब आप मोक्ष-कारण, निरुपम वचनातीत, नि सग, दु ख के लिए औषधि स्वरूप इस योग को प्राप्त करेगे ।। ६ ।। इस योग के सयोग से पचभूत के साथ आपकी पुनः सगति नही होगी, पिता बोले—अब तुम मोक्ष के कारण रूप उस योग का वर्णन करो ।। ७ ।। जिसके अवलम्बन से भौतिक सयोग युक्त पुनर्जन्म का दु ख मुझे फिर कभी न भोगना पडे, यद्यपि आत्मा निर्लिप्त है फिर भी ससार के विषयो मे इसकी आसक्ति है ।। ८ ।।

नेतियोगमयोगोपितयोगमधुनावद ।
ससरादित्यतापार्त्तिविप्लुष्यद्देहिमानसम् ।।९।।
ब्रह्मज्ञानाबुशीतेनसिचमावाक्यवारिणा ।

अविद्याकृच्छ्रसर्पेणदष्ट तद्विषपीडितम् ॥१०॥
स्ववाक्यामृतदानेनमाजीवयपुनर्मृतम् ।
पुत्रदारगृहक्षेत्रममत्वनिगडार्दितम् ॥११॥
मामोच्चयेष्टसद्भावविज्ञानोद्घाटनैश्चिरम् ।
श्रृणुतातयथायोगोदत्तात्रेयेणधीमता ॥१२॥
अलर्कायपुराप्रोक्त सम्यक्पृष्टेनविस्तरात् ।
दत्तात्रेयस्सुत.कस्यकथवायोगमुक्तवान् ॥१३॥
कश्चालर्कोमहाभागोयोयोगपरिपृष्टवान् ।
कौशिकोब्राह्मण कश्चित्प्रतिष्ठानेभवत्पुरे ॥१४॥
सोन्यजनकृतै पापै कुष्ठरोगातुरोभवत् ।
ततथाव्याधितभार्यापतिदेवमिवार्चयत् ॥१५॥

इसलिए विषयो को पाकर आत्मा उन विषयो मे न लगे, हे वत्स ! मेरा मन और शरीर भव रूप भास्कर के ताप से तप्त है ॥ ९ ॥ तुम ब्रह्मज्ञान मय वचन रूप जल से उस ताप को ठडा करो, मुझे अविद्या रूपी कालसर्प ने दशित किया है, उसकी पीडा मे मै मृतक के तुल्य हो रहा हूँ ॥ १० ॥ तुम अपने वचनामृत से मुझे पुनर्जीवित करो, मै पुत्र, भार्या, घर खेत आदि की ममता रूप बेडियो मे जकडा हुआ हूँ ॥ ११ ॥ तुम सद्भाव ज्ञान के द्वारा मुझे उससे मुक्त करो । पुत्र ने कहा—पुरा काल मे अलर्क द्वारा प्रश्न करने पर दत्तात्रेय जी ने जो योग उसे विस्तार सहित बताया था, उसे कहता हूँ, । पिता बोले—दत्तात्रेयजी किसके पुत्र थे, और उन्होने योग का वर्णन किस प्रकार किया था ॥ १२-१३ ॥ तथा योग का प्रश्न करने वाले अलर्क कौने थे ? पुत्र ने कहा—प्रतिष्ठान नगर मे एक कुशिक वशी ब्राह्मण रहता था ॥ १४ ॥ वह पूर्वजन्म के पाप से कुष्ठी होगया, अति कुष्ठ से आक्रान्त होने पर भी उसकी पत्नी देवता के समान उसका पूजन करती थी ॥ १५ ॥

पादाभ्यगागसवाहस्नानाच्छादनभोजनै ॥
श्लेष्ममूत्रपुरीषासृक्प्रवाहक्षालनेनच ॥१६॥
रहस्येवोपचारेणप्रियसमाषणेनच ।
सततपूज्यमानोपितयातीवविनीतया ॥१७॥

अतितीव्रप्रकोपत्वान्निर्भर्त्सयतिदारुण ।
तथापिप्रणतासाध्वीतममन्यतदैवतम् ॥१८॥
ततथाप्यतिवीभत्ससर्वश्रेऽममन्यत ।
अचक्रमणशीलोपिसकदाचिद्द्विजोत्तम ॥१६॥
प्राहभार्यानियस्वेतित्वमातस्यानिवेशनम् ।
यासावेश्यामयादृष्टाराजमार्गेगृहेसता ॥२०॥

वह तेल मलती, चरण दावती, आच्छादन करती, भोजन कराती और ओर मल, मूत्र, कफ, रक्त आदि को धोती थी ॥ १६ ॥ तथा निर्जन मे प्रिय भापण और विनीत भाव के सहित उमका आदर सहित उसका पूजन करती थी ॥ १७ ॥ परन्तु वह ब्राह्मण अत्यन्त क्रोधी था, विनीत भाव वाली पत्नी से पूजित होकर भी झिडकी देता रहता था, फिर भी वह देवता मानती थी ॥१८॥ वह उस वीभत्स स्वरूप के ब्राह्मण को सदा सर्वश्रेष्ठ मानती थी। एक समय उस ब्राह्मण मे चलने तक की शक्ति न थी तो भी ॥ १६ ॥ उस अपनी पत्नी से कहा—वह वेश्या राजमार्ग के पाशर्ववर्ती गृह मे रहती है, मैने उसे देखा है ॥ २० ॥

तामेप्रापयधर्मज्ञेसैवमेहृदिवर्त्तते ।
दृष्टासूर्योदयेबालारात्रिश्चे यमुपागता ॥२१॥
दर्शनानतरसामेहृदयान्नपसर्पति ।
यदिसाचारुसर्वागीपीनश्रोणिपयोधरा ॥२२॥
नोपगूहतितन्वगीतन्माद्रक्ष्यतिवैमृतम् ।
वाम कामोमनुष्याणाबहुभि प्राप्यचेतस ॥२३॥
ममाशक्तिश्चगमनेसकुलप्रतिभातिमे ।
तत्तदावचनश्रुत्वाभर्त्तु कामातुरस्यसा ॥२४॥
तत्पत्नीव्याकुलाजातामहाभागापतिव्रता ।
गाढपरिकरबद्ध्वाशुक्लमादायचाधिकम् ॥२५॥
स्कधेभर्त्तारमारोप्यजगाममृदुगामिनी ।
निशिमेघावृतेव्योम्निचलद्विद्युच्चदृश्यते ॥२६॥
राजमार्गेप्रियभर्त्तुश्चिकीर्षतीद्विजागना ।

पथिशूलेतदाप्रोतमचोरचोरशकया ।।२७।।
माण्डव्यमतिदु खार्तमधकारेचसद्विज ।
पत्नीस्कधसमारूढश्चालयामासकौशिक ।।२८।।

तू मुझे उस वेश्या के घर ले चल, वह मेरे हृदय मे निरन्तर बसी रहती है, मैंने प्रात काल उसे देखा था, अब रात्रि का समय हो गया है ।। २१ ।। जब मैंने उसे डेखा है तभी से वह मेरे हृदय से पृथक् नही हो रही है, यदि पुष्ट पयोधरा ।। २२ ।। बाला मुझसे न मिलेगी तू अवश्य ही मरण मृत देखेगी, क्योकि प्रथम तो कामदेव मनुष्यो के अनुकूल ही नही है ।। २३ ।। उस पर भी अनेको मनुष्य उसके भक्त है, मुझमे चलने को सामर्थ्य नहीहै, इससे और भी विषय सकट प्रतीत होरहा है, उम कामातुर पति देव की यह बात सुन कर ।। २४ ।। वह पतिव्रता व्याकुल होगई फिर भी उसने बहुत-सा धन लेकर ।। २५ ।। पति को अपने कधे पर चढाया और धीरे-धीरे चल पडी, एक तो अँधेरी रात, दूसरे आकाश मे बादल छाये हुए थे, वह बिजली की चमक मे अपने पति के प्रिय कार्य के लिए राजमार्ग मे चल दी, उसी मार्ग मे शूल गढी हुई थी जिम पर चोरी के मिथ्या अपराध मे ।। २६-२७ ।। मुनिवर चढ़े हुए दु ख भोग रहे थे, मार्ग मे अँधेरा होने मे पत्नी के कन्धे पर स्थित कौशिक ब्राह्मण का भूमि से स्पर्श हुआ और पैर विचलित होगया ।। २८ ।।

वामागेनाथसक्रुद्धोमाडव्यस्तमुवाचह ।
येनाहमेवमत्यर्थदु खितश्चालितोवृथा ।।२९।।
इत्थकष्टमनुप्राप्त सपापात्मानराधम ।
सूर्योदयेऽवश प्राणैर्वियोक्ष्यति न सशय ।।३०।।
भास्करालोकनादेवसविनाशमवाप्स्यसि ।
तस्यभार्याततश्रुत्वातशापमतिदारुणम् ।।३१।।
प्रोवाचव्यथितासूर्योनैवोदयमुपेष्यति ।
तत सूर्योदयाभावादभवत्सततानिशा ।।३२।।
बहून्यह प्रमाणानिततोदेवाभययु ।
नि स्वाध्यायवषट्कारस्वधास्वाहाविवर्जितम् ।।३३।।
कथनुखल्विदसर्वनगच्छेत्सक्षयजगत् ।

अहोरात्रव्यवस्थायाविनामासर्तुसक्षय॰ ॥३४॥
तत्सक्षयान्नत्वयनेज्ञायेतेदक्षिणोत्तरे ॥३५॥

जिसमे मॉडव्य मुनि ने क्रोध से कहा कि जिसने मेरा पैर विचलित करके मुझे व्यर्थ ही ॥ २६ ॥ यत्रणा दी है वह पा ी सूर्योदय होते ही असह्य यत्रणा भोगता हुआ मृत्यु को प्राप्त होगा ॥ ३० ॥ सूर्य के उदय होते ही उस का प्राण अवश्य चला जायगा, इस दारुण ने शाप को सुन कर उसकी पत्नी ने अत्यन्त व्यथित होकर कहा कि अब सूर्य ही उदय नही होगे, उस पतिव्रता के इस वचन मे सूर्योदय नही हुआ और इस प्रकार अनेक रात्रियाँ हुई देख कर देवता भी भयभीत होकर ॥ ३२ ॥ विचार करने लगे कि स्वाध्याय, वषट्कार स्वधा और स्वाहा के इस प्रकार लुप्त होने से विश्व की रक्षा कैसे होगी ? ॥ ३३ ॥ अहोरात्र की व्यवस्था टूट जाने से मास और ऋतु का विभाग न होगा, जिसके कारण उत्तरायण या दक्षिणायन ज्ञान भी न हो पायगा ॥ ३४-३५ ॥

विनाचायनविज्ञानकाल सवत्सर कुत ।
पतिव्रतायावचनान्नोद्गच्छतिदिवाकर ॥३६॥
सूर्योदयविनानैवस्नानदानादिका क्रिया ।
अग्नेर्विहरणचैवक्रत्वभावश्चलक्ष्यते ॥३७॥
नकालेनविनाचेष्टिर्नचयज्ञादिका क्रिया ।
नश्यतिसर्वभूतानितमोभूते चराचरे ॥३८॥
नैवाप्यायनमस्माकविनाहोमेनजायते ।
वयमाप्यायितामर्त्यैर्यज्ञभागैर्यथोचितै ॥३९॥
वृष्ट्यादिनानुगृह्णीमोमर्त्यान्सस्याभिवृद्धये ।
निष्पादितास्वौषधीषुमर्यायज्ञैर्यजतिन ॥४०॥
एववयंप्रयच्छाम कामान्यज्ञादिपूजिता ।
अधोहिवर्षामवयमर्त्याश्चोर्ध्वप्रवर्षिण ॥४१॥

यह ज्ञान न होने से सवत्सर का स्थिर करना सभव न होगा, तथा अन्यान्य कालो का ज्ञान भी कैसे हो सकेगा ? अब उस पतिव्रता के वचन से सूर्योदय ही रुक गया है ॥ ३६ ॥ सूर्योदय के अभाव मे स्नानादि कार्य, हवन

तथा सम्पूर्ण यज्ञो का अभी अभाव हो ही गया है ।। ३७ ।। काल के अभाव मे इष्टि तथा यज्ञदानादि क्रिया नही हो सकती तथा अन्धकार से व्यस्त होकर सब जीव नाश को प्राप्त होरहे है ।। ३८ ।। यज्ञ के बिना हमारी तृप्ति का भी अन्य उपाय नही है, क्योकि यज्ञ भाग देकर ही मनुष्य हमे तृप्त करते है ।। ३९ ।। हम भी अन्नादि की उमलब्धि के लिए वृष्टि करके उन पर अनुग्रह करते है, औषधियो के उत्पन्न होने पर ही उनके द्वारा यज्ञ किये जाते है ।। ४० ।। उनके पूजन से सतुष्ट होकर हम इच्छित देते है, हम नीचे की ओर जल बरसाते और वे ऊपर की ओर घृत बरसाते है ।। ४१ ।।

तोयवर्षेणहिवयहविर्वर्षेणमानवा ।
येस्माकनप्रयच्छतिनित्यनैमित्तिकी क्रिया ।।४२।।
क्रतुभागदुरात्मान स्वयवाश्नतिलोलुपा· ।
विनाशायवयतेषातोयसूर्याग्निमारुता ।।४३।।
क्षितिचसदूपयाम पापानामपकारिणाम् ।
दुष्टतोयादिदोषेणतेषादुष्कृतकर्मणाम् ।।४४।।
उपसर्गा प्रवर्त्तन्तेमरणायसुदारुणा ।
येत्वस्मान्प्रीणयित्वातुभुजतेशेषमात्मना ।।४५।।
तेषापुण्यतमॉल्लोकान्वितरामोमहात्मनाम् ।
तन्नास्तिसर्वमेतद्धिनचोपायव्यस्थितम् ।।४६।।
कथंनुदिनसग स्यादन्योन्यमवदन्सुरा ।
तेषामेवसमेतानायज्ञव्युच्छित्तिशकिनाम् ।।४७।।
देवानावचनश्रुत्वाप्राहदेव प्रजापति ।
तेज परतेजसैवतपसाचतपस्तथा ।।४८।।

हम जल वृष्टि से और मनुष्य हवि देकर परस्पर प्रसन्न होते है तथा जो नित्य नैमित्तिक क्रिया हमको अर्पण नही करते ।। ४२ ।। अर्थात् जो नित्य नैमित्तिक क्रिया हमे न देकर यज्ञ भाग को स्वय ही खा जाते है, उनके विनाशार्थ हम जल, अग्नि, सूर्य, वायु, ।। ४३ ।। और पृथिवी को दूषित कर देते हैं, जिससे उन पापियो को ।। ४४ ।। नष्ट करने वाले दारुण रोग उत्पन्न होते हैं, परन्तु जो हमे तृप्त करके शेष मात्र का भोजन करते है ।। ४५ ।।

उन महात्माओ को हम पुण्यमय स्थान प्रदान करते है, परन्तु, इस समय तो वह सब कार्य अवरुद्ध है और उमका कोई उपाय भी दिखाई नही दे रहा है ।। ४६ ।। इस दग्ध सृष्टि की स्थिरता कैसे हो ? दिन किस प्रकार प्रकटे ? यज्ञ के नष्ट होने की शका करते हुए देवगण परस्पर इस प्रकार कहने लगे ।। ४७ ।। उनके ऐमे वचनोको सुनकर देवोत्तम प्रजापति ब्रह्माजी बोले ।। ४८ ।।

प्रशाम्यत्यमरास्तस्माच्छृणुध्ववचनमम ।
पतिव्रतायामाहात्म्यान्नोद्गछतिदिवाकर ।।४९।।
तस्यचानुदयाद्धानिर्मर्त्यानाभवतायथा ।
तस्मात्पतिव्रतामत्रेरनसूयातपस्विनीम् ।।५०।।
प्रसादयतवैपत्नीभानोरुदयकाम्यया ।
तै साप्रसादितागत्वाप्राहेष्ट व्रियतामिति ।।५१।।
अयाचतदिनदेवाभवत्वितियथापुरा ।
पतिव्रतायामहात्म्यनहीयेतकथत्विति ।।५२।।
समान्यतातथासाध्वीतथाप्रेष्याम्यहसुरा ।
यथापुनराहोरात्रसस्थानमुपजायते ।।५३।।
यथाचतस्या सपतिर्नशापान्नाशमेष्यति ।
एवमुक्त्वासुरास्तस्यागत्वासामदिरशुभा ।।५४।।
उवाचकुशलपृष्टाधर्मभर्तुस्तथात्मन ।
कच्चिन्न दसिकल्याणिस्वभर्तु मुखदायिनी ।।५५।।
कच्चिच्चाखिलदेवेभ्योमन्यसेह्याधिकपतिम् ।
भर्तु शुश्रूषणादेवमयाप्राप्त महत्फलम् ।।५६।।

परम तेज और तप से ही तप का विनाश होता है, इसलिए मेरी बात सुनो उस पतिव्रता की महिमा से सूर्योदयन ही हीरहा है, सूर्योदय के अभाव से तुम्हारी और मनुष्यो की हानि है, यदि तुम सूर्योदय चाहते हो तो महर्षि अत्रि की पत्नी अनुसूया को ।। ४९-५० ।। प्रसन्न करो । पुत्र ने कहा—तब देवताओ ने जाकर अनुसूया को प्रसन्न किया इसके पश्चात् अनुसूया ने कहा—तुम इच्छित विषय बताओ ।। ५१ ।। देवताओ ने कहा—पहिले के समान

सूर्योदय होजाय अनुसूया बोली—पतिव्रता की महिमा कभी नष्ट नही हो सकती ।। ५२ ।। फिर भी मै उस पतिव्रता के सम्मान पूर्वक ऐसा उपाय करूँगी, जिससे दिन निकल आवे ।। ५३ ।। और उसका पति भी शाप के कारण मृत्यु को प्राप्त न हो, ऐसा कह कर अनुसूया उसके घर गई ।। ५४ ।। और उसकी यथा उसके स्वामी की कुशल पूछी—हे स्वामी को सुख देने वाली ! तुम उनका मुख देखने से प्रसन्न तो रहती हो ? ।। ५५ ।। तथा अपने स्वामी को देवताओ से भी श्रेष्ठ मानती हो, मैं भी अपने स्वामी की सेवा से ही महाफल को प्राप्त हुई हूँ ।। ५६ ।।

सर्वकामफलावाप्ति पत्यु शुश्रूपणात्स्त्रिया ।
पचर्णानिमनुष्येणसाध्विदेयानिसर्वदा ।।५७।।
तथात्मवर्णधर्मेणकर्तव्योधनसचय ।
प्राप्तश्चार्थस्तथापात्रेविनियोज्योविधात· ।।५८।।
सत्यार्जवतपोदानदयायुक्तोभवेत्सदा ।
क्रियाचशास्त्रनिर्दिष्टारागद्वेषविवर्जिता ।।५९।।
कर्त्तव्याहररह श्रद्धापुरस्कारेणशक्तित ।
स्वजातिविहितानेवलोकान्प्राप्नोतिमानव ।।६०।।
क्लेशेनमहतासाध्विप्राजापत्यादिकान्क्रमात् ।
स्त्रियश्चैवसमस्तस्यनरैर्दु खार्जितस्यवै ।।६१।।
पुण्यस्यार्द्धापहारिण्य पतिशुषश्रूयैवहि ।
नास्तिस्त्रीणापृथग्यज्ञोनश्राद्ध नाप्युपोषितम् ।।६२।।
भर्तु शश्रूयैवैतालोकानिष्टाञ्जयतिहि ।
तस्मात्साध्विमहाभागेपतिशुश्रूषणप्रति ।
त्वयामति सदाकार्यायतोभर्त्तापरागति ।।६३।।

पत्नी की सम्पूर्ण कामनाएँ पति-सेवा मे ही निहित है, हे साध्वि ! पाँच ऋण सर्वदा देय है ।। ५७ ।। अपने वर्ण-धर्म के अनुसार धन का सचय करके उपयुक्त पात्र को दान करे ।। ५८ ।। तथा सदैव, सत्य, सरलता, तप, दान और दया परायण रहे और नित्य प्रति राग द्वेष से रहित शास्त्रोक्त कर्म कर्म को श्रद्धा सहित करे, ऐसा करने से सब लोको की प्राप्ति होती है

।। ५९-६० ।। तथा प्राजापत्यादि पवित्र धाम को प्राप्त होते है, परन्तु स्त्रियाँ पति-सेवा से ही उसके सब पुण्य मे आधा भाग प्राप्त कर लेती है। स्त्रियो के लिये यज्ञ, श्राद्ध अथवाउपवास आदि का कोई पृथक् विधान नही ।। ६१-६२ ।। वह तो स्वामी कीसेवा मात्र से ही सब इच्छित लोको को प्राप्त होती है, इसलिए तुम इसी मे लगी रहो, क्योकि पत्नी की परमगति पति ही है ।। ६३ ।।

यद्देवेभ्योयच्चपित्रादिकेभ्य कुर्याद्भर्ताभ्यर्चनसत्क्रियाञ्च ।
तस्यार्द्धं वैकेवलानन्यचित्तानारीभुङ्क्ते भर्तृशुश्रूषयैव ।।६४।।
तस्यास्तद्वचनश्रुत्वाप्रतिपूज्यतदादरात् ।
प्रत्युवाचात्रिपत्नीतामनसूयामिदवच ।।६५।।
धन्यास्म्यनुगृहीतास्मिदैवस्याप्यवलोकत ।
यन्मेप्रकृतिकल्याणिश्रद्धांवर्धयसेपुन ।।६६।।
जानाम्येतन्ननारीणाकश्चित्पतिसमागति ।
तत्प्रीतिश्चोपकारायइहलोकेपरत्रच ।।६७।।
पतिप्रसादादिहचप्रेत्यचैवयशस्विनी ।
नारीसुखमवाप्नोतिनार्याभर्त्ताहिदैवतम् ।।६८।।
सात्वब्रूहिमहाभागेप्राप्तायाममममदिरम् ।
आर्याया किनुकर्त्तव्यमयार्येणापिवाशुभे ।।६९।।

स्वामी द्वारा किये जाने वाले देवता, पितर, अतिथि आदि का सत्कार या सब सत्कर्म, सभी मे स्त्री को पति-सेवा के कारण अर्द्धांश प्राप्त होता है ।। ६४ ।। पुत्र ने कहा—अनुसूया के वचन सुन कर उसने आदर सहित अनुसूया का पूजन किया और बोली ।। ६५ ।। आज मै अत्यन्त अनुगृहीत और धन्य होगई हूँ क्योकि आपने स्वामी के प्रति मेरी श्रद्धा को और भी बढा दिया है, तथा देवताओ ने भी मुझ पर अनुग्रह किया है ।। ६६ ।। मै जान गयी कि स्वामी के अतिरिक्त अन्य कोई गति स्त्री की नही है, उन्ही की प्रसन्नता से इहलोक और परलोक बनता है ।। ६७ ।। पति की कृपा से ही स्त्रियाँ इहलोक-परलोक मे सुख पाती है, क्योकि उनका देवता पति ही है ।। ६८ ।। जब स्वय ही यहाँ पधारी है, तब मुझे आदेश दीजिए कि मुझे या मेते स्वामा को क्या करना उचित है ? ।। ६९ ।।

एतेदेवाःसहेन्द्रेणमामुपागम्यदु खिता ।
त्वद्वाक्यापास्तसत्कर्मदिननक्तनिरूपणा ॥७०॥
याचतेर्हनिशासस्थायथावदविखडिताम् ।
अहतदर्थमायाताश्शृणुचैनद्वचोमम ॥७१॥
दिनाभावात्समस्तानामभावोयागकर्मणाम् ।
तदभावात्सुरा‌पुष्टिनोपयातितपस्विनि ॥७२॥
अह्नश्चैवसमुच्छेदादुच्छेद सर्वकर्मणाम् ।
तदुच्छेदादनावृष्ट्याजगदुच्छेदमेष्यति ॥७३॥
तत्त्वमिच्छसिधैर्येणजगदुद्धत्तु मापद ।
प्रसीदसाध्विलोकानापूर्ववद्वर्त्ततारवि ॥७४॥
माडयेव्येनमहाभागेशप्तोभर्त्ताममेश्वर ।
सूर्योदयेविनाशत्वप्राप्स्यसीत्यतिमन्युना ॥७५॥
यदितेरोचतेभद्रेततस्तद्वचनादहम् ।
करोमिपूर्ववद्देहभर्त्तारवचनात्तव ॥७६॥
मयापिसर्वथास्त्रीणामाहात्म्यवरवर्णिनी ।
पतिव्रतानामाराध्यमितिसमानयामिते ॥७७॥

अनुसूया ने कहा—हे साध्वि ! तुम्हारे वचन से दिन-रात्रि का भेद न रहने से सब सत्कर्म नष्ट होगए है, इसलिए सुरराज इन्द्र के सहित यह सम्पूर्ण देवता मेरे पास आकर ॥ ७० ॥ पहिले के समान ही दिन-रात्रि होने को कहते है, मै इसीलिए यहाँ आई हूँ ॥ ७१ ॥ दिन के न होने से यज्ञानुष्ठान भी नही हो रहा है और यज्ञ के न होने से देवताओ की तुष्टि भी नही हो सकती ॥ ७२ ॥ दिन के अभाव मे सब कर्मो का नाश हो गया तथा कर्म-नाश से अनावृष्टि होगई, इससे सम्पूर्ण विश्व का नाश सभव है ॥ ७३ ॥ यदि तुम इस विपत्ति से ससार को बचाना चाहो तो सब पर प्रसन्न होओ जिससे सूर्य पूर्ववत् उदय को प्राप्त हो सके ॥७४॥ ब्राह्मणी बोली हे महाभागे ! मुनि माण्डव्य ने क्रोध पूर्वक मेरे स्वामी को शाप दिया है कि 'सूर्योदय होते ही तेरा पति मृत्यु को प्राप्त होगा ॥ ७५ ॥ अनुसूया ने कहा— हे कल्याणि ! ऐसा होने पर मैं तुम्हारे स्वामी के शरीर को पहिले के समान

कर दूंगी ।। ७६ ।। पतिव्रता स्त्री की महिमा मेरे लिए सदैव आराधन के योग्य है, इसलिए मैं तुम्हारा सम्मान रखूँगी ।। ७७ ।।

तथेत्युक्ते तथासूर्यमाजुहावतपस्विनी ।
अनसूयार्घ्यमुद्यम्यदचार्धरात्रेतदानिशि ।।७८।।
तातोविवस्वान्भगान्फुल्लपद्मारुणाकृति ।
शैलाधिराजमुदयमारुरोहोरुमडल ।।७९।।
समनतरमेवास्यभर्त्ताप्राणैर्व्ययुज्यत ।
पपातचमहीपृष्ठे पतन्तजगृहेचसा ।।८०।।
नविषादस्त्वयाभद्रेकर्तव्य पश्यमेबलम् ।
पतिशुश्रपयावाप्ततपस किन्चिरेणमे ।।८१।।
यथाभर्तृ समनान्यमपश्यपुरुषक्वचित् ।
रूपत शीलतोबुद्धयावाड् माधुर्यादिभूषणै ।।८२।।
तेनमत्येनविप्रोयव्याधिमुक्त पुनर्युवा ।
प्राप्तोनुजीवितभार्यासहाय शरदाशतम् ।।८३।।

पुत्र बोला कि ब्राह्मणी के 'ऐसा ही हो' कहने पर अनुसूया ने अर्घ्य सहित सूर्य का आह्वान किया, उस समय तक दश रात्रियो का समय व्यतीत हो चुका था ।। ७८ ।। फिर प्रफुल्लित कमल के समान लालवर्ण वाले सूर्य जैसे ही उदयाचल मे चढे ।। ७९ ।। तभी उस ब्राह्मण का प्राणान्त होगया, इससे वह ज्यो ही पृथिवी मे गिरा त्योही ब्राह्मणी ने उसे सँभाला ।। ८० ।। अनुसूया ने कहा—हे भद्रे ! तुम विषाद न करो, मैंने पति सेवा से ही जिस तपोवल को प्राप्त किया है, वह तुम्हे अभी दिखाई पड़ेगा ।। ८१ ।। मै यदि रूप, शील, बुद्धि, वाणी, माधुर्य आदि सद्गुणो मे अपने स्वामी के समान किसी अन्य को नही मानती ।। ८२ ।। तो मेरे उसी सत्य के बल से यह ब्राह्मण रोग-रहित होकर युवास्था को प्राप्त हो और पुनर्जीवन प्राप्त कर सौ वर्ष तक पत्नी के सहित जीवित रहे ।। ८३ ।।

यथाभर्तृसमनान्यमहंपश्यामिदैवतम् ।
तेनसत्येनविप्रोयपुनर्जीवत्वनामय ।।८४।।
कर्मणामनसावाचाभर्तुराराधनंप्रति ।

यथाममोद्यमोनित्यतथायजीवताद्द्विज ॥८५॥
ततोविप्र समुत्तस्थौव्याधिमुक्त पुनर्युवा ।
स्वभाभिर्भासयन्वेश्मवृंदारकइवाजर ॥८६॥
ततोपतत्पुष्पवृष्टिर्देववाद्यानिसस्वनु ।
लेभिरेचमुददेवाअनसूयामथाब्रुवन् ॥८७॥
वरवृणीष्वकल्याणिदेवकार्यमहत्कृतम् ।
आदित्योदयसद्भावाद्वरवरयसुव्रते ॥८८॥
त्वयायस्मात्ततोदेवावरदास्तेतपस्विनि ।
यदिदेवा प्रसन्नामेपितामहपुरोगमा ॥८६॥
वरदावरयोग्याचयद्यहभवतामता ।
तद्यातुममपुत्रत्वब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ॥६०॥

मै यदि अपने स्वामी के समान किसी अन्य देवता को भी नही मानती तो मेरे इसी सत्य के बल से यह ब्राह्मण रोग-रहित होता हुआ पुनर्जीवन को प्राप्त हो ॥ ८४ ॥ यदि मन, वाणी और काया से मैने स्वामी की नित्य आराधना की है तो यह ब्राह्मण जीवित हो ॥ ८५ ॥ पुत्र बोला—फिर वह ब्राह्मण रोग-मुक्त युवा रूप होकर अपनी प्रभा से गृह को प्रकाशित करता हुआ उठ पडा ॥ ८६ ॥ तब पुष्पो की वृष्टि और देव-वाद्यो की ध्वनि होने लगी और फिर अत्यन्त प्रसन्न हुए देवताओ ने अनुसूया से कहा ॥ ८७ ॥ देवगण बोले—हे कल्याणि ! तुमने देवताओ के महान् कार्य का सपादन किया है, अब तुम सूर्योदय के कारण वर माँगो ॥ ८८ ॥ सब देवता तुम्हे वर देना चाहते है, यह सुन कर अनुसूया ने कहा—हे देवगण ! यदि आप प्रसन्न होकर मुझे वर देना चाहते है तो मुझे यह वर दीजिये कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव मेरे पुत्र रूप मे उत्पन्न हो ॥ ८६-६० ॥

योगचप्राप्नुयाभर्त्तृसहिताक्लेशमुक्तये ।
एवमस्त्वतिदेवास्ताब्रह्मविष्णुशिवादय ॥६१॥
उक्त्वाजग्मुर्यथान्यायमनुमान्यतपस्विनीम् ।
तत कालेबहुतिथेद्वितीयोब्रह्मण सुत ॥६२॥
स्वभार्यांभगवानत्रिरनसूयामपश्यत ।

ऋतुस्नातासुचार्वगीलोभनीयतमाकृतिम् ॥९३॥
सकामोमनसाभेजेसमुनिस्तामनिन्दिताम्।
तस्याभिपश्यतस्तातुविकारोयोभ्यजायत ॥९४॥
तमपोवाहपवनस्तिर्यगूर्ध्वंचवेगवान् ।
ब्रह्मरूपचशुक्लाभपतमानसमतत ॥९५॥
सोमरूपरजोरूपदिशस्तजगृहुर्दश ।
ससोमोमानसोजज्ञेतस्यामत्रे प्रजापते ॥९६॥
पुत्र समस्ततत्वानामायुराधारएवच ।
तुष्टेनविष्णुनाजज्ञेदत्तात्रेयोमहात्मना ॥९७॥
स्वशरीरात्समुत्पन्न सत्वोद्रिक्तोद्विजोत्तम ।
दत्तात्रेयइतिख्यात सोनसूयास्तनपपौ ॥९८॥

और मै अपने पति के सहित क्लेश से मुक्त होने के लिए योग को प्राप्त होऊँ । पुत्र बोला—यह सुन कर ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि देवगण 'ऐसा ही हो' कह कर ॥ ०२ ॥उस तपस्विनी का सम्मान करके चले गये, फिर कुछ समय व्यतीत होने पर ब्रह्माजी के द्वितीय पुत्र ॥ ९२ ॥ भगवान् अत्रि ने एक दिन अपनी सर्वांग सुन्दरी पत्नी को ऋतु से निवृत्त होकर स्नान करते देख कर ॥ ९३ ॥ काम वशीभूत होने पर मानसिक सभोग से उनका तेज स्खलित होगया ॥ ९४ ॥ वायु ने उस तेज को वहन कर ऊर्ध्व और तिर्यक् भाव मे प्रवाहित किया, गिरते समय उस तेज ने दशो दिशाओ का अवलम्बन किया और उन ब्रह्मरूपी सोम पुत्र रूप मे अनुसूया से उत्पन्न हुए ॥ ९५-९६॥ सतुष्ट हुए भगवान् विष्णु ने सत्वगुण का अवलम्बन करके भी दत्तात्रेय के नाम से उत्पन्न होकर स्तन पान किया ॥ ९७-९८ ॥

विष्णुरेवावतीर्णोसौद्वितीयोत्रे सुतोभवत् ।
सप्ताहात्प्रच्युतोमातुरुदरात्कुपितोयत ॥९९॥
हैहयेन्द्रमुपावृत्तमपराध्यन्तमुद्धतम् ।
दृष्ट्वात्रौकुपित सद्योदग्धुकाम सहैहयम् ॥१००॥
गर्भवासमहायासदु खामर्षसमन्वित ।
दुर्वासास्तमसायुक्तोरुद्राश सोभ्यजायत ॥०११॥

इतिपुत्रत्रयनस्याजज्ञेब्रह्मेशवैष्णवम् ।
सोमोब्रह्माभवद्विष्णुर्दत्तात्रेयोभ्यजायत ।।१०२।।
दुर्वासा शकरोजज्ञेवरदानाद्दिवौकसाम् ।
सोम स्वरश्मिभि शीतैर्वीरुदौषधिमानवान् ।।१०३।।
आप्याययन्सदास्वर्गेवर्त्ततेसप्रजापति ।
दत्तात्रेय प्रजा पातिदुष्टदैत्यनिबर्हणात् ।।१०४।।
शिष्टानुग्रहकृद्योगीशेयश्चाश सवैष्णव ।
निर्दहत्यवमतारदुर्वासाभगवानज ।।१०५।।
रौद्रभावसमाश्रित्यदृङ्मनोवाग्भिरुद्धत ।
सोमत्वभगवानत्रिपुनश्चक्रेप्रजापति ।।१०६।।

यह अत्रि के द्वितीय पुत्र हुए, जो क्रोध के कारण माता के उदर से सातवे दिन ही उत्पन्न होगये थे ।। ६६ ।। हैहयराज के उद्धत स्वभाव से अत्रिमुनि का अपमान हुआ था, इस अपराध को देखकर हैहय को भस्म करने के प्रयोजन से ।। १०० ।। गर्भवास रूप क्लेश से अमर्ष युक्त हो तमोगण का आश्रय करके रुद्र के अ श से दुर्वासाजी की उत्पत्ति हुई ।। १०२ ।। इस प्रकार, ब्रह्मा, विष्णु और और शिव तोनो ने ही अनुसूया के पुत्र रूप मे जन्म लिया, ब्रह्मा ने चन्द्र के रूप मे, विष्णु ने दत्तात्रेय के रूप मे ।। १०२ ।। शिवजी ने दुर्वासा के रूप मे जन्म धारण किया, वह प्रजापति चन्द्रमा अपनी शीतल किरणो से लता, औपधि, मनुष्य आदि को ।। १०३ ।। तृप्त करते हुए स्वर्ग मे रहते है, विष्णु के अ श रूप दत्तात्रेय दुष्टो का सहार ।। १०४ ।। और सतजनो के प्रति ऊपकार दिखाते हुए प्रजा पालन मे लगे तथा भगवान् दुर्वासा ।। १०५ ।। रुद्रात्मक देह से नेत्र, मन और वाणी द्वारा अपमानकर्त्ता दुष्टो को नष्ट करने लगे, फिर महर्षि अत्रि ने चन्द्रमा को सोमत्व का पद प्रदान करके प्रजापति बनाया ।। १०६ ।।

दत्तात्रेयोपिविषयान्योगस्थोदद्दशेहरि ।
दुर्वासा पितरत्यक्त्वामातरचोत्तमव्रतम् ।।१०७।।
उन्मत्ताख्यसमाश्रित्यपरिबभ्राममेदिनीम् ।
मुनिपुत्रवृतोयोगीदत्तात्रेयोप्यसगिताम् ।।१०८।।

अभीप्समान सरसिनिममज्जचिरविभु ।
तथापितमहात्मानमतीवप्रियदर्शनम् ।।१०९।।
तत्यजुर्नकुमारास्तेसरसस्तीरसश्रया ।
दिव्येवर्षशतेपूर्णेयदातेनत्यजतितम् ।।११०।।
तत्प्रीत्यासरसस्तीरंसर्वेमुनिकुमारका ।
ततोदिव्याबरधरासुरूपासुनितविनीम् ।।१११।।
नारीमादायकल्याणीमुत्ततारजलान्मुनि ।
स्त्रीसनिकर्षिणह्यं तेपरित्यक्ष्यतिमामिति ।।११२।।
मुनिपुत्रास्ततोयोगेस्थास्यामितिविचितयन् ।
तथापितेमुनिसुतानत्यजतियदामुनिम् ।।११३।।

विष्णु अ श वाले दत्तात्रेयजी योग के अवलम्बन मे दुर्वासा माता-पिता से पृथक् रह कर श्रेष्ठ व्रत ।। १०७ ।। पूर्वक उन्मत्त भाव पृथिवी मे विचरण करने लगे । दत्तात्रेयजी के परम योगी होने के कारण मुनियो के पुत्र इन्हे सदा घेरे रहते थे ।। १०८ ।। वह उनसे वचने के लिए बहुत दिनो तक सरोवर मे निमग्न रहे, परन्तु वे अत्यन्त प्रिय लगने वाले महात्मा थे ।। १०९ इसलिए मुनिकुमारो ने उन्हे फिर भी न छोडा और वे सरवोवर के तट पर ही रहने लगे, इस प्रकार सौ दिव्य वर्ष व्यतीत होने पर भी खडे रहे ।। ११० ।। जब उनकी प्रीति वश मुनिकुमारो ने उन्हे न छोडा तो वे दिव्य वस्त्र धारण किये एक स्वरूपवती ।। १११ ।। नारी को साथ लेकर जल से निकले और सोचा कि मै स्त्री के साथ हूँ इसलिए यह अब मुझे छोड कर चले जायँगे ।। ११२ ।। और मैं भी सग-रहित होकर योग-परायण हो जाऊँगा, तो भी मुनिकुमारो ने उन्हे नही छोड़ा ।। ११३ ।।

तत सहतयानार्यामिद्यपानमथाकरोत् ।
सुरापानरततेनसभार्यतत्यजुस्तत. ।।११४।।
गीतवाद्यादिवनिताभोगससर्गदूषितम् ।
मन्यमानामहात्मानतयासहबहिष्क्रियम् ।।११५।।
नावापदोषयोगीशोवारुणीसपिवन्नपि ।
अंतावसायिवेश्मातर्मातरिश्वास्पृशन्निव ।।११६।।

सुरापिवन्सपत्नीकस्तपस्तेपेसयोगवित् ।
योगीश्वरश्चित्यमानोयोगिभिर्मुक्तिकाक्षिभि. ॥११७॥
कस्यचित्वथकालस्यकार्त्तवीर्योर्जुनोबली ।
कृतवीर्येदिवयातेमन्त्रिभिःसपुरोहितै ॥११८॥
पोरैश्चात्माभिषेकार्थसमाहूतोब्रवीदिदम् ।
नाहराज्यकरिष्यामिमन्त्रिणोनरकोत्तरम् ॥११९॥

तब वे उम स्त्री के माथ मद्य पीने लगे, सोचा कि स्त्री के सहित मद्य पीते देखकर चले जायँगे ॥ ११४ ॥ परन्तु, फिर भी उन मुनिकुमारो ने उन्हे महात्मा जान कर नही छोडा ॥ ११५ ॥ वह योगीश्वर दत्तात्रेयजी चाण्डाल के घर रह कर मद्यपान करके भी दूपित नही हुए ॥ ११६ ॥ वे पत्नी सहित मद्यपान पूर्वक तप करने लगे, इस पर मुनिकुमार उनके चिन्तनीय रहे ॥ ११७ ॥ कार्तिकेय के स्वर्ग-गमन के पश्चात् पुरवासी, मत्री, पुरोहितादि ने मिलकर उसके पुत्र अर्जुन को राज्य पर अभिपिक्त करने लिए आमन्त्रित किया, परन्तु उसने उत्तर दिया कि हे मत्रिगण ! राज्य का परिणाम नरक है, इसलिए मै राज्य नही करूँगा ॥ ११८–११९ ॥

यदर्थगृह्यतेशुल्कतदनिष्पादयन्वृथा ।
पण्यानाद्वादशभागभूपालायवणिग्जन ॥१२०॥
दत्वातमरथिभिर्मार्गेरक्षितोयातिदस्युत· ।
गोपाश्चघृततक्रादे षड्भागचकृपीवला ॥१२१॥
दत्वान्यद्भूभुजेर्दद्युर्यदिभागततोधिकम् ।
पण्यादीनामशेषाणावणिजोगृह्णतस्तत ॥१२२॥
अग्निहोत्रतप.सत्यवेदानाचैवसाधनम् ।
आतिथ्यवैश्वदेवचइष्टमित्यभिधीयते ॥१२३॥
वापीकूपतडागानिदेवतायतनानिच ।
अन्नप्रदानमर्थिभ्य पूर्त्त मित्यभिधीयते ॥१२४॥
इष्टापूर्त्त विनाशायतद्राज्ञश्चौरकर्मिण· ।
यदन्यै पाल्यतेलोकस्तद्वृत्यतरसश्रित. ॥१२५॥
गृह्णतोबलिषड्भागंनृपतेर्नरकोध्रुवम् ।

निरूपितमिदराज्ञ पूर्वैरक्षणवेतनम् ॥१२६॥

इस गज्य का ग्रहण करना अत्यन्त कठिन कार्य है, वेश्या व्यापारी राजा को आय का बारहवाँ भाग ॥ १२० ॥ देकर चोरो के भय से वच जाते है, ग्वारिया घृत या मठा आदि का छटवाँ अश तथा कृषक भी सब धान्यो का छटवाँ अ श ॥ १२१ ॥ राजा को देने है, यदि अन्य को दे तो वह इनकी वस्तु का अधिक भाग लेगा ॥ १२२ ॥ अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेद-साधन, आतिथ्य, वैश्वदेव कर्म यह इष्ट कहे जाते है ॥ १२२ ॥ तथा कूप, बावडी, देवालय का निर्माण और धनेच्छुकों को दान करना पूर्त्त कहा जाता है ॥ १२४ ॥ अधिक कर लेने वाला राजा इष्टापूर्ति को नष्ट करने वाला कहा है, तथा दूमरो के द्वारा प्रजा का पालन कराता हुआ जो स्वय अन्य वृत्ति करता है ॥ १२५ ॥ और षष्ठ भाग ग्रहण जरता है वह राजा अवश्य ही नरक को प्राप्त होना है, पडितजनो ने प्रजा के रक्षणार्थ ही वेतन स्वरूप षष्ठ भाग ग्रहण करने का विधान किया है ॥ १२६ ॥

अरक्ष श्चोरतश्चोरस्तद्धननृपतेर्भवेत् ।
तस्माद्यदितपस्तप्त्वाप्राप्तोयोगित्वमीप्सितम् ॥१२७॥
भुव पालनसामर्थ्ययुक्तएकोमहीपति ।
पृथिव्यामस्त्रभृन्नाद्याप्यहमेवर्द्धिसयुत ॥१२८॥
ततोभविष्येनात्मानकरिष्येपापभागिनम् ।
तस्यतनिश्चयज्ञात्वामत्रिमध्यस्थितोब्रवीत् ॥१२९॥
गर्गोनाममहाबुद्धिमु निभू पवयोतिग ।
भक्त्यातुकृपयाविष्टस्ततोषयितुमर्हति ॥१३०॥
यद्यवकत्तु कामस्त्वराज्यसम्यक्प्रशासितुम् ।
तत श्रृणुष्वमेवाक्यकुरुष्वचनृपात्मज ॥१३१॥
दत्तात्रेयमहात्मानसह्यद्रोणीकृताश्रमम् ।
तमाराधयभूपालपातियोभुवनत्रयम् ॥१३२॥

यदि राजा उसे लेकर प्रजा-रक्षण न करे तो यह चोरी करना हुआ, इसलिए यदि मै तप करके योगी होता हुआ ॥ १२७ ॥ पृथिवी का पालन करके एक मात्र नराधिप बन सकू तो ही मै राज्य करना चाहता हूँ ॥ १२८ ॥

अन्यथा आत्मा को व्यर्थ ही पाप मार्ग पर नही चलाना चाहता, अर्जुन का यह विचार सुनकर मन्त्रियो के मध्य बैठे हुई ।। १२९ ।। वयोवृद्ध मुनिश्रेष्ठ गर्ग भक्ति और कृपा के सहित राजपुत्र को प्रसन्न करते हुए बोले—हे राजपुत्र ! यदि आप भले प्रकार से राज्य शासक करना चाहते है तो, मेरी बात सुन कर वैसा कीजिए ।। १३१ ।। सह्याद्रि पर्वत पर निवास करने वाले त्रैलोक्य पालक दत्तात्रेयजी का आप आराधन कीजिये ।। १३२ ।।

योगयुक्त महात्मानसर्वत्रसमदर्शिनम् ।
विष्णोरशजगद्धातुरवतीर्णधरातले ।।१३३।।
यमाराध्यसहस्राक्ष प्राप्तवान्पदमात्मन ।
हृतदुरात्मभिर्दैत्यैर्जघानचदिते सुतान् ।।१३४।।
कथमाराधितोदेवैर्दत्तात्रेय प्रतापवान् ।
कथवापहृतदैत्यैरिद्रत्वप्रापवासव ।।१३५।।
दैत्यानादेवतानाचयुद्धमासीत्सुदारुणम् ।
दैत्यानामीश्वरेजभेदेवानाचशचीपतौ ।।१३६।।
तेषातुयुध्यमानानादिव्य संवत्सरोगत ।
ततोदेवा पराभूतादैत्याविजयिनोऽभवन् ।।१३७।।
विप्रचित्तिमुखैर्देवादानवैस्तेपराजिता ।
पलायनकृतोत्साहानिरुत्साहाद्विषज्जये १३८।।
बृहस्पतिमुपागम्यदैत्यसैन्यवधेप्सव ।
अमत्रयतसहितावालखिल्यै सहर्षिभि ।।१३९।।
दत्तात्रेयमहाभागमत्रे पुत्रतपोधनम् ।
विकृताचरणभक्त्यासंतोषयितुमर्हथ ।।१४०।।

जो वे परमयोगी, परमभाग, समदर्शी तथा विश्व रक्षार्थ विष्णु-अंश से पृथिवी पर अवतीर्ण हुए है ।। १३३ ।। जिनकी आराधना करके ही सहस्राक्ष इन्द्र को दैत्यो द्वारा छीने हुए अपने पद की प्राप्ति हुई है ।। १३४ ।। अर्जुन ने कहा—देवताओ ने दत्तात्रेयजी की आराधना किस प्रकार की थी और इन्द्र को दैत्यो द्वारा छीने हुए अपने पद की प्राप्ति कैसे हुई थी ।। १३५ ।। गर्ग बोले—किसी समय भयकर देवासुर सग्राम हुआ था, उस समय जम्भ दैत्यो

के और इन्द्र देवताओ के अधिपति थे ।। १३६ ।। युद्ध करते हुए उन्हे एक दिव्य सवत्सर व्यतीत होगया और अन्त मे देवताओ की पराजय तथा दैत्यो की विजय हुई ।। १३७ तब विप्रचित्ति आदि प्रमुख दानवोसे हराते हुए देवगण इधर उधर भागने लगे और विजय के प्रति निरुत्साहित होकर ।। १३८ ।। दैत्यो को मारने की इच्छा से बृहस्पतिजी के पास जाकर बालखिल्य ऋषियो सहित मत्रणा करने लगे ।। १३९ ।। बृहस्पतिजी ने कहा—हे देवगण ! अब तुम विकृत आचरण वाले अत्रिपुत्र दत्तात्रेय को भक्ति पूर्वक सतुष्ट करने का प्रयत्न करो ।। १४० ।।

सवोदैत्यविनाशायवरदोदास्यतेवरम् ।
ततोहनिष्यथसुरा सहितान्दैत्यदानवान् ।।१४१।।
हतु शक्तानसदेहोदत्तात्रेयप्रसादत ।
इत्युक्तास्तेतदाजग्मुदत्तात्रेयाश्रमसुरा ।।१४२।।
ददृशुश्चमहात्मानक्षातलक्ष्म्यासमन्वितम् ।
उद्गीयमानगन्धर्वै सुरापानरतमुनिम् ।।१४३।।
तेतस्यगत्वाप्रणतिचक्रु सर्वार्थसाधनीम् ।
भक्त्यातस्योपजहुश्चमद्यपस्यसुरादिकम् ।।१४४।।
तिष्ठ तमनुतिष्ठ तियातयातिदिवौकस. ।
आराधयामासुरध स्थितास्तिष्ठ तमासने ।।१४५।।
सप्राहदेवान्प्रणतान्दत्तात्रेय किमिष्यते ।
मत्तोभवद्भिर्येनेयशुश्रूषाक्रियतेमम ।।१४६।।

दत्तात्रेयजी सतुष्ट हीकर तुम्हे दैत्यो का विनाश करने वाला वर देगे, उस समय तुम सगठित होकर दैत्यो और दानवो के सहार मे समर्थ होगे ।। १४१ ।। गर्गजी ने कहा—बृहस्पतिजी द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर देवगण दत्तात्रेयजी के आश्रम मे गये ।।४२ ।। १४२ ।। उन्होने वहाँ जाकर देखा कि वह महात्मा लक्ष्मीजी सहित मद्य-पान मे रत है तथा उनके समीप गधर्वगण गान कम रहे है ।। १४३ ।। उनके निकट जाकर देवगण सर्वार्थ सिद्ध करने वाली स्तुति करते हुए उतके लिये भक्ष्य,भोज्य तथा मालादि एकत्र करने लगे ।। १४४ ।। वह बैठते तो यह भी बैठते, वह चलते तो यह भी चलते, इस

प्रकार उनके आसन के नीचे के भाग मे बैठ कर देवताओ ने उनका आराधन किया ।। १४५ ।। तब दत्तात्रेयजी ने उन देवताओ से कहा—तुम मेरी इस प्रकार सेवा कर रहे हो, इसलिए बताओ कि क्या चाहते हो ? ।। १४६ ।।

दानवैर्मु निशार्दूलजभाद्यै र्भू र्भु वादिकम् ।
हृतत्रैलोक्यमाक्रम्यक्रतुभागाश्चकृत्स्नश ।।१४७।।
तद्वधेकुरुबुद्धित्वपरित्राणायनोनघ ।
त्वत्प्रसादादभीप्साम पुन प्राप्तु त्रिविष्टपम् ।।१४८।।
मद्यासक्तोहमुच्छिष्टोनचैवाहजितेन्द्रिय ।
कथमिच्छथमत्तोपिदेवा शत्रुपराभवम् ।।१४९।।
अनघस्त्वजगन्नाथनलेपस्तवविद्यते ।
विद्याक्षालनशुद्धार्तार्निविष्टज्ञानदीधिते ।।१५०।।
सत्यमेतत्सुराविद्याममास्तिसमदर्शिन ।
अस्यास्तुयोपित सगादहमुच्चिष्टतागत ।।१५१।।
स्त्रीसभोगोतिदु खायसातत्येनोपसेवित ।
एवमुक्तास्ततोदेवो पुनर्वचनमब्रुवन् ।।१५२।।
अनघेयमुनिश्रेष्ठजगन्मातानदुष्यति ।
यासाविद्यातवविभोसर्वज्ञस्यहृदिस्थिता ।।१५३।।
यथाशुमालासूर्यस्यद्विजचडालसगिनी ।
नदुष्यतिजगन्नाथतथेयवरवर्णिनी ।।१५४।।

देवताओ ने कहा—हे मुनिशार्दूल ! जम्भादि दानवो ने आक्रमण करके भूर्भुवादि तीनो लोको और सम्पूर्ण यज्ञ भाग को हर लिया है ।। १४७ ।। आप उनके सहार मे मन लगा कर हमारी रक्षा करिये, आपकी कृपा से हम स्वर्ग को पुन प्राप्त करे यह हमारी इच्छा है ।। १४८ ।। दत्तात्रेयजी ने कहा—हे देवगण ! मै मद्यपान रत, अजितेन्द्रिय और अपवित्र हूँ, तो मेरे द्वारा शत्रुओ के जीते जाने की आशा तुम कैसे कर रहे हो ? ।। १४९ ।। देवताओ ने कहा—हे प्रभो ! आपने विद्या से स्वच्छ हुए अन्त करण मे ज्ञान रूपी रश्मियो को प्रविष्ट किया है, इसलिए आप पाप-रहित एव विषयो से अलिप्त है ।। १५० ।। दत्तात्रेयजी ने कहा—हे देवगण ! मुझ मे विद्या तो है तथा मै

समदर्शी भी हूँ, परन्तु स्त्री-समर्ग से अपवित्र होगया हूँ, ।। १५१ ।। क्योकि स्त्री-ससर्ग अत्यन्त दोष की खान है, यह सुन कर देवताओ ने पुन कहा ।। १५२ ।। देवता बोले—हे निष्पाप ! हे मुनिवर ! जो विद्या तुम्हारे सर्वज्ञ के हृदय मे स्थित है, उसमे यह दोष को प्राप्त नही होती है ।। १५३ ।। जैसे सूर्य रश्मियाँ चाण्डालदि के समर्ग-दोष मे दूषित नही होती, वैसे ही यह जगत्वोता आपके समर्ग से दूपित नही हो सकती ।। १५४ ।।

एवमुक्तस्ततोदेवैर्दत्तात्रेयोऽब्रवीदिदम् ।
प्रहस्यत्रिदशान्सर्वान्यद्येतद्भवतामतम् ।।१५५।।
तदाहूयासुरान्सर्वान्युद्धायसुरसत्तमा. ।
इहानयतमद्दृष्टिगोचरमाविलम्ब्यताम् ।।१५६।।
मद्दृष्टिपातहुतभुक्प्रक्षीणवलतेजस ।
येननाशमशेषास्तेप्रयातिममदर्शनात् ।।१५७।।
तस्यतद्वचनश्रुत्वादेवैर्दैत्यामहावला ।
आहवायसमाहूताजग्मुर्देवगणाश्रमम् ।।१५८।।
तेहन्यमानादैतेयैर्देवाःसर्वेभयातुरा ।
दत्तात्रेयाश्रमजग्मु समस्ता शरणार्थिन ।।१५९।।
तमेवविविशुर्दैत्या कालयतोदिवौकस ।
ददृशुस्तमहात्मानदत्तात्रेयमदालसम् ।।१६०।।
वामपार्श्वे स्थितामिष्टामशेषजगत शुभाम् ।
भार्याचास्यसुचार्वंगीलक्ष्मीमिदुनिभाननाम् ।।१६१।।

गर्गजी ने कहा—देवताओ के यह वचन सुन कर दत्तात्रेयजी ने कुछ हँसते हुए कहा—यदि तुम्हारा ऐसा ही विचार है ।। १५५ ।। तो तुम सब युद्ध के लिए असुरो को यहाँ बुला कर मुझे दिखाओ, इसमे देर मत करो ।। १५६ ।। क्योकि मेरे दृष्टिपात रूप अग्नि से उनका तेज, बल क्षीण हो जायगा और वे तुरन्त मृत्यु को प्राप्त हो जायँगे ।। १५७ ।। गर्गजी ने कहा—उनके ऐमे वजन सुन कर देवताओं ने असुरो का युद्ध के लिए आह्वान किया और महाबली असुरो ने आकर क्रोध पूर्वक देवताओ पर आक्रमण किया ।। १५८ ।। तब दानवो की मार से भयभीत हुए देवता दत्तात्रेयजी के आश्रम

मे शरण पाने के लिए गये ।। १५९ ।। दैत्य भी देवताओ को नष्ट करने के विचार से उसी आश्रम मे पहुंचे और उन्होने वहाँ मद मे मत्त हुए दत्तात्रेयजी को देखा ।। १६० ।।तथा उनके वामपार्व मे स्थित सम्पूर्ण इष्टो के देने वाली उनकी भार्या लक्ष्मीजी को भी उन्होने देखा ।। १६१ ।।

नीलोत्पलाभनयनापीनश्रोणिपयोधराम् ।
सुदतीमधुराभापासर्वयोषित्गुणैर्युताम् ।।१६२।।
दृष्ट्वाग्रस्तदादैत्या साभिलापमनोभवा ।
नशेकुरुद्धतादैत्यामनसावोढुमातुरा ।।१६३।।
त्यक्त्वादेवान्स्त्रियतातुहर्तु कामाहृतौजस ।
प्रेरितास्तेनपापेनह्यासक्तास्तेततोब्रुवन् ।।१६४।।
स्त्रीरत्नमेतत्त्रैलोक्यसारंचेद्विदितभवेत् ।
कृतकृत्यास्तत सर्वेइतिनोभावितमन ।।१६५।।
तस्मात्सर्वेसमुत्क्षिप्यशिविकायासुराङ्गना ।
आरोप्यस्वमधिष्ठाननयामइतिनिश्चिता १६६।।
सानुरागास्ततस्तेतुमुनेरतिकमागमन् ।
तस्यतायोषितसाध्वीसमुत्क्षिप्यस्मरातुरा ।।१६७।।
शिबिकायसमारोप्यसहितादैत्यदानवा ।
शिर सुशिबिकाकृत्वास्वस्थानाभिमुखाययु. ।।१६८।।

दैत्यगण उस नीलपद्म के समान नेत्र वाली पीनस्तनी सर्वाग सुन्दरी नारी को ।। १६२ ।। देख कर उसको ग्रहण करने की इच्छा करते हुए कामावेग से अधीर हो उठे ।। १६३ ।। तथा देवताओ को छोड कर उस नारी को हरण करने की इच्छा पूर्वक पाप से मोहित हुए कहने लगे ।। १६४ ।। यह स्त्री-रत्न त्रैलोक्य का सार है, हम इस नारी-रत्न को लेकर ही कृतकार्य होगे ।। १६५ ।। इसलिए, हे दानवो ! इस विषय मे चिन्ता न करो, हम इसे पालकी मे बैठा कर अपने घर ले चलेगे ।। १६६ ।। गर्गजी ने कहा—उन दैत्यो ने परस्पर इस प्रकार परामर्श किया और दत्तात्रेयजी की पत्नी को उठा कर ।। १६७ ।। पालकी मे चढा लिया, फिर दैत्य-दानव मिलकर, पालकी को उठा कर अपने स्थान की ओर चल दिये ।। १६८ ।।

दत्तात्रेयस्तथादेवान्विहस्येदमथाब्रवीत् ।
दिष्ट्याचहंतदैत्यानामेपालक्ष्मी शिरोगता ।
सप्तस्थानान्यतिक्रम्यलयमन्यमुपेष्यति ॥१६९॥
कथयस्वजगन्नाथकेपुस्थानेष्ववस्थिता ।
पुरुषस्यफलकिवाप्रयच्छत्यथनश्यति ॥१७०॥
नृणापादस्थितालक्ष्मीर्निलयसप्रयच्छति ।
सक्थ्नोश्चसस्थितावस्त्र रत्ननानाविधवसु ॥१७१॥
कलत्रदागुह्यसंस्थाक्रोडस्थापत्यदायिनी ।
मनोरथान्पूरयतिपुरुपाणाहृदिस्थिता ॥१७२॥
लक्ष्मीर्लक्ष्मीवताश्रेष्ठाकठस्थाकठभूपणम् ।
अभीष्टबधुदारैश्चतथाश्लेषप्रवामिभि ॥१७३॥
मृष्टान्न वाक्यलावण्यमाज्ञामवितथातथा ।
मुखस्थिताकवित्वचयच्छत्युदधिसभवा ॥१७४॥
शिरोगतासत्यजतिततोन्ययातिचाश्रयम् ।
सेयशिरोगतादैत्यान्परित्यजतिसांप्रतम् ॥१७५॥

फिर दत्तात्रेयजी ने कुछ हँस कर देवताओ से कहा-हे देवगण ! तुम्हारा भाग्य फिर गया, सप्त स्थान मे अतिक्रम करके लक्ष्मी दानवो के मस्तक पर चढ गयी है, इसलिए यह उन्हे छोड कर दूसरे के पास जायगी ॥ १६९ ॥ देवताओ ने पूछा—हे प्रभो ! लक्ष्मीजी के किस-किस स्थान पर जाने से हित अथवा अहित होता है, यह हमे वताइये ॥ १७० ॥ दत्तात्रेयजी बोले—मनुष्य के पैर मे लक्ष्मी रहे तो गृह प्रदान करती है, सक्थिनी अस्थि मे रहे तो वस्त्र और विभिन्न प्रकार के रत्न देती है, गुह्य स्थान में रहे तो स्त्री देती है,॥१७१॥ गोद मे रहे तो पुत्र देती है तथा हृदय मे निवास करे तो सभी मनोरथों को पूर्ण करती है ॥ १७२ ॥ यदि लक्ष्मी का वास कठ मे हो तो कठ भूषण प्राप्त होता तथा प्रवासी प्रियतम, बधु या स्त्री से मिलाप होता है ॥ १७३ ॥ यदि मुख मे लक्ष्मी स्थित रहे तो श्रेष्ठ वाक्य लावण्य और कवित्व की प्राप्ति होती तथा आज्ञा सफल होती है ॥ १७४ ॥ यदि मस्तक मे स्थित हो तो उसका त्याग कर अन्य का आश्रय लेती है, आज वही लक्ष्मी इन दानवो के

शिर पर चढ गई है, इसलिए इनका परित्याग कर देगी ।। १७५ ।।

प्रगृह्यास्त्राणिवध्यन्तातस्मादेतेसुरारय ।
नभेतव्यंभृशत्वेतेमयानिस्तेजस कृता ।।१७६।।
परदारावमर्शाच्चदग्धपुण्याहतौजस ।
तस्मादेतेभिहन्यताभवद्भिरविशकितै ।।१७७।।
ततस्तेविविधैरस्त्रैर्वध्यमाना सुरारय ।
शिरःसुलक्ष्म्याप्याक्रातािवनेशुरितिन श्रुतम् ।।१७८।।
लक्ष्मीश्चोत्पत्यसप्राप्तादत्तात्रेयमहामुनिम् ।
स्तूयमानासुरै सेन्द्रै दैत्यनाशान्मुदान्वितै ।।१७९।।
प्रणिपत्यततोदेवादत्तात्रेयमहामुनिम् ।
जयकृष्णजगन्नाथदैत्यातकहरप्रभो ।।१८०।।
नारायणाच्युतानतवासुदेवाक्षयाजर ।
त्वत्प्रसादात्सुखलक्ष्मीराज्यसपज्जनार्दन ।।१८१।।
शार्ङ्गधन्वश्चक्रपाणेभक्तानानित्यवत्सल ।
इतिस्तुत्वानाकपृष्ठ यथापूर्वगता सुरा ।।१८२।।
तथात्वमपिराजेद्रयदिच्छसियथेप्सितम् ।
प्राप्तमैश्वर्यमतुलतूर्णमाराधयस्वतम् ।।१८३।।

हे देवगण ! अब तुम भय त्याग कर शस्त्र उठाओ और उन्हे मारो, क्यो कि वे मेरे दृष्टिपात से तेज रहित हो चुके है ।। १७६ ।। पर नारी के साथ बलात्कार से पुण्य भस्म होता है और पराक्रम की हानि होती है, इसलिए अब तुम शका रहित होकर उनका सहार कर डालो ।। १७७ ।। गर्गजी बोले— इसके पश्चात् देवगण तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्रो के द्वारा असुरो का सहार करने लगे, इस प्रकार लक्ष्मी को सिर पर चढाने से असुरो का नाश हो गया, ऐसा सुना गया है ।। १७८ ।। फिर लक्ष्मीजी उनके मस्तक से उतर कर दत्तात्रेयजी के ही पास आगई और दैत्यो के नष्ट होने से प्रसन्नता को प्राप्त हुए सब देवता उनकी स्तुति करने लगे ।। १७९ ।। फिर दत्तात्रेयजी को प्रणाम पूर्वक हे कृष्ण ! हे जगन्नाथ ! हे दैत्यो के नाशक ! हे हर ! हे प्रभो ! आपकी जय हो ।। १८० ।। हे नारायण, हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे वासुदेव ! हे

अक्षय ! हे अजर ! हे जनार्दन ! आपके ही प्रसाद से हमें सुख, लक्ष्मी और राज्य सम्पदा की प्राप्ति हुई है ।। १८१ ।। हे शार्ङ्ग धनुर्धारी ! हे चक्र-पाणि ! आप सदैव भक्तों पर कृपा करते हैं, इस प्रकार स्तुति करके दैवगण जहाँ से आये थे वहीं लौट गये ।। १८२ ।। इसलिए हे राजेन्द्र ! यदि तुम्हे अतुल ऐश्वर्य की कामना है तो उन दत्तात्रेयजी की शीघ्र ही आराधना करो ।। १८३ ।।

१६—दत्तात्रेय उपाख्यान

इत्यृषेर्वचनश्रुत्वाकार्त्तवीर्योनरेश्वर ।
दत्तात्रेयाश्रमगत्वातभक्त्यासमपूजयत् ।।१।।
पादसवाहनाद्येनअर्घ्यार्घाहरणेनच ।
स्रक्चदनागिगधाम्बुफलाद्यानयननेनच ।।२।।
तथान्नसाधनैस्तस्यउच्छिष्टापोहनेनच ।
परितुष्टोमुनिर्भूपतमुवाचतथैवस ।।३।।
यथैवोक्ता पुरादेवामद्यभोज्यादिकुत्सनम् ।
स्त्रीचेयममपार्श्वस्थेत्येतद्भोगानुकुत्सित ।।४।।
सदैवाहनमामेवमुपरोद्धु त्वमर्हसि ।
अशक्तमुपकारायशक्तमाराधयस्वभो ।।५।।
तेनैवमुक्तोमुनिनास्मृत्वागर्गवचश्चतत ।।६।।
प्रत्युवाचप्रणम्यैनकार्त्तवीर्यस्ततोर्जुन ।
देवस्त्वहिपुराणोय स्वामायासमुपाश्रित ।।७।।

पुत्र बोला—राजा कार्त्तवीर्य ने गर्गजी की बात सुन कर दत्तात्रेयजी के आश्रम मे जाकर भक्ति भाव पूर्वक उनका पूजन किया ।। १ ।। चरण सवाहन करके अर्घ्य, पुष्प, माला, सुगधि, जल, फल तथा चन्दनादि उनके निमित्त प्रस्तुत किया ।। २ ।। इसी प्रकार अन्नादि लाते और उनका उच्छिष्ट स्वय भोजन करते, यह देख कर सन्तुष्ट हुए मुनि उनसे उसी प्रकार बोलें ।। ३ ।। जैसे पहिले देवताओ के प्रति अपने निन्दित कर्म कहे थे। ऋषि ने कहा—मेरे पास जो यह स्त्री है, मै इसमे सदैव आसक्त रहता हूँ ।। ४ ।। हे

राजन्! इस प्रकार सदा निन्दित कर्म करता रहने वाला मै उपकार मे असमर्थ हूँ तो मेरी सेवा से तुम्हे क्या लाभ होगा ? इसलिए समर्थ का ही आराधन करो ॥ ५ ॥ पुत्र बोला—यह सुनकर तथा गर्ग मुनि के वचनो को याद कर के ॥ ६ ॥ कार्त्तवीर्य ने दत्तात्रेयजी को प्रणाम किया और कहा—हे प्रभो! आप मुझे इस प्रकार मोहित क्यो करते है ? आप अपनी माया से युक्त है ॥ ७ ॥

अनघस्त्वतथैवेयदेवीसर्वभवारणि ।
इत्युक्त प्रीतिमान्देवोभूयस्त्वप्रत्युवाचह ॥८॥
कार्त्तवीर्यमहावीर्यवशीकृतमहीतलम् ।
वरवृणीष्वगुह्य मेत्वयानामयदीरितम् ॥९॥
तेनतुष्टि पराजातात्वय्यद्यममपार्थिव ।
येचमापूजयिष्यतिगधमाल्यादिभिर्नरा ॥१०॥
लक्ष्म्यासमेतगीतैश्चब्राह्मणानातथार्चनै ॥११॥
वाद्यैर्मनोरमैर्वीणावेणुशखादिभिस्तथा ।
तेषामहपरापुष्टिपुत्रदारधनादिकीम् ॥१२॥
प्रदास्याम्यवधूतश्चहनिष्याम्यवमन्यताम् ।
सत्ववरयभद्र मेवरयमनसेच्छसि ॥१३॥
प्रसादसुमुखस्तेहगुह्यनामप्रकीर्त्तनात् ।
यदिदेवप्रसन्नस्त्वतत्प्रयच्छर्द्धिमुत्तमाम् ॥१४॥
यथाप्रजापालयेयनचाधर्ममवाप्नुयाम् ।
परानुस्मरणज्ञानमप्रतिद्व द्वतारणे ॥१५॥

इसलिए आप निष्पाप है यह देवी सम्पूर्ण विश्व की अरणि के समान होने से पाप रहित है, राजा के इस प्रकार कहने पर दत्तात्रेयजी ने प्रसन्न होकर कहा—हे भूमडल को वश मे करने वाले कार्त्तवीर्यार्जुन! वर माँगो, तुमने मेरे गुप्त नाम का उच्चारण किया है ॥ ९ ॥ इससे मैं अत्यत सतुष्ट हूँ तथा जो गधमाला आदि के द्वारा मेरी पूजा करते है ॥ १० ॥ तथा सब प्रकार सतुष्ट करते हुए पूजा के वाद्य ॥ ११ ॥ वीणा, वेणु, शखादि वजाते हैं, उनको मैं स्त्री, पुत्र और धनादि के प्रदान द्वारा परम सतोष देता

हूँ ॥ १२ ॥ तथा जो अवधूत कहकर मेरा तिरस्कार करते है, उनका हनन करता हूँ, इसलिए तुम्हारी इच्छा हो सो माँगो, तुम्हारा मगल हो ॥ १३ ॥ तुमने मेरे गुप्त नामो का कीर्तन किया है, इसलिए मै तुमसे बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। अर्जुन बोला—यदि आप प्रसन्न हुए हे तो मुझे ऐसी श्रेष्ठ ऋद्धि दीजिये ॥ १४ ॥ जिससे मे सहज ही सम्पूर्ण प्रजा का पालन करता हुआ पाप -भोगी न बनूँ और शत्रुओ के अनुसरण मे मुझे ज्ञान प्राप्त हो तथा रणक्षेत्र मे कोई भी मेरा सामना न कर सके ॥ १५ ॥

सहस्रमाप्तुसिच्छामिबाहूनालघुतागुणम् ।
असगागतय सतुशैलाकाशाम्बुभूमिषु ॥१६॥
पातालेषुचसर्वेषुवधश्चाप्यधिकान्नरात् ।
तथामार्गप्रवृत्तस्यसतुसन्मार्गदेशिका ॥१७॥
सतुमेतिथय श्लाघ्यावित्त वान्यत्तथाक्षयम् ।
अनष्टद्रव्यताराष्ट्रे ममानुस्मरणेनच ॥१८॥
त्वयिभक्तिश्चदेवास्तुनित्यमव्यभिचारिणी ।
यएतेकीर्तिता सर्वेतान्वत्ससमवाप्स्यसि ॥१९॥
मत्प्रसादात्प्रभविताचक्रवर्तित्वमैश्वरम् ।
प्रणिपत्यततस्तस्मैदत्तात्रेयायसोर्जुन ॥२०॥

मै लघुतत्व गुण से युक्त सहस्रबाहु हो जाऊँ,जल,थल,पर्वत,आकाश आदि सब स्थानो मे निर्बाध गति तथा श्रेष्ठ मनुष्य के हाथ से मृत्यु की अभिलाषा है, मैं उन्मार्ग मे प्रवृत्त व्यक्तियो को सन्मार्ग दिखाने की इच्छा करता हूँ ॥१६-१७ ॥ अक्षय धन-दान एव आतिथ्य लाभ करूँ, मेरा नाम उच्चारण करने वाला धन हीन न रहे ॥ १८ ॥ आपके पदपद्मो मे सदा मेरी भक्ति रहे, दत्तात्रेयजी ने कहा—हे वत्स ! तुम्हारा कहा हुआ सभी होगा ॥ १९ ॥ मेरे प्रसाद से तुम चक्रवती नरेश होगे । पुत्र बोला—फिर अर्जुन ने दत्तात्रेयजी को प्रणाम किया ॥ २० ॥

आनीयप्रकृती सम्यगभिषेकमगृह्णत ।
आगताश्चापिगधर्वास्तथैवाप्सरसांगणा ॥२१॥
ऋषयश्चवसिष्ठाद्यामेर्वाद्या पर्वतास्तथा ।

गगाद्या सरित सर्वा समुद्रारत्नसभवा ॥२२॥
प्लक्षाद्याश्चतथावृक्षादेवावैवासवादय. ।
वासुकिप्रमुखानागाअभिपेकार्थमागता ॥२३॥
तार्क्ष्याद्या पक्षिणश्चैवपौराजानपदास्तथा ।
सभारा सभृता सर्वेदत्तात्रेयप्रसादत ॥२४॥
अथासज्वाल्यतैर्वह्निदेवैर्ब्रह्मादिभि सह ।
नारायणेनाभिपिक्तोदत्तात्रेयस्वरूपिणा ॥२५॥
समुद्रैश्चनदीभिश्चऋपिभिश्चाभिपेचित ।
अघोपयामासतदास्थितोराज्येसहैहय ॥२६॥
दत्तात्रेयात्परामृद्धिमवाप्यातिवलान्वित ।
अद्यप्रभृतिय शस्त्र मामृतेन्योगृहीष्यति ॥२७॥
हन्तव्य समयादस्यु परहिसारतोपिवा ।
इत्याज्ञप्तेनतद्राज्येकश्चिदायुधभृन्नर ॥२८॥

सम्पूर्ण प्रजा को बुला कर अभिषेक कराया, उस समय गधर्व और अप्सराएँ ॥ २१ ॥ वसिष्ठादि ऋषि, सुमेरु आदि पर्वत, गगादि सब नदी और जल से परिपूर्ण सभी समुद्र ॥ २२ ॥ प्लक्षादि सब वृक्ष, इन्द्रादि सब देवता, वासुक्यादि सब नाग ॥ २३ ॥ गरुडादि पक्षी, नगर और नगरवासी तथा सभी लोक दत्तात्रेयजी के प्रसाद से सम्पूर्ण सामग्री सजाये हुए, अभिषेकार्थ वहाँ उपस्थित हुए ॥ २४ ॥ ब्रह्मादि देवताओ ने अग्नि को प्रज्वलित किया तथा दत्तात्रेय रूपी भगवान् नारायण ने अभिषेक किया ॥ २५ ॥ फिर समुद्र और ऋषियो ने अभिषेक किया और 'हैहय राज्य मे स्थित हो गये' ऐसी घोषणा सर्वत्र की गई ॥ २६ ॥ दत्तात्रेयजी के प्रसाद से अतुलित ऐश्वर्य को प्राप्त हुए महाबली हैहय ने राज्य मे प्रतिष्ठित होकर आज्ञा दी कि अब से मेरे अतिरिक्त जो कोई भी अस्त्र धारण करेगा ॥ २७ ॥ वह हिसक या दस्यु मेरे द्वारा मारा जायगा । ऐसी राजाज्ञा सुनकर कोई भी मनुष्य अस्त्र धारी न रहा ॥ २८ ॥

तमृतेपुरुपव्याघ्र बभूवोरुपराक्रमम् ।
सएवग्रामपालोभूत्पशुपाल.सएवच ॥२९॥

क्षेत्रपाल सएवासीद्द्वितीयोनचरक्षिता ।
तपस्विनापालयितासार्थपालश्चसोभवत् ॥३०॥
दस्युव्यालाग्निशस्त्रारिभयेष्वब्धौनिमज्जताम् ।
अन्यासुचैव मग्नानामापत्सुपरवीरहा ॥३१॥
सएवसस्मृत.सद्य समुद्धर्त्ताभवन्नृणाम् ।
अनष्टद्रव्यताचासीत्तस्मिञ्छासतिपार्थिवे ॥३२॥
तेनेष्ट बहुभिर्यज्ञै समाप्तवरदक्षिणै ।
तपश्चतप्तु सुमहत्सग्रामेवातिचेष्टितम् ॥३३॥
तस्यर्द्धिमहिमानचदृष्ट्वाप्राहाङ्गिरामुनि ।
ननूनकार्त्त वीर्यस्यगतियास्यतिपार्थिवा ॥३४॥
यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वासग्रामेचातिचेष्टितै ।
दत्तात्रेयाद्दिनेयस्मिन्सप्राप्तेर्द्धिर्नरेश्वर ॥३५॥

सम्पूर्ण पृथिवी के एक कार्त्तवीर्यार्जुन ही राजा हुए, उस समय वही ग्राम-पालक एव पशु-पालक थे ॥ २९ ॥ वही क्षेत्र, ब्राह्मण और तपस्वियो के रक्षक तथा अर्थ पालक हुए ॥ ३० ॥ वही राजा चोर, सर्प, अग्नि, शत्रु, भयङ्कर समुद्र या विभिन्न विपत्तियो मे पडे मनुष्यो की रक्षा करने वाले हुए ॥ ३१ ॥ उनके नाम के उच्चारण मात्र से सब की विपत्ति दूर होने लगी और उनके शासन काल मे कोई धन हीन न रहा ॥ ३२ ॥ उन्होने अनेक प्रकार के दक्षिणामय यज्ञ पूर्ण किये तथा वे महान् तप का आचरण करने वाले और युद्ध मे अजेय हुए ॥ ३३ ॥ उनकी ऐमी समृद्धि देख कर अ गिरा मुनि ने कहा था कि 'इनके समान कोई दूसरा राजा नही हुआ ॥ ३४ ॥ तथा यज्ञ, दान, तप या युद्ध प्रसङ्ग मे कोई इनके समान नही होगा, वे जब दत्तात्रेयजी से अतुलित ऐश्वर्यवान् हुए है ॥ ३५ ॥

तस्मिन्तस्मिन्दिनेयागदत्तात्रेयम्यसोकरोत् ।
तथैवचप्रजा सर्वास्तस्मिन्नहनिभूपते ॥३६॥
तस्यर्द्धिपरमादृष्ट्वायागचक्रु समाधिना ।
इत्येतत्तस्यमाहात्म्यदत्तात्रेयस्यधीमत ॥३७॥
विष्णोश्चराचरगुरोरनतस्यमहात्मन ।

प्रादुर्भाव पुराणेपुकथ्यतेशाड्ग॔धन्वन ।।३८।।
अनतस्याप्रमेयस्यशखचक्रगदाभृत ।
एतस्यपरमरूपर्याश्चिन्तयतिमानव ।।३९।।
समुखीसचससारात्समुत्तीर्णोचिराद्भवेत् ।
सदैववैष्णवानाचक्त्याहसुलभोस्मिभो ।।४०।।
पत्रपुष्पफलेनाहपूनिजोमोक्षदोस्मिवै ।
इत्येवयस्यवैवाचस्तकथनाश्रयेज्जन ।।४१।।
अधर्मस्यविनाशायधर्माधारार्थमेवत्र ।
अनादिनिधनोदेव करोतिस्थितिपालनम् ।।४२।।
तथैवजन्मचाख्यातमालर्ककथयामिते ।
यथाचयोग कथितोदत्तात्रेयेणतस्यवै ।
पितृभक्तस्यराजर्षेरलर्कस्यमहात्मन ।।४३।।

उसी दिन उन्होने दत्तात्रेय का यज्ञ किया, प्रजा ने भी अपने राजा की ।। ३६ ।। परम ऋद्धि को देख कर उसी दिन यज्ञ किया, यह उन दत्तात्रेयजी का माहात्म्य है ।। ३७ ।। उन चराचर के गुरु, अनन्त, शाड्ग॔धर, शख, चक्र, गदा धारी दत्तात्रेय रूपी भगवान् नारायण की उत्पत्ति सब पुराणो मे विभिन्न प्रकार से कही गयी है, नारायण के इस रूप का जो मनुष्य चिन्तन करते है ।। ३८ ।। वे सुखी होने हुए तुरन्त समार रूपी पाश से मुक्त हो जाते है; उनकी प्रतिज्ञा है कि हे "वैष्णवो ! भक्ति के द्वारा मैं तुम्हारे लिए सदैव सुलभ हूँ, मै पत्र, पुष्प, फल के द्वारा पूजित होकर मोक्ष देता हूँ" ऐसे भगवान् की शरण मे मनुष्य क्यो न जाँय ।। ४०-४१ ।। वह अनादि देवता धर्माचरण और अधर्म-विनाश के लिए स्थिति और पालनादि करते है ।। ४२ ।। हे पिताजी ! अब आप से अलक ब्राह्मण का वृत्तान्त कहता हूँ, वे महात्मा अलर्क ससार प्रसिद्ध राजर्षि और पितृ भक्त थे ।। ४३ ।।

इति श्रीमार्कण्डेय पुराणे दत्तात्रेयोपाख्यान नाम सप्तदशोऽध्याय ।।१७।।

१८—कुवलयास्व उपाख्यान

प्राग्बभूवमहावीर्य शत्रुजिन्नामपार्थिव ।

तुतोपयस्ययज्ञेपुसोमावाप्त्यापुरदर ।।१।।
तस्यात्मजोमहावीर्योबभूवारिविदारण ।
नाम्नाऋतुध्वजख्यात सर्वलक्षणसयुत. ।।२।।
बुद्धिविक्रमलावण्यैर्गुरुशुक्राश्विनासम ।
ससमानवयोबुद्धिसत्त्वविक्रमचेष्टितै ।।३।।
नृपपुत्रोनृपसुतैर्नित्यमास्तेसमावृत ।
कदाचिच्छास्त्रसद्भावविवेककृतनिश्चय ।।४।।
कदाचित्काव्यसलापगीतनाटकसभवै ।
तथैवाक्षविनोदैश्चशस्त्रास्त्रविनयेषुच ।।५।।
योग्योनियुद्धनागाश्वस्यदनाभ्यासतत्पर: ।
रेमेनृपेद्रपुत्रोसौनरेद्रतनयैर्वृतै ।।६।।

पुत्र बोला—हे पिताजी ! पुराकाल मे शत्रुजित् नामक एक महाबली राजा थे, उनके यज्ञ मे सोम पान करके इन्द्र अत्यन्त सन्तुष्ट हुए ।। १ ।। उनके ऋतुध्वज नामक एक अत्यन्त पराक्रमी तथा विख्यात पुत्र हुआ ।। २ ।। वह बुद्धि मे बृहस्पति के तुल्य, विक्रम मे सुरपति के और रूप मे अश्विनी कुमारो के समान थे, वह जिन राज कुमारो से मिलते, वे भी आयु, सत्व, बल, चेष्टा मे उस राजकुमार से कम न थे, वह कभी शास्त्र ज्ञान से उत्पन्न विवेक पूर्वक अबस्थान करते थे ।। ३-४ ।। कभी काव्यचर्चा, कभी सगीत, कभी नाट्यादि से प्रसन्न होते, कभी पाश-क्रीडा, कभी शस्त्रास्त्र, कभी विनय भाव ।। ५ ।। कभी योग्य पुरुषो से मल्लयुद्ध, कभी गज, अश्व, रथादि की सवारी करते हुए राजपुत्रो से क्रीडा करते ।। ६ ।।

यथैवहिदिवातद्वद्रात्रावपिमुदायुत ।
तेषातुक्रीडतातत्रद्विजभूपविशासुता. ।।७।।
समानवयस प्रीत्यारतुमायात्यनेकश ।
कस्यचित्वथकालस्यनागलोकान्महीतलम् ।।८।।
कुमारावागतौनागौपुत्रावश्वतरस्यतु ।
ब्रह्मपतिच्छन्नौतरुणौप्रियदर्शनौ ।।९।।
तौतैर्नृपसुतै सार्द्ध तथैवान्यैर्द्विजात्मजै ।

विनोदैर्विविधैस्तत्रतस्थतु प्रीतिसयुतौ ॥१०॥
सर्वेचतेनृपसुतास्तेचब्रह्यविप्रासुता ।
नागराजात्मजौतौचस्नानसवाहनादिकाम् ॥११॥
वस्त्रगधान्नसयुक्ताचक्रुर्भोगभुजिक्रियाम् ।
अहन्यहन्यनुप्राप्तेतौचनागकुमारकौ ॥१२॥
आजग्मतुर्मुदायुक्तौप्रीत्यासूनोर्महीपते ।
सचताभ्यानृपसुत परनिर्वाणमाप्नवान् ॥१३॥
विनोदैर्विविधैर्हास्यसलापादिभिरेवच ।
विनाताभ्यानबुभुजेनसस्नौनपपौमधु ॥१४॥

जैसे आनन्द से दिन व्यतीत होता, वैसे ही रात्रि भी व्यतीत होती थी, जहाँ वह खेलते थे, वह सैकडो राज पुत्र, ब्राह्मण या वैश्यो के बालक ॥ ७ ॥ आ आकर खेलने लगे, इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर पृथिवी मे नागलोक मे ॥ ८ ॥ नागराज अश्वतर के दो पुत्र ब्राह्मण के वेश मे आये, वे दोनो ही युवा तथा प्रिय दर्शन थे ॥ ९ ॥ यह भी उन राजपुत्रो और ब्राह्मण पुत्रो के साथ विभिन्न प्रकार के विनोद करते हुए प्रीति पूर्वक वहाँ रहने लगे ॥ १० ॥ वह राजपुत्र, ब्रह्मपुत्र, वैश्य पुत्र और दोनो नागपुत्र सभी एक साथ स्नान, विमान पर चढना ॥ ११ ॥ वस्त्र धारण गधानुलेपन और भागानुसार भोजन करने लगे, इस प्रकार राजपुत्र की प्रीति से प्रसन्न हुए दोनो नाग पुत्र वहाँ नित्य प्रति आने जाने लगे ॥ १२-१३ ॥ उनके विविध प्रकार के आमोद-प्रमोद, हास्य-सलापादि से सुखी हुए वे उनके बिना भोजन, स्नान आदि भी नही करते थे, ॥ १४ ॥

नरेमेचनजग्राहशास्त्राण्यात्मगुणर्द्धये ।
रसातलेचतौरात्रिविनातेनमहात्मना ॥१५॥
निश्वासपरमौनीत्वाजग्मतुस्तदिनेदिने ।
मर्त्यलोकेपराप्रीतिर्भवतो केनपुत्रकौ ॥१६॥
सहेतिचप्रलपितौतावुभौनागदारकौ ।
दृष्टयोरत्रपातालेबहूनिदिवसानिमे ॥१७॥
दिवारजन्यामेवोभौपश्यामिप्रियदर्शनौ ।

इनिपित्रास्वयपृष्टौप्रणिपत्यकृताजली ।।१८।।
प्रत्यूचतुर्महाभागावुरगाधिपते सुतौ ।
पुत्र शत्रुजितस्तातनाम्नाख्यातऋतध्वज. ।।१९।।
रूपानावर्जवोपेत शूरोमानीप्रियवद ।
अनावृतकथोवाग्मीविद्वान्मैत्रोगुणाकर । २०।।

तथा क्रीडा और गुण वृद्धि के लिए शस्त्र भी नही उठाते थे, तथा वे नागपुत्र भी उस राजपुत्र के विना रात्रिकाल ।। १५ ।। रसातल मे दीर्घ श्वास लेते हुए व्यतीत करते और दिन मे उनके पास आते, कुछ काल इस प्रकार व्यतीत होने पर एक दिन नागराज अश्वत ने अपने दोनो पुत्रो से पूछा—हे पुत्रो ! मर्त्यलोक के प्रति तुम्हारी ऐसी प्रीति क्यो हुई है ? बहुत दिनो से तुम्हे मै दिन के समय पाताल लोक मे नही देखता ।। १६-१७ ।। रात्रि होने पर ही तुम दिखायी देते हो, इसका क्या कारण है, इस प्रकार पूछने पर उन दोनो ने अपने पिता से प्रणाम करके हाथ जोडे हुए कहा-हे तात ! मर्त्यलोक मे राजा शत्रुजित् के पुत्र ऋतुध्वज हे ।। १८-१९ ।। वह स्वरूप वान्, सरल चित्त शूर, प्रियभाषी, यशस्वी, विद्वान्, मित्रता के योग्य तथा गुणो की खान है।। २० ।।

मान्यमानयिताधीमान्ह्रीमान्विनयभूपण. ।
तस्योपचारसप्रीतिसभोगापहृतमन ।।२१।।
नागलोकेऽन्यलोकेवानरतिविदतेपित ।
तद्वियोगेननौतातनिशापातालशीतला ।।२२।।
परितापायतत्सगश्चाह्लादायरविर्दिवा ।
पुत्र पुण्यवतोधन्य सयस्यैवभवद्विध ।।२३।।
परोक्षस्यापिगुणिभि क्रियतेगुणकीर्तनम् ।
सतिशास्त्रविदोऽशीलासतिमूर्खा सुशीलिन ।।२४।।
शास्त्रशीलेसममन्येयस्मिन्धन्यतरतुतम् ।
यस्यमित्रगुणान्मित्राण्यमित्राश्चपराक्रमम् ।।२५।।
कथयतिसदासत्सुपुत्रवास्तेनवैपिता ।
तस्योपकारिण कच्चिद्भवद्भ्यामभिवाछितम् ।।२६।।

किंचिन्निष्पादितवत्सौपरितोषायचेतस ।
सधन्योजीवितंतस्यतस्यजन्मसुजन्मन ॥२७॥
यस्यार्थिनोनविमुखामित्रार्थेनचदुर्बल ।
मद्गृहेयत्सुवर्णादिरत्नवाहनमासनम् ॥२८॥
यद्वान्यत्प्रीतयेतस्यतद्देयमविशकया ।
धिक्तस्यजीवितपु सोमित्राणामपकारिण ॥२९॥

वह मानी, बुद्धिमान्, लज्जावाला तथा विनय से युक्त है उनकी प्रीति मे हमारा मन आकर्षित होकर ॥ २१ ॥ नागलोक, पृथिवी अथवा किसी भी अन्य स्थान मे प्रसन्न नही रहता । पाताल की शीतल रात्रि भी उनके वियोग मे ॥ २२ ॥ हमारे लिए ताप दायिनी होती है और उनके सग मे सूर्य के ताप से तप्त दिन भी हमको हर्ष जनक होता है । पिता ने कहा—वह पुण्यवान् पुत्र धन्य है, क्योकि तुम्हारे जैसे गुणवान् भी ॥ २३ ॥ पीछे से जिनका गुणगान करते है, अनेक शास्त्र ज्ञानी भी बुरे स्वभाव वाले तथा अनेक मूर्ख भी सुशील होते है ॥ २४ ॥ मेरे विचार मे वह राजपुत्र धन्य है क्योकि जिसकी मित्रता का गुण मित्र द्वारा और पराक्रम शत्रु द्वारा प्रकट होता है ॥ २५ ॥ उसी पुत्र के द्वारा पिता पुत्रवान् कहा जाता है, तुमने उस उपकार करने वाले के लिये कुछ विचार भी किया है ?॥ २६ ॥ हे पुत्र ! उस मित्र की सतुष्टि के लिये तुमने कुछ कार्य किया है ? इस जगत् मे वही धन्य है और उसी का जन्म सफल है ॥ २७ ॥ जो कामना वालो को विमुख नही करता और मित्र के प्रति भी दुर्वल नही है, इसलिए मेरे गृह मे स्वर्ण, रत्न, वाहन, आसन इत्यादि ॥ २८ ॥ जो कुछ भी है, उसे उनकी प्रसन्नता के लिए दे सकते हो क्योकि मित्रो का अपकार करने वालो को धिक्कार है ॥ २९ ॥

प्रतिरूपमकुर्वन्योजीवामीत्यवगच्छति ।
उपकारसुहृद्वर्गेष्वपकारचशत्रुषु ॥३०॥
नृमेघोवर्षतिप्राज्ञास्तस्येच्छतिसदोन्नतिम् ।
कितस्यकृतकृत्यस्यकर्तु शक्येतकेनचित् ॥३१॥
यस्यसर्वार्थिनोगेहेसर्वकामै सदार्चिता ।
यानिरत्नानितद्देहेपातालेतानिन कुत ॥३२॥

वाहनासनयानानिभूषणान्यबराणिच ।
विज्ञानयच्चतत्रास्तिततदन्यत्रनविद्यते ॥३३॥
प्राज्ञानामप्यसौतातसर्वसदेहहृत्तम ।
एकंतस्यास्तिकर्त्तव्यमसाध्यंतच्चनोमतम् ॥३४॥
हिरण्यगर्भगोविदशर्वादीनावराहते ।
तथापिश्रोतुमिच्छामितस्ययत्कार्यमुत्तमम् ॥३५॥

उपकारी मित्र के प्रति उपकार न करके जो जीवित रहते है, उनका जीवन भी असफल है, जो पुरुप बन्धुवर्ग के उपकार और शत्रु वर्ग के अपकार रूप जल को सीचते है, उन्ही की उन्नति का साधन देवता करते है, पुत्र ने कहा—वह स्वय ही कृतकृत्य है, उनका क्या उपकार कर सकते है ? ॥ ३०-३१ ॥ जिनसे याचक इच्छित पदार्थ द्वारा सदा पूजित होते है उनका उपकार करने की सामर्थ्य हममे नही है, क्योकि उनके यहाँ जो रत्न हैं, वह पाताल मे भी उपलब्ध नही है ॥ ३२ ॥ उनके जैसे वाहन, आसन, यान, आभूपण, वसन हमारे यहाँ नही है और उनके जैसा विज्ञान और कही भी नही हो सकता ॥ ३३ ॥ वह पडितो का भी सदेह दूर करने मे समर्थ है, हाँ, उनका एक कार्य है, परन्तु वह हमारे द्वारा साध्य नही हो सकता ॥ ३४ ॥ हिरण्य गर्भ भगवान् गोविन्द तथा शिवादि के अतिरिक्त वह किसी के द्वारा सिद्ध नही हो सकता, पिता ने कहा—उनके उस श्रेष्ठ कार्य को मैं सुनना चाहता हूँ ॥ ३५ ॥

असाध्यमथवासाध्यकिचासाध्यविपश्चिताम् ।
देवत्वममरेशत्वतत्पूज्यत्वचमानवा ॥३६॥
प्रयातिवाछितचान्यद्दृढयेव्यवसायिन ।
नाविज्ञातनचागम्यनाप्राप्यदिविचेहवा ॥३७॥
उद्यतानामनुष्याणांयतचित्तेन्द्रियात्मनाम् ।
योजनानासहस्राणियातिगच्छन्पिपीलिक ॥३८॥
अगच्छन्वैनतेयोपिपदमेकनगच्छति ।
क्वभूतलक्वचध्रौव्यस्थानयत्प्राप्तवान्ध्रुव ॥३९॥
उत्तानपादनृपते पुत्र.सद्भूमिगोचर. ।

तत्कथ्यतामहाभागौकार्यंवान्येनपुत्रकौ ॥४०॥
सभूपालसुत.साधुर्येनानृण्यलभेतवाम् ।
तेनाख्यातमिदतातपूर्ववृत्त महात्मना ॥४१॥

वह कार्य साध्य हो या असाध्य, दृढतर उद्योगी पुरुष देवत्व अथवा इन्द्रत्व के पूज्य भाव को भी प्राप्त कर सकते है ॥ ३६ ॥ दृढ पुरुष ही मनोवाछित पा सकते है स्वर्ग से भी अविज्ञात, अगम्य और अवाप्य कोई वस्तु नही है ॥ ३७ ॥ मन, आत्मा और इन्द्रिय को वश मे करने वाले पुरुष मनोरथ को प्राप्त कर लेते है। देखो चीटी कितनी छोटी होती है, किन्तु अधिक उद्योग वाली होने के कारण चलते-चलते सहस्र योजन तक जा सकती है ॥ ३८ ॥ पक्षिराज गरुड उद्योग न कर के एक पग भी नही जा सकते, जो उद्योग नही करते उनके लिए कुछ भी शक्य नही, उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव पृथ्वी मे होकर ही अत्यत दुर्लभ स्थान को प्राप्त हो गये, कहाँ वह ध्रुव का स्थान और कहाँ वह पृथ्वी ? इसलिए जिस प्रकार उस राजपुत्र का कार्य हो सके, वह बताओ ॥ ३९-४० ॥ तथा तुम भी मित्र-ऋण से बच सको। पुत्र बोले—हे तात ! उन महात्मा राजपुत्र ने इस प्रकार बताया था ॥ ४१ ॥

कौमारकेयथातस्यवृत्त सद्वृत्तशालिन ।
तस्यशत्रुजिततातपूर्वकश्चिद्द्विजोत्तम ॥४२॥
गालवोभ्यागमद्धीमान्गृहीत्वातुरगोत्तमम् ।
प्रत्युवाचचराजानसमुपेत्याश्रममम ॥४३॥
कोपिदैत्याधमोराजन्विध्वसयतिपापकृत् ।
तत्तद्रूपसमास्थायसिहेभवनचारिणाम् ॥४४॥
अन्येषाचातिकायानामहर्निशमकारणात् ।
समाधिध्यानयुक्तस्यमौनव्रतरतस्यच ॥४५॥
तथाकरोतिविघ्नानियथानेच्छामिपार्थिव ।
दग्धु कोपाग्निनासद्य समर्थास्तवयनतु ॥४६॥
दु.खार्जितस्यतपसोव्ययमिच्छामिपार्थिव ।
एकदातुमयाराजन्नतिनिर्विण्णचेतसा ॥४७॥
तत्क्लेशितेननि श्वासोनिरीक्ष्यांबरमुज्झित. ।

ततोवरतलात्सद्य पतितोयतुरगम ॥४८॥

उन राजपुत्र की कुमारावस्था मे जो हुआ सो सुनो, शत्रुजित् नामक एक श्रेष्ठ ब्राह्मण है ॥ ४२ ॥ एक समय गालव नामक द्विजवर ने सुन्दर अश्व लेकर आश्रम मे आकर राजा से कहा ॥४३॥ कोई पाप कर्मवाला दैत्याधम मेरे आश्रम मे आकर विध्वम करता है, वह सिंह, गज अथवा अन्य जन्तु के रूप मे आकर मेरे समाधि मग्न होने या मौन व्रत रखने पर मेरा मन विचलित कर देता है, हे राजन् ! मै स्वय ही उसे अपनी क्रोधाग्नि मे भस्म कर सकता हूँ ॥ ४४–४५ ॥ परन्तु, मै ऐसा करके अपनी अधिक दिनो मे दु ख पूर्वक सचित तपस्या को क्षीण नही करना चाहता हूँ हे राजन् ! एक दिन मैने अत्यत दु खित हृदय मे ॥ ४७ ॥ क्लेश युक्त होकर आकाश की ओर अपना दीर्घश्वास छोडा, जिससे यह अश्व उसी समय आकाश से आ गिरा ॥ ४८ ॥

वाक्चाशरीरिणीग्राहनरनाथश्रृणुष्वतत् ।
अश्रात सकलभूमेर्वलयतुरगोत्तम ॥४९॥
समर्थ क्रातुमर्कोणतवायप्रतिपादित ।
पातालावरतोयेषुनास्यप्रतिहतागति ॥५०॥
समस्तदिक्षुव्रजतोनसग पर्वतेषुच ।
यतोभूलयसर्वमश्रातोयचरिष्यति ॥५१॥
तत कुवलोनाम्नाख्यातिलोकेषुयास्यति ।
क्लिश्नात्यहर्निशपापोयश्चत्वादानवाधम ॥५२॥
तमप्येनममारुह्यद्विजश्रेष्ठहनिष्यति ।
शत्रुजिन्नामभूपालस्तस्यपुत्रऋतध्वज ॥५३॥
प्राप्यैतदश्वरत्नचख्यातिमेतेनयास्यति ।
सोहत्वामनुसप्राप्तस्तपसोविघ्नकारिणम् ॥५४॥
तनिवारयभूपालभागभाङ् नृपतिर्यत ।
तदेवदश्वरत्नतेमयाभूपनिवेदितम् ॥५५॥
पुत्रमाज्ञापयतथायथाधर्मोनलुप्यते ।
सतस्यवचनाद्राजातवैपुत्रमृतध्वजम् ॥५६॥
तदश्वरत्नमारोप्यकृतकौतुकमगलम् ।

अप्रैषयतधर्मात्मागालवेनसमतदा ।।५७।।
स्वमाश्रमपदसोपितमादायययौमुनि ।।५८।।

उस समय जो आकाशवाणी हुई उसे सुनो—हे द्विजवर ! तुम्हे जो अश्व प्राप्त हुआ है,वह विना कही रुके, सूर्य के समान सर्वत्र गमन करने में समर्थ है, पाताल, आकाश अथवा जल, कही भी इसकी गति का अवरोध नही होता ।। ४६—५० ।। यह सब दिशाओ और पर्वतो तथा पृथ्वीवलय सर्वत्र बिना रुके गमन कर सकता है, इसलिए यह सभी लोको मे 'कुवलय' नाम से प्रसिद्ध होगा और जो दानवाधम तुम्हारे लिए दिन-रात्रि क्लेश उपस्थित करता है ।। ५१-५२ ।। उसे इस अश्व पर चढ कर शत्रुजित् राजा के पुत्र ऋतुध्वज मारेंगे ।। ५३ ।। तथा इस अश्वरत्न द्वारा अत्यन्त ख्याति को प्राप्त होंगे, इसीलिए मै यहाँ आया हूँ, अब आप भी उग्र तप मे विघ्न उपस्थित करने वाले को ।। ५४ ।। निवारण करे और मेरे द्वारा प्रदत्त इस अश्वरत्न को लेकर ।। ५५ ।। अपने पुत्र को ऐसी आज्ञा दीजिये, जिससे धर्म लुप्त न हो पावे, उस ब्राह्मण की यह बात सुनकर राजा शत्रुजित् ने अपने पुत्र ऋतुध्वज को ।। ५६ ।। मगलाचार आदि करा कर उस अश्व पर चढाया और गालव मुनि के साथ भेज दिया ।। ५७ ।। जिन्हे साथ लेकर मुनि भी अपने आश्रम की ओर चल दिये ।। ५८ ।।

१६—मदालसा उपाख्यान (१)

गालवेनसमगत्वानृपपुत्रेणतेनयत् ।
कृततत्कथ्यतापुत्रौविचित्रायुधयोधिना ।।१।।
सगालवाश्रमेरम्येतिष्ठन्भूपालनदन ।
सर्वविघ्नोपशमनचकारब्रह्मवादिनाम् ।।२।।
वीर कुवलयाश्वं तवसतगालवाश्रमे ।
मदावलेपोपपतोनाजानाद्दानवाश्रम ।।३।।
ततस्तगालवंविप्रसध्योपासनतत्परम् ।
सौकररूपमास्थायप्रधर्षयितुमागमत् ।।४।।
मुनिशिष्यैरथोत्कुष्टेशीघ्रमारूह्यतहयम् ।

अन्वधावद्वराहतनृपपुत्र.शरासनी ॥५॥
आजघानचबाणेनचन्द्रार्धाकारवर्चसा ।
आकृष्यवलवच्चापचारुचित्रोपशोणितम् ॥६॥
नाराचाभिहत शीघ्रमात्मत्राणपरोमृग ।
गिरिपादपसवाधासोत्यक्रामन्महाटवीम् ॥७॥

पिता ने कहा—गालव मुनि के साथ जाकर राजकुमार ने क्या किया था, वह मुझे बताओ, यह वर्णन अत्यन्त विचित्र है ॥ १ ॥ पुत्र बोले—राजपुत्र ऋतुध्वज ने गालव मुनि के आश्रम मे निवास करके ब्रह्मवादी मुनियो के सभी विघ्न नष्ट कर दिये थे ॥ २ ॥ गालव मुनि के आश्रम मे निवास करने वाले वीर कुवलयाश्व के रहने की बात को नही जान सका ॥ ३ ॥ इसलिए वह शूकर का रूप धारण करके सध्योपासन मे लीन गालव मुनि के शरीर से अपना शरीर रगडने लगे ॥ ४ ॥ उस ममय मुनिशिष्यो ने उच्च स्वर से चीत्कार किया, तब उम अश्व पर चढकर राजपुत्र भी उस शूकर को लक्ष्य करते हुए दौडे ॥ ५ ॥ और सुन्दर धनुष को खीच कर अर्धचन्द्राकार बाण से उस पर प्रहार किया ॥ ६ ॥ उस बाण से आहत हुआ दैत्य आत्म रक्षार्थ पर्वत और महावन मे घूमने लगा ॥ ७ ॥

तमन्वधावद्वेगेनतुरगोसौमनोजव ।
चोदितोराजापुत्रेणपितुरादेशकारिणा ॥८॥
अतिक्रम्याथवेगेनयोजनानिसहस्रश ।
धरण्याविवृतेगर्तेनिपपातलघुक्रम ॥९॥
तस्यानतरमेवाथसचाश्वीनृपते सुत ।
निपपातमहागर्ते तिमिरौघसमावृते ॥१०॥
ततोनादृश्यतमृग सतस्मिन्राजसूनुना ।
प्रकाशचसपातालमपश्यत्तत्रचार्चिषा ॥११॥
ततोपश्यत्ससौवर्णप्रासादशतसकुलम् ।
पुरदरपुरप्रख्यपुरप्राकारशोभितम् ॥१२॥
तत्प्रविश्यसनापश्यत्तत्रकचिन्नरपुरे ।
भ्रमताचततोदृष्टातत्रयोषित्त्वरान्विता ॥१३॥

सापृष्टातेनतन्वगीप्रम्थिताक्वेतिकस्यवा ।
नोवार्चाकिचित्प्रासादमारुरोहचभामिनी ॥१४॥
सोप्यश्वमेकतोवद्धानामैवानुसमारवै ।
विस्मयोत्फुल्लनयनोनि शकोनृपते मुत ॥१५॥

वह वेगवान् अश्व भी राजकुमार की प्रेरणा से उमका पीछा करने लगा ॥ ८ ॥ फिर वह हजार योजन लाँघ कर पृथिवी के गर्भ मे स्थित एक विशाल गर्त्त मे गिर पडा ॥ ९ ॥ उम का पीछा करने हुए अश्वारोही राजकुमार भी उम घोर अ धकार पूर्ण गर्त मे जा गिरे ॥ १० ॥ उम समय राजपुत्र को वह शूकर दिखाई न दिया और जव वह प्रकाशमय पाताल मे प्रविष्ट हुए तब भी उन्हे वह दैत्य दिखाई न पडा ॥ ११ ॥ उम ममय वहाँ उन्होने सैकडो स्वर्णिम भवनो से युक्त परकोटे वाले, अमरावती के समान अत्यन्त शोभायमान एक नगरी देखी ॥ १२ ॥ उसमे प्रविष्ट होने पर उन्हे वहाँ एक भी मनुष्य दिखाई न दिया, परन्तु शीघ्रता पूर्वक इधर उधर घूमती हुई एक स्त्री को उन्होने देखा ॥ १३ ॥ राजकुमार ने उससे पूछा—तुम किमकी भेजी हुई, किसके पास जा रही हो ? परन्तु, उस स्त्री ने कुछ उत्तर न दिया और वह वेग पूर्वक एक भवन पर चढ गई, राजकुमार ने भी अश्व को एक स्थान पर बाँध दिया और उम स्त्री का पीछा करने के लिए उसी भवन पर चढ गये ॥ १४-१५ ॥

ततोपश्यत्सुविस्तीर्णेपर्यंकेसर्वकाचने ।
निपण्णाकन्यकामेकाकामयुक्तारतियथा ॥१६॥
विस्पष्टेदुमुखीमुभ्रू पीनश्रोणीपयोधराम् ।
बिबाधरोष्ठीतन्वगीनीलोत्पलविलोचनाम् ॥१७॥
रक्ततु गनखाश्यामामृदुताम्रकराघ्रिकाम् ।
करभोरु सुदशनानीलसूक्ष्मस्थिरालकाम् ॥१८॥
तादृष्ट्वाचारुसर्वागीमनगागलतामिव ।
सोमन्यत्पार्थिवसुतस्तारसातलदेवताम् ॥१९॥
साचदृष्ट्वैवतवालानीलकु चितमूर्धजम् ।
पीनोर स्कधबाहु तममस्तमदनशुभा ॥२०॥

उत्तस्थौचशुभाचाराच्चित्तक्षोभमवापसा ।
लज्जाविस्मयदैन्यानासद्यस्तन्वीवशगता ॥२१॥
कोयदेवोथयक्षोनुगधर्वोवोरगोपिवा ।
विद्याधरोवासप्राप्त कृतपुण्यापतिर्नर ॥२२॥

वहाँ पहुँच कर उन्होने देखा कि रति के समान साक्षात् चन्द्रमुखी परम सुन्दरी एक नारी स्वर्ण-निर्मित एक पर्यंक पर लेट रही है, वह कृशाङ्गी नीलपद्म के ममान नयन वाली है ॥ १६-१७ ॥ उमके नख लाल रग के कुछ ऊँचे, देह कोमल, नवीनावस्था, हाथ-पावो के तलुए लाल रङ्ग के, दोनो ऊरु गज-सुण्ड के ममान, सुन्दर शन्तावलि और अलके नीलवर्ण की थी ॥ १८ ॥ कामलता के समान उम मर्वाग सुन्दरी रमणी को देखकर राजपुत्र ने उसे पाताल की अधिष्ठात्री समझा ॥ १९ ॥ उस रमणी ने भी घुँघराले केश, विशाल वक्ष स्थल, पुष्ट स्कध, और लम्वे बाहु वाले राजकुमार को देख कर सोचा कि यह रतिपति अनग है ॥ २० ॥ तब वह अत्यन्त भाग्य शालिनी रमणी महमा क्षुमित होकर उठी और लज्जा, विनय तथा दीनता के वश मे होकर ॥ २१ ॥ विचार करने लगी कि यह देवता, यक्ष, गधर्व, नाग, विद्याधर अथवा कोई पुण्यवान् मनुष्य है, जो यहाँ आया है ॥ २२ ॥

एवविचित्यवहुधानि श्वस्यचमहीतले ।
उपविश्यतदाभेजेसामूर्छामिदिरेक्षणा ॥२३॥
सोपिकामशराघातमवाप्यनृपते सुत ।
तासमाश्वासयामासनभेतव्यमितिब्रुवन् ॥२४॥
साचस्त्रीयातदादृष्टापूर्वतेनमहात्मना ।
तालवृंतमुपादायपर्यवीजयदाकुला ॥२५॥
समाश्वस्तातदापृष्टातेनसामोहकारणम् ।
किचिल्लज्जान्विताबालातस्यैसख्यैन्यवेदयत् ॥२६॥
साचास्मैकथयामासनृपपुत्रायविस्तरात् ।
मोहस्यकारणसर्वतद्दर्शनमुद्भवम् ॥२७॥
यथातयामसाख्याततदवृत्तान्तंचभामिनी ।
विश्वावसुरितिख्यातोदिविगधर्वराट्प्रभो ॥२८॥

वह लालनेत्र वाली रमणी विभिन्न प्रकार से विचार करती हुई दीर्घ श्वास छोड कर मूर्च्छित हो गई ॥ २३ ॥ यह देख कर राजकुमार भी 'भय न करो' कहते हुए उसे समझाने लगे ॥ २४ ॥ जो स्त्री राजपुत्र ने प्रथम देखी थी, वह ताड का पखा हाथ मे लेकर उस रमणी की हवा करने लगी ॥ २५ ॥ फिर राजपुत्र ने उसकी मूर्च्छा का कारण पूछा तो उस लज्जावती ने उसे कुछ न बता कर अपनी सखी से सब बात कही ॥ २६ ॥ राजपुत्र द्वारा पूछे जाने पर उस सखी ने उनके देखने से मूर्च्छित होने का तथा उस रमणी का विस्तार सहित वृत्तान्त कहा ॥ २७ ॥ उसने जो कहा था सो सुनिये सखी बोली— एक विश्वावसु नामक विख्यात गन्धर्वराज स्वर्ग मे रहते है ॥ २८ ॥

तस्येयमात्मजासुभ्रूर्नाम्नाख्यातामदालसा ।
वज्रकेतोः सुतश्चोग्रोदानवोऽरिविदारण ॥२९॥
पातालकेतुर्विख्यात पातालान्तरसंश्रय ।
तेनेयमुद्यानगताकृत्वामायातमोमयीम् ॥३०॥
अपहृत्यसमानीतावात्वेयदुष्टबुद्धिना ।
आगामिन्यात्रयोदश्यामुद्वयतिकिलासुर ॥३१॥
सतुनार्हतिचार्वङ्गीशूद्रोवेदश्रुतियथा ।
अतीतेचदिनेबालात्मव्यापादनोद्यताम् ॥३२॥
सुरभि प्राहनायत्वाप्राप्स्यतेदानवाधम ।
मर्त्यलोकमनुप्राप्तयस्तुनभेत्स्यतेशरैः ॥३३॥
सतेभर्तामहाभागेस्वचिरेणभविष्यति ।
अहत्वस्या सखीनाम्नाकुण्डलेतिमनस्विनी ॥३४॥

यह मदालसा नाम वाली उन्ही की कन्या है, एक दिन यह उद्यान मे क्रीडा रत थी, तभी वज्रकेतु दानव का पुत्र पातालकेतु अपनी तामसी माया के द्वारा ॥ २९-३० ॥ इसे हरण कर लाया और आगामी त्रयोदशी को इसके साथ विवाह करेगा ॥ ३१ ॥ परन्तु वह इस सौंदर्यमयी के लिए योग्य पात्र नही है, यह कल जिस समय आत्मघात हेतु तत्पर हुई थी ॥ ३२ ॥ तभी सुरभि ने कहा कि यह दानव तुम्हे नही पा सकेगा, जो पुरुष मर्त्य लोक से आकर बाणो से इसे मारेगा ॥ ३३ ॥ वही तुम्हारा स्वामी होगा, मै इसकी

कुण्डला नाम की सखी है ॥ ३४ ॥

सुताविन्ध्यवतःपत्नीवीरपुष्करमालिनः ।
हतेभर्त्तरिशुम्भेनतीर्थात्तीर्थमनुव्रता ॥३५॥
चरामिदिव्ययागत्यापरलोकार्थमुद्यता ।
पातालकेतुर्दुष्टात्मावाराहंवपुरास्थितः ॥३६॥
केनापिविद्धोबाणेनमुनित्राणकारणे ।
तथाहतत्त्वतोन्विष्यन्तीनाहमिहागता ॥३७॥
सत्यमेवसकेनापिताडितोदौष्ट्यमाचरन् ।
इयंचमूर्च्छामगमद्येनतत्कारणंशृणु ॥३८॥
त्वयिप्रीतिमतीबालादर्शनादेवमानद ।
देवपुत्रोपमेचारुवाक्यरूपादिगुणिनि ॥३९॥
भार्याचान्यविहितायेनविद्धःसदानवः ।
एतस्मात्कारणान्मोहमहान्तमियमागता ॥४०॥
यावज्जीवंचतन्वङ्गीदुःखमेषोपभोक्ष्यति ।
त्वय्यस्याहृदयङ्गाभिभर्त्ताचान्योभविष्यति ॥४१॥
यावज्जीवमतोदुःखमनुरक्तानान्यथावच ।
अहत्वस्याःप्रसौप्रत्याद्दुःखितासमागता ॥४२॥

मै विन्ध्यवान की मनस्विनी पुत्री तथा वीर पुष्करमाली की भार्या हूँ, मेरे पति की मृत्यु शम्भु के द्वारा हुई थी, अब मैं तीर्थ-तीर्थ मे दिव्यगति से यात्रा करती हूँ, उस दुरात्मा पातालकेतु ने आज शूकर का रूप धारण किया था ॥ ३५-३६ ॥ उसे किसी पुरुष ने मुनियो के रक्षणार्थ बाण से बीधा है, यह सत्य है या नही, इसकी खोज मे यहाँ आई थी ॥ ३७ ॥ यहाँ आकर देखा कि उस अधम को किसी ने अवश्य ही मारा है, अब इसकी मूर्च्छा का भी कारण सुनो ॥ ३८ ॥ आपको देखते ही यह आपके प्रति अत्यन्त प्रीतिमती हुई है, क्योकि आप देव पुत्र के समान मनोहर और वाणी से गुणज्ञ है ॥ ३९ ॥ परन्तु, इस दानव को जिस पुरुष ने बीधा है, यह उनके अतिरिक्त अन्य किसी की पत्नी नही बन सकती इसीलिए यह अत्यत मोहित हुई है ॥ ४० ॥ क्योकि यह आपके प्रति अनुरक्त हुई है और अन्य पुरुष इसका पति होगा, इस लिए

इसे जीवन पर्यन्त दुख ही भोगना होगा ॥ ४१ ॥ क्योंकि मुनि का वचन कभी मिथ्या नही होता, इसलिए जीवन पर्यन्त दुख [illegible], न दुखित चित्त मे इसके स्नेहवश ही यहाँ आई हूँ ॥ ४२ ॥

> यतोविशेषोनैवास्तिस्वस्याश्च निजदेहतो ।
> यद्येषाभिमतवीरपतिमाप्नोतिशोभना ॥४२॥
> ततस्त्वहतप कुर्यानिर्व्यलीकेनचेतसा ।
> त्वनुकोवाविमार्थवासप्राप्तोऽत्रमहामते ॥४४॥
> देवोदैत्योनुगन्धर्व पन्नग किन्नरोपिवा ।
> नह्यत्रमानुषगतिर्नचेदृङ्मानुषीतनु ॥४५॥
> तत्त्वमाख्याहिकोसिन्वयथैवाविनयस्था ।
> यन्मापृच्छसिधर्मज्ञे कस्त्वकिमागतोऽ ॥४६॥
> तच्छृणुष्वामलप्रज्ञे कथयाम्यादितस्तव ।
> राज्ञ शत्रुजित पुत्र पितासप्रेषित शुभे ॥४७॥
> मुनिरक्षणमुद्दिश्यगालवाश्रमागत ।
> कुर्वतोममरक्षाचमुनीनाधर्मचारिणाम् ॥४८॥
> विघ्नार्थमागत कोपिशौकरवपुरास्थित ।
> मयासविद्धोवाणेनचद्रार्द्धाकारवर्चसा ॥४९॥

क्योकि मै इसके और अपने देह मे पृथकत्व नही मानती यदि इसे अपनी इच्छानुसार पति मिल जाय ॥ ४३ ॥ तो मै स्वस्थ मन मे तप करूँ । हे महामते ! तुम कौन हो ? यहाँ क्यो आये हो ? ॥ ४४ ॥ क्या तुम देवता, दैत्य, गधर्व, नाग या उरग हो ? क्योकि मनुष्य का तो शरीर ही ऐसा नही होता, जिसमे वह यहाँ आ सके ॥ ४५ ॥ इसलिए जैसे मैने अपना सब वृत्तान्त सुनाया है वैसे ही तुम भी अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त [illegible] सत्य सुनाओ । कुवलयाश्व बोले—तुमने पूछा है कि तुम कौन हो और यहां क्यो आये हो ? ॥ ४६ ॥ वह सब मै तुम्हे बताता हूँ, सुनो : मै राजा शत्रुजित् का पुत्र हूँ और अपने पिता की प्रेरणा से ॥ ४७ ॥ मुनियो के रक्षणार्थ गालव मुनि के आश्रम मे रह कर मुनियो की रक्षा करता था ॥ ४८ ॥ उसी समय एक शूकर उनके कर्म मे विघ्न उपस्थित करने को वहाँ आया और मैने उसे अर्धचन्द्र बाण से

बोध दिया ॥ ४६ ॥

अपक्रान्तोनिवेगेनतमम्यनुगतोह्यी ।
पपातसहनागर्त्तं सक्रो ेऽश्वश्वमासक ॥५०॥
सोहमश्व समारूढस्तमम्येक परिभ्रमन् ।
प्रकाशमामादितवान्द्दष्टाचनवर्तामया ॥५१॥
पृष्टाचनचमेकिञ्चिद्र्वस्मादत्तमुत्तरम् ।
त्वाचेवानुप्रविष्टोऽहमिमन्नासादमुत्तमम् ॥५२॥
इत्येतत्कथितमस्यनदेवोहृनदानव ।
न्नगोनगन्धर्व किन्नरा्वा शुचिस्मिते ॥५३॥
समस्ता पूज्यपक्षावेदवाद्याममकु डल ।
मनुष्योस्मिविशङ्कातिनद ऽन्य ाकोहिचित् ॥५४॥
तत प्रहृष्टासाकन्यास ावडनमुत्तमद् ।
लज्जाजडवीक्षमाणाकिञ्चिन्नोवाचभामिनी ॥५५॥
तत्सखीपुनरप्यनाप्रहृष्टाप्रत्युवाचह ।
यथावत्कथिततेनसु ्याावचनानुगम् ॥५६॥

तब वह अत्यन्त वेग मे दौडा और मैने भी अश्वारोहण पूर्वक उसका पीछा किया, फिर वह एक विशाल गर्त्त मे गिरा और मै भी उमका पीछा करता हुआ अपने अश्व सहित उसमे गिर गया, परन्तु अपने अश्व पर चढा हुआ चलता रहा और इस प्रकाशमय स्थान मै आकर तुम्हे देखा ॥ ५०-५१ ॥ तुमसे पूछने पर तुमने कोई उत्तर नही दिया, तब मै तुम्हारे पीछे-पीछे इस भवन मे चला आया ॥ ५२ ॥ यह मने मत्य ही कहा है, मै देव, दानव' पन्नग, गधर्व अथवा किन्नर मे से कोई भी नही हूँ ॥ ५३ ॥ मै मनुष्य हूँ देवता इत्यादि तो सभी मेरे पूज्य है, तुम मेरे मनुष्य हो ने मे किसी प्रकार का सदेह मत करो ॥५४॥ पुत्रो ने कहा-हे पिता, तब वह कन्या मदालसा अत्यन्त हर्षित होकर लज्जा से मौन हुई सखी की ओर देखने लगी ॥५५॥ तब सखी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर मदालसा से कहा—हे सखि ! तू सुरभि के वचन मे तत्पर है, इन्होने यथार्थ वृत्तान्त कहा है, फिर वह राजकुमार से बोली ॥ ५६ ॥

वीरसत्यमसदिग्धंभवताभिहितवच ।
नान्यत्रहृदयह्यस्याद्दृष्ट्वास्थैर्यप्रयास्यति ।।५७।।
चद्रमेवधिकाकाति समुपैतिरविप्रभा ।
भूतिर्धन्यधृतिर्धीरक्षातिरभ्येतिचोत्तमम् ।।५८।।
त्वयैवविद्धोसदिग्धसपापोदानवाधम ।
सुरभि सागवामाताकथमिथ्यावदिष्यति ।।५९।।
तद्धन्येयमभाग्याचत्वत्मवध्रमवेत्यवै ।
कुरुष्ववीरयत्कार्यविधिनैवसमाहितम् ।६०।।
परवानहमित्याहराजपुत्र सदापितु ।
सचापितत्क्षणात्प्राप्तोनिगृहीनसमित्कुश ।
मदालसाया सप्रीत्याकु डलागौरवेणच ।।६२।।
प्रज्वाल्यपावकहुत्वामत्रवित्कृतमगलाम् ।
वैवाहिकेविधौकन्याप्रतिपाद्यायथागतम् ।।६३।।

कुण्डला ने कहा—हे वीर ! आपने जो कुछ कहा है वह सत्य न होता तो यह आपके दर्शन मात्र से ही अपने हृदय मे स्थिरता को क्यो प्राप्त होती ? ।। ५७ ।। क्योकि चन्द्रमा को ही अधिक कान्ति और सूर्य को ही अधिक प्रभा प्राप्त है, ऐश्वर्य पुरुष को धन्य करता है, धृति धीर को और शान्ति श्रेष्ठ पुरुष को ही प्राप्त होती है ।। ५८ ।। इसलिए आपने ही इस दानवाधम को विद्ध किया है, इसमे सदेह नही, गोमाता सुरभि कभी मिथ्या नही बोल सकती ।। ५९ ।। इसलिए आपके साथ सम्बन्ध प्राप्त करके यह सखी सौभाग्यवती और धन्य हुई है, अब आप विधिवत् कर्त्तव्य का अनुष्ठान करिये ।। ६० ।। पुत्रो ने कहा—हे पिता ! राजपुत्र उससे बोले—मै पराधीन हूँ, पिता की आज्ञा के बिना इस बाला से विवाह कैसे कर सकता हूँ ! इस पर कुण्डला ने कहा है, यह देवकन्या है, आप इसके साथ विवाह कीजिये, तब राजपुत्र ने स्वीकृति दी और विवाह के लिए तत्पर हुए, उस समय मदालसा ने अपने कुल गुरु तुम्बरु का स्मरण किया ।। ६१ ।। तभी तुम्बरु समिध और कुश लेकर वहाँ आगए ।। ६२ ।। और घृताहुति देकर अग्नि को प्रज्वलित करके विधि पूर्वक मदालसा और राजपुत्र का विवाह सम्पन्न कराया और फिर अपने

स्थान को चले गये ॥ ६३ ॥

जगामतपसेधीमान्स्वमाश्रमपदतत ।
साचाहतासखीवालाकृतार्थास्मिवरानने ॥६४॥
सयु क्तामनुनादृष्ट्वात्वामहरूपशालिनीम् ।
तपस्तप्स्येहमतुल निर्व्यलीकेनचेतसा ॥६५॥
तीर्थाबुधौतपापाचभवित्रीनेदृशीयथा ।
तचाहराजपुत्रसाप्रश्रयोपनतवच ॥६६॥
गतुकामानिजमखीस्नेहविक्लवभाषिणी ।
पु भिरप्यमितप्रज्ञेनोपदेशोनवद्विधे ॥६७॥
दातव्य किमुतस्त्रीभिरतोनोपदिशामिते ।
कित्वस्यास्तनुमध्याया स्नेहाकृष्टेनचेतसा ॥६८॥
त्वयाविश्रभिताचास्मिस्मारयाम्यरिमूदन ।
भर्त्तव्यारक्षितव्याचभार्याहिपतिनासदा ॥६९॥
धर्मार्थकामससिद्धयै भार्याभर्त्तु सहायिनी ।
याचभार्याचभर्त्ताचपरस्परमनुव्रतौ ॥७०॥

वह अपने आश्रम मे तप करने के लिए जब चले गये तब कुण्डला ने मदालसा से कहा—कि अव मै कृतार्थ हो गई ॥ ६४ ॥ हे रूपवती ! तुझे इनके साथ मिली देखकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई, अब मैं निर्विकार मन से तपस्या करूँगी ॥ ६५ ॥ अब मुझे फिर इस प्रकार न रहना पडे, इसलिए तीर्थ जल से स्नान कर पाप-रहित होऊगी, फिर उसने राजकुमार से नम्रता पूर्वक कहा ॥ ६६ ॥ इच्छित स्थान मे जाने को तत्पर अपनी सखी के स्नेह से व्याकुल कुण्डला ने कहा—हे अत्यन्त बुद्धिमान् ! आपके समान पुरुष को ज्ञानी पुरुष भी उपदेश देने मे समर्थ नही है ॥ ६७ ॥ मै तो स्त्री हूँ, आपको उपदेश नही देती, फिर भी मेरा मन अपनी सखी के स्नेह मे आकर्षित है ॥ ६८ ॥ हे शत्रुनाशक ! आप पर विश्वास करती हुई मै आपको याद दिलाती हूँ कि पति को पत्नी की सदैव रक्षा करनी चाहिये ॥ ६९ ॥ पत्नी भी पति की सहायिका होती है और धर्म, अर्थ तथा काम की सिद्धि के लिए दोनो ही परस्पर वशीभूत रहते हैं ॥ ७० ॥

तदाधर्मार्थकामानात्रयाणामपिसगतम् ।
कथभार्यामृतेधर्ममर्थवापुरुप प्रभो ॥७१॥
प्राप्नोतिकाममर्थवातस्यात्रितयमाहितम् ।
तथैवभर्त्तारमृतेभार्याधर्मादिमावने ॥७२॥
नसमर्थात्रिवर्गोयदापत्यसमुपाश्रिता ।
देवतापितृभृत्यानामतिथीनाचपूजनम् ॥७३॥
नपु भि शक्यतेकर्त्तु मृतेभार्यानृपात्मज ।
प्राप्तोपिचार्थोमनुजैरानीतोपिनिजगृहम् ॥७४॥
क्षयमेतिविनाभार्याकुभार्यासग्रहेपिवा ।
कामस्तुनस्यनैवास्तिप्रत्यक्षेणोपलक्ष्यते ॥७५॥
दपत्यो सहधर्मेणत्रयीधर्ममवाप्नुयात् ।
पुत्राणायोनिरन्यावैनान्यतोभार्ययाविना ।
पितृन्पुत्रैस्तथैवान्नसाधनैरनिथीनपि ॥७६॥
पूजाभिरमरास्तद्वत्साध्वीभार्यानरोवति ।
स्त्रियाश्चापिविनाभर्त्राधर्मकामार्थसतति ॥७७॥

तभी धर्म, अर्थ और काम का सिद्धि सभव है, यह तीनो धर्म पत्नी मे समाहित होने से, जैसे पत्नी के बिना कभी धर्म, अर्थ ॥ ७१ ॥ प्राप्त करने मे समर्थ नही होता वैसे ही धर्मादि के साधन मे पति के बिना पत्नी भी ॥ ७२ ॥ समर्थ नही होती, क्योकि धर्म, अर्थ और काम पति-पत्नी दोनो के ही आश्रित है। हे राजकुमार ! देवता, पितर भृत्य और अतिथियो का सत्कार ॥ ७३ ॥ न हो तो धर्माचरण नही हो सकता तथा पुरुष द्वारा अनायास उपार्जित धन भी गृह मे लाने पर ॥ ७४ ॥ यदि पत्नी न हो अथवा कुभार्या हो तो वह सब नष्ट हो जाता है, पत्नी के बिना, न होने वाला यह कार्य तो प्रत्यक्ष ही है ॥ ७५ ॥ यदि स्त्री-पुरुप दोनो ही समान धर्म को पाले तभी, अर्थ, काम मे समर्थ होते है, साध्वी पत्नी को प्राप्त करके पुत्रोत्पादन द्वारा पितरो को तथा अन्नादि से अतिथियो को ॥ ७६ ॥ और पूजन द्वारा देवताओ को प्रसन्न करने मे समर्थ होते है, स्वामी के बिना नारी के भी धर्म और काम का भले प्रकार विस्तार नही हो सकता ॥ ७७ ॥

नैवतस्मात्त्रिवर्गोयदापत्यमधिगच्छति ।
एतन्मयोक्त युवयोर्गमिष्यामियथेप्सितम् ॥७८॥
वर्धत्वमनयासार्द्ध धनपुत्रसुखायुषा ।
इत्युक्त्वासपरिष्वज्यस्वसखीतनमस्यच ॥७९॥
जगामदिव्ययागत्यायथाभिप्रेतमात्मन ।
सोपिशत्रुजित पुत्रस्तामारोप्यतुरगमम् ॥८०॥
निर्गंतुकाम पातालाद्विज्ञातोदनुसभवै ।
ततस्तै सहसोत्कृष्ट ह्रियतेह्रियतेत्विति ॥८१॥
कन्यारत्नयदानीतदिव पातालकेतुना ।
तत परिघनिस्त्रिशगदाशूलशरायुधम् ॥८२॥
दानवानाबलप्राप्तसहपातालकेतुना ।
तिष्ठतिष्ठेतिजल्पतस्तेतदादानवोत्तमा ॥८३॥
शरवर्षैस्तथाशूलैर्ववर्षुर्नृपनदनम् ।
सतुशत्रुजित पुत्रस्ततस्तान्प्रतिवीर्यवान् ॥८४॥

यह त्रिवर्ग दोनो मे ही आश्रित है, यही मेरा कहना है, अब मुझे आज्ञा दीजिये, जिससे मे अपने इच्छित स्थान मे चली जाऊ ॥ ७८ ॥ मेरा आशीर्वाद है कि आप इससे युक्त होकर धन, पुत्र, आयु और सुख मे वृद्धि को प्राप्त हो नागपुत्रो ने कहा-इस प्रकार कहती हुई कुण्डला अपनी सखी को आलिगन और राजकुमार को नमस्कार करके ॥ ७९ ॥ दिव्यगति से अपने इच्छित स्थान को गई और ऋतुध्वज ने मदालमा को अश्व पर चढा कर ॥ ८० ॥ जैसे ही पाताल से निकलना चाहा, वैसे ही दानवो को उसका पता लग गया कि 'स्वर्ग से जिस कन्या को पाताल केतु लाया था, उसे हरण किये ले जा रहा है, यह कहते हुए दानव चीत्कार करने लगे और पातालकेतु के साथ मिल कर दानव सेना परिध, खड्ग, गदा, शूल, बाण इत्यादि ॥ ८१-८२ ॥ आयुधो को ग्रहण कर ठहरो, ठहरो, कहते हुए ॥ ८३ ॥ राजकुमार पर शस्त्र-वर्षा करने लगे ॥ ८४ ॥

चिच्छेदशरजालेनप्रहसन्निवलीलया ।
क्षणेनपातालतलमसिशक्त्यृष्टिसायकै ॥८५॥

छिन्नै सछन्नमत्यर्थमृतुध्वजशरोत्करै ।
ततोस्त्र त्वाष्ट्रमादायचिक्षेपप्रतिदानवान् ॥८६॥
तेनतेदानवा सर्वेसहपातालकेतुना ।
ज्वालामालातितीव्रेणस्फुटदस्थिचयास्तदा ॥८७॥
निर्दग्धा कापिल्लतेज समासाद्येवसागरा ।
तत सराजपुत्रोश्वीनिहत्यासुरसत्तमान् ॥८८॥
स्त्रीरत्नेनसमतेनसमागच्छत्पितु पुरम् ।
प्रणिपत्यचनत्सर्वसतुपित्रेन्यवेदयत् ॥८९॥
पातालगमनचैवकु डलायाश्चदर्शनम् ।
तद्वन्मदालमाप्रामिदानवैश्चापिसगरम् ॥९०॥
वधश्चतेपामस्त्रे णपुनरागमनतथा ।
इतिश्रुत्वापितातस्यचरितचात्रचेतस ॥९१॥
प्रीतिमानभवच्चैनपरिष्वज्याहचात्मजम् ।
सत्पुत्रेणत्वयापुत्रतारितोहमहात्मना ॥९२॥

तब शत्रुजित् के अत्यन्त बली पुत्र ने अपने बाणो से उनके सब शस्त्र बात की बात मे काट डाले और उसके बाणो से कट-कट कर गिरे शस्त्रास्त्रो से पातालतल ॥ ८५ ॥ भर गया, तब राजकुमार ने बडे-बडे बाण चलाये और फिर त्वाष्ट्र अस्त्र लेकर दानवो पर छोडा ॥ ८६ ॥ उस ज्वाल-माला वाले भयकर अस्त्र ने सभी दानवो के सहित पातालकेतु की हड्डियाँ तोड डाली ॥ ८७ ॥ और वह तुरन्त ही, जैसे कपिल मुनि के तेज से सगरपुत्र भस्म हुए थे, उसी प्रकार भस्म हो गये, इस प्रकार दैत्य कुल का नाश करके वह राजकुमार स्त्री के सहित अश्व पर चढ कर अपने नगर मे आये और अपने पिता को प्रणाम पूर्वक सम्पूर्ण वार्त्ता सुनायो ॥ ८८-८९ ॥ पाताल मे जाना, कुण्डला का देखना, मदालसा का प्राप्त होना, दैत्यो के साथ युद्ध ॥ ९० ॥ अस्त्र से उनका सहार और पुन वापिस लौटना आदि सब वृत्तान्त कहा, जिसे सुन कर वह सुन्दर चित्त वाले राजा ॥ ९१ ॥ अत्यन्त प्रसन्न हुए और पुत्र को आलिगन पूर्वक बोले कि हे सत्पुत्र! तूने मुझे तार दिया ॥ ९२ ॥

भयेभ्योमुनयस्त्रातायेनसद्धर्मचारिणा ।
मत्पूर्वं ख्यातिमानीतमयाविस्तारितपुन ।।९३।।
पराक्रमवतावीरत्वयातद्बहुलीकृतम् ।
यदुपात्तयश पित्राधनवीर्यमयापिवा ।।९४।।
तन्नह्रापयतेयस्तुसनरोमध्यम स्मृत ।
तद्वीर्यादधिकयस्तुपुनरन्यत्स्वशक्तित ।।९५।।
निष्पादयतितप्राज्ञावदतिनरमुत्तमम् ।
य पित्रासमुपात्तानिधनवीर्ययशांसिवै ।।९६।।
न्यूनतानयतिप्राज्ञास्तमाहु पुरुषाधमम् ।
तन्मयाब्रह्मणत्राणकृतमासीद्यथात्वया ।।९७।।
पातालगमनयच्चयच्चासुरविनाशनम् ।
एतदभ्यधिकवत्सतेनत्वपुरुषोत्तम ।।९८।।

जिसके द्वारा मुनियो की रक्षा हुई उसी सत्पात्र द्वारा मै भी तर गया, मेरे पूर्व पुरुष जिससे विख्यात हुए और मैने भी जिसका विस्तार किया ।। ९३ ।। वह यश तुम्हारे द्वारा और भी वृद्धि को प्राप्त हुआ, जो यश, बल अथवा धन पिता के द्वारा उपार्जित है ।। ९४ ।। उसकी रक्षा करने वाला पुरुष मध्यम है परन्तु जो उसे अपनी शक्ति से बढाता है ।। ९५ ।। उसे पंडित-जन उत्तम पुरुष कहते है। तथा जो पिता द्वारा उपार्जित यश, बल धन को ।। ९६ ।। नष्ट करता है, अधम कहा जाता है, पहिले मैने तुम्हारे समान ब्राह्मणो का रक्षण मात्र किया था ।। ९७ ।। तुमने पाताल मे जाकर असुरो का नाश और ब्राह्मणो की रक्षा की, इस प्रकार मुझसे अधिक कार्य किया है, इसलिए तुम उत्तम पुरुष हो ।। ९८ ।।

तद्धन्योस्म्यथवानत्वमहमेवगुणाधिक ।
त्वापुत्रमीदृशप्राप्यश्लाघ्यपुण्यवतामपि ।।९९।।
नसत्पुत्रकृताप्रीतिमन्य प्राप्नोतिमानव ।
पुत्रेणनातिशयितोय प्रज्ञादानविक्रमै ।।१००।।
धिक्तस्यजन्मय पित्रालोकेविज्ञायतेनर ।
यत्पुत्रात्ख्यातिमभ्येतितस्यजन्मसुजन्मन ।।१०१।।

आत्मज्ञानीयतोधन्योमध्य पितृपितामहै ।
मातृपक्षेणमात्राचख्यातियातिनराधम ॥१०२॥
तत्पुत्रधनवीर्यन्त्वविवर्धस्वसुखेनच ।
गधर्वतनयाचेयमावियुज्यतुर्वेत्वया ॥१०३॥
इतिपित्रावहुविध्रप्रियमुक्त्वापुन पुन ।
परिष्वज्यस्वमावाममभार्य मविसर्जित ॥१०४॥
सतयाभार्ययासार्धरेमेनत्रपितु परे ।
अन्येपुत्रनथोद्यानवनपर्वतसानुपु ॥१०५॥
श्वश्रूश्वशुरयो पाद।प्रणिपत्यचसाशुभा ।
प्रात प्रानस्ततस्तेनप्रणिपत्यमुमध्यमा ॥१०६॥

हे पुत्र ! तुम धन्य हो, तुम्हारे जैसे अधिक गुण वाले पुत्र को पाकर मैं पुण्यवानो मे अधिक श्लाघा के योग्य हुआ हूं ॥ ६६ ॥ जो पुरुष पुत्र के द्वारा प्रज्ञा, दान अथवा पराक्रम मे वृद्धि को प्राप्त नही होता, उस पुत्र से उत्पन्न प्रीति का लाभ नही हो सकता ॥ १०० ॥ पिता के द्वारा जो ख्याति अर्जित करे, उसके जन्म को धिक्कार है, परन्तु पुत्र के द्वारा ख्याति का अर्जन करने वाला पुरुष श्रेष्ठ जन्म वाला होता है, ॥ १०१ ॥ अपने नाम से विख्यात होने वाला पुरुष धन्य है, मातृपक्ष मे ख्याति पाने वाला पुरुष नराधम होता है ॥ १०२ ॥ हे पुत्र तुम धन, बल और सुख मे सदा वृद्धि को प्राप्त होओ और इस गधर्व कुमारी से कभी तुम्हारा वियोग न हो ॥ १०३ ॥ पिता के ऐसे वचन सुन कर राजकुमार अपनी पत्नी सहित अपने निवास स्थान को गये ॥ १०४ ॥ तथा मदालसा के साथ भवन, उद्यान, वन, पर्वत आदि मे क्रीडा करने लगे ॥ १०५ ॥ तथा वह शुभमयी मदालसा भी श्वसुर के चरणो की वदना करती हुई अपने पति के साथ रहने लगी ॥ १०६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेय पुराणे मदालसाख्याने एकोनविंशोऽध्याय ।

२०—मदालसा उपाख्यान (२)

तत कालेवहुतिथेगतेराजापुन सुतम् ।
हिप्रगच्छाशुविप्राणात्राणायच्चरमेदिनीम् ॥१॥

अश्वमेतसमारुह्यप्रात प्रातर्दिनेदिने ।
आवाधाद्विजमुख्यानामन्वेष्टव्यासदैवहि ।।२।।
दुर्वृत्ता सतिशतशोदानवा पापवुद्धय ।
तेभ्योनस्याद्यथावाधामुनीनात्वतथाकुरु ।।३।।
सतथोक्तस्तदापित्रातथाचक्रेनृपात्मज ।
परिक्रम्यमहीकृत्स्नाववदेचरणौपितु ।।४।।
अहन्यनिसप्राप्तेपूर्वाह्णे नृपनदन ।
ततश्चशेषदिवसतयारेमेसुमध्यया ।।५।।
एकादातुचरन्सोथददर्शयमुनातटे ।
पातालकेतोरनुजतालकेतु कृताश्रमम् ।।६।।
मायावीदानव सोथमुनिरूपसमाश्रित ।
सप्राहराजपुत्र तपूर्ववैरमनुस्मरन् ।।७।।

नागपुत्रो ने कहा—कुछ काल व्यतीत होने पर राजा शत्रुजित् ने अपने पुत्र ऋतुध्वज से कहा—हे पुत्र ! तुम ब्राह्मणो के रक्षणार्थ जाकर पृथिवी मे विचरण करो ।। १ ।। प्रतिदिन प्रात काल इम घोडे पर चढकर श्रेष्ठ विप्रो के विघ्नो को दूर करो ।। २ ।। सैकडो पापात्मा एव दुष्कर्मी दानव मुनियो के कार्य मे विघ्न उपस्थित न कर पावे, वही यत्न करो ।। ३ ।। इस प्रकार राजा की आज्ञा प्राप्त कर, वह नित्य प्रति पूर्वाह्ण काल मे पृथिवी मे भ्रमण करके पिता के चरणो की बन्दना करते और शेष दिन मे पत्नी के सहित क्रीडा करते ।। ४-५ ।। एक ममय इमी प्रकार भ्रमण करने मे उन्होने पातालकेतु के छोटे भाई तालकेतु को यमुनातट स्थित आश्रम मे अवस्थान करते देखा ।। ६ ।। वह मुनि रूप धारण करके रहता था, पुरानी शत्रुता का स्मरण करके वह राजकुमार से बोला ।। ७ ।।

राजपुत्रब्रवीमित्वातत्कुरुष्वयदीच्छसि ।
नचतेप्रार्थनाभग कार्यं सत्यप्रतिश्रव ।।८।।
यक्ष्येयज्ञेनधर्मायकर्त्तव्याश्चमयेष्टय. ।
चितयेतत्रकर्त्तव्यानास्तिमेदक्षिणायत ।।९।।
तत प्रयच्छमेवीरदक्षिणार्थेस्वभूषणम् ।

यदेतत्कंठलग्नं ते रक्षं चेमममाश्रमम् ॥१०॥
यावदन्तर्जले देव वरुणं यादसां पतिम् ।
वैदिकैर्वारुणैर्मंत्रै प्रजानां पुष्टिहेतुकै ॥११॥
अभिष्टूयत्वरायुक्त समभ्येमीति वादिनम् ।
तं प्रणम्य ततः प्रादात्स तस्मै कंठभूषणम् ॥१२॥
प्राह चैनं भवान्यातु निर्व्यलीकेन चेतसा ।
स्थास्यामि तावदत्रैव तवाश्रमसमीपतः ॥१३॥
तवादेशान्महाभाग यावदागमनं तव ।
न तेऽत्र कश्चिदाबाधां करिष्यति मयि स्थिते ॥१४॥
विश्रब्धस्त्वं मुनिश्रेष्ठ कुरुष्व चमनोगतम् ।
एतदुक्तस्ततस्तेन सममज्जन्नदीजले ॥१५॥

हे राजकुमार ! यदि तुम चाहो तो मै जो कहता हूँ, वह करो, क्यो कि आपने कभी किसी की प्रार्थना को अमान्य नही किया है ॥ ८ ॥ हे राजकुमार ! मै यज्ञ करूँगा तथा इष्टि और अग्नि का चयन करूँगा, परन्तु मैं दक्षिणा देने मे असमर्थ हूँ ॥ ९ ॥ इसलिए, सुवर्ण दान के लिए अपना यह कंठा मुझे दो और आश्रम की रक्षा करो ॥ १० ॥ मै वैदिक वारुण मंत्र के द्वारा वरुणदेव का जल मे स्तवन करके जब तक यहाँ न लौट आऊँ तब तक तुम्हे इस आश्रम की रक्षा करनी है ॥ ११ ॥ मै शीघ्र ही आऊँगा, ऐसा कहते हुए मुनि को प्रणाम करके राजकुमार ने अपना कंठा उतार कर उन्हे दे दिया ॥ १२ ॥ और बोला—हे महाभाग ! आप विश्वस्त होकर जाइये, आपके आने तक मै इसी आश्रम के निकट रहूँगा ॥ १३ ॥ आप जब तक नही लौटते तब तक आपकी आज्ञानुसार मैं यही रहूँगा, मेरे रहते हुए आपके कार्य मे कोई विघ्न नहीं करेगा ॥ २४ ॥ हे मुनिवर ! आप शंकारहित मन से जाकर इच्छित कर्म सम्पादन कीजिये, राजपुत्र के यह वचन सुन कर वह मायामुनि तालकेतु नदी के जल मे मग्न हो गया ॥ १५ ॥

अरक्षत्सोऽपि तस्यैव मायाविहितमाश्रमम् ।
गत्वा जलाशयात्तस्मात्तालकेतुश्च तत्पुरम् ॥१६॥
मदालसाया प्रत्यक्षमन्येषां चैतदुक्तवान् ।

वीर कुवलयाश्वोमौममाश्रमसमीपत ॥१७॥
केनापिदुष्टदैत्येनकुर्वन्रक्षातपस्विनाम् ।
युध्यमानोयथाशक्तिनिघ्नन्ब्रह्मद्विपोयुधि ॥१८॥
मायामाश्रित्यपापेनभिन्न शूलेनवक्षसि ।
म्रियमाणेनतेनेददत्त मेकठभूपणम् ॥१९॥
प्रापितश्चाग्निसयोगनरुवेशूद्रतापसैं ।
कृतार्तहेपाशव्दोवैलस्त साश्रुविलोचन ॥२०॥
नीत सोश्वश्चतेनैवदानवेनदुरात्मना ।
एमन्मयानृशसेनदृष्टदुष्कृतकारिणा ॥२१॥

उसके माया से निर्मित आश्रम की राजपुत्र रक्षा करने लगे, फिर जल से निकल कर तालकेतु राजा शत्रुजित् के नगर मै जाकर ॥ १६ ॥ मदालसा आदि के समक्ष बोला कि वीर कुवलयाश्व मेरे आश्रम के निकट ॥ १७ ॥ तपस्वियो की रक्षा कर रहे थे, तभी उन्हे किसी दुष्ट दानव से युद्ध करना पडा और उन्होने ब्रह्मद्वेष्टा शक्ति का असुर पर प्रहार किया ॥ १८ ॥ परन्तु, उस दानव के माया रूपी शूल से हृदय विदीर्ण होने के कारण मृत्यु को प्राप्त हो गए, उन्होने यह कठा भूपण मरते समय मुझे दिया है ॥ १९ ॥ तथा वन मे शूद्र तपस्वियो ने उनका अग्नि सस्कार किया है और अश्रुपूर्ण दुखित ॥ २० ॥ अश्व उसी दानव ने ले लिया, यह सम्पूर्ण घटना उस नृशस के द्वारा होती हुई देखी है ॥ २१ ॥

यदत्रानतरकृत्यकुरुष्वोत्तरकालिकम् ।
हृदयाश्वासनचैतद्गृह्यताकण्ठभूषणम् ॥२२॥
नास्माकहिसुवर्णेनकृत्यमस्तितपस्विनाम् ।
इत्युक्त्वोत्सृज्यतद्भूमौसजगामयथागतम् ॥२३॥
निपपातजनःसोथशोकार्त्तोमूर्च्छयातुर ।
क्षणेनचेतनाप्राप्यसर्वास्तानृपयोषित ॥२४॥
राजपत्न्यश्चराजाचविलेपुरतिदुखिताः ।
मदालसातुतद्दृष्ट्वातदीयकठभूषणम् ॥२५॥
तत्याजसुप्रियान्प्राणाञ्श्रुत्वाविनिहतप्रियम् ।

तत पुरे महाक्रद पौराणा भवनेष्वभूत् ॥२६
यथैव तस्य नृपते स्वगृहे समवर्तत ।
राजा च ता मृता दृष्ट्वा विना भर्त्रा मदालसाम् ॥२७
प्रत्युवाच जन सर्व विमृश्य स्वस्थमानस ।
न रोदितव्य पश्यामि भवतामात्मनस्तथा ॥२८

अब जो आपको करना हो, वह करिये और उनका यह कठा भी लीजिये, मुझ तपस्वी का स्वर्ण से क्या प्रयोजन ? ऐसा कह कर तालकेतु जहाँ से आया, वही चला गया ॥२२-२३॥ इसके पश्चात् वहाँ सभी मूर्च्छित होकर गिर पडे, फिर राजा और रानी चैतन्यता लाभ करके ॥२४॥ तथा अन्य राजस्त्रियाँ भी अत्यत दु खित होकर विलाप करने लगी तब मदालसा ने उस कठभूषण को देखा ॥२५॥ और स्वामी की मृत्यु की बात सुन कर उसने दु ख से कातर होकर प्राण त्याग दिये, राजभवन मे होने वाला कुन्दन प्रतिध्वनित होने लगा, फिर राजा शत्रुजित् अपनी पुत्रवधू को मरी हुई देख कर ॥२६-२७॥ तथा सावधान चित्त होकर सब से कहने लगे कि हम सबको रोना नही चाहिये ॥२८॥

सर्वेषामेव सचित्य सबधानामनित्यताम् ।
किनु शोचामि तनय किनु शोचाम्यह स्नुषाम् ॥२९
विमृश्य कृतकृत्यत्वान्मन्ये शोच्यावुभावपि ।
मच्छुश्रूषुर्मद्वचनाद्द्विजरक्षणतत्पर. ॥३०
प्राप्तो मेद्य सुतो मृत्यु कथ शोच्य. सधीमताम् ।
अवश्य याति यद्देह तद्द्विजानां कृते यदि ॥३१
मम पुत्रेण सत्यक्त नन्वभ्युदयकारि तत् ।
इय च सत्कुलोत्पन्ना भर्त्तर्येवमनुव्रता ॥३२
कथ तु शोच्या नारीणा भर्तुरन्यन्न दैवतम् ।
अस्माक बाधवाना च तथान्येषां दयावताम् ॥३३
शोच्या ह्येषा भवेदेव यदि भर्त्रा वियोगिनी ।
यातुभर्तुर्वध श्रुत्वा तत्क्षणादेव भामिनी ॥३४

भर्तारमनुयातेय न शोच्यातो विपश्चिताम् ।
ता शोच्या या वियोगिन्य सह भर्त्रा कुलागना ।।३५

सभी प्राणियो का सम्बन्ध अनित्य है, मै पुत्र या पुत्रवधू किसका शोक करू ? । २९।। दोनो ही कृतकृत्य थे, इसमे शोक के योग्य नही है, क्योकि मेरी आज्ञानुसार ही जिसने ब्राह्मणो की रक्षा मे लगे रह कर ।।३०।। प्राण दिया है, उस पुत्र के लिए शोक करना उचित नही है मेरे पुत्र ने अपने नाशवान् देह को ब्राह्मणो के लिए ।।३१।। त्यागा है, तब वह अशोचनीय और कल्याणकारी है और जब सत्कुल मे उत्पन्न हुई इस नारी ने भी अपने पति का अनुगमन किया है ।।३२।। तो वह भी शोचनीय नही हो सकती । क्योकि स्त्री के लिए पति के अतिरिक्त अन्य कोई देवता नही है, यदि यह अपने पति की मृत्यु के अनन्तर जीवित रहती तो हम सब की शोचनीय दशा होती, इसने तो अपने पति का मरना सुनते ही प्राण छोड दिया है ।।३३-३४।। इसलिए पडितजनो के लिए यह शोचनीय नही है, स्वामी की मृत्यु होने पर भी जो नारी जीवन धारण करे, वह शोचनीय होती है ।।३५।।

कष्टभ्रात्या न गच्छन्ति कष्टदा स्यु कुलात्मनो ।
भर्तु वियोगस्त्वनया नानुभूतः कृतज्ञया ।।३६
दातार सर्वसौख्यानामिह चामुत्र चोभयोः ।
लोकयो का हि भर्त्तार नारी मन्येत मानुषम् ।।३७
न स शोच्यो न चैवेह नाय तज्जननी नच ।
त्यजता ब्रह्मणार्थाय प्राणान्सर्वेस्मतारिता ।।३८
विप्राणा मम धर्मस्य गत सतु महामतिः ।
आनृण्यमर्द्ध भुक्तस्य त्यागाद्देहस्य मे सुत ।।३९
मातु सतीत्व मद्वंशवैमल्य शौर्यमात्मन ।
सग्रामे सत्यजन्प्राणान्सोविदद्द्विजरक्षणात् ।।४०
तत कुवलयाश्वस्य माता भर्तु रनतरम् ।
श्रुत्वा पुत्रवध तादृक्प्राह हृष्टातु त पतिम् ।।४१

न मे जनन्या स्वस्रा वा प्राप्ता प्रीतिर्नृपेदृशी ।
श्रुत्वा मुनिपरि त्राणे हत पुत्र यथा मया ।।४२

जो स्वामी के सहित जाती है, वह कभी शोचनीय नही, जो गमन मे कष्ट मान कर नही जाती, वह अपने कुल को कष्ट देने वाली है, कृतज्ञा होने के कारण इसने अपने स्वामी के वियोग का अनुभव नही किया ।।३६।। इहलोक और परलोक दोनो मे सुख देने वाले स्वामी को कौन स्त्री मनुष्य मानती है ? ।।३७।। हमारा पुत्र, पुत्रवधू, मैं अथवा उसकी माता हम मे से कोई भी शोचनीय नही है, क्योकि ब्राह्मणो की रक्षा मे प्राण देने वाले पुत्र के कारण हम सभी का उद्धार हुआ है ।।३८।। मेरा पुत्र अपने अर्धमुक्त शरीर को छोड कर ब्राह्मण के प्रति, धर्म के प्रति और मेरे प्रति भी उऋण हो गया है ।।३९।। ब्राह्मणो की रक्षा के युद्ध मे मरने से माता का सतीत्व, वश की स्वच्छता और अपनी शूरता किसी का भी त्याग उसने नही किया ।।४०।। कुवलयाश्व की माता ने पुत्र का मृत्यु समाचार सुन कर अपने स्वामी को देख विषाद रहित चित्त से बोली ।।४१।। हे महाराज ! मुनियो की रक्षा करते-करते सन्तान का मरण सुन कर मैं जैसी सुखी हुई वैसा सुख मुझे माता–बहिन किसी के द्वारा नही मिल सकता ।।४२।।

शोचता ब्राह्मणाना ये नि:स्वनेनातिदुखिताः ।
म्रियतेव्याधिना क्लिष्टास्तेषा माता वृथा प्रजा ।।४३

सग्रामे युध्यमाना ये भीता गोद्विजरक्षणे ।
क्षुण्णा शस्त्रैर्विपद्य ते त एव भुवि मानवा ।।४४

अर्थिना मित्रवर्गस्य विद्विषाच पराङ्मुख ।
योन याति पिता तेन पुत्री माता चवीरसू ।।४५

गर्भक्लेशः स्त्रियो मन्ये साफल्य भजते तदा ।
यदारिविजयी वास्यात्सग्रामे वाहत सुत. ।।४६

तत सराजा सस्कार पुत्रपत्नीमलभयत् ।
निर्गम्यचबहिः स्नातो ददौ पुत्रायचोदकम् ।।४७

.ालकेतुश्च निर्गम्य तथैवयमुनाजलात् ।
राजपुत्रमुवाचेद प्रणवान्मधुरवच ॥४८
गच्छभूपाल पुत्रत्व कृतार्थोहक्रतस्त्वया ।
वाछित तुकृतकार्यत्वय्यत्रा विचले स्थिते ॥४६
वारुणयज्ञकार्य च जलेशस्य महात्मन ।
तन्मया साधित सर्व यन्ममासीद भीप्सितम् ॥५०
प्रणिपत्य सतप्रागाद्राजपुत्र पुरपितु ।
समारुह्यतमेवाश्च सुपर्णानिल विक्रमम् ॥५१

जो वधुओ के लिए दु ख से श्वास लेते हुए या रोगाक्रान्त हुए प्राण त्याग करते है, उनकी माताओ का सतति-प्रजनन व्यर्थ ही है ॥४३॥ जो गौ-ब्राह्मण की रक्षा के निमित्त युद्ध मे भय-रहित चित्त से शस्त्र से मरता है, उसे ही मनुष्य कहते है ॥४४॥ जिसके द्वारा याचक, मित्र और शत्रुगण विमुख नही होते, उसी से पिता पुत्रवान् होता है ॥४५॥ जब पुत्र युद्ध मे मर जाता या शत्रु पर विजय प्राप्त करके लौटता है तभी स्त्री का गर्भ-क्लेश सफल होता है ॥४६॥ नागपुत्र बोले—फिर राजा शत्रुजित् ने पुत्रवधू का सस्कार कर नगर के बाहर जाकर स्नान किया और पुत्र के निमित्त जलाञ्जलि दी ॥४७॥ उधर तालकेतु उसी प्रकार यमुना जल से निकल कर प्रणाम करता हुआ मीठे वचनो से राजकुमार से बोला ॥४८॥ हे राजकुमार ! आपके द्वारा मै कृतार्थ हुआ क्योकि आपने यहाँ रह कर मेरा अभिलषित कार्य किया है ॥४६॥ इस प्रकार जलपति वरुण का यज्ञ मेरी माया से सिद्ध हो गया, हे राजपुत्र ! अब आप जाइये ॥५०॥ यह सुन कर राजपुत्र ने मुनि को प्रणाम किया और उस वायु वेग वाले अश्व पर चढ कर पिता के नगर को गये ॥५१॥

२१—कुवलयाश्व पातालप्रवेश

सराजपुत्र सम्प्राप्यवेगादात्मपुरन्तत ।
पित्रोर्ववं दिपु पादौ दिदृक्षुश्च मदालसाम् ॥१

सद्दर्शनदुद्विग्नमप्रहृष्टमुख पुरम् ।
पुनश्चविस्मिताकारप्रहृष्टवदनपुन ॥२
अन्यमुत्फुल्लनयनदिष्ट्यादिष्ट्येतिवादिनम् ।
परिष्वजन्तमन्योन्यमतिकौतूहलान्विनम् ॥३
सराजपुत्रोमित्रन्तुउत्फुल्लनयनशुभम् ।
आलिलिगतदाकान्तिसौहृदेनपरेणच ॥४
नत पौरास्तदालोक्यदिष्ट्यादिष्ट्येतिवादिन ।
चिरञ्जीवोरुकल्याणहतास्तेपरिपथिन ॥५
पित्रोप्रल्हादयमनस्तथास्माकमकटक ।
इत्येतवादिभि पौरे पुन पृष्ठेचसवृत ॥६
तत्क्षणप्रभवानन्द प्रविवेशपितुर्गृहम् ।
पिताचतपरिष्वज्यमाताचान्येचबाधवा ॥७
चिरञ्जीवोरुकल्याणदद्दौचास्मैतदाशिष ।
प्रणिपत्यतत सोथकिमेतदितिविस्मित ॥८

नागपुत्रो ने कहा—राजकुमार ने पिता-माता के चरणो मे बन्दना करके और मदालसा को देखने की इच्छा करके अपने नगर मे जाकर देखा ॥१॥ नगर निवासी अत्यन्त उद्विग्न है, परन्तु उन्हे देखकर प्रसन्न और विस्मित हो रहे है ॥२॥ फिर प्रफुल्लित नेत्रो मे भाग्य को सराहते हुए परस्पर आलिंगन करने लगे ॥३॥ उस राजपुत्र ने प्रफुल्लित नेत्र वाले अपने श्रेष्ठ मित्र को अत्यत प्रीति सहित हृदय से लगाया ॥४॥ फिर नगर वासी उनके प्रति कहने लगे कि अत्यन्त भाग्यवाले और दीर्घजीवी होवे, तुम्हारे सभी शत्रु नाश को प्राप्त हो ॥५॥ हमारे तथा माता-पिता के हृदय को प्रसन्न करो, ऐसा कहते हुए उनके आगे पीछे इकट्ठे हो गये ॥६॥ राजकुमार ने उनसे घिरे हुए पिता के भवन मे प्रवेश किया, तब पिता, माता तथा अन्यान्य बाधवगण ॥७॥ उन्हे आशीर्वाद देने लगे, तब राजकुमार ने उनको प्रणाम करके विस्मित चित्त से पूछा—हे तात ! यह क्या है ? ॥८॥

प्रपच्छपितरंचाथसोस्मैसर्वतदुक्तवान् ।
सभार्यातामृताश्रुत्वाहृदयेष्टामदालसाम् ॥९
पितरौचपुराद्दृष्ट्वालज्जाशोकविमध्यगः ।
चितयामाससाबालामाश्रुत्वानिधनगतम् ॥१०
तत्याजजीवितसाध्वीधिङ्मॉनिष्ठुरमानसम् ।
नृशसोहमनार्योहविनातामृगलोचनाम् ॥११
मत्कृतेनिधनप्राप्तायज्जीवाम्यतिनिर्घृण ।
पुन सचितयामासपरिसस्तभ्यमानसम् ॥१२
मोहोद्गममपास्यैवनि श्वस्योच्छ्वस्यचातुर ।
मृतेतिसामन्निमित्तत्यजामियदिजीवितम् ॥१३
किमयोपकृततस्या श्लाघ्यमेतत्तुयोषिताम् ।
यदिरोदिमिवादीनहाप्रियेतिवदन्मुहु ॥१४
तथाप्यश्लाघ्यमेतन्नोवयहिपुरुषा किल ।
अथशोकजडोदीनोऽसृजाहीनोबलान्वित ॥१५
विपक्षस्यभविष्यामितत परिभवास्पदम् ।
मयारिशातनात्कार्यराज्ञ षुश्रूषणापितु ॥१६

तब उन्होने राजकुमार को सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया, राजकुमार मदालसा का मरण–समाचार सुन कर शोक सागर मे डूब कर शोक करने लगे कि जब उस साध्वी ने मेरा मृत्यु वृत्तान्त सुन कर ॥९-१०॥ प्राण छोड दिये तो मुझ निष्ठुर को धिक्कार है, मैं नृशम और अनार्य हूँ जो उसके बिना जीवित हूँ ॥११॥ जिसने मेरे लिये प्राण त्याग दिये, उसके बिना जीवित रहूँ तो मैं अत्यन्त निर्दय सिद्ध हूँगा, यह सोचते हुए ॥१२॥ अत्यन्त कातर हो कर दीर्घ श्वास लेते हुए सोचा कि उसने मेरे लिये प्राण त्यागे है तो मैं भी यदि उसके लिये प्राण का त्याग कर दूँ ॥१३॥ तो ? परन्तु यह स्त्रियो के लिये ही उचित है, यदि मैं 'हा प्रिये' कहता हुआ बारम्बार विलाप करूँ ॥१४॥ तो वह भी निन्दा के योग्य होगा, यदि शोक सताप मे माल्यादि का त्याग कर दूँ ॥१५॥

तो शत्रु अपमान करेंगे, मेरा एक मात्र धर्म शत्रुओं का संहार और पिता की सेवा करना है ॥१६॥

जीविततस्यचायत्तमत्याज्यतत्कथमया ।
कित्वत्रमेन्यत्कर्त्तव्यत्यागोभोगस्ययोषित ॥१७
सचापिनोपकारायतन्वग्या किंतुसर्वथा ।
मयानृशस्यकर्त्तव्यनापकार्युपकारिवा ॥१८
प्राणदर्थेत्यजत्प्राणास्तदर्थेल्पमिदमम ।
इतिकृत्वामतिसोथनिष्पाद्यौदकदानिकम् ॥१९
क्रियाश्चानतरकृत्वाप्रत्युवाचऋतध्वज ।
यदिसाममतन्वगीनस्याद्भार्यामदालसा ॥२०
अस्मिञ्जन्मनिनान्यामेभवत्रीसहचारिणी ।
तामृतेमृगशावाक्षीगधर्वतनयामहम् ॥२१

मेरे जीवन का अवलम्ब यही है, इस लिए प्राण त्याग कदापि उचित नहीं है, यदि मैं अन्य स्त्री के गमन का त्याग करू ॥१७॥ तो भी उसका कोई उपकार न होगा, परन्तु उसका उपकार हो या अपकार मुझे तो इसी नृशस आचरण का पालन करना होगा ॥१८॥ जिसने मेरे लिये प्राण त्यागा है, उस के लिये यह कार्य सामान्य था । ऐसा निर्णय कर राजकुमार ने जलदानादि करके ॥१९॥ तथा सब सस्कार से निवृत्त हो कर कहा कि जब मेरी पत्नी मदालसा ही नही है ॥२०॥ तब इस जन्म मे कोई अन्य नारी मेरी सहधर्मिणी नही हो सकती, मै सत्य कहता हूँ कि मैं उस गन्धर्व की सुता के अतिरिक्त अन्य स्त्री से समागम नही करूँगा ॥२१॥

नभोक्ष्येयोषितकाचिदितिसत्यमयोदितम् ।
सधर्मचारिणीपत्नीतामुक्त्वागजगामिनीम् ॥२२
काचिन्नान्याकरिष्यामितेनसत्यमयोदितम् ।
एवसर्वान्परित्यज्यस्त्रीभोगास्तातसर्वदा ॥२३
क्रीडन्नास्तेसमतुल्यैर्वयस्यै शीलसपदा ।
एतत्तस्यपरकार्यताततत्केनसाध्यते ॥२४

कर्तुं मत्यतदुःष्प्राप्यमश्वरैं किमुतेनरैं ।
इतिवाक्यतयो श्रु त्वाविमर्शमगमत्पिता ।।२५
विमृश्यचाहतौपुत्रौनागराट्प्रहसन्निव ।
यद्यशक्यमितिश्रु त्वानकरिष्यतिमानवा ।।२६
कर्मण्युद्यममुद्योगहान्याहानिस्तत परम् ।
आरभेतनर कर्मस्वपौरुपमहापयन् ।।२७
निष्पत्ति कर्मणादैवेपौरुषेचव्यवस्थिता ।
तस्मादह तथायत्नकरिष्येपुत्रकार्यत ।।२८

मै उस सद्धर्म का आचरण करने वाली भार्या को छोड कर किसी दूसरी नारी को स्वीकार नही करूँगा । नागपुत्रो ने कहा—हे तात ! मदालसा के अतिरिक्त वह सम्पूर्ण स्त्री–संग त्याग कर ।।२२-२३।। अपने स्वभावादि मे समान तथा समवयस्को के साथ क्रीडा करते रहते है, उनके हित मे यही एक प्रमुख कार्य है, जिसमे किसी का वश नही चल सकता ।।२४।। क्यो कि यह ईश्वर के लिये भी दुष्प्राप्य है तो मनुष्य की तो बात ही क्या है ? उनकी बात सुन कर नागराज अश्वतर विचारमग्न हो गये ।।२५।। और फिर हँसते हुए उन्होने अपने दोनो पुत्रो से कहा—सामर्थ्य से परे होने के कारण जो मनुष्य उद्योग नही करते ।।२६।। उससे उनकी अत्यन्त हानि होती है अपने पौरुष को नष्ट न करके ही मनुष्य कार्यारम्भ करते है ।।२७।। परन्तु दैव या पौरुष मे ही कर्म की निष्पत्ति है, इस लिये हे पुत्रो ! जिस प्रकार यह कार्य बन सके, मैं वह कार्य करूँगा ।।२८।।

तपश्चर्या समास्थाययथैतत्साध्यतेचिरात् ।
एवमुक्त्वासनागेद्र प्लक्षावतरणगिरे ।।२९
तीर्थहिमवतोगत्वातपस्तेपेसुदुश्चरम् ।
तुष्टाववाग्भिरिष्टाभिस्तत्रदेवीसरस्वतीम् ।।३०
तन्मनानियताहारोभूत्वात्रिषवणाप्लुत ।
जगद्धात्रीमहदेवीमारिराधयिषु शुभाम् ।।३१

स्तोष्येप्रणम्यशिरसाब्रह्मयोनिसरस्वतीम् ।
सदसद्देवियत्किंचिन्मोक्षवधार्थवत्पदम् ।।३२
तत्सर्वत्वय्यसंयोगयोगवद्देविसंस्थितम् ।
त्वमक्षरपरंदेवियत्रसर्वप्रतिष्ठितम् ।।३३
अक्षरपरमब्रह्मजगच्चेतत्क्षरात्मकम् ।
दारुण्यवस्थितोवह्निर्भौमाश्चपरमाणव ।।३४
तथात्वयिस्थितब्रह्मजगच्चेदमशेषतः ।
ओंकाराक्षरसंस्थानयत्तद्देविस्थिरास्थिरम् ।।३५

मैं तपस्या के द्वारा इसे शीघ्र सिद्ध करने का यत्न करूंगा, ऐसा कह कर नागराज अश्वतर हिमालय के प्लक्षावतरण नामक तीर्थ में जाकर ।।२९।। दुष्कर तप करने लगे, परिमित भोजन, तीनो समय स्नान और वाणी द्वारा सरस्वती का स्तवन करते हुए अश्वतर ने कहा—मैं जगज्जननी भगवती के आराधना की इच्छा से ।।३०-३१।। ब्रह्म स्थान सरस्वती को प्रणाम पूर्वक स्तुति करता हूँ, हे देवी ! मोक्ष अथवा अर्थ संयुक्त सत् असत् रूप जो पद है ।।३४।। वह सभी आप से संयुक्त न होकर संयुक्त के समान ही अवस्थित रहते हैं, हे देवी ! आप परम अक्षर है, आप मे सब प्रतिष्ठित है ।।३३।। सभी अक्षर परमाणु के तुल्य आप में स्थित है, अक्षर रूप पर ब्रह्म और क्षरात्मक जगत् भी तुम में प्रतिष्ठित हैं, जैसे अग्नि के सभी परमाणु काष्ठ में रहते है वैसे ही ब्रह्म और विश्व तुम में ही विद्यमान है ।।३४-३५।।

तत्रमात्रात्रयसर्वमस्तियद्देविनास्तिच ।
त्रयो लोकास्त्रयोदेवास्त्रैविद्य पावकत्रयम् ।।३६
त्रीणिज्योतींषिवर्गाश्चत्रयोधर्मादयस्तथा ।
त्रयोगुणास्त्रय शब्दास्त्रयोदोषास्तथाश्रमा ।।३७
त्रय कालास्तथावस्था पितरोहर्निशादय ।
एतन्मात्रात्रयदेवितवरूपसरस्वति ।।३८
विभिन्नदर्शिनामाद्याब्रह्मणोहिसनातना ।
सोमसस्थाहविसस्था पाकसस्थाश्चसप्तया ।।३९

तास्त्वदुच्चारणाद्देविक्रियतेब्रह्मवादिभि ।
अनिर्देश्यतथाचान्यदर्द्धमात्राश्रितपरम् ।।४०
अविकार्यक्षयदिव्यपरिणामविवर्जितम् ।
तवैवचपररूपयन्नशक्यमयेरितुम् ।।४१
नचास्येननवाजिह्वाताल्वोष्ठादिभिरुच्यते ।
इन्द्रोपिवसवोब्रह्माचन्द्रार्कौज्योतिरेवच ।।४२

ओंकार, अक्षर सस्थान, स्थिर, अस्थिर अर्थात सत् असत् तुम्ही मे विद्यमान रहते है, तीन लोक, तीन वेद, तीन विद्या, तीन अग्नि ।।३६।। तीन ज्योति तीन वर्ग, तीन धर्म, तीन गुण, तीन शब्द, तीन दोष, तीन आश्रम ।।३७।। तीन काल, तीन अवस्था, पितर तथा दिन-रात्रि इत्यादि जितनी भी वस्तुए तीन मात्रा स्वरूप है ।।३८।। तथा पृथक्-पृथक् सम्प्रदाय वाले पुरुषो को आद्य और सनातन सप्तविधि व्याहृति का वेद मे निरूपण हुआ है ।।३९।। वह सब तुम्हारे ही कीर्तन मे ब्रह्मवादी समाहित करते है । हे माता ! इसके अतिरिक्त आपका जो एक और परम रूप है, जिसे अर्द्धमात्रा कहते है ।।४०।। वह भी इसी प्रकार विकार रहित, क्षय रहित और शेष रहित है, हे माता ! मैं इतना शक्ति युक्त नही हूँ कि आपकी इस परम रूप का निरूपण कर सकू ।।४१।। क्यो कि उसका मुख, जिह्वा, तालु तथा ओष्ठादि से उच्चारण सम्भव नही है, इन्द्र, सूर्य अथवा अन्य ज्योतिर्मय पदार्थ उसी के रूप है ।।४२।।

विश्वावासविश्वरूपविश्वेशपरमेश्वरम् ।
साख्यावेदातवेदोक्तबहुशाखास्थिरीकृतम् ।।४३
अनादिमध्यनिधनसदसन्न सदेवतु ।
एकत्वनेकमप्येकभवभेदसमाश्रितम् ।।४४
अनाख्यषड्गुणाख्यचषट्काख्यत्रिगुणाश्रयम् ।
नानाशक्तिमतामेकशक्तिवैभाविकपरम् ।।४५
सुखासुखमहत्सौख्यरूपतवविभाव्यते ।
एवदेवित्वयाव्याप्तसकलनिष्कलजगत् ।।४६

अद्वैतावस्थितब्रह्मयच्चद्वैतेव्यवस्थितम् ।
येर्थानित्यायेविनश्यतिचान्येयेवास्थूलायेचसूक्ष्माश्चसूक्ष्मा ।
येवाभूमौयेतरिक्षेन्यतोवातेपासत्यत्वत्तएवोपलब्धि ॥४७
यच्चामूर्तयच्चमूर्तममस्तन्यद्वाभूतेष्वेकमेकचकिंचित् ।
यद्दिव्येस्तिक्ष्मातलेखेन्यतोवातत्सम्बन्धन्त्वत्स्वरैर्व्यंजनैश्च ॥४८
एवस्तुनातदादेवीविष्णोर्जिह्वासरस्वती ।
प्रत्युवाचमहात्माननागमश्वतरतत ॥४९

वही विश्व स्थान, ईश्वर एव परब्रह्म है, सांख्य, वेदान्त और तर्क शास्त्र मे जिसका वर्णन हुआ तथा वेद की अनेक शाखाओ द्वारा जिसे स्थिर किया गया ॥४३॥ तथा जिसका न आदि है, न मध्य अथवा अन्त भी नही है, जो सत् असत्‌रूप है तथा संसार के भेद से अनेकरूप और विभिन्न प्रकार वाला है ॥४४॥ जिसकी आख्या गुण षटक् और वर्ग है तथा जो त्रिगुणावलम्बी और शक्तिमानो की शक्ति के परम वैभव से सम्पन्न ॥४५॥ एव सुख, असुख और महासुख रूप है, हे माता ! तुम मे वह सभी लक्षित होता है, इस प्रकार सम्पूर्ण कलायुक्त एवं कलातीत विश्व तुम्हारे द्वारा व्याप्त हो रहा है ॥४६॥ तथा द्वैतावस्थित या अद्वैतावस्थित ब्रह्म भी तुम्हारे द्वारा ही व्याप्त है, जो नित्य, अनित्य, स्थूल या सूक्ष्म, पृथिवी, अन्तरिक्ष अथवा अन्यत्र विद्यमान है, तुममे ही उसक प्राप्ति होती है ॥४७॥ जो मूर्त्त या अमूर्त्त है, सब प्राणियो मे विद्यमान है, स्वर्ग पृथिवी, अन्तरिक्ष अथवा अन्य सभी स्थानो मे जिसका निवास है, उन सब पदार्थो का ज्ञान तुम्हारे ही स्वर व्यञ्जन द्वारा होता है ॥४८॥ नागराज द्वारा इस प्रकार स्तुत हुई सरस्वती ने उनसे कहा ॥४९॥

वरन्तेकम्बलभ्रात प्रयच्छाम्युरगाधिप ।
तदुच्यताप्रदास्यामियत्ते मनसिवर्त्तते ॥५०
साहाय्यदेत्रिदेहित्वपूर्वकम्बलमेवच ।
समस्तस्वरसम्बद्धमुभयो सम्प्रयच्छच ॥५१
सप्तस्वराग्रामरागा सप्तपन्नगसत्तम ।
गीतकानिचसप्तैवतावतावत्यश्चापिमूर्च्छना ॥५२

तानाश्चैकोनपचाशत्तथाग्रामत्रयचयत् ।
एतत्सर्वभवान्वेत्ताकम्वलश्चैवतेनव ॥५३
ज्ञास्यतेमत्प्रसादेनभुजगेद्रपरतया ।
चतुर्विधपरतालत्रि प्रकारलयत्रयम् ॥५४
गतित्रयतथातालमयादत्त चतुर्विधम् ।
एतद्भवान्मत्प्रसादात्पन्नगेद्रापरचयत् ॥५५
आम्यान्तर्गतमयात्त स्वरव्यजनयोश्चयत् ।
तदशेषमयादत्त भवत कम्वलस्यच ॥५६

सरस्वती बोली—हे उरगाधिप ! मैं वर देने को उद्यत हूँ, इसलिये तुम्हारी जो इच्छा हो, माग लो, वही दूगी ॥५०॥ अश्वतर ने कहा—हे माता ! मेरे पूर्व सहायक और कम्वल और मुझे दोनो को ही श्रुतिग्राम और मूर्च्छनादि सब प्रदान कीजिये ॥५१॥ सरस्वती देवी ने कहा—हे पन्नग श्रेष्ठ ! तुम और कम्वल दोनो ही मेरी कृपा से श्रेष्ठ गायक हो जाओगे तथा सप्तस्वर ग्राम के सप्तराग, रागन एव मूर्च्छना ॥५२॥ तथा उनचास तरह की ताल और तीन प्रकार का ग्राम है, तुम सभी प्रकार का गायन कर सकोगे ॥५३॥ हे नाग राज ! तुम चार प्रकार के अन्य पद तथा तीन ताल और तीन प्रकार की लय का ज्ञान भी प्राप्त करोगे ॥५४॥ मै तुम्हे तीन प्रकार की गति और चतुर्प्रकार वाद्य ताल भी तुम्हे देती हूँ, यह तथा इनके अतिरिक्त और समस्त ज्ञान तुम्हे मेरे प्रसाद से हो जायगा ॥५५॥ इनके अन्तर्गत आयत्त स्वर, व्यञ्जनादि जो कुछ है, वह सब विषय तुम दोनो को दिया ॥५६॥

यथानान्यस्यभूलोकेपातालेवापिपन्नग ।
प्रणेतारौभवतौचसर्वस्याद्यभविष्यत ॥५७
पातालेदेवलोकेचभूर्लोकेचैवपन्नगौ ।
इत्युक्त्वासातदादेवीसर्वजिह्वासरस्वती ॥५८
जगामादर्शनमद्योनागस्यकमलेक्षणा ।
तयोश्चतद्यथावृत्तभ्रात्रो सर्वप्रजायत ॥५९

विज्ञानमुभयोरग्र् यपदनालस्वरादिकम् ।
तत कैलासशैलेन्द्रशिखरस्थितमीश्वरम् ॥६०
गीतक सप्तभिर्गोतत्रीलयसमन्वितै ।
आरिराधयिषुर्देवशतनगार हरहरम् ॥६१
प्रचक्रतु परयन्तमुभोमहतवाकलौ ।
प्रातर्निशायामध्याह्ले मध्ययोश्चापितत्परौ ॥६२
तत कालेनमहताम्नूयमानो वृषध्वज ।
तुतोपगीतकैस्तोचप्राहमगृह्यतावर ॥६३

तुम स्वर्गलोक, पृथिवी और पाताल मे समस्त विषय मे अनुपम प्रणेता रहोगे ॥५७॥ त्रैलोक्य मे तुम्हारे समान अन्य नही होगा, जड बोला—एसा कह कर भगवती सरस्वती ॥५८॥ तत्काल अन्तर्धान हो गई और उनकी कृपा से यह दोनो भाई सभी विषय के ज्ञाता होगए ॥५९॥ पद, ताल तथा स्वरादि मे उनको अनुपम सिद्धि हुई, तब वह कैलाश मे स्थित ईश्वर ॥६०॥ अनगहारी शिव की तन्त्रीलय युक्त सप्त स्वर मे गायन पूर्वक आराधना प्रारम्भ की ॥६१॥ वह वाणी और इन्द्रियो को सयम मे करके प्रात , मध्याह्न एव साय त्रिकाल मे शिवजी की उपासना मे तत्पर हुए ॥६२॥ तब देव देव शङ्कर बहुत काल मे प्रसन्न हुए और उन दोनो से बोले कि 'वर माँग लो' ॥६३॥

ततःप्रणम्याश्वतर कवलेनसमतदा ।
विज्ञापयन्महादेवशितिकठमुमापतिम् ॥६४
यदितौभगवन्प्रीतोदेवदेवत्रिलोचन ।
ततोयथाभिलपितवरमेनप्रयच्छतौ ॥६५
मृताकुवलयाश्वस्यपत्नीदेवमदालसा ।
तेनैववयमासद्योदुहितृत्वप्रयातुमे ॥६६
जातिस्मरायथापूर्वतद्वत्क्षातिसमन्विता ।
योगिनीयोगमाताचजायतावचनात्तव ॥६७
यथोक्त पन्नगश्रेष्ठसर्वमेतद्भविष्यति ।
मत्प्रसादादसदिग्धश्रृणुचेदभुजगम ॥६८

श्राद्धावसानेप्राश्नीथामध्यपिण्डमात्मना ।
कामचेमामनुध्यायन्कुरुत्वपितृपूजनम् ।।६९
तत्क्षणादेवसासुभूर्भवतोमध्यमात्फणात् ।
समुत्पत्स्यतिकल्याणीतथारूपायथामृता ।।७०

तब कम्बल सहित अश्वतर ने प्रणाम कर पार्वती-पति भगवान् शङ्कर से निवेदन किया ।।६४।। हे प्रभो ! आप सर्व शक्ति सम्पन्न है, यदि आप प्रसन्न हुए है तो हमे यह इच्छित वर दीजिये ।।६५।। कुवलयाश्व की पत्नी मदालसा ने प्राण त्याग किया है, वह जिस अवस्था मे मरण को प्राप्त हुई है, उसी अवस्था मे मेरी कन्या के रूप मे उत्पन्न हो ।।६६।। वह पूर्ववत् कान्तिमती तथा जातिस्मरा होकर मेरे गृह मे जन्म धारण करे ।।६७।। शिवजी बोले—हे पन्नगोत्तम! तुम्हारा कहा हुआ मेरी कृपा से अवश्य होगा, अब जो कहता हूँ उसे सुनो ।।६८।। श्राद्ध का समय उपस्थित होने पर पवित्र एव सावधान मन से तुम स्वय मध्यम पिण्ड का भोजन करना तथा मेरा ध्यान करके पितरो का का यजन करना ।।६९।। मध्यम पिण्ड का भक्षण करने से मदालसा ने जिस अवस्था मे प्राण त्यागा है, उसी अवस्था मे तुम्हारे मध्य फण से उत्पन्न हो जायगी ।।७०।।

स्वयमेवोपभु जस्वयत सर्वभविष्यति ।
उत्पत्स्यतेततःसातुसत्यवैमध्यमात्फणात् ।।७१
एतच्छ्रुत्वाततस्तौतुप्रणिपत्यमहेश्वरम् ।
रसातलमनुप्राप्तौपरितोषसमन्वितौ ।।७२
तथाचकृतवाञ्छ्राद्ध सनाग कबलानुज ।
पिड चमध्यमतद्वद्यथावदुपभुक्तवान् ।।७३
उपभुक्ते तत पिडेतस्यसातनुमध्यमा ।
जज्ञेनि श्वसत सद्यस्तद्रूपामध्यमात्फणात् ।।७४
नचापिकथयामासकस्यचित्सभुजगम ।
अ तगृ हेतासुदतीस्त्रीभिगु प्तामधारयत् ।।७५

तौचानुदिनमागत्यपुत्रौ नागपते मुखम् ।
ऋतुध्वजेनमहितौचिक्रीडातेमरगाविव ।।७६
एकदातुसतौप्राहसनागोश्वतरोमुदा ।
तन्मयापूर्वमुक्तं तुक्रियतेकिनुनत्तथा ।।७७
सराजपुत्रोयुवयोरुपकारीममातिकम् ।
किनुनानीयतेवत्सावुपकारायमानद ।।७८

तुम ऐसी कामना करके पितरो का तर्पण करो, जिससे वह जिस अवस्था मे मृत हुई उसी अवस्था मे श्वास त्याग के समय तुम्हारे मध्यम फण से निकलेगी ।।७१।। यह सुनकर दोनो भाई शिवजी को प्रणाम करके पाताल मे गये ।।७२।। फिर अश्वतर ने उसी प्रकार पितर श्राद्ध करते हुए मध्यम पिण्ड का भोजन किया ।।७३।। अन्त मे अपने इच्छित का ध्यान करके श्वास छोडा तभी उनके मध्यम फण मे मदालसा अपने उसी रूप मे उत्पन्न होगई ।।७४।। अश्वतर ने यह बात किसी को न बताई और मदालसा को स्त्रियो के साथ छिपा कर घर मे रखा ।।७५।। उधर उनके दोनो पुत्र देवकुमारो के सामने ऋतध्वज के पास आकर नित्य प्रति आनन्द पूर्वक खेलने लगे ।।७६।। एक दिन नागराज ने उन दोनो से कहा—पूर्व मे मैंने तुमसे जो कुछ कहा था, तुम उसे क्यो नही करते ? ७८-७८।।

एवमुक्तौपुनस्तेनपुत्रौस्नेहवतातुतौ ।
गत्वातस्यपुरसख्यूरेमातेतेनधीमता ।।७६
ततःकुवलयाश्व तकृत्वाकिंचित्कथान्तरम् ।
अब्रूताप्रणिपातेनस्वगृहागमनप्रति ।।८०
तावाहनृपपुत्रोसौनन्विदभवतोर्गृहम् ।
धनवाहनवस्त्रादियन्मदीयतदेववाम् ।।८१
यस्यवावाछितदातु धनरत्नमथापिवा ।
तद्दीयताद्विजसुतौयदिवाप्रणयोमयि ।।८२
एतावताहदैवेनवंचितोस्मिदुरात्मना ।
यद्भूवद्भूचाममत्वनोमदीयेकियतागृहे ।।८३

यदिवामेप्रियकार्यमनुग्राह्योस्मिवायदि ।
तद्धनेमग्गेहेचममत्वमनुकल्प्यताम् ८४।।

स्नेही पिता द्वारा ऐसा कहा जाने पर उनके दोनो पुत्र ऋतध्वज के नगर मे जाकर उनके साथ खेलने लगे ।।७६।। फिर उन्होने प्रीति पूर्वक कुवलयाश्व को अपने गृह चलने का अनुरोध किया ।।८०।। राजकुमार बोला—मेरा गृह, धन, वस्त्र, यान आदि जो कुछ है, सब तुम्हारा ही है ।।८१।। यदि मेरे प्रति तुम्हारी अधिक प्रीति हुई है और मुझे जो धन, रत्न देना चाहते हो, वह दो ।।८२।। यदि तुम मेरे घर को अपना नही मानते तो मै दैव द्वारा वंचित हुआ ही समझिये ।।८३।। मेरा प्रिय करने की इच्छा करते हो और मुझे अपना कृपापात्र मानते हो तो मेरे गृह और धन मे अपनत्व रखो ।।८४।।

युवयोर्यन्मदीयतन्मामकयुवयो स्वयम् ।
एतत्सर्वविजानीयसखाप्राणोबहिश्चरः ।।८५
पुनर्नैवविभिन्नार्थवक्तव्यद्विजसत्तमौ ।
मत्प्रसादपरौप्रीत्यागापितौहृदयेनमे ।।८६
तत स्नेहार्द्र वदनौतावुभौनागनदनौ ।
ऊचतुर्नृपते पुत्रकिंचित्प्रणयकोपितम् ।।८७
ऋतुध्वज नसदेहोयथैवाहभवानिदम् ।
तथैवचास्मन्मनसिनात्रचित्य मतोन्यथा ।।८८
कित्वावयो समपित्राप्रोक्तमेतन्महात्मना ।
द्रष्टु कुवलयाश्वतमिच्छामीतिपुन पुन ।।८९
तत कुवलयाश्वोथसमुत्थायवरासनात् ।
यथाहतातेतिवदन्प्रणाममकरोद्भुवि ।।९०
धन्याहमति पुण्योहकोन्योस्तिसदृशोमया ।
यत्तातोमामभिद्रष्टु करोतिप्रवणमनः ।।९१
तदुत्तिष्ठतगच्छामताताज्ञाक्षणमप्यहम् ।
नातिक्रा तुमिहेच्छामिपद्भ्यातस्यशपाम्यहम् ।।९२

तुम्हारा है, वह मेरा और मेरा है वह तुम्हारा, मेरी इस इस बात को

यथार्थ समझो, क्योंकि तुम मेरे बाह्य प्राण स्वरूप हो ॥८५॥ अतएव हे विप्रो! ऐसी भेद स्थापित करने वाली बात न कहना, मैं तुम्हें शपथ देता हूँ कि तुम प्रीतिपूर्वक प्रसन्न होओ ॥८६॥ तब दोनों नागपुत्रों ने स्नेहसिक्त मुख से प्रीतिपूर्वक कुछ रोष व्यक्त करते हुए कहा ॥८७॥ हे राजकुमार! जो तुमने कहा है, वही हम सोचते हैं, इसमें कुछ भेद मत समझो ॥८८॥ परन्तु हमारे पिता ने तुम्हें देखने की बारम्बार इच्छा प्रकट की है ॥८९॥ तब कुवलयाश्व श्रेष्ठ आसन से 'स्वयं पिताजी ने इच्छा की है' यह कहते हुए उठकर प्रणाम किया ॥९०॥ और कहा—अवश्य ही मैं धन्य एवं पुण्यवान् हूँ, क्योंकि मुझे देखने के लिए स्वयं पिताजी उत्सुक हुए हैं ॥९१॥ इसलिए, चलो, क्षणमात्र को भी उनकी आज्ञा का उल्लंघन मैं नहीं कर सकता, मैं उनके चरण स्पर्श पूर्वक तथा शपथ से कहता हूँ ॥९२॥

एवमुक्त्वाययौसोथसहताभ्यानृपात्मज. ।
प्राप्तश्चगौतमीपुण्यानिर्गम्यनगराद्बहि ॥९३
तन्मध्येनययुस्तेवैनागेन्द्रनृपनदना ।
मेनेचराजपुत्रोऽसौपारेतस्यास्तयोर्गृहम् ॥९४
ततश्चाकृष्यपातालताभ्यानीतोनृपात्मजः ।
पातालेददृशेचोभौसपन्नगकुमारकौ ॥९५
फणामणिकृतोद्द्योतौव्यक्तस्वस्तिकलक्षणौ ।
विलोक्यतौसुरूपागौविस्मयोत्फुल्ललोचन ॥९६
विहस्यचाब्रवीत्प्रेम्णासाधुभोद्विजसत्तमौ ।
कथयामासतुस्तौतुपितरपन्नगेश्वरम् ॥९७
शातमश्वतरनागमाननीयदिवौकसाम् ।
रमणीयततोपश्यत्पातालसनृपात्मज ॥९८

यह कहकर ऋतध्वज उनके साथ चले और नगर के बाहर जल से परिपूर्ण गोमती नदी पर पहुचे ॥९३॥ उसके मध्य से तीनो चलने लगे, राजकुमार ने समझा कि गोमती के पार ही उनका घर है ॥९४॥ परन्तु उन्होने राजकुमार को खीचा और पाताल मे लेगये, वहाँ पहुँच कर, राजकुमार ने

देखा कि दोनो नागपुत्रो ने अपना यथार्थ रूप धारण कर लिया है ।।६५।। फणो मे स्थित मणि के प्रकाश से उनका हृदय और स्वस्तिक चिह्न प्रकाशित होगया, राजकुमार ने उनके स्वरूप को देखकर विस्मय से विस्फारित नेत्रो द्वारा ।।६६।। हँसते हुए साधुवाद दिया, फिर देवताओ द्वारा भी स्तुत पितृदेव अश्वतर से राजकुमार के आगमन का वृत्तान्त कहा गया । राजकुमार ने देखा कि पाताल का वह नगर अत्यन्त रमणीक है ।।६७-६८।।

कुमारैस्तरुणैर्वृ द्धै रुरगैरुपशोभितम् ।
तथैवनागकन्याभि क्रीड तीभिरितस्तत ।।६६
चारुकु डलहाराभिस्ताराभिर्गगनयथा ।
गीतशब्दैस्तथान्यत्रवीणावेणुस्वरानुगै ।।१००
मृदगपणवातोद्यहारिवेश्मशताकुलम् ।
वीक्षमाण सपातालययौशत्रुजित सुतः ।।१०१
सहताभ्यामभीष्टाभ्यापन्नगाभ्याम रिदम ।
तत प्रविश्यतेसर्वेनाग राजनिवेशनम् ।।१०२
ददृशुस्तमहात्मानमुरगाधिपतिंस्थितम् ।
दिव्यमाल्यावरधरमणिकु डलभूषणम् ।।१०३
स्वच्छमुक्ताफललताहारिहारोपशोभितम् ।
केयूरिणमहाभागमासनेसर्वकाचने ।।१०४
मणिविद्रुमवैडूर्यजालातरीतरूपके ।
सताभ्यादर्शितस्तस्यतातोस्माकमसाविति ।।१०५

बाल, युवा, वृद्ध सब जाति के सर्प सुशोभित है और उनके चारो ओर नागकन्याए क्रीडा करती घूम रही है ।।६६।। उनके हार और कुण्डल अत्यन्त सुन्दर है, उनके सामीप्य से तारावलि से विभूषित आकाश के समान पाताल की नगरी सुशोभित हो रही है, कही सङ्गीत की ध्वनि, कही वशी और कही वीणाए बज रही है ।।१००।। मृदङ्ग, पणव एव आतोद्य के शब्द से प्रतिध्वनित सैकडो रमणीक घर सुशोभित है, उस नगरी को देखते हुए राजकुमार अपने समवयस्क मित्रो के साथ चल रहे थे, फिर उन्होने नागराज के स्थान मे प्रवेश

करके ॥१०१-१०२॥ उन्हे वहाँ निवास करते देखा, उनका दिव्य बिछौना, दिव्य माला तथा दिव्य मणिमय कुण्डल शोभायमान हैं ॥१०३॥ स्वच्छ मनोरम हार से अत्यन्त सुशोभित, हाथो मे केयूर धारण किये हुए वह स्वर्ग सिंहासन पर बैठे हैं ॥१०४॥ मणि, मूँगा, बैदूर्य आदि के कारण उनका प्राकृत स्वरूप ढक गया है, सखाओ ने राजकुमार से कहा कि हमारे पिता यही है ॥१०५॥

वीर कुवलयाश्वोयपित्रेचासौनिवेदित. ।
ततोननामचरणौनागेद्रस्यऋतुध्वज. ॥१०६
समुत्थाप्यबलाद्गाढसनाग परिषस्वजे ।
मूर्ध्निचैवमुपाघ्रायचिरजीवेत्युवाचह ॥१०७
निहतामित्रवर्गश्चपित्रो शुश्रूणकुरु ।
वत्सधन्यस्यकथ्यतेपरोक्षस्यापितेगुणा ॥१०८
भवतोममपुत्राभ्यामाभ्यायेमेनिवेदिता ।
तदेनैरेववर्द्धथामनोवाक्कायचेष्टितैः ॥१०९
जीवितगुणिन श्लाघ्यजीवन्नपिमृतोऽगुणी ।
गुणवान्निवृंतिपित्रो शत्रूणाहृदयेज्वरम् ॥११०
करोत्यात्महितकुर्वन्विश्वासचमहाजने ।
देवता पित्तरोविप्रामित्रार्थिविभवादय ॥१११
बाधवाश्चतथेच्छतिजीवितगुणिनश्चिरम् ।
परवादनिवृत्तानादुर्गतेषुदयावताम् ॥११२

फिर पिता से कहा कि यही वीर कुवलयाश्व हैं, तब ऋतुध्वज ने नागराज के चरणो मे प्रणाम किया ॥१०६॥ नागराज न राजकुमार का आलिगन कर शिर सूँघते हुए कहा—चिरजीव होओ ॥१०७॥ तथा शत्रुकुल का विनाश करते हुए माता-पिता की सेवा करो । तुम धन्य हो, मेरे पुत्र तुम्हारे पीछे भी तुम्हारे अलौकिक गुण ॥१०८॥ गाया करते है, इससे भी तुम्हारा मन, वाणी, शरीर और चेष्टा की सर्वांश मे वृद्धि होगी ॥१०९॥ गुणवान् पुरुष ही प्राण धारण के योग्य है, जो गुणहीन है, वह जीवित रहकर भी मरे हुए के समान है, क्योकि गुणवान् पुरुष माता-पिता को शान्ति देते और शत्रुकुल को सतप्त

करते हैं ॥११०॥ महाजनो के विश्वास को प्राप्त करके अपना कल्याण साधन करते हैं, देव, पितर, ब्राह्मण, मित्र, प्रार्थी एव विभव इत्यादि ॥१११॥ एव वन्धुजन गुणवान् के ही दीर्घजीवी होने की कामना करते है, गुणवान् व्यक्ति बुरे कर्म करने वालो को निवृत्त करते और दु खियो के प्रति दया प्रदर्शित करते है ॥११२॥

गुणिनासफलजन्मसश्रितानाविपद्गतै ।
एवमुक्त्वासतवीरपुत्राविदमथाब्रवीत् ॥११३
पूजाकुवलयाश्वस्यकर्त्तु कामोभुजगम. ।
स्नानादिकक्रमकृत्वासर्वमेवयथाक्रमम् ॥११४
मधुपानादिसभोगमाहारचयथेप्सितम् ।
तत कुवलयाश्वेनहृदयोत्सवभूतया ॥११५
कथयास्वल्पककालस्थास्यामोहृष्टचेतस ।
अनुमेनेचतमौनीवच शत्रुजित सुत ॥११६
तथाचकारचपति पन्नगानामुदारधी ॥११७
समेत्यतैरात्मजभूपनदनैर्महोरगाणामधिप ससत्यवाक् ।
मुदायुतौन्नानिमधूनिचात्मवान्यथोपजोषबुभुजेसभोगभाक् ॥११८

दु खियो के आश्रयदाता होने से भी उनका जन्म सफल है, ऐसा कहकर राजकुमार का पूजन करने लगे तथा अपने दोनो पुत्रो से बोले कि हम सब एकत्र होकर स्नानादि से निवृत्त होकर ॥११३॥ इच्छानुसार मधु-पान एव आहार भक्षण कर कुवलयाश्व सहित उत्सव पूर्वक ॥११५॥ प्रसन्न मन से रहेगे, इस पर कुवलयाश्व ने मौन रहकर ही उनकी बात का अनुमोदन किया ॥११६॥ फिर उदार चेता नागराज ने उसके अनुरूप कार्यारम्भ किया ॥११७॥ सत्य-भाषी नागराज अश्वतर के दोनो पुत्र राजकुमार के साथ प्रसन्न चित्त से अन्न-मधु का सेवन करने लगे ॥११८॥

२२—कुवलयाश्व को पुनः मदालसा प्राप्त

कृताहारमहात्मानमधिपपवनाशिनाम् ।
उपासाचक्रिरेपुत्रौभूपालतनयस्तथा ॥१
कथाभिरनुरूपाभि प्रहृष्टात्माभुजगम ।
प्रीतिसजनयामासपुत्रसख्युरुवाचह ॥२
तवभद्रसुखब्रूहिगेहमभ्यागतस्ययत् ।
कर्तव्यमुत्सृजाशकापितरीवसुतेमयि ॥३
हिरण्यवासुवर्णवावस्त्रवाहनमासनम् ·
यद्वाभिमतमत्यर्थदुर्लभतद्वृणुष्वमाम् ॥४
भवत्प्रसादाद्भगवन्सुवर्णादिगृहेमम ।
पितुरस्तिममाद्यापिनकिचित्कार्यमीदृशै ॥५
तातेवर्षसहस्रायु शासतीमावसु धराम् ।
तथैवत्वयिपातालनमेयाच्ञोन्मुखमन ॥६
तेसुभाग्या सुपुण्याश्चयेपापितरिजीवति ।
तृणकोटिसमवित्ततारुण्यवित्तकोटिपु ॥७

जड बोला—फिर नागराज अश्वतर के भोजन कर लेने पर उनके दोनो पुत्र और राजकुमार उनकी उपासना मे लगे ॥१॥ तब नागपति अश्वतर ने अनुरूप वचनो से राजकुमार को प्रसन्न करते हुए कहा—हे भद्र ! ॥२॥ तुम मेरे गृह आये हो जैसे शङ्कारहित होकर पुत्र अपने पिता से बाते करता है, वैसे ही तुम भी करो, मुझे बताओ कि मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ ? ॥३॥ इस बात को स्वच्छन्द होकर कहो, स्वर्ण, रजत, वस्त्र, वाहन अथवा जो कुछ इच्छित हो, वह यदि दुर्लभ भी हो तो मुझसे माँग लो ॥४॥ कुवलयाश्व बोला—हे भगवन् ! आपकी कृपा से मेरे पिता के गृह मे स्वर्णादि सब वस्तुएँ है, मुझे अभी तक ऐसे किसी वस्तु की आवश्यकता प्रतीत नही हुई ॥५॥ मेरे पिता सहस्र वर्ष हुए, जब इस पृथिवी पर शासन करते थे और आप भी पाताल मे निवास करते थे, तब कभी भी मेरा मन प्रार्थना मे प्रवृत्त नही हुआ ॥६॥ जिनके पिता जीवित है, वह पुरुष धन्य है इसलिए युवावस्था मे

करोड सख्यक धन को भी जो तिनके के समान मानते है, वह परम पुण्यवान् महापुरुष है ॥७॥

मित्राणितुल्यशिष्टानितद्वद्देहमनामयम् ।
जनेवाश्रितेवित्तयौवनकितुनास्तिमे ॥८
असत्यर्थेनृणायाच्ञाप्रवणजायतेमन. ।
सत्यशेषेकथयाच्ञाममजिह्वाकरिष्यति ॥६
यैर्नचित्यधनकिचिन्ममगेहेस्तिनास्तिवा ।
पितृबाहुतरुच्छायासश्रिता सुखिनोहिते ॥१०
येतुबाल्यात्प्रभृत्येवविनापित्राकुटु बिन ।
तेसुखास्वादविभ्र शान्मन्येधात्रैववचिताः ॥११
तद्वयंतत्प्रसादेनधनरत्नादिसचयम् ।
पितृभक्ताःप्रयच्छाम कामतोनित्यमर्थिनाम् ॥१२
तत्सर्वमिहसप्राप्त यदघ्रियुगलतव ।
मच्चूडामणि नाघृष्ट यच्चागस्पर्शमाप्तवान् ॥१३
इत्येवप्रश्रितवाक्यमुक्त पन्नगसत्तम ।
प्राहराजसुतप्रीत्यापुत्रयोरुपकारिणम् ॥१४

मेरे मित्र उचित शिष्टाचार से युक्त हैं, मेरा देह युवा एवं रोग रहित है, तो मेरे पास क्या नही है ॥८॥ मेरा पिता विलक्षण धन से सम्पन्न हैं, जिनके पास धन नही, वही याचना मे प्रवृत्त होते है, मेरे यहाँ प्रचुर धन होने से मेरी जिह्वा याचना क्यो करे ? ॥६॥ घर मे धन हो या न हो, जो पिता रूपी वृक्ष की भुजलताओं के आश्रित हैं, उन्हे कोई चिन्ता नही होती, क्योकि यथार्थ रूप सुखी वही है ॥१०॥ परतु, जो बाल्यकाल से ही पितृहीन होकर परिवार के भरण पोषण मे व्यस्त होते हैं, उन्हें विधना ने सुख से वंचित कर दिया है ॥११॥ आपकी कृपा से मैं अपने पिता के द्वारा प्रदत्त असंख्य धन-रत्नादि को याचको को देता हूं ॥१२॥ फिर जब अपनी चूडामणि के द्वारा आपके चरणारविन्दो का स्पर्श किया है और आपका सग लाभ हुआ तो मुझे नि.सदेह सम्पूर्ण लाभ

होगये है ।।१३।। ऐसे वचन सुन कर नागराज अपने पुत्रों के हित मे तत्पर उस राजकुमार से बोले ।।१४।।

यदिरत्नसुवर्णादिमत्तोवाप्तु नतेमनः ।
यदन्यन्मनस प्रीत्यैब्रू हितत्तेददाम्यहम् ।।१५
भगवस्त्वत्प्रसादेनप्रार्थितस्यगृहेमम ।
सर्वमस्तिविशेषेणसप्राप्तं तवदर्शनात् ।।१६
कृतकृत्योस्मिचैतेनसफलजीवितमम ।
यदंगसश्लेपमितस्तवदेवस्यमानुपः ।।१७
ममोत्तमागेत्वत्पादरजसायदिहास्पदम् ।
कृततेनैवनप्राप्त किमयापन्नगेश्वर ।।१८
यदित्ववश्यदातव्योवरोमेमनसेप्सितः ।
तत्पुण्यकर्मसस्कारोहृदयान्माव्यपैतुमे ।।१९
सुवर्णमणिरत्नादिवाहनगृहमासनम् ।
स्त्रियोन्नपानपुत्राश्चचारुमाल्यानुलेपनम् ।।२०
एतेचविविधाभोगागीतवाद्यादिकचयत् ।
सर्वमेतन्ममतफलपुण्यवनस्पते· ।।२१
तस्मान्नरेणतन्मूलसेकेयत्न कृतात्मना ।
कर्त्तव्य पुण्यसक्तानानकिचिद्भुवि दुर्लभम् ।।२२

स्वर्ण रत्नादि की कामना न होते हुए भी जिससे तुम्हारे अन्तर की प्रीति का सचार हो सके, वह विषय मुझसे कहो, उसे मैं प्रदान करूँगा ।।१५।। कुवलयाश्व बोले—भगवान् ! मेरे गृह मे आपकी कृपा से सम्पूर्ण प्रार्थनीय वस्तुएँ विद्यमान है, तथा आपका दर्शन लाभ करने से समस्त वस्तुएँ ही मुझे मिल गयी हैं ।।१६।। आप देवता के अग-सग का लाभ करके मैं अपने को धन्य मानता हू, इससे मेरा जीवन धारण करना भी सफल हुआ है ।।१७।। हे नागेश्वर ! आपके चरणरज ने मेरे मस्तक पर निवास किया है, इससे मुझे क्या नही प्राप्त हुआ ? ।।१८।। तो भी यदि आप मुझे इच्छित वर देना चाहते है तो यही दीजिये कि मेरे हृदय से कभी पुण्यकर्म के सस्कार न निकले ।।१९।। स्वर्ण,

मणि, रत्न, वाहन, घर, आसन, स्त्री, पुत्र, अन्न, रस, माला, अनुलेपन ॥२०॥ तथा गायन वादन आदि सब वस्तुएँ पुण्य का ही फल हैं ॥२१॥ इसलिए कृत चित्त होकर उसी की जड सीचनी चाहिये, पुण्य मे आसक्त मनुष्यो के लिए पृथिवी मे कोई वस्तु दुर्लभ नही है ॥२२॥

एवभविष्यतिप्राज्ञतवधर्माश्रितामति ।
सत्यचैतत्फलसर्वधर्मस्योक्त यथात्वया ॥२३
तथाप्यवश्यमद्गेहमागतेनत्वयाधुना ।
ग्राह्य यन्मानुषेलोकेदुष्प्रापभवतोमतम् ॥२४
तस्यतद्वचनश्रुत्वा सतदानृपनदन ।
मुखावलोकनचक्रे पन्नगेश्वरपुत्रयो ॥२५
ततस्तौप्रणिपत्योभौराजपुत्रस्ययन्मतम् ।
तत्पितु सकलवीरौकथयामासतु स्फुटम् ॥२६
तातास्यपत्नीदयिताश्रुत्वेम विनिपातितम् ।
अत्यजद्दयिताप्राणान्विप्रलब्धादुरात्मना ॥२७
केनापिकृतवैरेणदानवेनकुबुद्धिना ।
गधर्वराजस्यसुतानाम्नाख्यातामदालसा ॥२८

अश्वतर बोले—ऐसा ही होगा, तुम्हारा मन सदा पुण्य कार्यो मे रहेगा, तुम्हारा सब कथन सत्य है, धर्म का एक मात्र फल यही है ॥२३॥ फिर भी जब तुम मेरे गृह पर आये हो तो मर्त्यलोक मे जो तुम्हे दुष्प्राप्य हो, वह अवश्य लेना चाहिये ॥२४॥ जड बोला—नागराज का वचन सुन कर राजकुमार ने उनके पुत्रो के मुख की ओर देखा ॥२५॥ तब उन दोनो ने अपने पिता को प्रणाम करके राजकुमार की कामना को स्पष्ट रूप से कहा ॥२६॥ दोनो पुत्र बोले—इनकी प्रियतमाने किसी दुरात्मा दानव द्वारा छल पूर्वक इनकी मृत्यु का समाचार पाकर प्राण त्याग किया है ॥२७॥ उस दानव ने शत्रुतावश ही ऐसा किया था, इनकी पत्नी का नाम मदालसा था, वह गधर्वराज की पुत्री थी ॥२८॥

कृतज्ञोयंततस्तातप्रतिज्ञांकृतवानिमाम् ।
नान्याभार्याभवित्रीमेवर्जयित्वामदालसाम् ॥२९

द्रष्टुताचारुसर्वांगीमयवीरोऋतध्वज ।
तातवाञ्छतियद्येतत्क्रियतेतत्कृतभवेत् ॥३०
भूतैर्वियोगिनोयोगस्तादृशैरेवतादृशः ।
कथमेतद्विनास्वप्नमायावाशवरोदिताम् ॥३१
प्रणिपत्यभुजगेशपुत्र शत्रुजितस्तत ।
प्रत्युवाचमहात्मानप्रेमलज्जासमन्वित ॥३२
मायामयीमप्यधुनाममतातोमदालसाम् ।
यदिदर्शयतेमन्येपरकृतमनुग्रहम् ॥३३
तस्मात्पश्येहवत्सत्वमायाचेद्द्रष्टुमिच्छसि ।
अनुग्राह्योभवान्गेहेबालोप्यभ्यागतोगुरु ॥३४
आनयामासनागेद्रोगृहेगुप्तामदालसाम् ।
दर्शयामासचतदाराजपुत्रायताशुभाम् ॥३५

मदालसा के मरने पर, उसके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करने के लिए इन्होने प्रतिज्ञा की है कि उसके अतिरिक्त अन्य किसी नारी को पत्नी नही बनाऊँगा ॥२९॥ यह उस सर्वांग सुन्दरी के दर्शन को अत्यत लालायित है, यदि ऐसा हो सके तो इनका यथार्थ उपकार हो सकता है ॥३०॥ अश्वतर बोले—पचभूतात्मक देह का वियोग होने पर पूर्ववत् सयोग आसुरी माया के अतिरिक्त अन्य प्रकार से सभव नही है ॥३१॥ यह सुन कर ऋतध्वज ने नागराज को प्रणाम किया और लज्जा सहित कहा ॥३२॥ हे तात ! यदि आप उस मदालसा को माया पूर्वक ही मुझे दिखा सके तो मै उसे परम अनुग्रह ही समझूँगा ॥३३॥ अश्वतर ने कहा—हे वत्स ! यदि तुम माया देखना चाहते हो तो अनुग्रह के पात्र होने के कारण देखो, यद्यपि तुम बालक होकर यहाँ आये हो, फिर भी अतिथि होने के कारण गुरु के समान सम्मान के योग्य हो ॥३४॥ नागराज ने यह कह कर घर मे छिपी हुई मदालसा को वहाँ बुलाकर राजकुमार को दिखाया ॥३५॥

तेपासमोहनार्थायजजल्पचततस्फुटम् ।
सेयनवेतितेभार्याराजपुत्रमदालसा ॥३६

सदृष्ट्वातांतदातन्वीतत्क्षणाद्विगतत्रप ।
प्रियेतितामभिमुखययौवाचमुदीरयन् ॥३७
निवारयामासचतनाग सोश्वतरस्त्वरन् ।
मायेय पुत्रमास्प्राक्षी प्रागेवकथिततव ॥३८
अ तर्द्धानमुपैत्याशुमायासस्पर्शनादिभि ।
तत पपातमेदिन्यासतुमूर्च्छापरिप्लुतः ॥३९
हाप्रियेतिवदन्सोर्थचितयामासभामिनीम् ।
मोहोममायनोवेतिनालप्रत्ययवानहम् ॥४०
अहोममेत्यहचेतिबलप्रत्यययोर्महत् ।
येनाहपाननोरीणाविनाशस्त्र निपातितः ॥४१
ममेतिदर्शितानेनमिथ्यामायेतिविस्फुटम् ।
वाय्वबुतेजसाभूमेराकाशस्यचचेष्टया ॥४२

तथा सब को मोहित करने के लिए मत्रोच्चार पूर्वक मदालसा को दिखाते हुए राजकुमार से कहा—हे वत्स ! तुम्हारी भार्या मदालसा यही है, इसे तुम देखो ॥३६॥ उसे देखते ही राजकुमार लज्जा त्याग कर 'प्रिये' कहते हुए तत्काल उसके सामने पहुचे ॥३७॥ अश्वतर ने उन्हे निषेध करते हुए कहा—हे वत्स ! यह माया है, इसे स्पर्श मत करना, यह मैं पहिले ही कह चुका हूँ ॥३८॥ स्पर्शादि से माया तत्काल नष्ट हो जाती है, ऐसा सुन कर ऋतध्वज मूर्च्छित होकर पृथिवी मे गिर पडे ॥३९॥ फिर हा प्रिये ! कहते हुए बोले—क्या मुझे मोह हो गया है अथवा कुछ और बात है, यह बात समझ मे नही आती है ॥४०॥ परतु मुझे बल पूर्वक निश्चय है कि यह मेरी ही है, जिससे मुझे बिना शस्त्र मारा है ॥४१॥ वह मिथ्या माया ही मुझे दिखाई है, अथवा यह वायु, जल, तेज या आकाश की कोई चेष्टा है ? ॥४२॥

तत कुवलयाश्व समाश्वास्यभुजगम ।
कथयामासतत्सर्वमृतसजीवनादिकम् ॥४३
तत प्रहृष्ट प्रतिलभ्यकाताप्रणम्यनागनिजमाजगाम ।
सस्तूयमान स्वपुरतमश्वमारुह्यसचिंतितमभ्युपेतम् ॥४४

श्रृणुयाद्भक्तिपूर्वयोनैरतर्येणमानव ।
वेदघोपफलतेनप्राप्त वैभुविदुर्लभम् ॥४५
सप्राप्नोतिसुखनित्यसर्वकामसमन्वित ।
लोकेचदुर्लभतस्यनास्तिकिंचिन्नतीवहि ॥४६

जड बोले—फिर नागराज अश्वतर ने कुवलयाश्व को समझा बुझा कर जिस प्रकार मदालमा को प्राप्त किया था वह सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया ॥४३॥ तब कुवलयाश्वको अपनी भार्या की प्राप्ति मे अत्यत आनन्द हुआ और उन्होने अपने अश्व को स्मरण किया याद करते ही वह अश्व वहाँ आ गया और राजकुमार ने नागराज को प्रणाम कर भार्या महित घोडे पर बैठ कर अपने नगर को प्रस्थान किया ॥४४॥ जो मनुष्य इम कथा को भक्ति भाव पूर्वक मुनते है, वे वेदपाठ के फल को प्राप्त होते है, यह उपाख्यान पृथिवी मे अत्यन्त दुर्लभ है, इसमे सदेह नही है ॥४५॥ सब कामनाओ की प्राप्ति एव नित्य सुख की प्राप्ति होती है, लोक मे उसके लिए कुछ भी दुर्लभ नही होना ॥४६॥

२३—मदालसा का पुत्र--उल्लापन

आगम्यस्वपुरसोथपित्रो सर्वमशेषत ।
कथयामासतन्वगीयथाप्राप्तापुनर्मृता ॥१
ननामसापिचरणौश्वश्रूश्वशुरयो शुभा ।
स्वजनचयथापूर्ववदनाश्लेषणादिभि ॥२
पूजयामासतन्वगीयथान्याययथावय ।
ततोमहोत्सवोजज्ञे पौराणातत्रवैपुरे ॥३
ऋतध्वजश्चसुचिरतयारेमेसुमध्यया ।
निर्झरेपुचशैलानानिम्नगापुलिनेषुच ॥४
काननेषुचरम्येषुवनेषूपवनेषुच ।
पुण्यक्षयवाछमानासापिकामोपभोगत. ॥५

सहतेनातिकातासुरेमेरम्यासुभूमिषु ।
तत कालेनमहताशत्रुजित्सनराधिप ॥६
सम्यक्प्रशास्यवसुधाकालधर्ममुपेयिवान् ।
तत पौरामहात्मानपुत्रतस्यऋतध्वजम् ॥७
अभ्यपिचतराजानमुदाराचारचेष्टितम् ।
सम्यक्पालयतस्तस्यप्रजाःपुत्रानिवौरसान् ॥८

पुत्र बोला—अपने नगर मे पहुँच कर ऋतध्वज ने मृतक मदालसा को जिस प्रकार पुन प्राप्त किया वह सब वृत्तान्त अपने माता-पिता से कहा ॥१॥ कल्याणी मदालमा ने भी अपने सास-श्वसुर के चरणो मे प्रणाम पूर्वक ॥२॥ सभी स्वजनो की यथा योग्य वदना, पूजन आदि किया और फिर नगरी मे पुरवासियो ने महोत्सव मनाया ॥३॥ तथा राजकुमार ऋतध्वज ने मदालसा के साथ पर्वत, झरने नदी, पुलिन ॥४॥ वन, उपवन आदि मे बहुत समय विहार किया, मदालमा भी कामोपभोग द्वारा वासना सहित ॥५॥ सुन्दर कान्ति युक्त ऋतध्वज के साथ विविध मनोहर स्थानो मे विहार करने लगी, इस प्रकार बहुत काल व्यतीत हो गया तब राजा शत्रुजित् ॥६॥ काल धर्म के वशीभूत हो गए और नगर निवासियो ने उनके पुत्र ॥७॥ उदार आचरण वाले ऋतध्वज को राज्य पर बैठाया और वे भी भले प्रकार से प्रजा-पालन मे तत्पर हुए ॥८॥

मदालसाया सजज्ञे पुत्र प्रथमजस्तत ।
तस्यचक्रेपितानामविक्रातइतिधीमत ॥९
तुतुपुस्तेनवैभृत्याजहासचमदालसा ।
सावैमदालसापुत्रबालमुत्तानशायिनम् ॥१०
उल्लापनच्छलेनाहरुदमानमविस्वरम् ।
शुद्धोसिरेतातनतेस्तिनामकृताचतेकल्पनयाधुनैव ॥११
पचात्मकदेहमिदनतेस्तिनैवास्यत्वरोदिपिकस्यहेतो ।
नवाभवात्रोदितिवैस्वजन्माशुद्धोयमासाद्यमहीसमूहम् ॥१२
विकल्प्यमानौविविधैर्गुणाश्चभौता सकलेद्रियेषु ।
भूतानिभूतै परिदुर्बलानिवृद्धिसमायातियथेहपु स. ॥१३

अन्नाबुपानादिभिरेवकस्यनतेस्तिवृद्धिर्नचतेस्तिहानि ।
त्वककुकेशीर्यमाणोनिजेस्मिस्तस्मिन्स्वदेहेमूढतामात्रजेथा ।।१४

इसके पश्चात् मदालसा ने प्रथम पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम 'विक्रान्त' रखा गया ।।९।। पुत्र होने के कारण भृत्यगण अत्यत प्रसन्न हुए, मदालसा हँसने लगी, उस पुत्र के पाँव पसार कर सोने पर ।।१०।। अथवा अस्फुट स्वर से रोने पर मदालसा उससे कहती है–हे पुत्र ! तुम नाम विहीन का नाम करण कल्पना मे ही हुआ है ।।११।। तुम इस शरीर को पचभूतात्मक समझो, क्योकि जैसे यह शरीर तुम्हारा नही है, वैसे ही तुम भी इसके नही हो, फिर क्यो रोते हो ? यह शब्द भी स्वय ही प्रकट होता है ।।१२।। विभिन्न भौतिक गुण अथवा अगुण तुम्हारी इन्द्रियो मे है, जैसे अत्यन्त दुर्लभ भूतगण भूत की सहायता से ही अन्न जलादि के दान से बढते है ।।१३।। उसके समान तुम्हारी वृद्धि अथवा क्षय नही है, यह शरीर तो केवल आच्छादन है, यह तो क्षीण हो जायगा, इसलिए तुम इसके मोह मे मत पडना ।।१४।।

शुभाशुभै कर्मभिर्देहमेतन्मदादिमूढे कचुकस्तेपिनद्ध ।
तातेतिकिचित्तनयेतिकिंचिदवेतिकिंचिद्दयितेतिकिंचित् ।।१५
ममेतिकिचिन्नममेतिकिंचिद्भौतामघावहुधामालपेथा ।
दु खानिदुःखापगमायभागान्सुखायजानातिविमूढचेता ।।१६
तान्येवदु खानिपुन सुखानिजानातिविद्वानविमूढचेता ।
हासोस्थिसदर्शनमक्षियुग्ममत्युज्ज्वलयत्कलुषवसाया ।।१७
कुचादिपीनपिशिताघनतत्स्थानारते किनरकोनयोषित् ।
यानक्षितौयानगतश्चदेहोदेहेपिचान्य पुरुषोनिविष्ट ।।१८
ममत्वमुर्व्यांनतथायथास्वेदेहेतिमात्रचविमूढतैषा ।।१९
त्यजधर्ममधर्मचउभेसत्यानृतेत्यज ।
उभेसत्यानृतेत्यक्त्वायेनत्यजसितत्त्यज ।।२०

शुभाशुभ कर्म से ही इसका आच्छादन हुआ समझो, पिता, पुत्र, माता, स्त्री अथवा अन्य आत्मीयजन ।।१५।। अपना कुछ नही है, इनका अधिक मान न करना मूढ चेता पुरुष ही दु ख को दु खनाश का तथा भोगो को सुख का कारण

मानते है ॥१६॥ अविद्या से ही अन्धे हो मोह मे पडे है, वह दुःख को सुख ही मानते है, स्त्री हँसती है तो हड्डी दिखाई पडती है और उसके नेत्रो मे बसा की कलुपता प्रतीत होती है ॥१७॥ उसके स्तनादि भी माँसपिण्ड मात्र है, उसका गुह्य स्थान भी वैसा ही है, तब क्या स्त्री साक्षात् नरक का ही स्वरूप नही है ? पृथिवी मे यान, यान मे शरीर और शरीर मे अन्य पुरुष का निवास है ॥१८॥ जैसी ममता शरीर के प्रति है, वैसी पृथिवी के प्रति भी नही है, यही मूर्खता है, क्योकि शरीर पृथिवी का ही सूक्ष्म अंश है ॥१९॥ धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य का त्याग करो, इसे त्यागने के पश्चात् जिससे त्याग किया जाय, उसे भी त्याग दो ॥२०॥

वर्धमानसुतसातुराजपत्नोदिनेदिने ।
तमुल्लापादिनोबोधमनयन्निर्मलात्मकम् ॥२१
यथायथाबललेभेयथालेभेमतिपित. ।
तथातथात्मबोधचसोवापन्मातृभाषितै ॥२२
इत्थतयासतनयोजन्मप्रभृतिबोधित· ।
चकाग्नमतिप्राज्ञोगार्हस्थ्यप्रतिनिर्मम ॥२३
द्वितीयोस्या सुतोजज्ञेतस्यनामाकरोत्पिता ।
सुबाहुरयमित्युक्त साजहासमदालसा ॥२४
तमप्येवयथापूर्वबालमुल्लादवादिनी ।
प्राहबाल्यात्सचप्रापतथाबोधमहामति ॥२५
तृतीयन्तनयञ्चान्तन्तराजाशत्रुमर्दनम् ।
यदाहन्तेनसासुभ्रू जंहासातिचिरपुन· ॥२६
तथैवसोपितन्वग्याबालत्वादेवबोधित ।
क्रियाश्चकारनिष्कामानकिंचित्फलकारणम् ॥२७
चतुर्थस्यसुतस्याथचिकीर्षुर्नामभूपति· ।
ददर्शताशुभाचारामीपद्धासामदालसाम् ॥२८

जड बोला—इस प्रकार यह राजपुत्र दिनो-दिन बढने लगा, रानी मदालसा भी पुत्र को खिलाने के मिस उस स्वच्छ आत्मा वाले पुत्र को ज्ञान ॥२१॥

देने मे लगी, क्रम-क्रम करके पुत्र जैसे पिता के द्वारा बल वृद्धि को पाने लगा वैसे ही माता के उपदेश द्वारा आत्मज्ञान भी प्राप्त करने लगा ।।२२।। जन्म से ही माता से आत्मज्ञान विषयक उपदेश को पाकर ममता दूर हो गई और गृहस्थ धर्म के प्रति राजकुमार निस्पृह हो गये ।।२३।। कुछ कालोपरान्त मदालसा के दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम पिता ने 'सुबाहु' रखा, मदालसा उस समय भी हँसी ।।२४।। वह उसे भी उसी प्रकार आत्मबोध देने लगी, इससे उसका मन भी ज्ञान प्राप्त करके विरक्त हो गया ।।२५।। फिर तीसरा पुत्र उत्पन्न हुआ तो राजा ने उसका नाम शत्रुमर्दन रखा, उसे सुन कर मदालसा बहुत देर तक हँसती रही ।।२६।। वह इसे भी पहिले के समान आत्मज्ञान देने लगी, जिससे यह भी काम-रहित हो गया ।।२७।। फिर चौथा पुत्र उत्पन्न हुआ तब उसका नामकरण करने के लिये राजा ने मदालसा की ओर देखा तो वह हँस पड़ी ।।२८।।

तामाहराजाहसतीकिंचित्कौतूहलान्वित ।
क्रियमाणेऽसकृन्नाम्निकथ्यताहास्यकारणम् ।।२९
विक्रातश्चसुबाहुश्चयथान्य शत्रुमर्दन ।
शोभनानीतिनामानितानिमन्येकृतानिवै ।।३०
योग्यानिक्षत्रबन्धूनाशौर्याटोपयुतानिच ।
असत्येतानिवैभद्रे यदितेमनसिस्थितम् ।।३१
तदस्यक्रियतानामचतुर्थस्यसुतस्यमे ।
मयाज्ञाभवत कार्यामहाराजयथात्थमाम् ।।३२
तथानामकरिष्यामिचतुर्थस्यसुतस्यते ।
अलर्कइतिधर्मज्ञःख्यातिलोकेगमिष्यति ।।३३
कनीयानेपतेपुत्रोमतिमाश्चभविष्यति ।
तच्छ्रुत्वानामपुत्रस्यकृतमात्रामहीपति ।।३४
अलर्कइत्यसम्बद्ध प्रहस्येदमथाब्रवीत् ।
भवत्यायदिदनाममत्पुत्रस्यकृतशुभे ।।३५

किमीदृशमसम्वद्धमर्थ कोस्यमदालसे ।
कल्पनेयमहाराजकृतासाव्यावहारिकी ।।३६

यह देख कर राजा ने पूछा—मैं जब-जब पुत्र होने के पश्चात् नामकरण के लिये उद्यत हुआ, तब-तब ही तुम हँस पड़ती हो, इसका क्या कारण है ? ।।२६।। मैंने इन पुत्रों के नाम विक्रान्त, सुबाहु और शत्रुमर्दन रखे, यह मेरे विचार से युक्ति सङ्गत ही है, ।।३०।। क्यों कि क्षत्रियों का नाम शौर्य और दर्प से युक्त होना ही ठीक है, फिर भी तुम्हारे विचार में यह तीनों नाम अयुक्त हों तो ।।३१।। इस चौथे पुत्र का नाम तुम ही रखो, मदालसा ने कहा— हे महाराज ! आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा कर्त्तव्य है ।।३२।। इस लिये मैं आपकी आज्ञानुसार नामकरण करती हूँ, यह पुत्र भूमण्डल में 'अलर्क' नाम से प्रसिद्ध होगा ।।३३।। आपका यह सबसे छोटा पुत्र अत्यन्त बुद्धिमान् होगा । परन्तु इस असम्बद्ध नाम को सुन कर ।।३४।।राजा ने हँसते हुए कहा—तुमने जो पुत्र का नाम रखा है ।।३५।। वह असम्बद्ध है, इस नाम का क्या अर्थ है ? मदालसा ने कहा—हे राजन् ! नामकरण तो केवल लोजाचार और नितान्त कल्पना है ।।३६।।

त्वत्कृतानातथानाम्नाश्रृणुभूपनिरर्थताम् ।
वदन्तिपुरुषा प्राज्ञाव्यापिनपुरुषसत ।।३७
क्रातिश्चगतिरुद्दिष्टादेशाद्देशातरन्तुया ।
सर्वगोनप्रयातीहव्यापोदेहेश्वरोयत ।।३८
ततोविक्रातसज्ञेय मताममनिरर्थिका ।
सुबाहुरितियासज्ञाकृतातस्यमुतस्यते ।।३९
निरर्थासाप्यमूर्त्तस्यपुरुषस्यमहीपते ।
पुत्रस्ययत्कृतनामतृतीयस्यारिमर्दन ।।४०
मन्येतन्नाप्यसम्बद्धश्रृणुवाप्यत्रकारणम् ।
एकएवशरीरेषुसर्वेषुपुरुषोयदा ।।४१
तदास्यराजन्क शत्रु कोवामित्रमिहेष्यते ।
भूतैर्भूतानिमर्द्यन्तेअमूर्त्तोमर्द्यते कथम् ।४२

नाम रखना है ऐसा समझ कर एक नाम रख लिया, वैसे आपने भी जिन नामो को रखा है, उनका भी कोई अर्थ नही है, क्यो कि पण्डितजन आत्मा को सर्वव्याप्त कहते है ॥३७॥ एक देशके अन्य देश मे जाने को क्रान्ति कहते है, आत्मा सर्वगत एव सर्वव्यापी होने से शरीर का ईश्वर है, उसकी गति सम्भव नही ॥३८॥ इसीलिये मे विक्रान्त नाम का कोई अर्थ नही समझती । हे राजन्! आत्मा तो स्वरूप रहित है, फिर दूसरे पुत्र के सुबाहु नाम का भी ॥३९॥ कोई अर्थ नही है और तृतीय पुत्र का अरिमर्दन नाम भी ॥४०॥ मै निरर्थक ही समझती हूँ, क्यो कि एक आत्मा ही सब शरीरो मे विद्यमान रहता है ॥४१॥ उसका शत्रु मित्र कोई नही हो सकता, भूत के द्वारा ही भूत का मर्दन होता है, परन्तु आकार हीन का मर्दन कैसे हो सकता है ? ॥४२॥

क्रोधादीनापृथरभग्भावात्कल्पनेयनिरर्थिका ।
यदिसव्यवहारार्थमसन्नामप्रकल्प्यते ॥४३
नाम्निकस्मादलर्काख्येनैरर्थ्यभवतोमतम् ।
एवमुक्तास्तयासाधुमहिष्यासमहीपतिः ॥४४
तथेत्याहमहाबुद्धिर्दयितातथ्यवादिनीम् ।
तचापिसासुतसुभ्रूर्यथापूर्वसुतास्तथा ॥४५
प्राहावबोधजननतामुवाचसपार्थिव ।
करोपिकिमिदमूढेममाभावायसन्तते ॥४६
दुष्टावबोधदानेनयथापूर्वसुतेषुमे ।
यदितेमत्प्रियकार्यमनुग्राह्यं वचोमम ॥४७
तदेन तनय मार्गप्रवत्त सन्नियोजय ।
कर्ममार्ग समुच्छेदनैवदेविगमिष्यति ॥४८
पितृपिडनिवृत्तिश्चनैवसाध्विभविष्यति ।
पितरोदेवलोकस्थास्तथातिर्यक्त्वमागता ॥४९
तद्वन्ममनुष्यतायाताभूतवर्गेषुयेस्थिताः ।
सपुण्यानसपुण्याश्चक्षुत्क्षामास्तृट्परिप्लुतान् ॥५०

क्रोध इत्यादि भाव भी आत्मा से पृथक् ही है, सब प्रकार निर्दोष आत्मा शत्रु का मर्दन नही कर सकता, यदि लोकाचार वश ही निरर्थक नाम की कल्पना की जाती है ।।४३।। तो मेरे द्वारा रखा गया अलर्क नाम किस प्रकार अर्थहीन है ? रानी के ऐसे वचन कहने पर महा बुद्धिमान् राजा ने ।।४४।। उस सत्यभाषिणी से कहा—तुम्हारा कथन सत्य है, तब मदालसा ने चौथे पुत्र को भी उन तीनो पुत्रो के समान ही ।।४५।। आत्मज्ञान देने लगी । इस प्रकार राजा ने कहा—तुम यह क्या कर रही हो ? क्या मेरी सन्तान को भावहीन करना चाहती हो ? ।।४६।। जैसे आत्मज्ञान देकर उन तीनो पुत्रो का अमगल किया है, क्या वैसा ही इसे करोगी ! यदि तुम मेरा प्रिय करना कर्त्तव्य मानती हो और मेरे वचन का पालन करना उचित समझती हो ।।४७।। तो इस पुत्र को प्रवृत्ति मार्ग मे प्रेरित करो, क्यो कि कर्म मे प्रवृत्त करने से कर्म मार्ग का नाश नही हो सकता ।।४८।। ऐसा करने से पिण्ड के लुप्त होने की आशका नही रहेगी, क्यो कि शुभा शुभ कर्म से स्वर्ग प्राप्ति या तिर्यग् योनि को प्राप्त पितरगण ।।४९।। नरत्व प्राप्त अथवा अन्य योनियो मे सक्रमण करते हुए क्षुधा पिपासा से अत्यस्त व्याकुल क्षीण होते है ।।५०।।

पिडोदकप्रदानेननर कर्मण्यवस्थित ।
सदाप्याययतेसुभ्रू स्तद्वद्देवातिथीनपि ।।५१।।
देवैर्मनुष्यै पितृभि प्रेतैर्भूतै सगुह्यकैः ।
वयोभि कृमिभि कीटैर्नरएवोपजीव्यते ।।५२
तस्मात्तन्वगिमेपुत्रयत्कार्यक्षत्रयोनिभिः ।
ऐहिकामुष्मिकायालन्तत्कर्मप्रतिपादय ।।५३
तेनैवमुक्तासासाध्वीवरनारीमदालसा ।
अलर्कनामतनय प्रोवाचोल्लापवादिनी ।।५४
पुत्रवर्द्ध स्वमेभर्त्तु र्मनोनन्दयकर्मभि ।
ऐहिकामुष्मिकफलन्तत्सम्यक्परिपालय ।
मित्राणामुपकारायदुर्हृ दानानाशनायच ।।५५

धन्योसिरेयोवसुधामशत्रुरेकश्चिरपालयितासिपुत्र ।
तत्पालनादिद्रमसोपभोग्यधर्म्मफलप्राप्स्यसिचामरत्वम् ।।५६

उस समय कर्म मार्ग के अवलम्बन से पिण्डोदक द्वारा उनका और उन्ही के समान देवताओ और अतिथियो का पूजन करते है ।।५१।। क्यो कि देवता, मनुष्य, पितर, प्रेत, भूत, गुह्यक, पक्षी, कृमि, कीटादि सभी मनुष्यो के आश्रय मे जीवन निर्वाह करते है ।।५१।। इसलिये हे तन्वङ्गी ! क्षत्रियोचित कर्त्तव्य और इहलोक परलोक के फल लाभ के लिये जो उचित है, वही शिक्षा इसे दो ।।५३।। पति की बात सुन कर मदालसा ने उस पुत्र को खिलाने के मिस कहा ।।५४।।हे पुत्र! तुम वृद्धि को प्राप्त होओ, मित्रो के उपकार और शत्रुओ के संहार कर्म द्वारा मेरे स्वामी के हृदय को आनन्दित करो ।।५५।। हे पुत्र ! तुम धन्य हो, क्यो कि तुम शत्रु रहित होकर दीर्घ काल तक वसुन्धरा का पालन करोगे, जिससे सभी लोको मे सुख का सञ्चार होगा और इस प्रकार परम धर्म सचय करके अमरत्व को प्राप्त होगे ।।५६।।

धरामरान्पर्वसुतर्पयेथा समीहितम्बन्धुषुपूरयेथा ।
हितपरस्मैहृदिचितयेथामन परस्त्रीषुनिवर्तयेथा ।।५७
सदामुरारिंहृदिचितयेथास्तद्ध्यानतोत षडरीञ्जयेथा ।
मायाप्रबोधेननिवारयेथाह्यनित्यतामेवविचिंतयेथा ।।५८
अर्थागमायक्षितिपाञ्जयेथायशोर्ज्जनायार्थमपिव्ययेथा ।
परापवादश्रवणाद्‌विभीथाविपत्समुद्राज्जनमुद्धरेथा ।।५९
यज्ञैरनेकैर्विबुधानजस्रमन्नैर्द्विजान्प्रीणयसंश्रिताश्च ।
स्त्रियश्चकामैरतुलैश्चिराय युद्धैश्चारीस्तोषयितासिवीर ।।६०
बालोमनोनन्दयबान्धवानागुरोस्तथाज्ञाकरणै कुमार ।
स्त्रीणायुवासत्कुलभूषणानावृद्धोवनेवत्सवनेचराणाम् ।।६१
राज्यकुर्वन्सुहृदोनन्दयेथा साधून्रक्षस्तातयज्ञैर्यजेथा ।
दुष्टान्निघ्नन्वैरिणश्चाजिमध्येगोविप्रार्थेवत्समृत्यु भजेथा ।।६२

तुम प्रत्येक पर्व दिन मे ब्राह्मणो की तृप्ति करो, बन्धुजनो का इच्छित करो और परहित साधन की इच्छा करते हुए, पर नारी मे मन मत लगाओ

।।५७।। सदा भगवान् का ध्यान करते हुए कामादि छै शत्रुओ को वश मे करो, ज्ञान के द्वारा माया को दूर करो और विश्व की अनित्यता का सदा ध्यान रखो ।।५८।। अर्थ प्राप्त करते हुए पाँच वस्तुओ को जीतो और यश के लिये व्यय करो, पर निन्दा से डरो, लोगो को उत्पत्ति सागर से उबारो ।।५९।। विभिन्न यज्ञानुष्ठानो से देवताओ को, निरन्तर दान से विप्रो को और आश्रितो को प्रसन्न करो, विभिन्न भोगो से स्त्रियो और युद्ध से शत्रुओ को सन्तुष्ट करो ।।६०।। बाल्यकाल मे बाँधवो का, कौमरावस्था मे आज्ञा पालन द्वारा माता-पिता का, युवावस्था मे स्त्री का और वृद्धावस्था मे वनवास पूर्वक वनचरो का उपकार करो ।।६१।। हे वत्स ! तुम राज्य मे प्रतिष्ठित हो कर सुहृदो को आनन्दित करोगे, यज्ञानुष्ठन, गौ, ब्राह्मण और साधुजन की रक्षा के लिये युद्ध मे शत्रुओ को जीत कर परलोक गमन करोगे ।।६२।।

२४–राजधर्म कथन

एवमुल्लाप्यमानस्तुसतुमात्रादिनेदिने ।
ववृधेवयसाबालोबुद्धचाचालर्कसज्ञित ।।१
सकौमारकमासाद्यऋतध्वजसुतस्तदा ।
कृतोपनयन प्राज्ञ·पणिपत्याहमातरम् ।।२।।

मयायदम्बकर्त्तव्यमैहिकामुष्मिकायवै ।
सुखायवदतत्सर्वप्रश्रयावनतस्यमे ।।३
ममार्थचैवधर्मार्थप्रजानाचैवयद्धितम् ।
श्रेयसेयच्चतत्सर्वप्रजारञ्जनमादितः ।।४

वत्सराज्याभिषिक्तेनप्रजारञ्जनमादित ।
कर्त्तव्यमविरोधेनस्वधर्मश्चमहीभृताम् ।।५
व्यसनानिपरित्यज्यसत्यमूलहराणिवै ।
आत्मारिपुभ्य.सरक्ष्योबहिर्मत्रविनिर्गमात् ।।६

दुष्टादुष्टाश्चजानीयादमात्यानरिदोपत ।
अष्टधानाशमाप्नोतिस्वचक्रात्स्यन्दनाद्यथा ।।७
तथाराजाप्यसन्दिग्धब्रहिर्मन्त्रविनिर्गमात् ।
चरैश्चरास्तथाशत्रोरन्वेष्टव्या प्रयत्नत ।।८

पुत्र बोला—माता मदालसा इस प्रकार पुत्र को नित्य प्रति उपदेश देने लगी और यह बालक बुद्धि तथा अवस्था मे वृद्धि को प्राप्त होने लगा ।।१।। कौमारावस्था प्राप्त होने पर अलर्क का यज्ञोपवीत हुआ तब उसने प्रणाम पूर्वक अपनी माता से कहा ।।२।। हे माता ! इहलोक और परलोक के सुख के लिये मुझे जिस प्रकार का कर्म करना चाहिये उसे विस्तार पूर्वक कहिये ।।३।। धर्म, अर्थ प्रजाहित, प्रजापालन से मोक्ष की प्राप्ति आदि का यथा योग्य वर्णन करो मदालसा ने कहा—हे पुत्र ! राज्याभिषेक होने पर धर्मानुसार प्रजा को सुखी करना ही राजा का प्रथम कर्त्तव्य है ।।४-५।। सत्य सहित, व्यसनो का त्याग करके, अपना मन्त्र बाहर न जाय इस प्रकार शत्रुओ का तिरस्कार करने के कार्य मे प्रवृत्त रह कर शत्रुओ से अपनी रक्षा करो ।।६।। शत्रुओ के मिलने से अमात्यगण की दुष्टता या स्वामिभक्ति को जाने तथा श्रेष्ठ पहिये वाले रथ से गिरने से जैसे आठ प्रकार का आघात होता है ।।७।। वैसे ही मन्त्रणा के फूटने पर राजा को प्राप्त होता है, राजा को इसका ज्ञान अवश्य करना चाहिये कि शत्रुओ ने किसी प्रकार अमात्यवर्ग को अपनी ओर तो नही मिलारखा है ।।८।।

विश्वासोनतुकर्तव्योराज्ञामित्राप्तबधुषु ।
कार्ययोगादमित्रेषुविश्वसीतनराधिप ।।९
स्थानवृद्धिक्षयज्ञेनपाड्गुण्यविदितात्मना ।
भवितव्यनरेन्द्रेणनकामवशप्रवर्तिना ।।१०
प्रागात्ममन्त्रिणश्चैवततोभृत्यामहीभृता ।
ज्ञयाश्चानतरपौराविरुध्येतततोरिभि ।।११
यस्त्वेतानविजित्यैववैरिणोविजिगीषते ।
सोजितात्माजितामात्य शत्रुवर्गेणबाध्यते ।।१२

तस्मात्कामादय पूर्वजेया पुत्रमहीभृता ।
तज्जयेहिजयोराज्ञोराजानश्यतितैर्जित ॥१३
काम क्रोधश्चलोभश्चमदोमानस्तथैवच ।
हर्षश्चशत्रवोह्येतेनाशायकुमहीभृताम् ॥१४

मित्र, आप्त या बन्धु किसी का भी विश्वास करना राजा को उचित नही, किन्तु समयान्तर देखकर शत्रु का भी विश्वास किया जा सकता है ॥९॥ राजा काम के वशीभूत न हो, स्थान वृद्धि और क्षय को सदा जाने तथा संधि, विग्रह आदि छ गुणो मे बुद्धि से काम ले ॥१०॥ प्रथम स्वय को, फिर अमात्यो को, भृत्यो को और प्रजाओ को वश मे करले तब शत्रुओ से विग्रह करे ॥११॥ जो पहिले आत्मा पर विजय प्राप्त किये बिना ही शत्रु को जीतने की इच्छा करे, वह राजा अमात्यगणो द्वारा वश मे कर लिया जाता है और शत्रुओ मे पराजित होता है ॥१२॥ हे वत्स ! इसीलिए सर्व प्रथम कामादि शत्रुओ पर विजय प्राप्त करे, उन्हे जीतने से सभी पर विजय मिलती है, जो राजा कामादि के वशीभूत होता है, वह नष्ट हो जाता है ॥१३॥ काम, क्रोध, लोभ, मद, मान और हर्ष यही शत्रु राजा के नाश के कारण है ॥१४॥

कामप्रसक्तमात्मानस्मृत्वापाडु निपातितम् ।
निवर्त्तयेत्तथाक्रोधादनुह्लादहतात्मजम् ॥१५
हतमैलतथालोभान्मदाद्वेनद्विजैर्हतम् ।
मानादनायुष पुत्रहतहर्षात्पुरजयम् ॥१६
एभिर्जितैर्जितसर्वंमरुत्तेनमहात्मना ।
स्मृत्वाविवर्जयेदेतान्षड्दोषाश्चमहीपति ॥१७
काककोकिलभृ गाणाबकव्यालशिखडिनाम् ।
हसकुक्कुटलोहानाशिक्षेतचरितनृप ॥१८
कौशिकस्याक्रियाकुर्याद्विपक्षेमनुजेश्वर ।
चेष्टापिपीलिकानाचकालेभूप प्रदर्शयेत् ॥१९
ज्ञेयाग्निविस्फुलिगानाबीजचेष्टाचशाल्मले ।
चद्रसूर्यस्वरूपचनीत्यर्थेपृथिवीक्षिता ॥२०

वधकीपद्मशरभशूलिकागुर्विणीस्तनात् ।
एवमाम्नाचभेदेनप्रदानेनचपार्थिव ॥२१

काम के वशीभूत होकर ही राजा पाण्डु नाश को प्राप्त हुए, क्रोध के वश मे होने से अनुह्लाद को पुत्र धन से वंचित रह जाना पडा ॥१५॥ लोभ के वशीभूत हुए ऐल नष्ट होगए, मद के वश मे पड कर बेन ब्राह्मणो द्वारा नष्ट हुए,अभिमान के कारण अनायु का पुत्र हत हुआ और हर्ष के कारण पुरञ्जय का मरण हुआ ॥१६॥ परन्तु राजा मरुत्त ने इन सभी शत्रुओ को जीत कर अखिल विश्व को वश मे कर लिया, इन सब बातो के स्मरण पूर्वक सभी दोषो का परित्याग करना चाहिए ॥१७॥ काक, कोकिल, भौरा, मृग, व्याल, मोर, हस, कुक्कुट और लोह से शिक्षा लेनी चाहिए ॥१८॥ शत्रु के प्रति उलूक जैसा कोई आडम्बर न करके शत्रुओ को नष्ट करे, क्योकि शत्रुओ के प्रति भी उचित व्यवहार करना चाहिये, पिपीलिका के समान यथा समय सञ्चय करे ॥१९॥ राजा को अग्नि की चिंगारी और शाल्मली बीज के समान व्यापक होने वाला होना चाहिए, वह सूर्य और चन्द्रमा के समान राजनीति के प्रयोग पूर्वक पृथिवी को देखने वाला हो ॥२०॥ व्यभिचारिणी, कमल, शरभ, शूलिका, गुर्विणीस्तन तथा गोपाङ्गना इन सबसे राजा शिक्षा ग्रहण करे ॥२१॥

दण्डेनचप्रकुर्वीतनीत्यर्थपृथिवीक्षिता ।
प्रज्ञानृपेणवादेयातथाचण्डालयोषितः ॥२२
शक्रार्कयमसोमानानद्वद्वायोर्महीपतिः ।
रूपाणिपचकुर्वीतमहीपालनकर्मणि ॥२३
यथेन्द्रश्चतुरोमासान्वार्योघेणवभूतलम् ।
आप्याययेत्तथालोकान्परिचारैर्महीपतिः ॥२४
मासानष्टौयथासूर्यस्तोयंहरतिरश्मिभि. ।
सूक्ष्मेणैवाभ्युपायेनतथाशुल्कादिनानृप ॥२५
यथायमःप्रियद्वेष्यौप्राप्तेकालेनियच्छति ।
तथाप्रियाप्रियेराजादुष्टादुष्टेसमोभवेत् ॥२६

पूर्णेंदुमालोक्ययथाप्रीतिमाञ्जायतेनर ।
एवयत्रप्रजा सर्वानिर्वृतास्तच्छशिव्रतम् ।।२७
मारुत सर्वभूतेषुनिगूडश्चरतेयथा ।
एवचरेन्नृपश्चारै पौरामात्यारिबधुषु ।।२८

नीति पूर्वक दण्ड से पृथिवी का पालन करे, चाण्डाल स्त्री से बुद्धि प्राप्त करे, क्योकि वह किसी प्रकार के व्यवहार से विमुख नहीं होती ।।२२।। इन्द्र, सूर्य, यम चन्द्रमा और वायु के अनुरूप आचरण करके पृथिवी का पालन करे ।।२३।। जैसे इन्द्र चार मास वृष्टि करके पृथिवी के प्राणियो को तृप्त करते है, वैसे ही राजा दानादि के द्वारा सबको प्रसन्न करे ।।२४।। जैसे किरणो के द्वारा सूर्य आठ मास जल का शोषण करते है, वैसे ही सूक्ष्म रीति से राजा कर आदि ले ।।२५।। जिस प्रकार यम काल आने पर प्रिय अथवा द्वेपी सभी को समान रूप से ग्रहण करते है वैसे ही राजा भी समदर्शी हो ।।२६।। पूर्ण चन्द्रमा को देखकर जैसे सब जीव प्रसन्न होते है, वैसे ही राजा के आचरण से प्रजा प्रसन्न रहे ऐसा प्रयत्न करे, जिस प्रकार वायु सब भूतो मे गुप्त रहकर विचरण करता है, वैसे ही गुप्त रीति से राजा भी अमात्य, बाँधव और प्रजाजन के चरित्रादि पर दृष्टि रखे ।।२८।।

नलोभार्थैर्नकामार्थैर्नार्थार्थैर्यस्यमानसम् ।
पदार्थैःकृष्यतेधर्मात्सराजास्वर्गमृच्छति ।।२९
उत्पथग्राहिणोमूढान्स्वधर्माच्चलितान्नरान् ।
यः करोतिनिजेधर्मेसराजास्वर्गमृच्छति ।।३०
वर्णधर्मानसीदतियस्यराष्ट्रेतथाश्रमाः ।
राज्ञस्तस्यसुखतातपरत्रेहचशाश्वतम् ।।३१
एतद्राज्ञ परकृत्यंतथैतद्वृद्धिकारणम् ।
स्वधर्मेस्थापननृणाचाल्यतेनकुबुद्धिभिः ।३२
पालनेनैवभूतानाकृतकृत्योमहीपतिः ।
सम्यक्पालयिताभागधर्मस्याप्नोतिवैयतः ।।३३

एवमाचरतेराजाचातुर्वर्ण्यस्यरक्षणम् ।
ससुखीविहरत्येपशक्रस्यैतिसलोकताम् ॥३४

जिस राजा का मन लोभ, अर्थ, काम अथवा अन्य किसी भी कारण से आकृष्ट नही होता, उमी को स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥२६॥ मूढ, कुमार्गी, धर्म से विचलित व्यक्तियो को स्वधर्म पर लाने वाला राजा अवश्य ही स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥३०॥ हे पुत्र ! जिसके राज्य मे वर्णाश्रम धर्म नाश को प्राप्त नही होते, वह राजा इहलोक-परलोक दोनो मे निरन्तर सुख भोगता है ॥३१॥ राजा का कर्त्तव्य है कि वह बुद्धिमानो के परामर्श से सदा कार्य करे और सभी को अपने-अपने धर्म मे लगाये रखे, इसी मे राजा की सिद्धि होती है ॥३२॥ जिस प्रकार प्रजा के भले प्रकार पालन करने से राजा कृतकृत्य होता है, वैसे ही उसको धर्मांश की भी प्राप्ति होती है ॥३३॥ इस प्रकार जो राजा चारो वर्णों की रक्षा मे नियम पूर्वक लगा रहता है, वह इहलोक मे अत्यन्त सुख पूर्वक विहार करता हुआ अन्त मे इन्द्र के सालोक्य को प्राप्त होता है ॥३४॥

२५—वर्णाश्रम धर्म कीर्तन

तन्मातुर्वचनश्रुत्वासोलर्कोमातरंपुन ।
पप्रच्छवर्णधर्मांश्चधर्मान्येचाश्रमेषुच ॥१
कथितोयमहाभागेराज्यतत्रश्रितस्त्वया ।
ममधर्मोहमिच्छामिश्रोतु वर्णाश्रमात्मकम् ॥२
दानमध्ययनयज्ञोब्राह्मणस्यत्रिधोदित ।
धर्मोनान्यश्चतुर्थोस्तिधर्मस्तस्यापद विना ॥३
याजनाध्योदनेशुद्धस्तथापुत्रप्रतिग्रह ।
एतत्सम्यक्समाख्यातत्रितयचास्यजीविका ॥४
दानमध्ययमयज्ञा क्षत्रियस्याप्ययत्रिधा ।
धर्मप्रोक्त क्षितेरक्षाशस्त्राजीवश्चजीविका ॥५

दानमध्ययनयज्ञोवैश्यस्यापित्रिधैवस ।
वाणिज्यपाशुपाल्यञ्चकृषिश्चैवास्यजीविका ॥६
दानयज्ञोथशुश्रूषाद्विजातीनात्रिधामया ।
व्याख्यात शूद्रधर्मोपिजीविकाकारुकर्मजा ॥७
तद्वद्द्विजानिशुश्रूषापोषणक्रयविक्रये ।
वर्णधर्मास्त्विमेप्रोक्ता श्रूयतामाश्रमाश्रया ॥८

पुत्र ने कहा—अलर्क जननी के इस प्रकार वचन सुनकर फिर वर्णधर्म और आश्रम धर्म का विषय पूँछने लगा ॥१॥ अलर्क ने कहा—हे महाभागे ! तुमने राज धर्म का तो वर्णन किया किन्तु अब मै वर्ण धर्म और आश्रम धर्म सुनने की इच्छा करता हू ॥२॥ मदालसा बोली, हे वत्स ! दान अध्ययन और यज्ञ यह तीन ब्राह्मण के धर्म है इनके अतिरिक्त चौथा धर्म और कुछ नही है अन्य धर्म उसके पक्ष मे आपत्ति मे है ॥३॥ शुद्धता पूर्वक यज्ञ कराना, अध्यापन और पवित्र भाव से प्रतिग्रह, यह तीन कर्म ही ब्राह्मणो की जीविका के साधन है ॥४॥ दान, यज्ञ और अध्ययन, यह तीन कर्म क्षत्रियो के कर्त्तव्य रूप है तथा पृथिवी पालन और शस्त्राभ्यास उनकी जीविका के साधन है ॥५॥ दान,अध्ययन और यज्ञ यह तीन धर्म वैश्यो के है तथा पशु-पालन, वाणिज्य और खेती यह उसकी जीविका के साधन है ॥६॥ शूद्र के कर्म दान, यज्ञ और तीनो जाति की सेवा करना, यह तीन है, तथा कारु कर्म ॥७॥ ब्राह्मण-सेवा, पशु-पालन और क्रय-विक्रय उनकी जीविका के साधन है, यह वर्णो का धर्म मैने कहा है, अब आश्रम धर्म श्रवण करो ॥८॥

स्ववर्णधर्मात्ससिद्धिनर प्राप्नोतिनच्युतः ।
प्रयातिनरकप्रेत्यप्रतिषिद्धनिषेवणात् ॥९
यावत्तुनोपनयनक्रियतेवैद्विजजन्मनः ।
कामचेष्टोक्तिभक्षस्तुतावद्भवतिपुत्रक ॥१०
कृतोपनयन सम्यग्ब्रह्मचारीगुरोर्गृहे ।
वसेततत्रधर्मोस्यकथ्यतेतन्निबोधमे ॥११

स्वाध्यायोथाग्निशुश्रूषास्नानभिक्षाटनतथा ।
गुर्गोनिवेद्यतच्चाद्यमनुज्ञातेनसर्वदा ।।१२
गुरो कर्मणिनोद्योग सम्यक्प्रीत्युपपादकः ।
तेनाहून पठेच्चैवतत्परोनान्यमानस ।।१३
एकद्वौसकलान्वापिवेदान्प्राप्यगुरोर्मुखात् ।
अनुज्ञातोवरादत्त्वादक्षिणागुरवेनन ।।१४

अपने–अपने धर्म का पालन करने मे ही सब सिद्धियो की प्राप्ति सभव है, दूसरी जाति वाले के धर्म पर चलने मे स्वधर्म की हानि होती है और नरक की प्राप्ति होती है ।।९।। हे व स ! द्विजातियो का जब तक उपनयन सस्कार न हो, तभी तक वे स्वेच्छा से व्यवहार, आहार और आलापादि मे प्रवृत्त हो सकते है ।।१०।। उपनयन सस्कार के सम्पन्न होने के पश्चात् ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक गुरु के पास रहे, उस समय जिस धर्म का आचरण करना चाहिये, उसे सुनो ।।११।। स्वाध्याय, अग्नि सुश्रूषा, स्नान, भिक्षाटन करके पहिले गुरु को भोजन करावे फिर उनकी आज्ञा से स्वय भोजन करे ।।१२।। गुरु के कार्य मे सदैव तत्पर रहना तथा उनके सन्तोष और आदेश के अनुसार कार्य करना तथा अनन्य चित्त से अध्ययन करना ब्रह्मचारी का परम कर्त्तव्य है ।।१३।। गुरु के मुख से एक, दो अथवा चारो वेदो को पढकर उनकी चरण-वन्दना करे और आज्ञा लेकर दक्षिणा दे ।।१४।।

गार्हस्थ्याश्रमकामस्तुगृहस्थाश्रममावसेत् ।
वानप्रस्थाश्रमवापिचतुर्थवेच्छयात्मन ।।१६
तथैववागुरार्गेहद्विजोनिष्ठामवाप्नुयात् ।
गुरोरभावेतत्पुत्रेतच्छिष्येतत्सुतविना ।।१७
शुश्रूषुर्निरभीमानोब्रह्मचर्याश्रमवसेत् ।
उपावृत्तस्ततस्तस्माद्गृहस्थाश्रमकाम्यया ।।१७
तनोऽनमानर्पिकुलातुल्याभार्यामरोगिणीम् ।
उद्वहेन्न्यायतोऽव्यगागृहस्थाश्रमकारणात् ।।१८

स्वकर्मणाधनलब्ध्वापितृदेवातिथीस्तथा ।
सम्यक्सप्रीणयेद्भक्त्यापोपयेच्चाश्रितास्तथा ।।१६
भृत्यात्मजाञ्जामयोयद्दीनार्थिपतितानपि ।
यथाशक्त्यच।न्नदानेनवयासिपशवस्तथा ।।२०
एपधर्मोगृहस्थस्यऋतावभिगमस्तथा ।
पचयज्ञविधानतुयथाशक्तिनहापयेत् ।।२१

इसके पश्चात् गृहस्थाश्रम मे प्रविष्ट होना चाहे तो विवाहादि कार्य करे, अन्यथा अपनी इच्छा के अनुसार वानप्रस्थ या चतुर्थाश्रम मे प्रवेश करे ।।१५।। अथवा नैष्ठिक ब्रह्मचारी होकर गुरु के घर पर ही रहे, गुरु न हो तो उनके पुत्र अथवा शिष्य के पास निवास करे ।।१६।। सदा सेवा-परायण रहे तथा अभिमान को पास न आने दे, इस प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे, अथवा गुरु के घर से निकल कर गृहस्थाश्रम की इच्छा करे तो ।।१७।। अपने अनुरूप कन्या देख-कर उसका पाणिग्रहण करे, वह कन्या समान गोत्र की, रोगी और विकलागी न हो ।।१८।। अपने विहित कर्म द्वारा न्याय पूर्वक धन का उपार्जन करे और भक्ति पूर्वक पितर, देवता और अतिथि को तृप्त करने का प्रयत्न करे तथा आश्रितो का भले प्रकार पालन करे ।।१९।। भृत्य, पुत्र, दीन, अन्धा, पतित आदि को अपनी शक्ति के अनुसार अन्नादि देकर उनका सदा पोषण करना चाहिये ।।२०।। स्त्री सहगमन केवल ऋतुकाल में ही करे, शक्ति के अनुसार पच यज्ञ करे, यह गृहस्थ का धर्म है ।।२१।।

पितृदेवा तिथिज्ञातिभुक्तशेषस्वयं नर ।
भु जीतचसमभृत्यैर्यथाविभवमात्मनः ।।२२
एषतूद्देशत प्रोक्तोगृहस्थस्याश्रमोमया ।
वानप्रस्थस्यधर्मतेकथयाम्यवधार्यताम् ।।२३
अपत्यसततिद्दष्ट्वाप्राज्ञोदेहस्यचानतिम् ।
वानप्रस्थाश्रमगच्छेदात्मन शुद्धिकारणात् ।।२४
तत्रारण्योपभोगश्चतपोभिश्चात्मकर्षणम् ।
भूमौशय्याब्रह्मचर्यपितृदेवातिथिक्रिया ।।२५

होमस्त्रिषवणस्नानजटावल्कलधारणम् ।
मौनादिकरणचैवनन्यस्नेहर्निषेवणम् ॥२६
इत्येपपापशुद्धचर्थमात्मनश्चोपकारक ।
वानप्रस्थाश्रमस्तमाद्भिक्षोस्तुचरमोपर ॥२७
चतुर्थयस्यस्वरूपतुश्रूयतामाश्रमस्यमत् ।
यश्चधर्मोस्यधर्मज्ञै प्रोक्तस्तातमहात्मभि ॥२८

यथा सामर्थ्य पितरो, देवताओ, अतिथियो और जाति वालो को भोजन कराने के पश्चात् भृत्यो के सहित स्वय उस बचे हुए अन्न का भोजन करे ।२२। यह गृहस्थाश्रम धर्म सक्षिप्त रूप मैंने कहा है, अब वानप्रस्थ धर्म को कहती हू, उसे सावधान चित्त से श्रवण करो ॥२३॥ बुद्धिमान् पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह धन सन्तानादि की सम्पन्नता और अपने शरीर की अवनति को देखकर आत्म शुद्धि के लिये वानप्रस्थाश्रम ग्रहण करे ॥२४॥ वहाँ फल, मूलादि का आहार करे और तपस्या का आचरण करके आत्मोत्कर्ष का सम्पादन करे, पृथिवी मे शयन, ब्रह्मचर्य–पालन तथा पितर, देवता और अतिथि की सेवा, ॥२५॥ हवन त्रिकाल सध्या मे स्नान, जटा–वल्कल का धारण, मौन, योगाभ्यास तथा स्नेह सेवन पूर्वक रहे ॥२६॥ इस प्रकार पाप के शोधन और आत्मा के उत्कर्ष के लिये वानप्रस्थाश्रम का अवलम्बन करे, इस आश्रम के पश्चात् भिक्षु नाम का एक अन्य चरम आश्रम है ॥२७॥ हे पुत्र ! इस चतुर्थाश्रम का जो स्वरूप धर्मज्ञाता महात्मा पुरुषो द्वारा निरूपित किया है,उसे कहती हूँ,श्रवण करो ॥२८॥

सर्वसगपरित्यागोब्रह्मचर्यमकोपता ।
जितेद्रियत्वमावासेनैकस्मिन्वसतिश्चिरम् ॥२९
अनारभस्तथाहारेभिक्षान्नचैककालिकम् ।
आत्मज्ञानावबोधश्चतथाचात्मावलोकनम् ॥३०
चतुर्थेत्वाश्रमेधर्मोमयायतेनिवेदित ।
सामान्यमन्यवर्णानामाश्रमाणाचमेश्रृणु ॥३१
सत्यशौचमहिसाचअनसूयातथाक्षमा ।
आनृशस्यमकार्पण्यसतोषश्चाष्टमोगुण ॥३२

एतेसक्षेपत प्रोक्ताधर्मावर्णाश्रमेषुच ।
एतेषुनित्यधर्मेषुनित्यतिष्ठेत्समतत ॥३३
सयातिब्रह्मलोकहियावदिद्राश्चतुर्दश ।
यश्चोल्लघ्यस्वकधर्मस्ववर्णाश्रमसज्ञितम् ॥३४
नरोन्यथाप्रवर्त्तेतसदडचोभूभृतोभवेत् ।
येचस्वधर्मसत्यागात्पापकुर्वतिमानवा ॥३५
उपेक्षतस्तान्नृपतेरिष्टापूर्तप्रयात्यध ।
तस्माद्राज्ञाप्रयत्नेनसर्ववर्णा स्वधर्मत ॥३६
प्रवर्त्यन्तेन्यथादडचा स्थाप्याश्चैवस्वकर्मसु ॥३७

सर्व सग का त्याग करे, क्रोध–रहित, इन्द्रिय सयम, ब्रह्मचर्य आदि के पालन पूर्वक भ्रमणशील रहे, बहुत दिनो तक एक स्थान मे न रहे ॥२९॥ कर्म का विसर्जन, भिक्षा मे प्राप्त अन्न का केवल एकबार भोजन, आत्मज्ञान की कामना और आत्म दर्शन यह सब चतुर्थाश्रमी को करना चाहिये ॥३०॥ चतुर्थाश्रम मे जो धर्मानुष्ठान कर्त्तव्य है, वह तुमसे कह दिया, अब अन्यान्य वर्णाश्रमो के साधारण धर्म को तुमसे कहती हू, उसे सुनो ॥३१॥ सत्य, शौच, अहिसा, अनसूया, क्षमा, आनृशस्य, अकृपणता और सन्तोष यह आठ गुण सभी वर्णाश्रमो का साधारण धर्म माना गया है ॥३२॥ इस प्रकार सम्पूर्ण वर्णाश्रम धम का मैने तुमसे सक्षिप्त वर्णन किया है, सभी को अपने–अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करना कर्त्तव्य है ॥३३॥ अपने धर्म मे दृढ रहने वाला मनुष्य तव तक ब्रह्मलोक मे निवास करता है, जब तक कि चौदह इन्द्रो का पतन नही होजाता और जो अपने वर्णाश्रम धर्म का उल्लघन करके ॥३४॥ अन्य के धर्म को ग्रहण करता है, वह राज–दण्ड का भागी होता है अथवा जो मनुष्य अपने धर्म को त्याग कर पाप–कर्म करता है ॥३५॥ उसे यदि राजा दण्ड नही देता तो वह राजा अपने इष्टापूर्त्त को नष्ट करता है, इसलिये राजा का कर्त्तव्य है कि वह सभी वर्णो को अपने–अपने धर्म मे स्थित करे ॥३६॥ और जो इसके विरुद्ध आचरण करे उसे दण्ड देकर अपने कर्म मे लगावे ॥३७॥

२६—गार्हस्थ्यधर्म-निरूपण

यत्कार्यपुरुषेणोहगार्हस्थ्यमनुवर्त्तता ।
वन्धश्चस्यादकरणेक्रियायायस्यचोच्छ्रिति ॥१
उपकारायमन्नृणायच्चवर्ज्यगृहेसताम् ।
यथाचक्रियतेतन्मेयथायत्पृच्छतोवद ॥२
वत्सगार्हस्थ्यमास्थायनर सर्वमिदजगत् ।
पुष्णानितेनलोकाश्चसजयत्यभिवाछितान् ॥३
पितरोमुनयोदेवाभूतानिमनुजास्तथा ।
कृमिकीटपतगाश्चवयासिपशवोऽसुरा ॥४
गृहस्थमुपजीवतिततस्तृप्तिप्रयातिच ।
मुखचास्यनिरीक्षतेअपिनोदास्यतीतिवै ॥५
सर्वस्याधारभूतेयवत्सधेनुस्त्रयीमयी ।
यस्याप्रतिष्ठितविश्वविश्वहेतुश्चयामता ॥६

अलर्क ने कहा—गृहस्थाश्रम मे रहने वाले पुरुष अपने जिस कर्त्तव्य को न करके बन्धन और कर्त्तव्य को करके मोक्ष को प्राप्त होना है ॥१॥ और जो मनुष्यो के उपकार का कारण तथा वर्जन के योग्य कर्त्तव्य है, वह सभी जानने को मै उत्कठित हूँ, मुझे विस्तार सहित वह सब विषय बताओ ॥२॥ मदालसा ने कहा—हे पुत्र ! गृहस्थाश्रम मे स्थित मनुष्य सभी प्राणियो का पालन करता है और उसी पुण्य के बल से उसे इच्छित लोको की प्राप्ति होती है ॥३॥ पितर, ऋषि, देवता, भूत, मनुष्य, कृमि, कीट, पतङ्ग, पक्षी, पशु, असुर यह सभी गृहस्थाश्रम से ही अपना जीवन-निर्वाह करते है, इसी आश्रम से उनकी तृप्ति होती है, क्योकि वे सब अन्न के लिये गृहस्थ के मुख को ताकते रहते है ॥४-५॥ हे पुत्र ! वेदमयी धेनु के रूप मे गृहस्थ ही सबका आश्रय स्थान है, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड इसी धेनु मे प्रतिष्ठित है, क्योकि यही धेनु ब्रह्माण्ड की कारण रूपा है ॥६॥

ऋकपृष्ठासौयजुर्मध्यासावक्त्रशिरोधरा ।
इष्टापूर्तविषाणाचसाधुसूक्ततनूरुहा ।।७
शातिपुष्टिशकृन्मूत्रा वर्णपादप्रतिष्ठिता ।
आजीव्यमानाजगतासाऽक्षयानापचीयते ।।८
स्वाहाकार स्वधाकारोवषट्कारश्चपुत्रक ।
हतकारस्तथैवान्यस्तस्या स्तनचतुष्टयम् ।।९
स्वाहाकारस्.ानदेवा पितरश्चस्वधामयम् ।
मुनयश्चवषट्कारदेवभूतसुरेतरा ।।१०
हतकारमनुष्याश्चपिवतिसततस्तनम् ।
एवमाप्याययत्येषादेवादीनखिलास्त्रयी ।।११
एतद्वत्सचतुष्कतुनरस्तनचतुष्टये ।
ननियुज्याद्यथाकालतेनस्युस्तेविमानिता ।।१२
देवादीनखिलान्येषुसतर्पयतिमानव ।
तेषामुच्छेदकर्त्ताय पुरुषोत्यतपापकृत् ।।१३

इस धेनु की पीठ ऋग्वेद, मध्य यजुर्वेद, मुख सामवेद और ग्रीवा इष्टापूर्त है, साधु सूक्त रोम ।।७।। शान्ति और पुष्टि कर्म उसका मलमूत्र तथा वर्णाश्रम ही प्रतिष्ठा है, यह धेनु कभी क्षीण नही होती, सम्पूर्ण विश्व को आश्रय रूप होकर जीवन धारण करती हुई भी यह धेनु कभी क्षय को प्राप्त नही होती ।।८।। इस धेनु के स्वाहाकार, स्वधाकार, वषट्कार, और हतकार यह चार स्तन है ।।९।। इन चार स्तनो मे देवता स्वाहाकार, पितर स्वधाकार, मुनि वषट्कार और इनसे इतर ।।१०।। मनुष्यगण हन्तकार रूप स्तन को पीते है, इस प्रकार हे वत्स ! यह धेनु ही सब की तृप्ति को सम्पादित करने वाली है ।।११।। इन चार स्तनों को यह चार योनि वाले पान करते है जो यथा समय नियुक्त न हो तो इस धेनु की अवमानता होती है ।।१२।। जिसके द्वारा मनुष्य-गण सब देवता इत्यादि की तृप्ति करने मे समर्थ होते है, उसके नष्ट करने मे प्रयत्नशील व्यक्ति महापापी होता है ।।१३।।

सतमस्यधतामिस्रे तमिस्रे चनिमज्जति ।
यस्त्वेतामानवोधेनु स्ववंत्सैरमरादिभि. ॥१४
प्रापयत्युचितेकालेसस्वर्गायोपपद्यते ।
तस्मात्पुत्रमनुष्येणदेवर्षिपितृमानवाः ॥१५
भूतानिचानुदिवसपोष्याणिस्वतनुर्यथा ।
तस्मात्स्नात शुचिर्भू त्वादेवर्षिपितृतर्पणम् ॥१६
प्रजापतेस्तथैवाद्भिःकालेकुर्यात्समाहित ।
सुमनोगधधूपैश्चदेवानभ्यर्च्यमानव ॥१७
ततोग्नेस्तर्पणकुर्याद्दद्याच्चबलिमित्यथ ।
ब्रह्मणेगृहमध्येतुविश्वे देवेभ्यएवच ॥१८
धन्वतरिसमुद्दिश्यप्रागुदीच्याबलिक्षिपेत् ।
प्राच्याशक्रायययाम्यायायमायबलिमाहरेत् ॥१९
प्रतीच्यावरुणायाथसामायोत्तरतोबलिम् ।
दद्याद्धात्रविधत्रेचबलिद्वारेगृहस्यच ॥२०
अर्यम्णेथबहिर्दद्याद्गृहेभ्यश्चसमतत ।
नक्त चरेभ्योभूतेभ्योबलि प्राकाशतोहरेत् ॥२१

तथा उसे अन्धतामिस्र और तामिस्र नामक नरको की प्राप्ति होती है, इस धेनु के वत्सो को जो मनुष्य यथा समय ॥१४॥ उपर्युक्त प्रकार से स्तन पान कराता है, वह देवलोकको जाता है, इसलिये अपनी यथाशक्ति देवता, ऋषि, पितर और मनुष्य ॥१५॥ तथा भूतो का पोषण करना चाहिये, इसलिये स्नान से पवित्र होकर सावधान चित्त से देवता, पितर, ऋषि ॥१६॥ और प्रजापति का उदकदान पूर्वक तर्पण करे तथा चन्दन, गध और धूपादि के द्वारा देवार्चन करे ॥१७॥ फिर अग्नि तर्पण करके बलि प्रदान करे, घर मे ब्रह्म और विश्वेदेवा को ॥१८॥ तथा धन्वन्तरि को पूर्व और उत्तर दिशा मे बलि दे, इन्द्र को पूर्व मे, यम को दक्षिण मे ॥१९॥ वरुण को पश्चिम मे और सोम को उत्तर मे बलि देनी चाहिये तथा गृहद्वार मे धाता और विधाता को बलि दे ॥२०॥ अर्यमा

को घर की बाहरी भाग मे सब ओर से बलि दे तथा निशाचर और भूतो के लिये आकाश मार्ग मे बलि दे ।।२१।।

पितृणानिर्वपेच्चैवदक्षिणाभिमुख स्थित ।
गृहस्थस्तत्परोभूत्वामुसमाहितमानस ।।२२
ततस्तोयमुपादायतेषामाचमनायवै ।
स्थानेषुनिक्षिपेत्प्राज्ञस्तास्ताउद्दिश्यदेवता ।।२३
एवगृहबलिकृत्वागृहेगृहपतिःशुचि ।
आप्ययनायभूतानाकुर्यादुत्सर्गमादरात् ।।२४
श्वभ्यश्चश्वपचेभ्यश्चवयोभ्यश्चावपेद्भुवि ।
वैश्वदेवहिनामैतत्सायप्रातरुदाहृतम् ।।२५
आचम्यचतत.कुर्यात्प्राज्ञोद्वारावलोकनम् ।
मुहूर्तस्याष्टमभागमुदीक्ष्योह्यातिथिर्भवेत् ।।२६
अतिथितत्रसप्राप्तमन्नाद्येनोदकेनच ।
सपूजयेद्यथाशक्तिगधपुष्पादिभिस्तथा ।।२७

पितरो के निमित्त बलि प्रदान करने के लिए गृहस्थ को दक्षिण की ओर मुख करके बैठना चाहिये, फिर सावधानी से एकाग्र चित्त होकर ।।२२।। आचमन के लिये जल लेकर उस-उस स्थान मे उस-उस देवता के निमित्त जल दे ।।२३।। गृहस्वामी इस प्रकार से बलि दे और पवित्र भ व से भूतो की तृप्ति के लिये आदर पूर्वक उत्सर्ग कार्य को सम्पन्न करे ।।२४।। श्वान, श्वपच और पक्षी के लिए भूमि मे बलि दे, यही वैश्वदेव बलि कही गई है, यह बलि प्रात: काल और सायकाल देने का विधान है ।।२५।। इस प्रकार गृहस्थ वैश्वदेव बलि देकर आचमन करे और फिर द्वार को देखे तथा मुहूर्त्त के आठवे भाग तक अतिथि की प्रतीक्षा करे ।।२६।। अतिथि के आगमन पर यथाशक्ति अन्न, जल, गध पुष्पादि से उसका सत्कार करे ।।२७।।

नमित्रमतिथिंकुर्यान्नैकग्रामनिवासिनम् ।
अज्ञातिकुलनामानतत्कालसमुपस्थितम् ।।२८

बुभुक्षुमागतश्रातयाचमानमकिचनम् ।
ब्राह्मणप्राहुरतिथिसपूज्य शक्तितो बुधै ॥२९
नपृच्छेद्गोत्रचरणस्वाध्यायचापिपण्डितः ।
शोभनाशोभनाकारतमन्येतप्रजापतिम् ॥३०
अनित्यहिस्थितोयस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ।
तस्मिस्तृप्ते नृयज्ञोत्थादृणान्मुच्येद्गृहाश्रमी ॥३१
तस्यादत्त्वातुयोभुक्ते स्वयकिल्बिषभुड्नरः ।
सपापकेवलभुक्ते पुरीषचान्धजन्मनि ॥३२
अतिथिर्यस्यभग्नाशोगृहात्प्रतिनिवर्तते ।
सदत्त्वादुष्कृततस्मैपुण्यमादायगच्छति ॥३३
अप्यबुशाकदानेनयच्चाप्यश्नातिसस्वयम् ।
पूजयेतनर शक्त्यातेनैवातिथिमादरात् ॥३४
कुर्याच्चाहरहःश्राद्धमन्नाद्येनोदकेनच ।
पितृनुद्दिश्यविप्राश्चभोजयेद्विप्रमेववा ॥३५

अपने मित्र अथवा ग्राम मे रहने वाले को अतिथि न माने, जो पुरुष उसी समय आया हुआ हो और जिमका कुल, गोत्र, नाम इत्यादि ज्ञात न हो ॥२८॥ और यथार्थ रूप से भोजन की इच्छा से आया हो, जिसके पास कुछ भी न हो, श्रम से थका हुआ हो, ऐसा ही ब्राह्मण अथिति कहा गया है, ऐसे ही अतिथि का यथाशक्ति पूजन करे ॥२९॥ बुद्धिमान् गृहस्थ उस अतिथि का गोत्र, वेद, स्वाध्याय आदि किसी भी विषय का प्रश्न न करे, वह सुन्दर या कुरूप जैसा भी हो, उसे साक्षात् प्रजापति स्वरूप ही समझे ॥३०॥ नित्य न रहने वाले को ही अतिथि की तृप्ति न करने पर गृहस्थ नृयज्ञ के ऋण से नही छूटता ॥३१॥ इसलिये जो गृहस्थ अतिथि को भोजन कराये बिना, स्वय ही भोजन कर लेता है वह पाप का भोगने वाला होता है, उसे अन्य जन्म मे भोजन के निमित्त विष्टा की प्राप्ति होती है ॥३२॥ जिसके गृहस्थ के घर से जो अतिथि विमुख लौटता है वह उस गृहस्थ के पुण्य को लेकर अपने पाप को उसे दे जाता है ॥३३॥

पूजन करे ।।३४।। नित्य प्रति अन्न जल आदि के द्वारा पितरो के निमित्त श्राद्ध करे और एक अथवा अनेक विद्वान् ब्राह्मणो को भोजन करावे ।।३५।।

अन्नस्याग्र तदुद्धृत्यब्राह्मणायोपपादयेत् ।
भिक्षाचयाचितादद्यात्परिव्राट्ब्रह्मचारिणाम् ।।३६
ग्रासप्रमाणाभिक्षास्यादग्र ग्रासचतुष्टयम् ।
अग्र चतुर्गुणप्राहुर्हतकारद्विजोत्तमा. ।।३७
भोजनहतकारवाअग्र भिक्षामथापिवा ।
अदत्त्वातुनभोक्तव्ययथाविभवमात्मन ।।३८
पूजयित्वातिथीनिष्टाञ्ज्ञातीन्बधू स्तथार्थिन ।
विकलान्बालवृद्धाश्चभोजयेच्चातुरास्तथा ।।३९
वाछतेक्षुत्परीतात्मायच्चान्योन्नमकिचनः ।
कुटु बिनाभोजनीय स्वसमविभवेसति ।।४०
श्रीमतज्ञातिमासाद्ययोज्ञातिरवसीदति ।
सीदतायत्कृततेनतत्पापससमश्नुते ।।४१
सायचैषविधिःकार्यं पूर्वोक्त तत्रचातिथिम् ।
पूजयेच्चयथाशक्तिशयनासनभोजनैः ।।४२

अन्न का अग्रभाग तोड कर ब्राह्मण को दे तथा परिव्राजक और ब्रह्मचारी के याचक होने पर उन्हे भीख दे ।।३६।। एक ग्रास को भिक्षा कहते है, चार ग्रास को अग्र और चार चतुष्टय अर्थात् सोलह ग्रास को हन्तकार कहा गया है ।।३७।। यथा वैभव हन्तकार अथवा अग्र और यह भी न बने तो भिक्षा अवश्य दे, इसके बिना कभी भोजन न करे ।।३८।। अतिथि का सत्कार करने के पश्चात् जाति बधु, याचक, विकल, बालक, वृद्ध और आतुर इनको भोजन करावे ।।३९।। अन्य कोई अकिंचन व्यक्ति भूखा हो तो उसके द्वारा याचना करने पर उसे भी भोजन दे अथवा जो कुछ बन पडे वही प्रदान करे ।।४०।। धनवान् होते हुए भी जिसकी जाति दु खित हो तो उस जाति का मनुष्य विवश होकर जो पाप करता है, उसका पापाश उस धनवान् को प्राप्त होता है ।।४१।। सध्या समय मे भी

इसी विधि को करे और सायकाल मे आने वाले अतिथि को यथाशक्ति आसन, शय्या और भोजनादि द्वारा उसे सतुष्ट करे ॥४२॥

एवमुद्वहतस्तातगार्हस्थ्यभारमास्थितम् ।
स्कधेविधातादेवाश्चपितरश्चमहर्षय ॥४३
श्रेयोभिवर्षिरण सर्वेभवत्यतिथिबाधवा ॥
पशुपक्षिमृगास्तृप्तायेचान्येसूक्ष्मकीटका ॥४४
गाथाश्चात्रमहाभागस्वयमत्रिरगायत ।
ता शृरगुध्वमहाभागगृहस्थाश्रममस्थिता ॥४५
देवान्पितॄश्चातिथीश्चतद्वत्सपूज्यबाधवान् ।
जामयश्चगुरू श्चैवगृहस्थोविभवेसति ॥४६
श्वभ्यश्चश्वपचेभ्यश्चवयोभ्यश्चावपेद्भुवि ।
वैश्वदेवहिनामैतत्कुर्यात्सायतथादिने ॥४७

हे पुत्र ! इस प्रकार गृहस्थ अपने कधे पर रखे हुए गार्हस्थ्य रूपी भार को वहन करके विधाता, देवता, पितर, महर्षि ॥४३॥ अतिथि, बाधव, पशु, पक्षी, कीटादि सभी को प्रसन्न करके अपना कल्याण-साधन करते है ॥४४॥ हे महाभाग उस विषय मे महर्षि अत्रि ने जो कथा गायी है, उस गृहस्थाश्रम वाली कथा को सुनो ॥४५॥ यदि धन हो तो देवता, पितर, अतिथि, बधु, जाति और गुरु का पूजन करके श्वान, श्वपच और पक्षियो के लिये पृथिवी मे अन्न प्रदान करे, इस वैश्वदेव नामक बलि कर्म को पूर्वाह्न और सायंकाल मे करे ॥४६-४७॥

२७---सदाचार वर्णन

एवपुत्रगृहस्थेनदेवता.पितरस्तथा ।
सपूज्यहव्यकव्याभ्यामन्नेनातिथिबाधवा: ॥१
भूतानिभृत्याविकला पशुपक्षिपिपीलिका· ।
भिक्षवोयाचमानास्तुयेचान्येवसतागृहे ॥२

सदाचारवतातातसाधुनागृहमेधिना ।
पापभु क्त समुल्लघ्यनित्यनैमित्तिकी क्रिया ॥३
सदाचारमहश्रोतुमिच्छामिकुलनदिनि ॥४
यकुर्वन्सुखमाप्नोतिपरत्रेहचमानव ॥५
गृहस्थेनसदा कार्यमाचारपरिपालनम् ।
नह्याचारविहीनस्यसुखमत्रपरत्रवा ॥६
यज्ञदानतपासीहपुरुषस्यनभूतये ।
भवतिय सदाचारसमुल्लघ्यप्रवर्त्तते ॥७

मदालसा ने कहा—हे पुत्र ! गृहस्थ को सदाचार परायण हो कर हव्य, कव्य और अन्नदान करते हुए पितर, देवता, अतिथि और बाधवो का पूजन करने वाला होना चाहिए ॥१॥ इनके अतिरिक्त भूत, भृत्य, पशु, पक्षी, पिपीलिका, भिक्षुक, याचक या पर, अपर जो कोई भी जैसी प्रार्थना करे ॥२॥ उन-उन का वैसे ही सत्कार करे, गृहस्थी यदि नित्य नैमित्तिकी क्रिया का उल्लघन करे तो उसे पाप-भागी होना पडता है ॥३॥ अलर्क बोला—हे माता ! तुमने मुझसे नित्य नैमित्तिक आदि पुरुषोचित कर्म-विषय का यथा प्रकार वर्णन किया ॥४॥ जिसके अनुष्ठान से मनुष्य इहलोक और परलोक दोनो मे सुखी होता है, उसी सदाचार को सुनने की मेरी इच्छा हुई है ॥५॥ मदालसा ने कहा—गृहस्थ को सदैव ही सदाचार का पालन करना चाहिये, आचारहीन पुरुष को लोक मे कभी भी सुख नही मिल सकता, जो पुरुष सदाचार को छोड कर ससार मार्ग मे प्रवृत्त होता है, उसके द्वारा किये हुए यज्ञ, दान और तपस्या आदि सभी अमगलजनक होते है ॥६-७॥

दुराचारोहिपुरुषोनेहायुर्विदतेमहत् ।
कार्योयत्नःसदाचारोआचारोहंत्यलक्षणम् ॥८
तस्यस्वरूपवक्ष्यामिसदाचारस्यपुत्रक ।
समाहितमना श्रुत्वातथैवपरिपालय ॥९
त्रिवर्गसाधनेयत्नःकर्त्तव्योगृहमेधिना ।
तत्ससिद्धौगृहस्थस्यसिद्धिरत्रपरत्रच ॥१०

पादेनार्थस्यपारत्र्यंकुर्यात्सिचयमात्मवान् ।
अर्धेनचात्मभरणनित्यनैमित्तिकान्वितम् ॥११
पादचात्मार्थमायस्यमूलभूतविवर्द्धयेत् ।
एवमाचरत पुत्रअर्थं साफल्यमृच्छति ॥१२
तद्वत्पापनिषेधार्थं धर्मं कार्योविपश्चिता ।
परत्रार्थं तथाचान्य काम्योत्रैवफलप्रद ॥१३

दुराचार मे प्रवृत्त मनुष्य दीर्घजीवी कदापि नही हो सकता, इस लिये सदाचार मे ही प्रवृत्त होवे, सदाचार से बुरे लक्षण नष्ट हो जाते है ॥८॥ अब मैं उस सदाचार के स्वरूप को कहती हू तुम उसे एकाग्र चित्त से सुनो और तदनुरूप कार्य करो ॥९॥ गृहस्थ को त्रिवर्ग साधन मे प्रवृत्त होना चाहिये, त्रिवर्ग के सिद्ध होने पर उसे इहलोक और परलोक दोनो की सिद्धि होती है ॥१०॥ गृहस्थ को उपार्जन किये हुए धन का चतुर्थ भाग धर्म के लिये सञ्चित करना चाहिये, आधे भाग से अपना पोषण और नित्य नैमित्तिक कार्य करे ॥११ और शेष भाग की मूल धन के रूप मे वृद्धि करे, इस प्रकार के आचरण से ही सफलता है ॥१२॥ धन के उपार्जन मे जैसा आचरण करे, वैसा पाप को नष्ट करने के लिये धन सञ्चय करने मे करे,धर्म काम्य और निष्काम भाव से दो प्रकार का है—काम्य इहलोक मे फल-प्रकाश करता है और निष्काम परलोक मे फल देता है ॥१३॥

प्रत्यवायभयात्कामस्तथान्यश्चाविरोधवान् ।
द्विधाकामोनिगदितस्त्रिवर्गोस्यविरोधत ॥१४
परस्परानुबधांश्चसर्वानेतान्विचितयेत् ।
विपरीतानुबधाश्चधर्मादीस्ताञ्छृणुष्वमे ॥१५
धर्मोधर्मानुबधार्थोधर्मोनात्मार्थबाधक ।
उभाभ्याचद्विधाकामस्तेनतौचद्विधापुन ॥१६
ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येतधर्मार्थौचानुचितयेत् ।
कायक्लेशांश्चतन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेवच ॥१७

उत्थायावश्यकंकृत्वाकृतशौच समाहित. ।
समुत्थायतथाचम्यप्राङ्मुखोनियत:शुचि ॥१८

पूर्वासिध्यासनक्षत्रापश्चिमासदिवाकराम् ।
उपासीतयथान्यायनैनाजह्यादनापदि ॥१९

असत्प्रलापमनृतवाक्पारुष्यचवर्जयेत् ।
असच्छास्त्रमसद्वादमसत्सेवांचपुत्रक ॥२०

सायप्रातस्तथाहोमकुर्वीतनियतात्मवान् ।
नोदयास्तमयेबिबमुदीक्षेतविवस्वतः ॥२१

विघ्न तथा व्यय के होने से काम्य और निष्काम दोनो धर्मों को करे, त्रिवर्ग भेद से काम्य भी दो प्रकार का है ॥१४॥ धर्म, अर्थ और काम यह त्रिवर्ग परस्पर बँधे हुए है, वैसे ही उन्हे परस्पर बधन-रहित भी समझे, अब मैं इनके अनुबन्धादि का वर्णन करती हूँ ॥१५॥ धर्म तथा धर्म के अनुबन्ध के लिये वह धर्म आत्मा को बाधा नही पहुचाता, जैसे काम दो प्रकार का है, वैसे ही काम के द्वारा धर्म और अर्थ को भी दो भागो मे विभक्त समझो ॥१६॥ ब्राह्ममुहूर्त्त मे उठ कर गृहस्थ को धर्म, अर्थ, कायक्लेश और वेदतत्त्वार्थ का चिन्तन करना चाहिये ॥१७॥ फिर शय्या से उठ कर आचमन करे और नियत तथा पवित्र भाव से पूर्वाभिमुख बैठे ॥१८॥ और नक्षत्र के स्थित रहते हुए ही सध्या करे, इसी प्रकार सायकालीन सध्या भी सूर्य के स्थित रहते मे ही करे, आपत्तिकाल को छोड कर नित्य सध्योपासन विधि सहित करना चाहिये ॥१९॥ असत्, मिथ्या और कठोर वचनो का त्याग करे तथा असत् शास्त्र, असत् वाद और असत् सेवा का भी परित्याग कर दे ।२०॥ नियतात्मा हो कर प्रात सायं हवन करे, सूर्य के उदय और अस्तकाल मे सूर्य बिम्ब को न देखे ॥२१॥

केशप्रसाधनादर्शदर्शनदतधावनम् ।
पूर्वाह्णएवकुर्वीतदेवतानाचतर्पणम् ॥२२

ग्रामावसथतीर्थानांक्षेत्राणांचैववर्त्मनि ।
नमूत्रमनुतिष्ठेतनकृष्टेनचगोव्रजे ॥२३

नग्नापरस्त्रियनेक्षेन्नपश्येदात्मनःशकृत् ।
उदक्यादर्शनस्पर्शोवर्ज्यसम्भापरणतथा ।।२४
नाप्सुमूत्रपुरीषवानिष्ठीवनसमाचरेत् ।
नाधितिष्ठेच्छकृन्मूत्रकेशभस्मकपालिका ।।२५
तुपागारास्थिचूर्णानिरजोवस्त्राणिकानिचित् ।
नाधितिष्ठेत्तथाप्राज्ञा पथिपत्राणिवाभुवि ।।२६
पितृदेवमनुष्याणाभूतानाचतथार्चनम् ।
कृत्वाविभवत पश्चाद्गृहस्थोभोक्तुमर्हति ।।२७
उदङ्मुख प्राङ्मुखोवास्वाचातोवाग्मत शुचि ।
भुञ्जीतान्न चतच्चित्तोह्यन्तर्जानु सदानर ।।२८

केशविन्यास, दन्तधावन, दर्पण मे सम्मुख दर्शन और देव तर्पण कार्य पूर्वाह्न मे करे ।।२२।। ग्राम, निवास, तीर्थ, क्षेत्र, मार्ग जुता खेत गौओ के स्थान मे मल मूत्र का त्याग न करे ।।२३।। पर नारी को नगी न देखे, अपने मल को भी न देखे, ऋतुमती स्त्री का देखना, स्पर्श करना या उससे वार्त्तालाप करना अनुचित है ।।२४।। जल मे मल-मूत्र का त्याग और मैथुन कर्म न करे, मल-मूत्र बाल, भस्म, कपाल तुष, अगार, अस्थि, रजी, वस्त्रादि मार्ग की मिट्टी के ऊपर कभी न बैठे ।।२५-२६।। अपने वित्तानुसार सर्व प्रथम पितर, देवता, मनुष्य, भूत आदि का पूजन कर फिर स्वय भोजन करे ।।२७।। आचमन के अन्त मे वाणी सयम, पवित्रता और अन्तर्जानु से पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठ कर एकाग्र चित्त से भोजन करे ।।२८।।

उपघातमृतेदोषनात्रस्योदीरयेद्बुध ।
प्रत्यक्षलवणवर्जमन्नमत्युष्णमेवच ।।२९
नगच्छन्नैवतिष्ठन्वैविण्मूत्रोत्सर्गमाचरेन् ।
कुर्वीतनैवचाचामेन्नकिंचिदपिभक्षयेत् ।।३०
उच्छिष्टोनालपेत्किंचित्स्वाध्यायचविवर्जयेत् ।
गात्राह्मणतथाचाग्निस्वमूर्धानचनस्पृशेत् ।।३१

नचपश्येद्रविनेन्दु ननक्षत्राणिकामत ।
भिन्नासनतथाशय्याभाजनचविवर्जयेत् ।।३२
गुरूणामासनदेयमभ्युत्थानादिसत्कृतम् ।
अनुकूलतथालापमभिवादनपूर्वकम् ।।३३
तथानुगनकुर्यात्प्रतिकूलनसलपेत् ।
नैकवस्त्रश्चभुञ्जीतनकुर्याद्देवतार्चनम् ।।३४
नागर्हयेद्विजान्नाग्नौमेहकुर्वीतबुद्धिमान् ।
नस्नायीतनरोनग्नोनशयीतकदाचन ।।३५

किसी प्रकार का अनिष्ट या उत्तेजन करने वाले व्यक्ति के दोषो को न खोले, अधिक नमक या अत्यन्त गरम अन्न का भोजन न करे ।।२९।। चलते हुए या बैठे हुए मल-मूत्र का त्याग न करे, आचमन करके फिर किंचित् भी अन्न न खाय ।।३०।। उच्छिष्ट देह से किसी से बात न करे तथा इस अवस्था मे वेदाध्ययन न करे, तथा गौ, ब्राह्मण, अग्नि और अपने मस्तक का स्पर्श न करे ।।३१।। उच्छिष्ट देह से सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र का दर्शन भी स्वेच्छा से न करे, टूटे आसन, टूटी शय्या और टूटे पात्र को त्याग दे ।।३२।। गुरु को देख कर उठ कर खडे होने इत्यादि से सत्कार पूर्वक आसन दे और प्रणाम करके अनुकूल वार्त्तालाप करे ।।३३।। उनके गमन समय उनके पीछे चले, प्रतिकूल वचन न कहे, एक ही वस्त्र से भोजन और देव पूजन न करे ।।३४।। द्विजाति की निन्दा न करे अग्नि मे मूत्रादि न छोडे, नग्न हो कर स्नान अथवा शयन न करे ।।३५।।

नपाणिभ्यामुभाभ्याचकण्डूयेतशिरस्तथा ।
नचाभीक्ष्णशिर स्नानकार्यनिष्कारणनरै ।।३६
शिर.स्नातश्चतैलेननाङ्गङ्किञ्चिदपिस्पृशेत् ।
अनध्यायेषुसर्वेषुस्वाध्यायचविवर्जयेत् ।।३७
ब्राह्मणानलगोसूर्यान्नमेहेतकदाचन ।
उदङ्मुखोदिवारात्रावुत्सर्गदक्षिणामुख ।।३८

आबाधासुयकथाकामकुर्यान्मूत्रपुरीषयो ।
दुष्कृतनगुरोर्ब्रूयात्क्रुद्ध चैनप्रसादयेत् ।।३६

परीवादनश्वरगुयादन्येषामपिकुर्वताम् ।
पन्थादेयोब्राह्मरगानाराज्ञोदु खातुरस्यच ।।४०

विद्याधिकस्यगुर्विण्याभारार्त्तस्ययवीयस ।
मूकान्धबधिरारगाचमत्तस्योन्मत्तकस्यच ।।४१

पु श्चल्याकृतवैरस्यवालस्यपतितस्यच ।
देवालयचैत्यतरु तथैवचचतुष्पथम् ।।४२

विद्याधिकगुरु चैववुध कुर्यात्प्रदक्षिरगम् ।
उपानद्वस्त्रमाल्यादिधृतमन्यैर्नधारयेत् ।।४३

दोनो हाथो से मस्तक न खुजावे, अकाररग स्नान तथा सदैव शिर से स्नान न करे ।।३६।। शिर से स्नान करने के अन्त मे किसी अङ्ग मे तेल न लगावे, अनध्याय के दिनो से वेदाध्ययन को न करे ।।३७।। गौ, ब्राह्मरग, सूर्य और अग्नि के सामने मल-मूत्र का त्याग न करे,दिन मे उत्तर की ओर मुख कर के तथा रात्रि मे दक्षिरग की ओर मुख करके ।।३८।। निर्विघ्न स्नान मल मूत्र का त्याग करे, गुरु के दुष्कर्म को किसी प्रकार प्रकट न करे तथा उनके कुपित होने पर उन्हे प्रसन्न करे ।।३९।। यदि कोई अन्य उनकी मिथ्या निन्दा करे तो उसे न सुने, ब्राह्मरग, राजा, दु ख से आतुर ।।४०।। अपने से विद्वान्, गर्भिरगी नारी, भयातुर, युवक, गू गा, अन्धा, बहिरा, मत्त, उन्मत्त ।।४१।। पु श्चली, बैरी, बालक और पतित इनको मार्ग दे, देवालय, चैत्य, चौराहा ।।४२।। अपने से अधिक विद्या वाला, गुरु, देवता तथा बुद्धिमान् की परिक्रमा करे, किसी के पहिने हुए जूता, वस्त्र और माला आदि को धारग न करे ।।४३।।

उपवीतमलकारकरकचैववर्जयेत् ।
प्रशस्तानिचकर्मारिगकुर्वारगादीर्घजीविन ।।४४

चतुर्दश्यातथाष्टम्यापञ्चदश्याचपर्वसु ।
तैलाभ्यङ्ग तथाभोगयोषितश्चविवर्जयेत् ।।४५

नक्षिप्तपादजङ्घश्चप्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन ।
नचापिविक्षिपेत्पादौपादपादेननाक्रमेत् ॥४६
मर्माभिघातमाक्रोशपैशुन्यचविवर्जयेत् ।
दम्भाभिमानतैक्ष्ण्यानिनकुर्वीतविचक्षरण ॥४७
मूर्खोन्मत्तव्यसनिनोविरूपान्मायिनस्तथा ।
न्यूनाङ्गाश्चाधिकाङ्गाश्चनोपहासे नदूषयेत् ।
परस्यदण्ड नोद्यच्छेच्छिक्षार्थपुत्रशिष्ययो ॥४८
तद्वन्नोपविशेत्प्राज्ञपादेनाक्रम्यचासनम् ॥४९

दूसरे का पहिना हुआ जनेऊ, विभूषण और कमण्डलु ग्रहण न करे, जो प्रशस्त कर्म करता है, वही दीर्घजीवी होता है ॥४४॥ चौदश, पद्रस, अष्टमी और पर्व दिवस मे तेल न मले तथा स्त्री सङ्ग भी न करे ॥४५॥ पैर या जाँघ फैला कर न बैठे, पैर पर पैर मारना और लात मारना भी अनुचित है ॥४६॥ किसी के मर्म को व्यथित न करे, किमी को न कोसे, चुगली न करे, दभ, अभिमान और तीखे व्यवहार को छोड दे ॥४७॥ मूर्ख, उत्मत्त, दु खी आपद्ग्रस्त, विरूप, मायावी, अङ्गहीन अथवा अधिकाङ्ग को हँसी उडाकर न छेडे, दूसरे के प्रति दड का प्रयोग न करे, परन्तु पुत्र या शिष्य को उपदेश देने के लिए आवश्यक हो तो दड का प्रयोग करे ॥४८॥ पाँवो से आक्रमण करता हुआ आसन पर न बैठे, केवल उदर पूर्ति के लिये भोजन करे ॥४९॥

सायप्रातश्चभोक्तव्यकृत्वाचातिथिपूजनम् ।
उदङ्मुख प्राङ्मुखोवावाग्यतोदन्तधावनम् ॥५०
कुर्वीतसततवत्सवर्जयेद्वर्ज्यवीरुध. ।
नोदक्छिरा स्वपेज्जातुनचप्रत्यक्छिरानर ॥५१
शिरस्यगस्त्यमास्थायशयीताथपुरन्दरम् ।
नतुगन्धवतीष्वप्सुस्नायीतनतथानिशि ॥५२
उपरागेपरस्नानमृतेदिनमुदाहृतम् ।
अपमृज्यान्नचास्नातोगात्राण्यम्बरपाणिभि. ५३

नचापिधूनयेत्केशान्वाससीनचधूनयेत् ।
नानुलेपनमादद्यादस्नात कर्हिचिद्बुध ।।५४
नचापिरक्तवासा स्याच्चित्रासितधरोऽपिवा ।
नचकुर्याद्विपर्यासवाससोर्नापिभूषणे ।।५५

प्रात साय अतिथि का पूजन करके स्वय भोजन करे तथा वाणी को रोककर पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठ कर दाँतुन करे ।।५०।। वर्जित काष्ठादि का दाँतुन मे प्रयोग न करे,उत्तर अथवा पश्चिम को शिर करके न सोवे ।।५१।। दक्षिण या पूर्व की ओर शिर करके सोवे, दुर्गंधित जल अथवा रात्रि के समय स्नान न करे ।।५२।। रात्रि स्नान ग्रहण काल मे ही करे, स्नान के पश्चात् वस्त्र या हाथ से शरीर का मार्जन न करे ।।५३।। गीले केश या गीले वस्त्र को न फटकारे, विना स्नान किये चन्दनादि धारण न करे ।।५४।। लाल, काले या चित्रित वस्त्र न पहिने, उत्तरीय वस्त्र या भूषण आदि को विपरीत ढङ्ग से न पहिने ।।५५।।

वर्ज्यचविदशवस्त्रमत्यन्तोपहतचयत् ।
केशकीटावपन्नचक्षुण्णाश्वभिरवेक्षितम् ।।५६
अवलीढावपन्नचसारोद्धरणादूषितम् ।।५७
नभक्षयीतसततप्रत्यक्षलवणानिज ।
वर्ज्यचिरोषितपुत्रभक्तपर्युषितचयत् ।।५८
पिष्टशाकेक्षुपयसाविकारानृपनदन्न ।।५९
उदयास्तमनेभानो शयनचविवर्जयेत् ।
नास्नातोनैवसविष्टोनचैवान्यमनानर ।।६०
नचैवशयनेनोर्व्यामुपविष्टोनशब्दवत् ।
नचैकवस्त्रोनवदन्प्रेक्षतामप्रदायच ।।६१
भु जीतपुरुषस्नातःमायप्रातर्यथाविधि ।
परदारानगन्तव्या पुरुषेणविपश्चिता ।।५२
इष्टापूर्त्तायुषाहन्त्रीपरदारगतिर्नृ णाम् ।
नहीदृशमनायुष्यलोकेकिचनविद्यते ।।६३

याद्दशपुरुषस्येहपरदाराभिमर्शनम् ।
देवार्चनाग्निकार्याणितथागुर्वभिवादनम् ॥६४

दशाशून्य, जीर्ण एव छिन्न वस्त्रो का सर्वथा त्याग करे, बाल या कीडे से युक्त, श्वान द्वारा देखा हुआ ॥५६॥ अथवा चाटा हुआ या सार निकाला हुआ दूषित अन्न ॥५७॥ तथा प्रत्यक्ष रूप से नमक कभी न खाय, बहुत दिनो का रखा हुआ अथवा बासी अन्न का भी भोजन न करे ॥५८॥ हे पुत्र ! पिट्ठी, शाक,ईख और दूध के विकार को त्याग दे ॥५९॥ सूर्योदय या सूर्यास्त के समय न सोवे अथवा दूसरी ओर मन लगा कर भी शयन न करे ॥६०॥ शय्या मे या मृत्तिका मे 'हा' कहकर न बैठे, उत्तरीय उतार कर एक वस्त्र से भोजन न करे, बात करते हुए भी भोजन न करे, जो सामने बैठा हो उसे खिलाये बिना स्वय न खाय ॥६१॥ प्रात साय विधि सहित स्नान करके ही भोजन करे, परनारी गमन कभी न करे ॥६२॥ क्योकि परनारी गमन से इष्टापूर्त्त नष्ट होता है और दीर्घायु का ह्रास होता है, इस लोक मे इस पाप के समान अन्य कोई पाप नही है, देव-पूजन, अग्नि कार्य और गुरुजनो को प्रणाम सदा कर्त्तव्य है ॥६३-६४॥

कुर्वीतसम्यगाचम्यतद्वदन्नभुजिक्रियाम् ।
अफेनाभिरगन्धाभिरद्भिरच्छाभिरादरात् ॥६५
आचामेत्पुत्रपुण्याभि प्राङ्मुखोऽप्युदङ्मुख ।
अन्तर्जलादावसथाद्वल्मीकान्मूषिकस्थलात् ॥६६
कृतशौचावशिष्टाच्चवर्जयेत्पञ्चवैमृद ।
प्रक्षाल्यहस्तौपादौचसमभ्युक्ष्यसमाहितः ॥६७
अन्तर्जानुस्तथाचामेत्त्रिश्चतुर्वापिवेदप ।
परिमृज्यद्विरास्यान्तखानिमूर्धानमेवच ॥६८
सम्यगाचम्यतोयेनक्रियाकुर्वीतवैशुचि ।
देवतानामृषीणाचपितृणाचैवयत्नत ॥६९
समाहितमनाभूत्वाकुर्वीतसततनर ।
क्षुत्वानिष्ठीव्यवासश्चपरिधायाचमेद्बुध ॥७०

भले प्रकार आचमन करके अन्न भोजन कार्य को सम्पूर्ण करे। फेन-

रहित, गन्ध-रहित, स्वच्छ और पवित्र जल लेकर ।।६५।। पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर आचमन करे, जल के भीतर की, निवास गृह की, बाँबी की चूहे के बिल की ।।६६।। तथा शौच क्रिया से बची हुई मिट्टी को न ले, एक ग्र मन से हाथ-पाँव धोकर शौच करे ।।६७।। दोनो जानु समेट कर बैठे तीन-चार बार जलपान सहित आचमन करे, दो बार मुख के इधर-उधर तथा मुख मे, दो बार मस्तक और इन्द्रिय द्वार को माँजते हुए ।।६८।। भले प्रकार आचमन करके क्रिया का अनुष्ठान करे तथा सदैव एकाग्र मन से देव, ऋषि और पितरो का ।।६९।। कार्य करे, हिचकी या खखार के पश्चात् आचमन करना चाहिये और वस्त्र पहिनने के पश्चात् भी आचमन करना उचित है ।।७०।।

क्षुतेऽवलीढेवान्तेचतथानिष्ठीवनादिषु ।
कुर्यादाचमनस्पर्शगोपृष्ठस्यार्कदर्शनम् ।।७१
कुर्वीतालम्बनचापिदक्षिणश्रवणस्यवै ।
यथाविभवतोह्य नत्पूर्वाभावेतत परम् ।।७२
अविद्यमानेपूर्वोक्तेउत्तरप्राप्तिरिष्यते ।
नकुर्याद्दन्तसघर्पनात्मनोदेहताडनम् ।।७३
स्वप्नाध्यापनभोज्यानिस्वाध्यायचविवर्जयेत् ।
सन्ध्यायामैथुनचापितथाप्रस्थानमेवच ।।७४
पूर्वाह्णेतातदेवानामनुष्याणाचमध्यमे ।
भक्त्यातथापरोह्णेचकुर्वीतपितृपूजनम् ।।७५
शिर स्नातश्चकुर्वीतदैवपैत्र्यमथापिवा ।
प्राङ्मुखोदङ्मुखोवापिश्मश्रुकर्म चकारयेत् ।।७६
व्यङ्गाविवर्जयेत्कन्यामकुलाचापिरोगिणीम् ।
विकृतापिगलाचैववाचालासर्वदूषिताम् ।।७७

छीक, वमन, निष्ठीवन अथवा किसी वस्तु के चाटने पर भी आचमन करे, गोपृष्ठ का अवलोकन या सूर्य का दर्शन ।।७१।। अथवा अपने दक्षिण श्रोत्र का स्पर्श करे । इनमे क्रमश पहिले के अभाव मे दूसरे को करे ।।७२।। क्योकि पहिले का अभाव होने पर दूसरे का ग्रहण ही श्रेष्ठ कहा है दाँत से दाँत को न

घिमे तथा अपने शरीर का ताडन न करे ॥७३॥ प्रात सध्या या साय सध्या क समय शयन, अध्ययन और भोजन न करे, सध्याकाल मे मैथुन अथवा प्रस्थान का निषेध है ॥७४॥ पूर्वाह्न मे देवताओ का, मध्याह्न मे मनुष्यो का एव अपराह्न मे पितरो का पूजन करे ॥७५॥ शिर से स्नान करके पितरो या देवताओ के अनुष्ठान मे प्रवृत्त हो, पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर क्षौर कर्म न करावे ॥७६॥ रोगिणी, विकलागी, पिगल वर्ण वाली, वाचाल अथवा दूषित कन्या चाहे सद्वश मे ही उत्पन्न क्यो न हुई हो, उसे ग्रहण न करे ॥७७॥

अव्यगागीसौम्यनाम्नीसर्वलक्षणलक्षिताम् ।
तादृशीमुद्वहेत्कन्याश्रेय कामोनर सदा ॥७८
उद्वहेत्पितृमात्रोश्चसप्तमीपचमीतथा ।
रक्षेद्दारान्त्यजेयेदीर्षादिवाचस्वप्नमैथुने ॥७९
परोपतापककर्मजन्तुपीडाचवर्जयेत् ।
उदक्या सर्ववर्णानावर्ज्यारात्रिचतुष्टयम् ॥८०
स्त्रीजन्मपरिहारार्थपचमीमपिवर्जयेत् ।
तत षष्ठ्यात्रजेद्राऽयाश्रेष्ठायुगासुपुत्रक ॥८१
पर्वाणिवर्जयेन्नित्यमृतुकालेपियोषित ।
तस्मान्नित्यनरोगच्छेच्छेपयुग्मासुपुत्रक ॥८२
युग्मासुपुत्राजायन्तेस्त्रियोऽयुग्मासुरात्रिषु ।
तस्माद्युग्मासुपुत्रार्थीम्विशेतसदानर ॥८३

कल्याण के इच्छुक पुरुष को सर्वाग पूर्ण, सुघर नासिका एव सब सुलक्षणो से युक्त कन्या से विवाह करना चाहिये ॥७८॥ पिता या माता की सात अथवा पाँच पीढी छोडकर ही परस्पर विवाह करे पुरुष का कर्त्तव्य है कि स्त्री की रक्षा करे और ईर्ष्या का त्याग करे, दिन मे शयन या मैथुन न करे ॥७९॥ दूसरो को सताप देने वाले या प्राणियो को क्लेशप्रद कार्यो को न करे, सभी वर्णो को ऋतुमयी स्त्री का चार दिन सङ्ग-त्याग करना चाहिये ॥८०॥ जो पुरुष कन्या का जन्म नही चाहता, वह पाँचवी रात छोडकर छटवी रात मे स्त्री–सग करे, क्योकि इसके लिये युग्म रात्रि ही श्रेष्ठ मानी गयी है ॥८१॥

ऋतुकाल के दिन, चौदश, अमावश, अष्टमी अथवा सक्राति काल मे नारी-समागम न करे ॥८२॥ युग्म रात्रि के सगम से पुत्र और अयुग्म रात्रि के समागम मे कन्या की उत्पत्ति होती है, इसलिये पुत्रेच्छुको को युग्म रात्रि मे सङ्ग करना चाहिये ॥८३॥

विधर्मिणोऽह्निपूर्वाह्येसध्याकालेचषण्ढका. ।
क्षुरकर्मणिवान्तेचस्त्रीसभोगेचपुत्रक ॥८४
स्नायीतचैलवान्प्राज्ञ कटभूमिमुपेत्यच ।
देववेदद्विजातीनासाधुसभ्यमहात्मनाम् ॥८५
गुरो पतिव्रतानाचतथायज्वितपस्विनाम् ।
परीवादनकुर्वीतपरिहासचपुत्रक ॥८६
कुर्वतामविनीताना नश्रोतव्यकथचन ।
देवपित्र्यातिथेयाश्चक्रिया कुर्वीतवैबुध ॥८७
स्वाध्यायचापिकुर्वीतयथाशक्त्याह्यतन्द्रित ।
नोत्कृष्टशय्यासनयोर्नापिकृष्टस्यचारुहेत् ॥८८
नचामङ्गल्यवेष स्यान्नचामङ्गल्यवाग्भवेत् ।
धवलाम्बरसवीतःसितपुष्पविभूषितः ॥८९
नोद्धतोन्मत्तमूढैश्चनाविनीतैश्चपण्डित ।
गच्छेन्मैत्रीनचाशीलैर्नचचौर्यादिदूषितै ॥९०
नचातिव्ययशीलैश्चनलुब्धैर्नापिवैरिभि ।
नानृतकैस्तथाक्रूरै सहासीतकदाचन ।
नबन्धकीभिर्नन्यूनैर्बन्धकीपतिभिस्तथा ॥९१
सार्द्धं नबलिभि कुर्यान्नचन्यूनैर्ननिन्दितै ।
नसर्वशङ्किभिर्नित्यनचदैवपरैर्नरै ॥९२

पूर्वाह्न मे नारी-सग से विधर्मी और सायकाल मे सग करने से नपुसक पुत्र की उत्पत्ति होती है, क्षौर कर्म, वमन और स्त्री-सग के पश्चात् ॥८४॥ तथा श्मशान भूमि मे जाने पर वस्त्र सहित स्नान करे। देवता, वेद, ब्राह्मण, सत्यनिष्ठ महात्मा ॥८५॥ गुरुजन, पतिव्रता, यज्ञ और तप परायण पुरुष इनकी

:सी न उडावे ।।८६।। यदि कोई अविनय वाला पुरुष इनकी निन्दा करे तो :धर ध्यान न दे, देवता, पितर और अतिथि का पूजन सदा करे ।।८७।। साव- ान चित्त से वेदाध्ययन करे, अपने से श्रेष्ठ या निम्न मनुष्य की शय्या अथवा ासन पर न बैठे ।।८८।। अमङ्गल वेश न धारे, अमङ्गल वचन न कहे, श्वेत स्त्र और सित पुष्प धारण करे ।।८९।। उद्धत, उन्मत्त, मूर्ख, विनय-रहित, ौर-कर्म से दूषित ।।९०।। अपरिमित व्यय करने वाला, लुब्ध, शत्रु, व्यभि- ारिणी का पति ।।९१।। नीचाशय, निन्दित, सदा शका युक्त, इनके साथ कभी मैत्रता न करे ।।९२।।

कुर्वीतसाधुभिर्मैत्रीसदाचारावलम्बिभि ।
प्राज्ञैरपिशुनै शक्तै कर्मण्युद्योगभागिभि ।।९३
वेदविद्याव्रतस्नातै सहासीतसदाबुध ।
सुहृद्दीक्षितभूपालस्नातकश्वशुरैःसह ।
ऋत्विगादीन्षडर्घार्हानर्चयेच्चगृहागतान् ।।९४
यथाविभवत पुत्रद्विजान्सवत्सरोषितान् ।
अर्चयेन्मधुपर्केणयथाकालमतन्द्रितः ।।९५
तिष्ठेच्चशासनेतेषाश्रेयस्कामोद्विजोत्तम. ।
नचतान्विवदेद्धीमानाक्रुष्टश्चापितै सदा ।।९६
सम्यग्गृहार्चनकृत्वायथास्थानमनुक्रमात् ।
सपूजयेत्ततोवह्निदद्याच्चैवाहुती क्रमात् ।।९७

सदाचारी साधु मनुष्यो के साथ ही मित्रता करे, बुद्धिमान्, उद्योगी को मित्र बनावे ।।९३।। वेदज्ञान से युक्त, विद्वान्, व्रत परायण और स्नातक का सग करे, सुहृद, दीक्षित, राजा, स्नातक, श्वशुर तथा ऋत्विक् यह छैओ अर्घ्य देने के लिए उपर्युक्त पात्र हैं,जब यह घर पर आवे तो इनका पूजन करे ।।९४।। हे पुत्र ! उपर्युक्त छ जनो के आगमन पर, यदि वे सवत्सर के व्यतीत होने पर आवे तो मधुपर्क से उनका पूजन करे ।।९५।। यदि कल्याण चाहे तो उनकी आज्ञा का पालन करे और उनके द्वारा क्रोध व्यक्त करने पर भी उनसे विवाद

न करे ॥९६॥ भले प्रकार गृह पूजन करके अग्नि का पूजन करे और आहुति दे ॥९७॥

प्रथमाब्रह्मणेदद्यात्प्रजानापतयेततः ।
तृतीयाचैवगुह्येभ्य कश्यपायतथापराम् ॥९८
ततोऽनुमतयेदत्त्वादद्याद्गृहबलिततः ।
पूर्वख्यातोमयायस्तेनित्यकर्मक्रियाविधि. ॥९९
वैश्वदेवतन कुर्याद्बलयस्तत्रमेशृणु ।
यथास्थानविभागतुदेवानुद्दिश्यवैपृथक् ॥१००
पर्जन्याद्भ्याधरित्र्यैचदद्यान्मणिकेत्रयम् ।
ततोधानुर्विधातुश्चदद्याद्द्वारेगृहस्यतु ।
वायवेचप्रतिदिश दिग्भ्य प्राच्यादित क्रमात् ॥१०१
ब्रह्मणेचान्तरिक्षायसूर्यायचयथाक्रमम् ।
विश्वेभ्यश्चैवदेवेभ्योविश्वभूतेभ्य एवच ॥१०२
उपसेभूतपतयेदद्याच्चोत्तरतस्ततः ।
स्वधानमइतीत्युक्त्वापितृभ्यश्चापिदक्षिणे ॥१०३
कृत्वापसव्यवायव्या यक्ष्मैतत्तेतिभाजनात् ।
अन्नावशेषमिच्छन्वैतोयदद्याद्यथाविधि ॥१०४
ततोन्नाग्र समुद्धृत्यहन्तकारोपकल्पनम् ।
यथाविधि यथान्यायब्राह्मणायोपपादयेत् ॥१०५

प्रथम आहुति ब्रह्माजी के निमित्त दूसरी आहुति प्रजापति को, तीसरी गुह्यकगण को और चौथी आहुति कश्यप को दे ॥९८॥ फिर पाँचवी आहुति अनुमति के उद्देश्य से दे और फिर जिस नित्य कर्म का वर्णन तुमसे किया जा चुकाहै,उसी के अनुसार गृहबलि प्रदान करे॥९९॥ फिर वैश्वदेव बलि प्रदान करे उसका नियम यह है कि स्थान विभाग के अनुसार देवताओ के लिए पृथक्-पृथक् बलि प्रदान करे ॥१०॥ फिर पर्जन्य, अन्न और पृथिवी को तीन बलि तथा वायु को भी बलि दे तथा पूर्वादि के क्रम से प्रत्येक दिशा मे बलि दे ॥१०१॥ फिर उत्तर दिशा मे ब्रह्मा, अन्तरिक्ष मे सूर्य, विश्वेदेवा और विश्वभूतगण ॥१०२॥

उषा और भूतपति के निमित्त बलि देकर स्वधा नम उच्चारण करके दक्षिण दिशा मे पितरो के लिए बलि दे ॥१०३॥ फिर अन्नावशेष की कामना करे और अपसव्य होकर वायुकोण मे 'यक्ष्मैतत्ता' इत्यादि मन्त्र पढ कर जलाधार से जल लेकर विधिवत् जल दे ॥१०४॥ फिर अन्न के अग्र भाग को तोडे और हन्तकार की कल्पना कर ब्राह्मण को दे ॥१०५॥

कुर्यात्कर्माणितीर्थेनस्वेनेस्वनयथाविधि ।
देवादीनातथाकुर्याद्ब्राह्मे णाचमनक्रियाम् ॥१०६
अ गुष्ठोत्तरतोरेखापाण्योर्यादक्षिणस्यतु ।
एतद्ब्राह्ममितिख्याततीर्थमाचमनायवै ॥१०७
तर्जन्यङ् गुष्टयोरन्त पैत्र तीर्थमुदाहृतम् ।
पितृणातेनतोयादिदद्यान्नान्दीमुखादृते ॥१०८
अ गुल्यग्रे तथादैवतेनदिव्यक्रियाविधि ।
तीर्थकनिष्ठिकामूलेकायतेनप्रजापते ॥१०९
एवमेभि सदातीर्थैर्देवानापितृभि.सह ।
सदाकार्याणिकुर्वीतनान्यत्तीर्थेनकर्हिचित् ॥११०
ब्राह्मे णाचमनशस्तपित्र्यपैत्रेणसर्वदा ।
देवतीर्थेनदेवानाप्राजापत्यनिजेनच ॥१११
नान्दीमुखानाकुर्वीतप्राज्ञ पिण्डोदकक्रियाम् ।
प्राजापत्येनतीर्थेनयच्चकिंचित्प्रजापते ॥११२

फिर स्वीय तीर्थ योग मे विधान के अनुसार कर्म करे और देवतादि के निमित्त ब्राह्मतीर्थ द्वारा आचमन करे ॥१०६॥ दक्षिण हाथ के अगुष्ठ की उत्तर दिशा मे जो रेखा है, वही ब्राह्मतीर्थ है, इसी तीर्थ के द्वारा आचमन का विधान है ॥१०७॥ तर्जनी और अगूठा का मध्य स्थल पितृतीर्थ है, नान्दीमुख के अतिरिक्त अन्यान्य सब क्रियाओ मे पितरो के निमित्त इसी पितृतीर्थ से जलादि दे ॥१०८॥ अँगुली के अग्र भाग मे देवतीर्थ है, उसी के द्वारा देवक्रिया की विधि का समापन करे, कनिष्ठा के मूल मे काय नामक तीर्थ है, उसके द्वारा प्रजापति का कार्य करना चाहिये ॥१०९॥ इस प्रकार इन सब तीर्थों द्वारा

सदैव देवता और पितरों की क्रिया करे, अन्य तीर्थ के द्वारा कभी न करे ।।११०।। ब्रह्मतीर्थ द्वारा ही आचमन करने का विधान है, पितृतीर्थ द्वारा पितृ-कार्य, देवतीर्थ द्वारा देवकार्य और कायतीर्थ द्वारा प्रजापति का कार्य करना चाहिये ।।१११।। जिस प्रकार कायतीर्थ अर्थात् प्राजापत्य तीर्थ द्वारा प्रजापति का कार्य करने का विधान है, उसी प्रकार कायतीर्थ द्वारा ही नान्दीमुख पिण्डोदक कर्म करना चाहिये ।।११२।।

युगपज्जलमग्निञ्च बिभृयान्न विचक्षण ।
गुरुदेवान्प्रति तथा न च पादौ प्रसारयेत् ।।११३
नाचक्षीत धयन्तीं गां जलं नाञ्जलिना पिबेत् ।
शौचकालेषु सर्वेषु गुरुष्वल्पेषु वा पुन ।।११४
न विलम्बेत शौचार्थं न मुखेनानलं धमेत् ।
तत्र पुत्र न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम् ।।११५
ऋणप्रदाता वैद्यश्च श्रोत्रिय सजला नदी ।
जितामित्रो नृपो यत्र बलवान्धर्मतत्परः ।।११६
तत्र नित्यं वसेत्प्राज्ञ कुत कुनृपते सुखम् ।
यत्राप्रधृष्यो नृपतिर्यत्र सस्यवती मही ।।११७
पौरा सुसंयता यत्र सततं न्यायवर्त्तिन ।
यत्रामत्सरिणो लोकास्तत्र वास सुखोदय ।।११८
यस्मिन्कृषीवला राष्ट्रे प्रायशो नातिभोगिन ।
यत्रौषधान्यशेषाणि वसेत्तत्र विचक्षण. ।।११९
तत्र पुत्र न वस्तव्यं यत्रैतत्त्रितयं सदा ।
जिगीषुः पूर्ववैरश्च जनश्च सततोत्सव ।।१२०
वसेन्नित्यं सुशीलेषु सहवासिषु पण्डित ।
इत्येतत्कथितं पुत्र मया ते हितकाम्यया ।।१२१

एक साथ ही जल और अग्नि का धारण करना अनुचित है, गुरु या देवता के सामने पैर फैलाना भी निषिद्ध है ।।११३।। बछड़े को दूध पिलाने मे लगी हुई गौ को न बुलावे और अञ्जलि से जल न पीवे, अधिक अथवा न्यून

॥११४॥ सब प्रकार की शौच क्रिया शीघ्रता से करे तथा मुख की फूँक मे अग्नि को प्रज्वलित न करे तथा जहाँ यह चार वस्तुएँ न हो, वहाँ न रहे ॥११५॥ ऋण देने वाला, वैद्य, श्रोत्रिय तथा जल वाली नदी। जिस स्थान पर शत्रु विजेता बली एव धर्मज्ञ राजा रहता हो ॥११६॥ उस स्थान मे सदा रहे, क्योकि कुराजा के राज्य मे सुख नही हो सकता। जिस देश का राजा दुर्धर्ष है तथा जहाँ की भूमि धान्य से परिपूर्ण है ॥११७॥ जहाँ के पुरवासी नियमो का पालन करते और न्याय मार्ग पर चलते है, जहाँ के मनुष्यो मे मात्सर्य नही है, वहाँ निवास करने से सुख का उदय होता है ॥११८॥ जहाँ के किसान अति भोग वाले नही है, और जहा असख्यासख्य औपधियाँ उत्पन्न होती है उसी स्थान मे निवास करना चाहिये ॥११९॥ जहाँ जिगीषा युक्त, पूर्व शत्रु और उत्सवोन्मत्त मनुष्य रहते हो वहाँ कभी न रहे ॥१२०॥ सुशील मनुष्यो का निवास हो वहाँ रहना चाहिये, यह सब मैने तुम्हारे हित के लिए ही कहा है ॥१२१॥

२८--अलर्क को शासन युक्त अंगूठी की प्राप्ति

सएवमुनिशिष्ट सन्मात्रासम्प्राप्ययौवनम् ।
ऋतध्वजसुतश्चक्रे सम्यग्दारपरिग्रहम् ॥१
पुत्राश्चोत्पादयामासयज्ञैश्चाप्ययजद्विभु ।
पितुश्चसर्वकालेषुचकाराज्ञानुपालनम् ॥२
तत कालेमहतासम्प्राप्यचरमवय ।
चक्रेऽभिषेकपुत्रस्यतस्यराज्येऋतध्वज ॥३
भार्ययासहधर्मात्मायियासुस्तपसेवनम् ।
अवतीर्णोमहीरक्षोमहाभागोमहीपति ॥४
मदालसाचतनयंप्राहेदपश्चिमवच: ।
कामोपभोगससर्गप्रहाणायसुतस्यवै ॥५

यदादुःखमसह्यन्तेप्रियबन्धुवियोगजम् ।
शत्रुबाधोद्भववापिवित्तनाशात्मसम्भवम् ।।६
भवेत्तत्कुर्वतोराज्यगृहधर्मावलम्बिन ।
दु खायतनभूतोहिममत्वालम्बनोगृही ।।७
नदास्मात्पुत्रनिष्कृष्यमद्दत्तादगुलीयकात् ।
वाच्यतेशासनपट्टे सूक्ष्माक्षरनिवेशितम् ।।८
इत्युक्त्वाप्रददौतस्मैसौवर्णंसागुलीयकम् ।
आशिषश्चापियायोग्या पुरुषस्यगृहेसत ।।९
तत कुवलयाश्वोऽसौसाचदेवीमदालसा ।
पुत्रायदत्त्वातद्राज्यतपसेकाननङ्गतौ ।।१०

जड ने कहा—माता के इस प्रकार उपदेश देने पर ऋतध्वज के पुत्र ने युवावस्था प्राप्त होने पर विधि पूर्वक विवाह किया और पुत्रोत्पादन और विविध यज्ञो का अनुष्ठान करते हुए पिता की आज्ञा के अनुवर्त्ती हुए ।।१-२।। फिर बहुत काल व्यतीत होने पर धर्मात्मा राजा ऋतध्वज ने पत्नी सहित वन मे जाने की इच्छा से पुत्र को राज्यपद मे अभिषिक्त किया ।।३ ४।। तब पुत्र को भोगादि से निवृत्त करने के विचार से मदालसा ने इस प्रकार कहा—जब तुम्हारे समक्ष किसी प्रिय अथवा बन्धु का वियोग, शत्रुबाधा या धननाश का दु ख उपस्थित हो ।५-६। क्यो कि गृहस्थ सदा ममता परायण है अत स्वाभाविक रूप से ही आपद् काल आवे तो मेरे द्वारा प्रदत्त इस अ गुलीय से पत्र बाहर निकाल कर मध्यस्थ सूक्ष्म अक्षरो मे लिखे शासन का पाठ करना ।।७-८।। जड बोला—इस प्रकार कहती हुई मदालसा ने अपनी स्वर्ण की अगूठी देते हुए, अपने पुत्र को गृहस्थोचित आशीर्वाद दिया ।।९।। फिर अपने पुत्र को राज्य देकर कुवलयाश्व तप करने के लिये मदालसा के सहित वन मे गये ।।१०

२६--अलर्क को आत्म विवेक

सोऽप्यलर्कोयथान्यायपुत्रवन्मुदिता प्रजा ।
पालयामासधर्मात्मास्वेस्वेकर्मण्यवस्थिता ॥१
दुष्टेषुदडशिष्टेषुसम्यक्चपरिपालनम् ।
कुर्वन्परामुदलेभेइयाजचमहामखै ॥२
अजायन्तसुताश्चास्यमहाबलपराक्रमा: ।
धर्मात्मानोमहात्मानोविमार्गपरिपन्थिन ॥३
चकारसोऽर्थ धर्मेणधर्ममर्थेनवापुन ।
तयोश्चैवाविरोधेनबुभुजेविषयानपि ॥४
एवबहूनिवर्षाणितस्यपालयतोमहीम् ।
धर्मार्थकामसक्तस्यजग्मुरेकमहर्यथा ॥५
वैराग्यनास्यसजज्ञे भुञ्जतोविषयान्प्रियान् ।
नचाप्यलमभूत्तस्यधर्मार्थोपार्जनप्रति ॥६
तंतथाभोगससर्वप्रमत्तमजितेन्द्रियम् ।
सुबाहुर्नामिशुश्रावभ्रातातस्यवनेचर ॥७

जड बोला—धर्मात्मा अलर्क ने न्याय पूर्वक प्रजा का पुत्र के समान पालन किया, इस प्रकार आनन्द को प्राप्त होते हुए वे अपने नियत कार्यानुष्ठान मे लगे ॥१॥ उन्होने दुष्टो को दण्ड और शिष्ट पुरुषो की रक्षा करते हुए अत्यत आनन्द पूर्वक अनेक यज्ञ किये ॥२॥ समयानुसार उनके अनेक पुत्र हुए, वे सब बली, पराक्रमी, धर्मज्ञ, महात्मा और कुमार्ग के नाशक थे ॥३॥ आत्मवान् हुए अलर्क धर्म से अर्थ और अर्थ से धर्म की रक्षा तथा धर्म और अर्थ के द्वारा विषयो का उपभोग करने लगे ॥४॥ इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम रूप त्रिवर्ग मे प्रवृत्त होकर पृथिवी का पालन करते हुए बहुत वर्ष, एकदिन के समान ही व्यतीत हो गये ॥५॥ प्रिय विषयो का भोग करके भी उनके चित्तमे वैराग्य और धर्म,अर्थ के उपार्जन मे उदासीनता उत्पन्न न हुई॥६॥अलर्क का एक भाई सुबाहु

पहिले से ही बनवास करता था, उसने अलर्क के विषय भोग मे लगे रहने की वार्त्ता सुनी ॥७॥

तम्बुबोधयिषु सोऽथचिरध्यात्वामहामति ।
तद्वैरिसश्रयन्तस्यश्रेयोऽमन्यतभूपते. ॥८
तत सकाशिभूपालमुदीर्णबलवाहनम् ।
स्वराज्यमाप्तुमागच्छद्बहुश शरणाकृती ॥९
सोऽपिचक्रेबलोद्योगमलर्कप्रतिपार्थिव ।
दूतचप्रेषयामासराज्यमस्मैप्रदीयताम् ॥१०
सोऽपिनैच्छत्तदादातुमाज्ञापूर्वस्वधर्मवित् ।
प्रत्युवाचचतदूतमलर्क काशिभूभृत ॥११
मामेवाभ्येत्यहार्देनयाचताराज्यमग्रज ।
नाक्रात्यासप्रदास्यामिभयेनाल्पामपिक्षितिम् ॥१२
सुबाहुरपिनोयाञ्चाचकारमतिमास्तदा ।
नधर्म क्षत्रियस्येतियाञ्चावीर्यधनोहिस ॥१३
तत समस्तसैन्येनकाशीश परिवारित ।
आक्रान्तुमभ्यगाद्राष्ट्रमलर्कस्यमहीपतेः ॥१४

अपने भाई को तत्वज्ञान हो सके इसके लिए उस महामति ने बहुत समय तक विचार किया और अन्त मे शत्रु के आश्रय मे जाना ही उचित समझा ॥८॥ फिर चतुर सुबाहु राज्य लाभ की इच्छा करके काशी नरेश की शरण मे अनेक बार गया ॥९॥ काशी नरेश ने भी अलर्क की प्रतिकूलता के लिये उनके पास दूत द्वारा सदेश भेजा कि सुबाहु को राज्य दे दो ॥१०॥ क्षात्रधर्मज्ञाता अलर्क ने इसे स्वीकार न करके दूत को उत्तर दिया ॥११॥ मेरे बडे भाई मेरे पास आकर कहे, आक्रमण से डर कर तो मै एक कण मात्र पृथिवी भी नही दे सकता ॥१२॥ महामति सुबाहु ने उनसे विनती नही की, क्यो कि क्षत्रियो का एक मात्र धर्म बल ही है ॥१३॥ तब काशी नरेश ने सेना से सुसज्जित हो कर राजा अलर्क के राज्य पर आक्रमण किया ॥१४॥

यनन्तरैश्चसश्लेषमभ्येत्यतदनन्तरम् ।
तेपामन्यतमैभृत्यै समाक्रम्यानयद्वशम् ।।१५
अपीडयश्चसामतास्तस्यराष्ट्रोपरोधनै ।
तथादुर्गातपालाश्चचक्रे चाटविकान्वशे ।।१६
काश्चिच्चोपप्रदानेनकाश्चिद्भेदेनपार्थिवान् ।
साम्नैवान्यान्वशनिन्येनिभृतास्तस्ययेऽभवन् ।।१७
ततसोऽल्पवलोराजापरचक्रावपीडित ।
कोशक्षयमवापोच्चै पुरचारुध्यातारिणा ।।१८।।
इत्थसपीडचमानस्तुक्षीणकोशोदिनेदिने ।
विषादमागात्परमव्याकुलत्वचचेतस ।।१९
आर्तिसपरमाप्राप्यतत्सस्मारागुलीयकम् ।
यदुद्दिश्यपुराप्राहमातातस्यमदालसा ।।२०
ततस्नातशुचिर्भूत्वावाचयित्वाद्विजोत्तमान् ।
निष्कृष्यशासनतस्माद्ददृशेप्रस्फुटाक्षरम् ।।२१

अपने सामन्त राजाओ से युक्त हो कर आक्रमण के पश्चात् उन्होने अलर्क को वश मे कर लिया ।।१५।। उन्होने अलर्क के सामन्तो को पीडित किया और दुर्ग रक्षक तथा वनवासियो को वशीभूत किया ।।१६।। किसी को धन से, किसी को भेद से तथा किसी को दण्ड से अधीन कर लिया ।।१७।। इस प्रकार परचक्र से पीडित हुए अलर्क का कोष खाली हो गया और नगर भी शत्रु द्वारा घेर लिया गया ।।१८।। इससे अलर्क अत्यन्त विषाद को प्राप्त हुआ और उसका चित्त भी व्याकुल हो उठा ।।१९।। फिर अत्यन्त आर्त्त हो गये, तब उन्हें अपनी माता मदालसा के वचन और वह अगूठी याद आई ।।२०।। तब उन्होने स्नान करके स्वस्ति वाचन कराके बँधे हुए शासन को बाहर निकाल कर देखा तो वह स्पष्ट अक्षरो मे लिखा हुआ था ।।२१।।

तत्रैवलिखितमात्रावाचयामासपार्थिव ।
प्रकाशपुलकागोऽसौप्रहर्षोत्फुल्ललोचन ।।२२

सग सर्वात्मनात्याज्य सचेत्त्यक्नु ंनशक्यते ।
ससद्भि सहकर्त्तव्य सतासगोहिभेपजम् ॥२३
काम सर्वात्मनाहेयोहातु चेच्छक्यतेनस ।
मुमुक्षाप्रतितत्कार्यसैवतस्यापिभेषजम् ॥२४
वाचयित्वातुबहुशोनृणाश्रे य कथत्विति ।
मुमुक्षयेतिनिश्चित्यसाचतत्सङ्गतोयतः ॥२५
तत ससाधुसम्पर्कचिन्तयन्पृथिवीपति ।
दत्तात्रेयमहाभागमगच्छत्परमार्तिमान् ॥२६
तसमेत्यमहात्मानमल्कमपमसङ्गिनम् ।
प्रणिपत्याभिसम्पूज्यग्रथान्यायमभापत ॥२७

माता द्वारा लिखे उस शासन के पढने ही उनका देह पुलकित होगया और दोनो नेत्र आनन्द से फूल गये ॥२२॥ शासन मे लिखा था 'काम को सर्वान्त करण से त्याग दे' यदि सग का त्याग न कर सके तो साधु सग करे, क्योकि साधु–सग ही विश्व का औषधि स्वरूप है ॥२३॥ काम का सर्वान्त करण से त्याग करने मे समर्थ न हो तो मोक्ष की कामना के लिये ही करे, क्योकि मोक्ष का वही महान् उपाय है ॥२४। इस प्रकार माता प्रदत्त शासन का पाठ करके, मनुष्य का कल्याण कैसे हो, मोक्ष की कामना ही उसका उपाव है और सत्संग ही उसका साधन है ॥२५॥ ऐसा सोचकर अलर्क साधु सग के लाभ का विचार करने लगे, अत्यन्त भाव मे आतुर होकर अन्त मे वह दत्तात्रेयजी की शरण मे गये और उनको प्रणाम करके पूजन किया और न्यायानुसार निवेदन किया ॥२६-२७॥

ब्रह्मन्कुरुप्रसादमेशरण्य शरणार्थिनाम् ।
दु खापहारकुरुमेदु खार्त्तस्यातिकामिन. ॥२८
दु खापहारमद्यैवकरोमितवपार्थिव ।
सत्यब्रूहिकिमर्थतेदु खतत्पृथिवीपते ॥२९
कस्यत्वकस्यवादु खतत्त्वमेवविचार्यताम् ।
अ गान्यंगीन्निरगचससर्वागानिविचितय ॥३०

इत्युक्तश्चिन्तयामाससराजातेनधीमता ।
त्रिविधस्यापिदु खस्यस्थानमात्मानमेवच ॥३१
सविमृश्यचिरराजापुन पुनरुदारधी ।
आत्मानमात्मनाधीर प्रहस्येदमथाब्रवीत् ॥३२
नाहमुर्वीर्नसलिलनज्योतिरनिलोनच ।
नाकाशकितुशारीरसमेत्यसुखमिष्यते ॥३३
न्यूनातिरिक्ततायातिपञ्चकेऽस्मिन्सुखासुखम् ।
यदिस्यान्ममकिनस्यादन्यस्थेऽपिहितमयि ॥३४

हे ब्रह्मन् ! प्रसन्न हो, शरण आने वालो के लिए आप ही आश्रय स्वरूप है, मै विषय भोगो मे लिप्त होकर दु ख से अभिभूत होगया हूँ, उससे आप मुझे छुडाइये ॥२८॥ दत्तात्रेयजी ने कहा–हे राजन् ! मैं तुम्हारे दु ख को अवश्य दूर करूँगा,तुम मुझे बताओ कि तुम्हे किस प्रकार से दु ख प्राप्त हुआ है ?॥२९॥ प्रथम यह विचार करो कि तुम किसके हो ? दु ख किसका है ? अग, अगी भाव और निरग इन सबका विचार करो ॥३०॥ जढ ने कहा—दत्तात्रेयजी के इस प्रश्न से राजा तीन प्रकार के दु ख का स्थान एव आत्मा इन दो विषयो का चिन्तन करने लगे ॥३१॥ राजा ने बारम्बार आत्मा द्वारा आत्म विचार करते हुए हँस कर कहा ॥३२॥ मै पृथिवी, जल, ज्योति, वायु, आकाश आदि मे से कुछ भी नही हूँ किन्तु देह का आश्रय करता हुआ सुख चाहता हू ॥३३॥ इस पाचभौतिक देह मे सुख-दु ख उत्पन्न होकर न्यूनाधिक्य की प्राप्ति होती है ॥३४॥

नित्यप्रभूतसद्भावेन्यूनाधिक्यान्नतोन्नते ।
तथाचममतात्यक्तोविशेषेणोपलभ्यते ॥३५
तन्मात्रावस्थितेसूक्ष्मेतृतीयांशेचपश्यत ।
तथैवभूतसद्भावशारीरकिसुखासुखम् ॥३६
मनस्यवस्थितदु खसुखवामानसचयत् ।
यतस्ततोनमेदु.खसुखवानह्यहमन ॥३७
नाहङ्कारोनचमनोबुद्धिर्नाहियतस्तत ।
अन्त करणजदु खपारक्यममतत्कथम् ॥३८

नाहशरीरनमनोयतोऽहपृथक्छरीरान्मनसस्तथाहम् ।
तत्सन्तुचेतस्यथवापिदेहेसुखानिदु खानिचकिममात्र ।।३६
राज्यस्यवाछाकुरुतेऽग्रजोऽस्यदेहस्यचेत्पचमयोहिराशिः ।
गुणप्रवृत्त्याममकिनुतत्रतत्स्थ सचाहचशरीरतोऽन्य. ।।४०
नयस्यहस्तादिकप्यशेषमासनचास्थीनिशिराविभाग ।
कस्तस्यनागाश्वरथादिकोशै स्वल्पोपिसम्बन्धइहास्तिपु सः ।।४१
तस्मान्नमेऽरिर्नचमेऽस्तिदु खनमेसुखनापिपुरनकोशम् ।
नचाश्वनागादिबलनतस्यनान्यस्यवाकस्यचिद्वाममास्ति ।।४२
यथाघटीकुम्भकमण्डलुस्थमाकाशमेकबहुधाहिदृष्टम् ।
तथासुबाहु सचकाशिपोऽहमन्येचदेहेषुशरीरभेदै ।।४३

इस प्रकार होने पर भी मेरी क्या हानि है ? क्योकि वह देह नही है, स्वतन्त्र भाव से देह मे अवस्थान करता हूँ, मेरे घटने–बढने की सम्भावना नही है, मुझे नित्य प्रभूत सद्‌भाव की प्राप्ति है। न्यूनाधिक्य के कारण नीचा ऊँचा भी होता हूँ, इसलिये ममता को छोडकर ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, मैं तन्मात्रा मे तथा सूक्ष्म तृतीयाश मे अवस्थित हूँ, मेरा देह भी भूत सद्‌भाव युक्त है अतः सुख–दु ख की सम्भावना कदापि नही है ? ।।३५-३६।। सुख, दु ख मन का धर्म होने से, मन मे ही रहते है, जब मैं वह मन भी नही हूँ तो मुझे सुख–दु ख भी नही है ।।३७।। जब मैं अहङ्कार, मन, बुद्धि आदि मे से भी कुछ नही हूँ तो मुझ मे अन्त करण से उत्पन्न पारक्य ही कैसे सम्भव है ? ।।३८।। मैं शरीर नही, मन नही तथा इन दोनो से ही पृथक् हूँ, इसलिये सुख मन मे या शरीर मे कही भी रहे, उसमे मेरा क्या ? उसमे मेरी हानि या लाभ नही है ।।३९।। इसी शरीर के बडे भाई राज्य चाहते है और यदि यह शरीर पाचभौतिक है तो उसकी गुण–प्रवृत्ति मे मेरा क्या होगा ? बडा भाई अथवा मैं. दोनो ही देह से पृथक् वस्तु हैं ।।४०।। जिसके हस्तादि अंग, माँस, अस्थि और शिरा आदि कुछ नही, उसकी अश्व, गज, रथ, कोष आदि मे क्या आवश्यकता है ? आत्मा का इससे कोई सम्बन्ध प्रतीत नही होता ।४१।। जिस प्रकार मेरा कुछ नही है, वैसे ही मेरे अग्रज अथवा अन्यान्य पुरुष या शत्रु का भी सुख, दुःख, नगर, कोष,

सैन्यादि नही है ।।४२।। जैसे घटी, कुम्भ और कमण्डलु के भेद से एक आकाश ही अनेक दिखाई देता है, वैमे ही आत्मा एक होकर भी काशीराज, सुबाहु तथा मेरे इस प्रकार के भेद से अनेक दिखाई देता है ।।४३।।

३०—दत्तात्रय से अलर्क की योग जिज्ञासा

दत्तात्रेयततोविप्रप्रणिपत्यसपार्थिव ।
प्रत्युवाचमहात्मानप्रश्रयावनतोवच ।।१
सम्यक्प्रपश्यतोब्रह्मन्ममदुःखनकिंचन ।
असम्यग्दर्शिनोमग्ना सर्वदैवासुखार्णवे ।।२
यस्मिन्यस्मिन्ममत्वेनबुद्धि पु स प्रजायते ।
ततस्तत समादायदु खान्येवप्रयच्छति ।।३
मार्जारभक्षितेदु खयाद्दशगृहकुक्कुटे ।
नताद्दङ्ममताशून्येकलविङ्केऽथमूषिके ।।४
सोऽहनदु खीनसुखीयतोऽहप्रकृते पर ।
योभूताभिभवोभूतै सुखदु खात्मकोहिस ।।५
एवमेतन्नरव्याघ्रयथैतद्व्याहृतत्वया ।
ममेतिमूलदुःखस्यनममेतिचनिवृ ति ।।६
मत्प्रश्नादेवतेज्ञानमुत्पन्नमिदमुत्तमम् ।
ममेतिप्रत्ययोयेनक्षिप्त शाल्मलितूलवत् ।।७

जड बोला—इसके पश्चात् राजा ने विनय पूर्वक महर्षि दत्तात्रेयजी से प्रणाम पूर्वक कहा ।।१।। हे ब्रह्मन् ! मुझे भले प्रकार दृष्टि प्राप्त होने से अब कुछ भी दु ख नही रहा है, क्योकि असम्यक् दृष्टि वाले पुरुष ही दु ख सागर मे डूबते है ।।२।। मनुष्य की बुद्धि जिस–जिस विषय मे आसक्त होती है, उस–उस से ही दु·ख की उत्पत्ति होती है ।।३।। घर मे पाले हुए कुक्कुट के बिल्ली द्वारा भक्षित होने पर जो दु ख उदय होता है, वह दु ख, ममता न होने के कारण

चूहे के भक्षित होने पर नही होता ।।४।। मैं न सुखी हूँ, न दुःखी हूँ क्योकि प्रकृति के परे हूँ, क्योकि ससार मे आसक्ति वाले को ही सुख-दुःख होता है ।५। दत्तात्रेयजी ने कहा—हे राजन् ! तुम्हारा कथन सत्य है, ममता ही दुःख का कारण और ममता ही उसे निवृत्त करने वाली है ।।६।। मेरे प्रश्न करते ही तुम्हारे हृदयमे सर्वोत्कृष्ट ज्ञान उदित हुआ है और उस ज्ञान के बलसे ही तुम्हारी ममता जैसे सेमर की रुई उड जाती है, वैसे ही उड गई है ।।७।।

अहमित्यकुरोत्पन्नोममेतिस्कन्धवान्महान् ।
गृहक्षेत्रोच्चशाखश्चपुत्रदारादिपल्लव ।।८
धनधान्यमहापत्रोनैककालप्रवर्धित ।
पुण्यापुण्याग्रपुष्पश्चसुखदुःखमहाफल ।।९
अपवर्गपथव्यापीमूढसम्पर्कसेचन ।
विधित्साभृङ्गमालाढ्योऽकृत्यज्ञानमहातरु ।।१०
ससाराध्वपरिश्रान्तायेतच्छायासमाश्रिता ।
भ्रान्तिज्ञानसुखाधीनास्तेपामात्यन्तिककुत ।।११
यैस्तुसत्सङ्गपापाणशितेनममतातरु ।
छिन्नोविद्याकुठारेणतेगतास्तेनवर्त्मना ।।१२
प्राप्यब्रह्मवनशीतनीरजस्कमकण्टकम् ।
प्राप्नुवन्तिपराप्राज्ञानिर्वृतिर्वृत्तिवर्जिता ।।१३
भूतेन्द्रियमयस्थूलनत्वराजन्नचाप्यहम् ।
नतन्मात्रमयावाच्यनैवान्त करणात्मकौ ।।१४

अहङ्कारी रूप अकुर ने ही अज्ञान रूपी महावृक्ष को उत्पन्न कर दिया, घर और खेत उसकी ऊँची शाखाएँ तथा स्त्री-पुत्रादि उसकी पत्तियाँ है ।।८।। धन-धान्य उसके बडे पत्ते, पुण्यापुण्य उसके पुष्प और सुख-दुःख उसके महाफल है ।।९।। मोह से अभिभूत समान सम्बन्ध इसका थावला है, यह वृक्ष दिनोदिन वृद्धि को प्राप्त है तथा मोक्ष मार्ग को ढक कर खडा है ।।१०।। भ्रान्ति से जो सुख मान कर इस वृक्ष का आश्रय लेते है, उन्हे किस प्रकार मोक्ष की प्राप्ति होगी ? ।।११।। जो पुरुष विद्यारूपी कुठार को सत्सङ्ग रूपी पत्थर से तीक्ष्ण

करके, उसके द्वारा ममता रूपी इस महावृक्ष को काटने मे समर्थ होते है ।।१२।। वही उस मार्ग मे ब्रह्म रूपी वन को प्राप्त हो सकते है, यह वन अत्यन्त शीतल, धूलि-रहित तथा निष्कटक है, इसमे पहुँचने से निर्वृत्ति युक्त परमवुद्धि का लाभ होता है ।।१३।। हे राजन् ! तुम भी भूतेन्द्रिय युक्त या स्थूल नही हो, मै भी नही हू, हम दोनो मे कोई भी तन्मात्रिक या अन्त करणात्मक नही है ।।१४।।

कवापश्यामिराजेद्रप्रधानमिदमावयो ।
यत परोहिक्षेत्रज्ञसघातोहिगुणात्मक ।।१५
मशकोदुम्बरेषीकामुञ्जमत्स्याम्भसायथा ।
एकत्वेऽपिपृथग्भावस्तथाक्षेत्रात्मनोर्नृप ।।१६
भगवस्त्वत्प्रसादेनममाविर्भूतमुत्तमम् ।
ज्ञानप्रधानचिच्छक्तिविवेककरमीदृशम् ।।१७
किन्त्वत्राविषयाक्रान्तेस्थैर्य्यवत्त्वनचेतसि ।
नचापिवेद्मिमुच्येयकथप्रकृतिबन्धनात् ।।१८
कशनभूयाभूयश्चकथनिर्गुणतामियाम् ।
कथचब्रह्मणैकत्वव्रजयेयशाश्वतेनवै ।।१९
तन्मेयोगतथाब्रह्मन्प्रणतायाभियाचते ।
सम्यग्ब्रूहिमहाप्राज्ञसत्सङ्गोह्युपकृन्नृणाम् ।।२०

हम मे से किसी को भी तुम प्रधान से युक्त देखते हो ? क्योकि क्षेत्रज्ञ पुरुष प्रकृति के परे तथा पच भौतिक पदार्थ गुणात्मक और प्रधानात्मक है ।१५ हे राजन् ! मच्छर गूलर मे, सीक मूज मे और मछली जल मे एकी भाव से रह कर भी पृथक्-पृथक् है, इसी प्रकार क्षेत्र और आत्मा को भी पृथक्-पृथक् समझो ।।१६।। अलर्क बोला—हे प्रभो ! मुझे आपके प्रसाद से विवेक उत्पन्न करने वाले ज्ञान की प्राप्ति हुई है ।।१७।। परतु, मेरा चित्त विषयो मे आकर्षित है, इसलिये वह स्थिर नही हो सकता, अतः प्रकृति के बन्धन से कैसे मुक्त हो सकूगा, यह नही जानता ।।१८।। पुनर्जन्म से किस प्रकार बचा जाय ? क्या करने से शाश्वत ब्रह्म से एकी भाव की प्राप्ति हो ।।१९।। ऐसे योग का उपदेश

मेरे प्रति कीजिये, मै प्रार्थी होकर आपके समीप प्रार्थना करता हूँ। सत्सङ्ग से हीं मनुष्य का उपकार सिद्ध हो सकता है ॥२०॥

३१—योगाध्याय

ज्ञानपूर्वोवियोगोयोऽज्ञानेनसहयोगिनः ।
सामुक्तिर्ब्रह्मणाचैक्यमनैक्यप्राकृतैर्गुणै ॥१
योगेचशक्तिविदुषायेनश्रेय परभवेत् ।
मुक्तिर्योगात्तथायोग सम्यग्ज्ञानान्महीपते ।
सगदोषोद्भवदु खममत्वासक्तचेतसाम् ॥२
तस्मात्सङ्ग प्रयत्नेनमुमुक्षु सत्यजेन्नर ।
सङ्गाभावेममेत्यस्या ख्यातेर्हानि प्रजायते ॥३
निर्ममत्वसुखायैववैराग्याद्दोषदर्शनम् ।
ज्ञानादेवचवैराग्यज्ञानवैराग्यपूर्वकम् ॥४
तद्गृ हयत्रवसतिस्तद्भोज्ययेनजीवति ।
यन्मुक्तयेतदेवोक्त ज्ञानमज्ञानमन्यथा ॥५
उपभोगेनपुण्यानामपुण्यानाचपार्थिव ।
कर्त्तव्यमितिनित्यानामकामकरणात्तथा ॥६
असचयादपूर्वस्यक्षायात्पूर्वार्जितस्यच ।
कर्मणोवन्धमाप्नोतिशरीरचपुन पुनः ॥७
कर्मणामोक्षमाप्नोतिवैपरीत्येनतस्यतु ।
एतत्तेकथितज्ञानयोगचेमनिबोधमे ।
यप्राप्यब्रह्मणोयोगीशाश्वतान्नान्यतांव्रजेत् ॥८

दत्तात्रेय बोले—योग मे आरूढ पुरुषो का ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् अज्ञान से जो वियोग होता है, वही मोक्ष कहा जाता है, तथा प्राकृतिक गुणो से पृथकता ही ब्रह्म की एकता कही गयी है ॥१॥ हे राजन् ! ममता मे आसक्त

चित्त से दु ख, दु ख से सम्यक् ज्ञान, ज्ञान से योग और योग से मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥२॥ इसलिए मुमुक्षु को सग का त्याग करना चाहिये, विषयो से आसक्ति दूर होते ही यह मेरा है, ऐसा ज्ञान नही रहता ॥३॥ ममता के त्याग मे ही सुख है, वैराग्य होने पर ही ससार के सब दोष स्पष्ट हृदयगम होते है, जैसे ज्ञान से वैराग्य होता है, वैसे ही वैराग्य से ज्ञान की उत्पत्ति होती है ॥४॥ जहाँ रहे वही घर, जिससे जीवन धारण हो वही भोज्य, जिससे मोक्ष मिले वही ज्ञान है तथा इसके विपरीत को अज्ञान कहते है ॥५॥ पुण्यापुण्य के उपभोग से कामना-रहित नित्य कर्म के करने पर ॥६॥ पूर्वोपार्जित कर्मो के क्षीण होने पर और नवीन कर्मो का सचय न होने पर देह के बन्धन को प्राप्त नही होता, हे राजन् ! तुमसे जो कहा है, वही योग है, इसे पाकर योगीजन शाश्वत ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी का आश्रय नही लेते ॥७-८॥

प्रागेवात्मात्मनाजेयोयोगिनासहिदुर्जय ।
कुर्वीततज्जयेयत्नतस्योपायश्शृणुष्वमे ॥६
प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्चकिल्बिषम् ।
प्रत्याहारेणविषयान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥१०
यथापर्वतधातूनाध्मातानादह्यतेमलम् ।
तथेन्द्रियकृतादोषादह्यन्तेप्राणनिग्रहात् ॥११
प्रथमसाधनकुर्यात्प्राणायामस्ययोगवित् ।
प्राणापाननिरोधस्तुप्राणायामउदाहृत. ॥१२
लघुमध्योत्तरीयाख्य प्राणायामस्त्रिधोदित ।
तस्यप्रमाणवक्ष्यामितदलर्कश्शृणुष्वमे ॥१३
लघुर्द्वादशमात्रस्तुद्विगुण सतुमध्यम ।
त्रिगुणाभिस्तुमात्राभिरुत्तम.परिकीर्त्तित ॥१४

सर्व प्रथम आत्मा से आत्मा को जीते, क्योकि आत्मा ही योगियो के लिये कठिनता से जीता जाने वाला है, आत्मा को किस प्रकार जीतना चाहिये, वह भी कहता हूँ ॥९॥ प्राणायाम से दोषो को, धारणा से पापो को, प्रत्याहार से विषयो को और ध्यान से अनीश्वर गुणो को भस्म करे ॥१०॥ जैसे अग्नि

मे पड कर सब धातु दोप–रहित होती हैं, वैसे ही प्राणवायु के निग्रह से इद्रियो के सब दोप नष्ट होते है ।।११।। योगज्ञाता प्रथम प्राणायाम का साधन करे, प्राणापान के निरोध को प्राणायाम कहते है ।।१२।। प्राणायाम के तीन प्रकार है—लघु, मध्यम और उत्तरीय, अब इनका प्रमाण कहता हूँ ।।१३।। लघु प्राणायाम द्वादश मात्रा वाला,मध्यम प्राणायाम उससे दुगुना और उत्तरीय उससे तिगुनी मात्रा मे कहा गया है ।।१४।।

निमेपोन्मेपणेमात्राकालोलघ्वक्षरस्तथा ।
प्रथमेनजयेत्स्वेदमध्यमेनचवेपथुम् ।
विपादहितृतीयेनजयेद्दोषाननुक्रमात् ।।१६
मृदुत्वसेव्यमानास्तुसिहशार्दूलकुञ्जराः ।।१७
वश्यमत्तयथेच्छातोनागनयतिहस्तिप. ।
तथैवयोगीछन्देनप्राणनयतिसाधितम् ।।१८
यथाहिसाधित सिहोमृगान्हतिनमानवान् ।
तद्वन्निषिद्धपवनःकिल्बिषननृणातनुम् ।।१९
तस्माद्युक्त सदायोगीप्राणायामपरोभवेत् ।
श्रूयतामुक्तिफलदतस्यावस्थाचतुष्टयम् ।।२०
ध्वस्ति प्राप्तिस्तथासवित्प्रसादश्चमहीपते ।
स्वरूपश्शृणुचैतेषाकथ्यमानमनुक्रमात् ।।२१

निमेष और उन्मेष का समय ही मात्रा है ऐसी बारह मात्रा होने पर लघु प्राणायाम होता है ।।१५।। पहले प्राणायाम होता है ।।१५।। पहले प्राणा-याम से स्वेद, दूसरे से कम्प और तीसरे से विषादादि दोषो की जीते ।।१६।। जैसे सेवा के द्वारा सिंह, व्याघ्र और हाथी भी कोमल स्वभाव हो जाते है, वैसे ही प्राणामाय द्वारा योगियो को प्राण को वश करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है ।।१७।। जैसे हाथी का स्वामी मत्त हाथी को वश करके इच्छानुमार चलाता है, वैसे ही योगीजन प्राण के द्वारा ही इच्छानुसार कार्य करने मे समर्थ होते है ।।१८।। जैसे पाला हुआ सिंह मृगो को मारता है, मनुष्यादि की हिंसा नही करता,वैसे साधित प्राणवायु के द्वारा पाप नष्ट होते है,देह नष्ट नही होता ।१९।

इसलिये योगियो को प्राणायाम परायण होना चाहिये, प्राणायाम की अवस्था चार प्रकार की है, जिससे मोक्ष फल की प्राप्ति होती है, अब इनका वर्णन करता हूँ ॥२०॥ हे राजन् ! प्राणायाम के ध्वस्ति, प्राप्ति, सवित् और प्रसाद यह चार भेद है । अब इनके स्वरूप को क्रमश बताता हू ॥२१॥

कर्म्मणामिष्टदुष्टानाजायतेफलसक्षय ।
चेतसोऽपकषायत्वयत्रसाध्वस्तिरुच्यते ॥२२
ऐहिकामुष्मिकान्कामाल्लोभमोहात्मक.न्स्वयम् ।
निरुध्यास्तेसदायोगीप्राप्ति सासार्वकालिकी ॥२३
अतीतानागतानर्थान्विप्रकृष्टतिरोहितान् ।
विजानातीन्दुसूर्य्यर्क्षग्रहाणाज्ञानसम्पदा ॥२४
तुल्यप्रभावस्तुयदायोगीप्राप्नोतिसविदम् ।
तदासम्विदितिख्याताप्राणायामस्यसास्थिति ॥२५
यान्तिप्रसाद येनास्यमन पञ्चचवायव. ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्चसप्रसादइतिस्मृत ॥२६
शृणुष्वचमहीपालप्राणायामस्यलक्षणम् ।
युञ्जतश्चसदायोगयादृग्विहितमासनम् ॥२७
पद्ममर्द्धासनचापितथास्वस्तिकमासनम् ।
आस्थाययोगयुञ्जीतकृत्वाचप्रणवहृदि ॥२८

ध्वस्ति उसे कहते है जिससे दूषित, अदूषित कर्मों का फल क्षीण हो और चित्त की मलीनता नष्ट हो ॥२२॥ प्राप्ति वह अवस्था कही गई है, जिसमे योगीजन लोभमोहात्मक समस्त काम को स्वय ही निरुद्ध करते है ॥२३॥ जिस अवस्था मे चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह और नक्षत्र के समान ज्ञान शक्ति को प्राप्त हुए योगीजन ॥२४॥ अतीत, अनागत और तिरोहित, इन सब विषयो को जान लेते है, वह अवस्था सवित् कही गयी है ॥२५॥ जिस अवस्था द्वारा पञ्चवायु, इन्द्रिय और उसके विषयो से योगी का चित्त शुद्ध हो जाता है, वह अवस्था ही प्रसाद कही जाती है ॥२६॥ हे राजन् ! अब प्राणायाम के लक्षण और योगारम्भ मे जिस आसन का अनुष्ठान उचित है, उसे सुनो ॥२७॥ पद्मासन, अर्द्धा-

सन, स्वस्तिकासन इत्यादि का अवलम्बन करके हृदय मे प्रणव का जप करता हुआ योगानुष्ठान मे लगे ॥२८॥

समं समासनोभूत्वासंहृत्यचरणावुभौ ।
संवृतास्यस्तथैवोरूसम्यग्विष्टभ्यचाग्रत ॥२९
पार्ष्णिभ्यालिङ्गवृषणावस्पृशन्प्रयत स्थित ।
किंचिदुन्नामितशिरादन्तैर्दन्तान्नसंस्पृशेत् ॥३०
संपश्यन्नासिकाग्रंस्वदिशश्चानवलोकयन् ।
रजसातमसोवृत्तिसत्त्वेनरजसस्तथा ॥३१
संछाद्य निर्म्मलेसत्त्वेस्थितोयुञ्जीतयोगवित् ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्य प्राणादीन्मनएवच ॥३२
निगृह्यसमवायेनप्रत्याहारमुपक्रमेत् ।
यस्तुप्रत्याहरेत्कामान्सर्वाङ्गानीवकच्छप ॥३३॥
सदात्मरतिरेकस्थ पश्यत्यात्मानमात्मनि ।
सबाह्याभ्यन्तरशौचंनिष्पाद्याकण्ठनाभित ॥३४
पूरयित्वाबुधोदेहंप्रत्याहारमुपक्रमेत् ।
प्राणायामादशद्वौचधारणासाभिधीयते ॥३५

सरल चित्त से सम आसन मे बैठे, दोनो पाँवो को सकोड कर मुख बंद करे तथा अग्र भाग मे दोनो ऊरु स्तब्ध करे ॥२९॥ तथा संयुक्त मन से इस प्रकार बैठे, जिससे उपस्थ और अण्डकोष का हाथ से स्पर्श न हो, शिर कुछ ऊपर की ओर उठावे तथा दाँत से दाँत का स्पर्श न होने दे ॥३०॥ अपनी नासिका के अग्रभाग मे दृष्टि रखे, दूसरी ओर न देखे। इसी अवस्था में रजोगुण मे तमोगुण और सत्वगुण से रजोगुण को ॥३१॥ नष्ट करके केवल निर्मल तत्त्व मे अवस्थान करता हुआ योगाभ्यास करे, इन्द्रिय के विषय से मन प्राणादि को ॥३२॥ निवृत्त करके जैसे कछुआ अपने अङ्गो को समेट लेता है, वैसे ही प्रत्याहार मे प्रवृत्त हो ॥३३॥ इस प्रकार आत्मा मे आसक्त रहने पर आत्मा के द्वारा ही आत्मा का दर्शन होता है, कण्ठ से नाभि तक बाह्याभ्यन्तर शुद्धि

करता हुआ ॥३४॥ देह को परिपूर्ण कर प्रत्याहार का साधन करे। प्राणायाम के दश प्रकार और धारणा के दो प्रकार कहे गये है ॥३५॥

द्वे धारणेस्मृतेयोगेयोगिभिस्तत्त्वदृष्टिभि· ।
तथावैयोगयुक्तस्ययोगिनोनियतात्मन ॥३६
सर्वेदोषा प्रणश्यन्तिस्वस्थश्चैवोपजायते ।
वीक्षतेचपरब्रह्मप्राकृताश्चगुणान्पृथक् ॥३७
व्योमादिपरमाणू श्चतथात्मानमकल्मषम् ।
इत्थयोगीयताहारःप्राणायामपरायण ॥३८
जिताजिताशनैर्भू मिमारोहेतयथागृहम् ।
दोषव्याधीस्तथामोहमाक्रान्ताभूरनिर्जिता ॥३९
विवर्धयतिनारोहेत्तस्माद्भू मिमनिर्जिताम् ।
प्राणानामुपसरोधात्प्राणायामइतिस्मृत ॥४०

तत्वदर्शी योगीजनो ने दो प्रकार की ही धारणा बतायी है नियतात्मा हो कर साधन करने पर ॥३६॥ योगी के सभी दोषो का शमन होता है और शान्ति मिलती है तथा सभी प्राकृत गुण और परब्रह्म का पृथक् रूप से दर्शन प्राप्त होता है ॥३७॥ तथा आकाशादि परमाणु एव विशुद्ध आत्मा से साक्षात्कार होता है, इस प्रकार नियताहार करता हुआ योगी प्राणायाम–परायण हो ॥३८॥ धीरे धीरे योगभूमि को जीत कर घर के समान उसी मे आरूढ रहे, यदि भूमि न जीती जाय तो उससे कामादि व्याधियो की ॥३९॥ और मोह की वृद्धि होती है, इस लिये बिना जीती हुई भूमि पर आरूढ न हो, जिससे पञ्च-प्राण सयत हों, वही प्राणायाम है ॥४०॥

(धारणेत्युच्यतेचेयधार्य्यतेयन्मनोयया ।
शब्दादिभ्य प्रवृत्तानियदक्षाणियतात्मभि· ॥४१
प्रत्याह्रियन्तेयोगेनप्रत्याहारस्तत स्मृत ।
उपायश्चात्रकथितोयोगिभिःपरमर्षिभिः ॥४२)
येनव्याध्यादयोदोषानजायन्तेहियोगिन ।
यथातोयार्थिनस्तोययन्त्रनालादिभिःशनैः ॥४३

आपिवेयुस्तथावायु पिवेद्योगीजितश्रमः ।
प्राङ्नाभ्याहृदयेचाथतृतीयेचतथोरसि ॥४४
कण्ठमुखेनासिकाग्रे नेत्रभ्रू मध्यमूर्द्ध सु ।
किञ्चतस्मात्परस्मिश्चधारणापरमास्मृता ॥४५
दशैताधारणा प्राप्यप्राप्नोत्यक्षरसाम्यताम् ।
नाध्मात क्षुधित.श्रान्तोनचव्याकुलचेतन ॥४६
युञ्जीतयोग राजेन्द्रयोगीसिद्धचर्थमाद्दत ।
नातिशीतेनचोष्णेवैनद्वन्द्वे नानिलात्मके ॥४७
कालेष्वेतेपुयुञ्जीतनयोगध्यानतत्पर ।
सशब्दाग्निजलाभ्याशेजीर्णगोष्ठे चतुष्पथे ॥४८
शुष्कपर्णचयेनद्याश्मशानेससरीसृपे ।
सभयेकूपतीरेवाचैत्यवल्मीकसचये ॥४६
देशेष्वेतेपुतत्त्वज्ञोयोगाभ्यासविवर्जयेत् ।
सत्त्वस्यानुपपत्तौचदेशकालविवर्जयेत् ॥५०

जिससे मन का धारण हो, वह धारणा है तथा जिस अवस्था में इन्द्रियो को अपने-अपने विषय से नियतात्मा पुरुष ॥४१॥ प्रत्याहरण करते है, वही प्रत्याहार है, योग सिद्ध ऋषियो ने इस विषय मे जो उपाय कहा है ॥४२। उससे योगी के देह मे व्याधियो का आक्रमण नही हो सकता । पिपासु जैसे पात्रादि से धीरे धीरे जल पीते हैं ॥४३॥ वैसे ही श्रम को जीत कर योगीजन धीरे-धीरे वायु का पान करते है, पहिले नाभि मे, फिर हृदय मे, फिर वक्ष स्थल मे ॥४४॥ फिर कण्ठ, वदन, नासाग्र, नेत्र, भौ, ऊर्ध्व प्रदेश और अन्त मे पर-ब्रह्म मे धारणा करनी उचित है ॥४५॥ इस दश प्रकार से धारणा का निर्द्देश हुआ है, इसकी सिद्धि से ब्रह्म सारूप्य की प्राप्ति होती है, योगी जन सिद्धि प्राप्त करने के लिये अति भाषण, क्षुधा, श्रम एव चित्त की चञ्चलता को ॥४६॥ हटाकर प्रयत्न पूर्वक योगाभ्यास करते है, अति शीत, अति ग्रीष्म या अत्यन्त वायु चलती हो उस समय ॥४७॥ ध्यान मे तत्पर हो कर योगाभ्यास करने का निषेध है, शब्द युक्त स्थान, अग्नि और जल के समीप, प्राचीन गोशाला या

चौराहा ॥४८॥ शुष्क पत्रो से युक्त स्थान, नदी तट, श्मशान, सर्पादि वाले स्थान, कुएँ के किनारे अथवा जहाँ सात्विक पदार्थ उपलब्ध न हो, उन सब स्थानो का परित्याग करे ॥४९-५०॥

नासतोदशर्नयोगेतस्मात्तत्परिवर्जयेत् ।
दोषानेताननादृत्यमूढत्वाद्योयुनक्तिवै ॥५१
विघ्नायतस्यवैदोषाजायन्तेतन्निबोधमे ।
बाधिर्य्यजडतालोप स्मृतेर्मूकत्वमन्धता ॥५२
ज्वरश्चजायतेसद्यस्तत्तदज्ञानयोगिन. ।
प्रमादाद्योगिनोदोषायद्येतेस्युश्चिकित्सितम् ॥५३
तेषानाशायकर्त्तव्ययोगिनातन्निबोधमे ।
स्निग्धायवागूमत्युष्णाभुक्त्वातत्रैवधारयेत् ॥५४
वातगुल्मप्रशान्त्यर्थमुदावर्त्ततथोदरे ।
यवागू वापिपवनवायुग्रन्थिप्रतिक्षिपेत् ॥५५
तद्वत्कपेमहाशैलस्थिरमनसिधारयेत् ।
विघातेवचसोवाचबाधिर्य्येश्रवणेन्द्रियम् ॥५६
यथैवाम्रफलध्यायेत्तृष्णार्त्तोरसनेन्द्रियम् ।
यस्मिन्यस्मिन्रुजादेहेतस्मिंस्तदुपकारिणीम् ॥५७

असत् बातो को न देखे, जो मूर्खता से इन सब बातो का विचार न करके योगाभ्यास करता है ॥५१॥ उसके कार्य मे सब दोष उत्पन्न होकर विघ्न रूप हो जाते हैं, उसे बधिरता, जडता, मूकता, अन्धता, स्मृति लोप ॥५२॥ या ज्वर की उत्पत्ति होती है, यदि प्रमाद वश यह दोष उत्पन्न हो जायें तो उनकी शान्ति के लिये जो चिकित्सा करनी चाहिये ॥५३॥ उसे भी सुनो, भले प्रकार पकायी हुई खिचडी स्निग्ध करके भोजन करे ॥५४॥ वात गुल्म, अफरा अथवा उदर रोगो के शमनार्थ खिचडी अवश्य खाय, इससे वायु रोग तथा वायु ग्रंथि रोग भी दूर हो जाता है ॥५५॥ कम्प के उत्पन्न होने पर मन मे अत्यत भारी पर्वत का धारण करे, वाणी के विलुप्त होने पर वाक्य धारणा करे और श्रवण शक्ति नष्ट हो जाय तो ॥५६॥ जैसे प्यासा मनुष्य जिह्वा से ही लाभ चिन्तन करता

है, वैसे ही श्रवणेन्द्रिय की धारणा करनी चाहिए, इसी प्रकार जिस-जिस अग मे जो व्याधि हो जाय, उस-उस अग का उपकार करने वाली क्रिया को करे ।।५७।।

धारयेद्धारणामुष्णेशीताशीतेचदाहिनं.म् ।
कीलशिरसिसस्थाप्यकाष्ठ काष्ठेनताडयेत् ।।५८
लुप्तस्मृतेस्मृति.सद्योयोगिनस्तेनजायते ।
द्यावापृथिव्यौवाय्वग्नीव्यापिनावपिधारयेत् ।।५९
अमानुपात्सत्त्वजाद्वाबाधास्त्वितिचिकित्सितम् ।
अमानुपसत्त्वमन्तर्योगिनप्रशेविद्यदि ।।६०
वाय्वग्निधारणेनैनदेहसस्थविनिर्दहेत् ।
एवसर्वात्मनारक्षाकार्य्यायोगविदानृप ।।६१
धर्मार्थकाममोक्षाणाशरीरसाधनयतः ।
प्रवृत्तिलक्षणाख्यानाद्योगिनोविस्मयात्तथा ।
विज्ञानविलययातितस्माद्गोप्या प्रवृत्तय ।।६२
अलौल्यमारोग्यमनिष्ठुरत्वगन्धशुभोमूत्रपुरीषमल्पम् ।
कान्ति प्रसाद स्वरसौम्यताचयोगवृत्ते प्रथमहिचिह्नम् ।।६३
अनुरागजनोयातिपरोक्षेगुणकीर्त्तनम् ।
नबिभ्यतिचसत्त्वानिसिद्धेर्लक्षणमुत्तमम् ।।६४
शीतोष्णादिभिरत्युग्रैर्यस्यबाधानविद्यते ।
नभीतिमेतिचान्येभ्यस्तस्यसिद्धिरुपस्थिता ।।६५

उष्ण मे शीतल और शीतल मे उष्ण धारणा करे, शिर मे सूक्ष्म काल को स्थित कर काष्ठ से उसे ठोके तो उससे ।।५८।। रोगी की लुप्त स्मृति तुरत उदित हो जाती है, अथवा स्मृति नष्ट होने पर आकाश, पृथिवी, वायु और अग्नि की धारणा करनी चाहिये ।।५९।। अमानुष सत्व से उत्पन्न विघ्नो मे, इस प्रका उपचार करे, योगियो के हृदय मे अमानुष सत्व के प्रवेश करने पर वह ।।६०। उसे वायु और अग्नि की धारणा से जलावे, इस प्रकार सर्वान्ति करण से अपन देह की रक्षा करना योग ज्ञानियो को कर्त्तव्य है ।।६१।। क्योकि धर्म, अर्थ, काम

मोक्ष की प्राप्ति का मूल देह ही है, प्रवृत्ति रूप वर्णन और विस्मय से ही योगी के विज्ञान का नाश होता है, इसलिए प्रवृत्ति को गुप्त ही रखे ।।६२।। अचचलता, आरोग्य, अनिष्ठुरता, देह मे सुगधि का सचार, मूत्र-पुरीष की न्यूनता, कान्ति, प्रसाद और स्वर माधुर्य यह सब योग प्रवृत्ति के प्राथमिक लक्षण है ।।६३।। जिस अवस्था के प्राप्त होने पर मनुष्य पीछे मे उसका गुणगान करे और सब जीव जिससे निर्भय रहे, वही सिद्धि का श्रेष्ठ लक्षण है ।।६४।। जिसके लिए अत्युग्र शीत या उष्ण ता आदि बाधक न हो सके और जिस किसी अन्य को भय न हो, उसी को सिद्धि प्राप्त हुई समझो ।।६५।।

३२—योगसिद्धि

उपसर्गाःप्रवर्तन्तेदृष्टे ह्यात्मनियोगिन. ।
येतास्तेसप्रवक्ष्यामिसमासेननिबोधमे ।।१
काम्याःक्रियास्तथाकामान्मानुषानभिवाञ्छति ।
स्त्रियोदानफलविद्यामयाकुप्यधनदिवम् ।।२
देवत्वममरेशत्व रसायनवयःक्रियाम् ।
मरुत्प्रपतनयज्ञ जलाग्न्यावेशनतथा ।।३
श्राद्धानासर्वदानानाफलानिनियमास्तथा ।
तथोपवासात्पूर्ताच्चदेवताभ्यर्चनादपि ।।४
तेभ्यस्तेभ्यश्चकर्मभ्यउपसृष्टोऽभिवाञ्छति ।
चित्तमित्थ वर्तमानयत्नाद्योगीनिवर्तयेत् ।।५
ब्रह्मसङ्गिमन कुर्वन्नुपसर्गात्प्रमुच्यते ।
उसर्गैर्जितैरेभिरुपसर्गास्तत पुन. ।।६

दत्तात्रेय बोले—आत्म-दर्शन होने पर जो उपसर्ग योगियो को उत्पन्न हो जाते है, उन्हे सक्षिप्त रूप से कहता हूँ ।।१।। उस समय विभिन्न प्रकार की काम्य क्रिया और अनेक प्रकार के भोगो के उपभोग की इच्छा होती है, स्त्री, दान,

फल, विद्या, माया, कुए का जल, धन, स्वर्ग ॥२॥ देवत्व, अमरत्व रसायन, वायु युक्त स्थान मे कूदना, यज्ञ, जल तथा अग्नि मे प्रविष्ट होना ॥३॥ सब श्राद्धो और दानो का फल एव नियम इत्यादि मे योगी की इच्छा का उदय होता है, उस समय उपवास, पूर्तादि, देव-पूजन ॥४॥ आदि उस उस कर्म मे जब जब युक्त होने की इच्छा हो, तब-तब उस-उस विषय से यत्न पूर्वक निवृत्ति प्राप्त करे ॥५॥ इस प्रकार विषयो से निवृत्ति लाभ करके ही ब्रह्म साक्षी करते हुए उपसर्ग से बचा जा सकता है ॥६॥

योगिन सप्रवर्तन्तेसात्वराजसतामसा ।
प्रातिभःश्रावणोदैवोभ्रमावर्त्तौतथापरौ ॥७
पञ्चैतेयोगिनायोगविघ्नायकटुकोदया ।
वेदार्था काव्यशास्त्रार्थाविद्याशिल्पान्यशेषत ॥८
प्रतिभान्तियदस्येतिप्रातिभ सतुयोगिन ।
शब्दार्थानखिलान्वेत्तिशब्दगृह्णातिचैवयत् ॥९
योजनानासहस्रेभ्य श्रावण सोऽभिधीयते ।
समन्ताद्वीक्षतेचाष्टौसयदादेवयोनयः ॥१०
उपसर्गतमप्याहुर्दैवमुन्मत्तवद्बुधा ।
भ्राम्यतेयन्निरालम्बमनोदोषेणयोगिन ॥११
समस्ताचारविभ्र शाद्भ्रम सपरिकीर्तितः ।
आवर्तइवतोयस्यज्ञानावर्त्तोयदाकुल ॥१२
नाशयेच्चित्तमावर्तउपसर्ग सउच्यते ।
एतैर्नाशितयोगास्तुसकलादेवयोनय ॥१३
उपसर्गैर्महाघोरैरावर्तन्तेपुन पुन ।
प्रावृत्यकम्बलशुक्लयोगीतस्मान्मनोमयम् ॥१४

इन सब उपसर्गो पर विजय कर लेने पर योगी के समक्ष सात्विक, राजमिक और तामसिक भेद से अपरापर विघ्न आक्रमण करते है उनमे प्रातिभ, श्रावण, दैत्य, आवर्त्त ॥७॥ यह उपसर्ग भयकर रूप से योग मे विघ्न उपस्थित करने के लिए प्रस्तुत होते है, जिससे वेदार्थ, काव्य, शास्त्रार्थ, विद्या और शिल्प

का ॥८॥ योगी के मन मे प्रतिभात हो, वही प्रातिभ कहा है, जिससे सम्पूर्ण शब्द का अर्थ ज्ञात हो जाय ॥९॥ हजार-हजार योजन दूर का शब्द भी सुनाई पडे वही श्रावणी है, जिसके द्वारा देवता के समान हुआ योगी उन्मत्त के समान आठो दिशाओ को देखता है ॥१०॥ उसे पडितो ने दैव उपसर्ग कहा है, जिससे योगी का चित्त आचार भ्रष्टता और मन के दूषित होने से निराश्रय रूप से भ्रमण करता है ॥११॥ वही 'भ्रम' कहा जाता है, जिसके प्रभाव से ज्ञानावर्त्त के समान आकुल होकर ॥१२॥ चित्त को विनष्ट करता है, वही आवर्त्त उपसर्ग कहा गया है, इन सब उपसर्गो के प्रभाव से योगी सम्पूर्ण देवयोनि ॥१३॥ तथा योग से भ्रष्ट होकर ससार चक्र मे बारम्बार घूमते है, इसलिए मन से निर्मित श्वेत कम्वल से आवृत्त हो ॥१४॥

शरीरमडलेद्दृष्ट्वागुरुज्ञानततोहियत् ।
ज्ञानपूर्वोपियोयोगोज्ञातव्योवैविपश्चिता ॥१५
चिन्तयेत्परमब्रह्मकृत्वातत्प्रवणमन. ।
योगयुक्त सदायोगोलघ्वाहारोजितेन्द्रिय ॥१६
सूक्ष्मास्तुधारणाःसप्तभूराद्यामूर्ध्निधारयेत् ।
धरित्रीधारयेद्योगीतत्सौक्ष्म्यप्रतिपद्यते ॥१७
आत्मानमन्यतेचोर्वीतद्गधचजहातिस ।
तथैवाप्सुरससूक्ष्मतद्वद्रूपचतेजसि ॥१८
स्पर्शवायौतथातद्वद्बिभ्रतस्तस्यधारणाम् ।
व्योम्न सूक्ष्माप्रवृत्तिचशब्दतद्वज्जहातिस ॥१९
मनसासर्वभूतानामनस्याविशतेयदा ।
मानसी धारणाबिभ्रन्मनःसूक्ष्मचजायते ॥२०
तद्वद्बुद्धिमशेषाणासत्त्वानामेत्ययोगवित् ।
परित्यजतिसम्प्राप्यबुद्धिसौक्ष्म्यमनुत्तमम् ॥२१

शरीर मडल मे गुरु ज्ञान का दर्शन करे, क्योकि ज्ञान से योग करना सीखना चाहिये ॥१५॥ मन मे परब्रह्म का चिन्तन और उन्ही का ध्यान करे, निरतर जितेन्द्रिय, अल्प भोजी तथा योग युक्त होकर ॥१६॥ मस्तक मे भूरादि

सात प्रकार की सूक्ष्म धारणा धारण करने से उसे उसका सूक्ष्म ज्ञात होगा।१७। इस प्रकार आत्म-चिन्तन करने से पृथिवी के बधन को काटने मे समर्थ होगा, इसी प्रकार जल मे सूक्ष्म रस, तेज मे रूप ॥१८॥ वायु मे स्पर्श और आकाश मे सूक्ष्मा प्रवृत्ति तथा शब्द धारण पूर्वक परित्याग करे ॥१९॥ मन के द्वारा समस्त भूत के मन मे प्रवेश करके मानसी धारणा करने से ही सूक्ष्म मन उत्पन्न होता है ॥२०॥ इस प्रकार योगी समस्त भूत की बुद्धि मे प्रवेश करके अनुत्तमा सूक्ष्म बुद्धि रूप का लाभ करके उसे छोडता है ॥२१॥

परित्यजतिसूक्ष्माणिसप्तत्वेतानियोगवित् ।
सम्यग्विज्ञाययोऽलर्कतस्यावृत्तिर्नविद्यते ॥२२
एतासाधारणानातुसप्तानासौक्ष्म्यमात्मवान् ।
दृष्ट्वादृष्ट्वातत सिद्धित्यक्त्वात्यक्त्वापराव्रजेत् ॥२३
यस्मिन्यस्मिश्चकुरुतेभूतेरागमहीपते ।
तस्मिस्तस्मिन्समासक्तिसप्राप्यसविनश्यति ॥२४
तस्माद्विदित्वासूक्ष्माणिसप्तक्तानिपरस्परम् ।
परित्यजतियोदेहीसपर प्राप्नुयात्पदम् ॥२५
एतान्येवतुसधायसप्तसूक्ष्माणिपार्थिव ।
भूतादीनाविनाशोऽत्रसद्भावज्ञस्यमुक्तये ॥२६
गन्धादिषुसमासक्तिसम्प्राप्यसविनश्यति ।
पुनरावर्त्ततेभूपसब्रह्मापरमानुषम् ॥२७
सप्तैताधारणायोगीसमतीत्ययदिच्छति ।
तस्मिस्तस्मिॅल्लयसूक्ष्मेभूतेयातिनरेश्वर ॥२८
देवानामसुराणावागन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
देहेषुलयमायातिसगनाप्नोतिचक्वचित् ॥२९

जो योगी सात प्रकार इन सूक्ष्म भावो को जानकर छोडता है, उसे पुनर्जन्म नही लेना होता ॥२२॥ आत्मवान् योगी सात प्रकार की धारणाओ के सूक्ष्मत्व को बारम्बार देखकर, बारम्बार सिद्धि का विसर्जन करता हुआ परम-गति पाकर ॥२३॥ जिस–जिस भूत मे अनुरागी होता है, उसी–उसी मे आसक्ति

को प्राप्त होता हुआ विनष्ट होजाता है ॥२४॥ इसलिए परस्पर संसक्त भूतो को [illegible] जा उनका परित्याग कर देता है, उमी को परमपद की प्राप्ति होती [illegible]॥२५॥ [illegible] प्रकार के सूक्ष्म सधान पूर्वक भूतादि मे राग छोडकर ही [illegible] को जानकर मोक्ष लाभ करता है ॥२६॥ हे भूपते ! गन्धादि मे आसक्ति ही नाश का कारण है, उसीसे उमका ससार चक्र मे पुनरावर्तन होता है ॥२७॥ योगी इन मात प्रकार की धारणाओ का अतिक्रमण करके उस–उस भूत मे लीन होजाना है और देव, दानव, गन्धर्व, नाग, राक्षस आदि के देह मे लीन होकर भी किमी मे आसक्त नही होता ॥२८-२९॥

अणिमालघिमाचैवमहिमाप्राप्तिरेवच ।
प्राकाम्यचतथेशित्व वशित्वचतथापरम् ॥३०
यत्रकामवसायित्वगुणानेतास्तथैश्वरान् ।
प्राप्नोत्यष्टौनरव्याघ्रपरनिर्वाणसूचकान् ॥३१
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमोऽणीयाञ्छीघ्रत्वलघिमागुण ।
महिमाशेषपूज्यत्वात्प्राप्तिर्नाप्राप्यमस्ययत् ॥३२
प्राकाम्यमस्यव्यापित्वादीशित्वचेश्वरोयत ।
वशित्वाद्वशिमानामयोगिन सप्तमोगुण ॥३३
यत्रेच्छास्थानमप्युक्त यत्रकामावसायिता ।
ऐश्वर्यकारणैरेभिर्योगिन प्रोक्तमष्टधा ॥३४
मुक्तिससूचकभूपपरनिर्वाणमात्मन ।
ततोनजायतेनैवर्द्धतेनविनश्यति ॥३५

वह अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य ईशित्व, वशित्व और कामावसायित्व इन आठ प्रकार के निर्वाण प्रदायक ऐश्वर्यात्मक गुणो को प्राप्त करता है ॥३०-३१॥ जिसके द्वारा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हो सके, वह अणिमा है, जिमके द्वारा सब कार्यो मे शीघ्रता उत्पन्न हो सके वह लघिमा है, जिसके द्वारा सबका पूजनीय हो सके वह महिमा है, जिसके द्वारा समस्त इच्छित की प्राप्ति हो सके वह प्राप्ति है ॥३२॥ जिसके द्वारा व्यापित्व शक्ति उत्पन्न हो सके वह प्राकाम्य है, जिसके द्वारा ईश्वरत्व की प्राप्ति हो वह ईशित्व है, जिसके द्वारा

सब वशीभूत हो सके, वह वशित्व है, यह वशित्व ही योगियो का सातवाँ गुण है ।।३३।। जिसके द्वारा स्वेच्छानुसार गमन कर सके और स्वेच्छानुसार कार्य सिद्ध हो सके वह कामावसायित्व है, इन आठ प्रकार के गुणो से ईश्वर के सब कार्य करने मे समर्थ होजाता है ।।३४।। यह सब गुण मोक्ष के सूचक हैं, इनके मिलने पर मुक्ति काल उपस्थित समझे, फिर उसे जन्म ग्रहण वृद्धि और मरण के चक्र मे नही पडना होगा ।।३५।।

नापिक्षयमवाप्नोतिपरिणामनगच्छति ।
छेदक्लेदतथादाहशोषभूरादितोनच ।।३६
भूतवर्गादवाप्नोतिशब्दाद्यैर्ह्रियतेनच ।
नचास्यसन्तिशब्दाद्यास्तद्भोक्तातैर्नयुज्यते ।।३७
यथाहिकानकखण्डमपद्रव्यवदग्निना ।
दग्धदोषद्वितीयेनखण्डेनैक्य व्रजेन्नृप ।।३८
नविशेषमवाप्नोतितद्वद्योगाग्निनायति ।
निर्दग्धदोषस्तेनैक्यप्रयातिब्रह्मणासह ।।३९
यथाग्निरग्नौसक्षिप्त समानत्वमनुव्रजेत् ।
तदाख्यस्तन्मयोभूतोनगृह्यतेविशेषत ।।४०
परेणब्रह्मणातद्वत्प्राप्यैक्यदग्धकिल्बिष ।
योगीयातिपृथग्भावनकदाचिन्महीपते ।।४१
यथाजलजलेनैक्यनिक्षिप्तमुपगच्छति ।
तथात्मासाम्यमभ्येतियोगिन परमात्मनि ।।४२

उसको क्षय की प्राप्ति कभी नही होगी, उसे कभी भूरादि भूतो से छिन्न, भिन्न, क्लिन्न, दग्ध अथवा शुष्क नही होना पडेगा ।।३६।। शब्दादि उसे अपहृत न कर सकेगे, विषयो के साथ उसका कोई सम्बन्ध न रहेगा, वह भोक्ता भी न होगा तथा उनसे उसका स्पर्श भी न हो सकेगा ।।३७।। हे राजन् ! जैसे स्वर्ण के टुकडे को अपद्रव्य के समान अग्नि मे तपा कर दोष रहित करने पर एक निर्मल स्वर्ण खंड का सयोग होता है ।।३८।। किसी प्रकार का प्रभेद उसमे नही दीखता, वैसे ही योगाग्नि मे रागद्वेषादि दोषो को तपाने से योगी भी ब्रह्म के

साथ सयोग प्राप्त करता है ॥३९॥ जैसे अग्नि मे अग्नि डाले तो वह अभेद होती है तथा तदात्म हो जाती है ॥४०॥ वैसे ही दोषो के जल जाने पर योगी भी ब्रह्म मे तदात्म रूप को प्राप्त होता है, उसका पृथक् भाव नही रहता ॥४१॥ जिस प्रकार जल मे गिरा हुआ जल समभाव होता है, वैसे ही योगियो का आत्मा भी ब्रह्म मे समभाव हो जाता है ॥४२॥

३३–योगचर्या

भगवन्योगिनश्चर्य्याश्रोतुमिच्छामितत्त्वत ।
ब्रह्मवर्त्मन्यनुसरन्यथायोगीनसीदति ॥१
मानापमानौयावेतौप्रत्युद्वेगकरौनृणाम् ।
तावेवविपरीतार्थौयोगिन सिद्धिकारकौ ॥२
मानापमानौयावेतौतावेवाहुर्विषामृते ।
अपमानोऽमृततत्रमानस्तुविषमविषम् ॥३
चक्षु पूतन्यसेत्पादवस्त्रपूतजलपिबेत् ।
सत्यपूतावदेद्वाणीबुद्धिपूतचचिन्तयेत् ॥४
आतिथ्यश्राद्धयज्ञेषुदेवयात्रोत्सवेषुच ।
महाजनेषुसिद्ध्यर्थनगच्छेद्योगवित्क्वचित् ॥५
व्यस्तेविधूमेव्यङ्गारेसर्वस्मिन्भुक्तवज्जने ।
अटेतयोगविद्भैक्ष्यनतुतेष्वेवनित्यशः ॥६
यथैवमवमन्यतेजना परिभवन्तिच ।
तथायुक्तश्चरेद्योगीसतावर्त्मनदूषयन् ॥७

अलर्क बोले—हे भगवन् ! योगियो के जिस आचरण से ब्रह्मपथ के अनुगामी होकर नाश को प्राप्त नही होना होता है उसे मै यथार्थ रूप से सुनना चाहता हू ॥१॥ दत्तात्रेयजी बोले—मान और अपमान ही प्रीति और उद्वेग के कारण है, यदि योगी इन दोनो को विपरीतार्थक अर्थात् मान को अपमान और

अपमान को मान समझले तो यह सिद्धि देने वाले होते है ।।२।। मान, अपमान ही अमृत और विष हे, मान को विष और अपमान को अमृत माने ।।३।। जल को वस्त्र से छान कर पीवे, सत्य से पवित्र हुए वचन ही बोले तथा बुद्धि पूर्वक विचार कर ही चिन्तन करे ।।४।। आतिथ्य, श्राद्ध, यज्ञ, यात्रा और महोत्सव मे कभी न जाय तथा सिद्धि के लिए महाजनो के पास भी गमन न करे ।।५।। जव गृहस्थ के गृह की भी अग्नि शान्त होजाय, सब मनुष्य भोजन करके निश्चिन्त हो ले, उसी समय योगी को भिक्षा के लिये जाना चाहिये ।।६।। जिससे मनुष्य अपमान करे, ऐसी चेष्टा करता हुआ, साधुत्व को कभी दूषित न करता हुआ ही विचरण करे ।।७।।

भैक्ष्यचरेद्गृहस्थेषुयायावरगृहेपुच ।
श्रेष्ठातुप्रथमाचेतिवृत्तिरस्यपदिश्यते ।।८
अथनित्यगृहस्थेपुशालीनेषुचरेद्यति. ।
श्रद्दधानेपुदान्तेपुश्रोत्रियेषुमहात्मसु ।।९
अतऊर्ध्वपुनश्चापिअदुष्टापतितेषुच ।
भैक्ष्यचर्य्याविवर्णेषुजघन्यावृत्तिरिष्यते ।।१०
फलमूलप्रियगु वाकरणापिण्याकसक्तव ।।११
इत्येतेचशुभाहारायोगिनासिद्धिकारका ।
तत्प्रयु ज्यान्मुनिर्भक्तचापरमेणसमाधिना ।।१२
अप पूर्वसकृत्प्राश्यतूष्णीभूत्वासमाहित ।
प्राणायेतिततस्तस्यप्रथमाह्याहुति स्मृता ।।१३
अपानायद्वितीयातुसमानायेतिचापरा ।
उदानायचतुर्थीस्याद्व्यानायेतिचपञ्चमी ।।१४

गृहस्थो अथवा यायावर पुरुषो के घर से ही भिक्षा ले, उसमें प्रथम वृत्ति ही प्रधान मानी गयी है ।।८।। जो गृहस्थ लज्जावान्, श्रद्धावान्, चतुर, श्रोत्रिय, महात्मा, निर्दोष तथा अपतित है, उसी के घर भिक्षा माँगे, विवर्ण पुरुषो के यहाँ से भिक्षा लेने को जघन्य वृत्ति कहा गया है ।।९-१०।। यवागू, मट्ठा, दूध, यावक, कुलथी, फल, मूल, प्रियगु, कण, पिण्याक, सत्तू इनकी

भिक्षा ले ।।११।। यह वस्तुएं कल्याण करने और सिद्धि देने वाले आहार के रूप मे निर्दिष्ट है, इसलिए सावधानी पूर्वक यह वस्तु उपभोग करे ।।१२।।भोजन के पहिले मौन रहकर पहले एक बार जल पीकर प्राणाय स्वाहा कहता हुआ आहार करे, योगियो की यही प्रथम आहुति मानी गयी है ।।१३।। फिर 'अपानाय' कहकर दूसरी, 'समानाय' कहकर तीसरी, 'उदानाय' कहकर चौथी और 'व्यानाय' कहकर पाँचवी आहुति दे ।।१४।।

प्राणायामै पृथक्कृत्वाशेषभुञ्जीतकामत ।
अप पुन सकृत्प्राश्यआचम्यहृदयस्पृशेत् ।।१५
अस्तेयब्रह्मचर्यचत्यागोऽलोभस्तथैवच ।
व्रतानिपचभिक्षूणामहिसापरमाणिवै ।।१६
अक्रोधोगुरुशुश्रूषाशौचमाहारलाघवम् ।
नित्यस्वाध्यायइत्येतेनियमा परिकीर्तिता ।।१७
सारभूतमुपासीतज्ञानयत्कार्यसाधकम् ।
ज्ञानानाबहुतायेययोगविघ्नकरोहिसा ।।१८
इदज्ञेयमिदज्ञेयमितियस्तृषितश्चरेत् ।
अपिकल्पसहस्रेषुनैवज्ञेयमवाप्नुयात् ।।१९
त्यक्तसङ्गोजितक्रोधोलघ्वाहारीजितेन्द्रिय ।
विधायबुद्ध्याद्वाराणिमनोध्यानेनिवेशयेत् ।।२०
शून्येष्वेवावकाशेषुगुहासुचवनेषुच ।
नित्ययुक्त सदायोगीध्यानसम्यगुपक्रमेत् ।।२१

फिर प्राणायाम द्वारा पृथक् करते हुए स्वेच्छानुसार शेष भोजन करे, फिर एकबार जल पीकर आचमन करे और हृदय को स्पर्श करे ।।१५।। अस्तेय, ब्रह्मचर्य, त्याग, अलोभ, अहिसा यह पाँच परम व्रत भिक्षुक के लिये कहे गये है ।।१६।। तथा अक्रोध, गुरु सेवा, शौच, लघु, आहार और नित्य स्वाध्याय यह पाँच नियम बताये है ।।१७।। कार्य सिद्धि वाले सार रूप ज्ञान की ही आलोचना करे, क्योकि अनेक प्रकार की ज्ञान विषयक चर्चा से योग मे विघ्न पडता है ।।१८।। जो योगी ज्ञेय पदार्थ की जिज्ञासा करते हुए तृषित चित्त से भ्रमते है

उनको हजार कल्प मे भी ज्ञेय पदार्थ की उपलब्धि नही हो सकती ॥१९॥ सग का परित्याग करता हुआ अक्रोधी, लघुभोजी और जितेन्द्रिय होकर बुद्धि योग से विधान करके चित्त को ध्यान–मग्न करे ॥२०॥ निर्जन स्थान गुफा तथा वन मे जाकर सदा सम्यक् विधान पूर्वक ध्यान-रत हो ॥२१॥

वाग्दण्ड कर्मदण्डश्चमनोदण्डश्चतेत्रय ।
यस्यतेनियतादण्डा सत्रिदण्डीमहायति ॥२२
सर्वमात्ममययस्यसदसज्जगदीदृशम् ।
गुणागुणमयतस्यक प्रिय कोनृपाप्रिय ॥२३
विशुद्धबुद्धि समलोष्ठकाञ्चन समस्तभूतेपुसम समाहित ।
स्थानपरशाश्वतमव्ययचयर्निर्हिगत्वानपुन प्रजायते ॥२४
वेदाच्छ्रेष्ठा सर्वयज्ञक्रियाश्चयज्ञाज्जाप्यज्ञानमार्गश्चजप्यात् ।
ज्ञानाद्ध्यानसगरागव्यपेततस्मिन्प्राप्तेशाश्वतस्योपलब्धि ॥२५
समाहितोब्रह्मपरोऽप्रमादीशुचिस्तथैकान्तरतिर्यतेन्द्रिय ।
समाप्नुयाद्योगमिममहात्माविमुक्तिमाप्नोतितत स्वयोगत ॥२६

वाग्दड, कर्मदण्ड और मनोदण्ड को वश मे रखने वाला त्रिदण्डी ही महायती कहा जाता है ॥२२॥ इस असत्–असत्, गुण, अगुण युक्त दिखाई पडने वाले विश्व को जो योगी आत्ममय मानते है, उनके लिए कौन प्रिय और कौन अप्रिय है ? ॥२३॥ जो विशुद्ध बुद्धि से लोहा और सुवर्ण को समान मानते तथा समस्त भूत मे समाहित होकर सर्वाधार, शाश्वत एव अव्यय ब्रह्म को सर्वत्र विद्यमान देखते है, उन्हे पुनर्जन्म नही धारण करना होता ॥२४॥ निखिल वेद और सब प्रकार की यज्ञ क्रिया उत्कृष्ट है, उस यज्ञ से जप श्रेष्ठ है, जप से ज्ञानमार्ग और ज्ञानमार्ग से नि सग और राग हीन ध्यान श्रेष्ठ है, क्योकि इस ध्यान योग के द्वारा ही शाश्वत ब्रह्म की प्राप्ति होती है ॥२५॥ जो सावधानी से ब्रह्मपरायण, प्रमाद रहित, एकान्तवासी और जितेन्द्रिय होकर योग–साधन करते है, वे आत्मा मे आत्मा के सयोग को पाकर मोक्ष लाभ करते है ॥२६॥

३४---ओंकार स्वरूप कथन

एवयोवर्त्ततेयोगीसम्यग्योगव्यवस्थित ।
नसङ्यावर्तितु शक्योजन्मान्तरशतैरपि ।।१
दृष्ट्वाचपरमात्मानप्रत्यक्षविश्वरूपिणम् ।
विश्वपादशिरोग्रीवविश्वेशविश्वभावनम् ।।२
तत्प्राप्तयेमहत्पुण्यमोमित्येकाक्षरजपेत् ।
तदेवाध्ययनतस्यस्वरूपश्शृण्वत परम् ।।३
अकारश्चतथोकारोमकारश्चाक्षरत्रयम् ।
एतास्तिस्र स्मृतामात्राःसात्त्वराजसतामसा ।।४
निर्गु णायोगिगम्यान्याचाधर्ममात्रोध्वंसस्थिता ।
गान्धारीतिचविज्ञेयागान्धारस्वरसश्रया ।।५
पिपीलिकागतिस्पर्शाप्रयुक्तामूर्ध्निलक्ष्यते ।
यथाप्रयुक्तओङ्कार प्रतिनिर्य्यातिमूर्द्ध नि ।।५
तथोङ्कारमयोयोगीत्वक्षरेत्वक्षरोभवेत् ।
प्राणोधनु.शरोह्यात्माब्राह्मवेध्यमनुत्तमम् ।।७

दत्तात्रेयजी बोले—जो योगी इस प्रकार सम्यक् विधान पूर्वक योग युक्त होते है, वह सौ-सौ जन्मान्तर मे भी अपने पद से निवृत्त नही होते ।।१।। जो विश्व स्वरूप, विश्वेश्वर और विश्वभावन है तथा विश्व ही जिनके पाद, ग्रीवा और मस्तक है उन्ही परब्रह्म को प्रत्यक्ष करके योगी ।।२।। उनको पाने के निमित्त 'ॐ' इस एकाक्षर मन्त्र का जप करे, यही उनका स्वाध्याय है, इसी ओंकार स्वरूप का श्रवण करना चाहिये ।।३।। अकार, उकार और मकार यही तीन अक्षर ओंकार स्वरूप है, इन्हे तीन मात्रा समझो यही मात्रा के क्रम से सात्विक, राजसिक और तामसिक होते है ।।४।। तथा ओंकार मे एक अर्द्ध मात्रा और है, वह तीनो गुणो से परे है, ऊर्ध्व मे अवस्थित योगियो को गम्य है, इसमे गाधार स्वर का आश्रय होने से यह गाधारी नाम से प्रसिद्ध है ।।५।। यह मात्रा चीटी के समान गति और स्पर्श वाली है, यह शिरोभाग मे दिखाई देती

है, तथा जिम प्रकार ओंकार प्रयुक्त यह शिरोभाग में जाती है ।।६।। वैसे ही योगी अक्षर-अक्षर मे ओंकार युक्त होता है, प्राण को धनुष रूप, आत्मा को बाण रूप और ब्रह्म को लक्ष्य रूप जाने ।।७।।

अप्रमत्तेनवेद्धव्यशरवत्तन्मयोभवेत् ।
ओमित्येतत्त्रयोवेदास्त्रयोलोकास्त्रयोऽग्नय ।।८
विष्णुर्ब्रह्माहरश्चैवऋक्सामानियजूंषिच ।
मात्रा सार्द्धाश्चतिस्रश्चविज्ञेयाःपरमार्थत ।।९
तत्रयुक्तस्तुयोयोगीसतल्लयमवाप्नुयात् ।
अकारस्त्वथभूर्लोकउकारश्चोच्यतेभुव ।।१०
सव्यञ्जनोमकारश्चस्वर्लोक परिकल्प्यते ।
व्यक्तातुप्रथमामात्राद्वितीयव्यक्तसज्ञिता ।।११
मात्रातृतीयाचिच्छक्तिरर्धमात्रापरपदम् ।
अनेनैवक्रमेणैताविज्ञेयायोगभूमय. ।।१२

प्रमाद रहित होकर ही बाण के समान ब्रह्म को विद्ध करने मे तन्मय हो मकना है, ओंकार ही त्रिवेद, त्रैलोक्य और तीनो अग्नि ।।८।। ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा ऋक्, यजु, साम स्वरूप है, परम अर्थ से ओंकार की साढे तीन मात्रा है । ९।। इम ओंकार मे मिलकर योगी उममे लीन होते है, अकार भूर्लोक, उकार भुवर्लोक ।।१०।। तथा व्यञ्जन युक्त मकार स्वर्लोक कहा गया है, उसकी प्रथम मात्रा व्यक्ता, द्वितीय अव्यक्ता ।।११।। तृतीय चिच्छक्ति और चतुर्थ परम-पद है, इस प्रकार क्रम पूर्वक इसे योगभूमि समझो ।।१२।।

ओमित्युच्चारणात्सर्वगृहीतसदसद्भवेत् ।
ह्रस्वातुप्रथमामात्राद्वितीयादैर्घ्यसयुता ।।१३
तृतीयाचप्लुताधाख्यावचस सानगोचरा ।
इत्येतदक्षरब्रह्मपरमोकारसज्ञितम् ।।१४
यस्तुवेदनर सम्यक्तयाध्यायतिवापुन ।
ससारचक्रमुत्सृज्यत्यक्तत्रिविधबन्धन ।।१५

प्राप्नोतिब्रह्मरिगलयंपरमेपरमात्मनि ।
आक्षीणकर्मबन्धश्चज्ञात्वामृत्युमरिष्टत ॥१६
उत्क्रान्तिकालेसम्मृत्यपुनर्योगित्वमृच्छति ।
तस्मादसिद्धयोगेनसिद्ध योगेनवापुन. ।
ज्ञेयान्यरिष्टानिसदायेनोत्क्रातौनसीदति ॥१७

केवल ॐ का उच्चारण करते ही सदैव सत्–असत् का ग्रहण होजाता है, प्रथम मात्रा ह्रस्व और द्वितीय मात्रा दीर्घ है ॥१३॥ तृतीय मात्रा प्लुत स्वरूप है और अर्द्ध मात्रा का तो स्वरूप वर्णन ही नहीं किया जा सकता, इस प्रकार जो योगी ओंकार स्वरूप अक्षर परब्रह्म को ॥१४॥ जानकर उनका ध्यान करते है वह ससार चक्र का अतिक्रमण करते हुए तीनो बन्धनो को छोड कर ॥१५॥ उस परब्रह्म मे ही लीन हो जाते है, यदि उनके कर्म-बन्धन क्षीण न हो तो वह अरिष्ट द्वारा मृत्यु काल को जानकर ॥१६॥ उस समय स्मृति लाभ पूर्वक योगित्व को पुन प्राप्त होते है, इसलिए सिद्ध या असिद्ध कैसा भी योगी हो, अरिष्ट का ज्ञान होना ही चाहिये, क्योकि अरिष्ट के ज्ञान से मरण-काल मे दु ख की प्राप्ति नही होती ॥१७॥

३५--अरिष्ट कथन

अरिष्टानिमहाराजश्शृणुवक्ष्यामितानिते ।
येषामालोकनान्मृत्यु निजजानातियोगवित् ॥१
देवमार्गंध्रुवशुक्रसोमच्छायामरुन्धतीम् ।
योनपश्येन्नजीवेत्सनरःसवत्सरात्परम् ॥२
अरश्मिबिम्बसूर्य्यस्यवह्निचैवाशुमालिनम् ।
दृष्ट्वैकादशमासेभ्योनरोनोर्ध्वनुजीवति ॥३
वान्तेमूत्रपुरीषेचय स्वर्णरजततथा ।
प्रत्यक्षकुरुतेस्वप्नेजीवेत्सदशमासिकम् ॥४

दृष्ट्वाप्रेतपिशाचादीन्गन्धर्वनगराणिच ।
सुवर्णवर्णान्वृक्षांश्चनवमासान्सजीवति ।।५
स्थूल कृश कृश स्थूलोयोऽकस्मादेवजायते ।
प्रकृतेश्चनिवर्तेननस्यायुश्चाष्टमासिकम् ।।६
खण्ड यस्यपदपार्ष्ण्यापादस्याग्रे चवाभवेत् ।
पांशुकर्दमयोर्मध्येसप्तमासान्सजीवति ।।७

दत्तात्रेयजी बोले—हे राजन्! अब तुम्हारे प्रति समस्त अरिष्ट का वर्णन करता हूँ, श्रवण करो, इन्हें देख कर योगी अपना मृत्यु काल समझले ।।१।। देवमार्ग, ध्रुव, शुक्र, चन्द्र, स्वच्छाया और अरुन्धती इनको जो नहीं देख सकता वह सम्वत्सर के पश्चात् ही मृत्यु को प्राप्त होता है ।।२।। सूर्य का बिम्ब रश्मियो से रहित तथा अग्नि को किरणो युक्त जो देखे, वह ग्यारह मास से अधिक जीवित नही रहता ।।३।। स्वप्नावस्था मे मूत्र पुरीष और वमन मे जिसे स्वर्ण अथवा चाँदी दिखाई दे, वह दश महीने से अधिक नही जीता ।।४।। जो प्रेत, पिशाच, गन्धर्वनगर अथवा स्वर्णिम वृक्ष को देखता है वह नौ मास ही जीवित रहता है ।।५।। जो सहसा स्थूल हो कर कृश हो जाय और पुन कृश से स्थूल हो जाय वह आठ महीने ही प्राण धारण करता है ।।६।। रेत अथवा अथवा कीचड मे पाँव जमाने पर जिसकी एडी या पाँव के अगले भाग का चिह्न खंडित दिखाई पडे उसकी परमायु सात महीने ही समझो ।।७।।

गृध्र कपोत·काकोलोवायसोवापिमूर्द्धनि ।
क्रव्यादोवाखगोलीन षण्मासायुःप्रदर्शक ।।८
हन्यतेकाकपंक्तीभि पांशुवर्षेणवानर ।
स्वाच्छायामन्यथादृष्ट्वाचतु पचसजीवति । ९
अनभ्रे विद्युतदृष्ट्वादक्षिणादिशमाश्रिताम् ।
रात्राविन्द्रधनुश्चापिजीवितद्वित्रिमासिकम् ।।१०
घृतेतैलेनथादर्शेतोयेवानात्मनस्तनुम् ।
य पश्येदशिरस्कावामासादूर्ध्वनजीवति ।।११

यस्यबस्तसमोगन्धोगात्रेशवसमोऽपिवा ।
तस्यार्द्धमासिकज्ञेययोगिनोनृपजीवितम् ।।१२
यस्यवैस्नातमात्रस्यहृत्पादमवशुष्यते ।
पिवतश्चजलशोषोदशाहसोऽपिजीवति ।।१३
सभिन्नोमारुतोयस्यमर्मस्थानानिकृन्तति ।
हृष्यतेनाम्बुसस्पर्शात्तस्यमृत्युरुपस्थित ।।१४

गृद्ध, उलूक, काक अथवा क्रव्याद या अन्य कोई नीलवर्ण का हिंसक पक्षी उड कर शिर पर आ बैठे तो छ मास ही जीवन रहता है ।।८।। जो काक पक्ति से अथवा धूधि की वर्षा से आहत हो जाय तथा जो अपने देह की छाया को विपरीत देखे वह चार या पाँच माम से अधिक जीवित नही रहता ।।९।। बिना मेघ के दक्षिण दिशा मे जिसे बिजली चमकती दिखाई पडे अथवा रात्रि के समय इन्द्र धनुष दिखायी दे वह दो-तीन मास तक ही जीवन धारण करता है ।।१०।। जिसे घृत, तेल, दर्पण और जल मे अपना स्वरूप दिखायी न पडे अथवा अपने शरीर ही मस्तक रहित देखे, वह एक मास से अधिक जीवित नही रहता ।।११।। जिसके शरीर से मृतक शरीर जैसी गन्ध निकलती हो वह एक पक्ष ही जीवित रहता है ।।१२।। जिसका हृदय और पाँव स्नान करते ही सूख जाँय अथवा जल पीते ही पुन प्यास से कण्ठ सूखने लगे वह दश दिन ही जीवित रहता है ।।१३।। जिसके मर्म स्थान को वायु छिन्न भिन्न करदे तथा जल के स्पर्श से जिसे रोमाच न हो, उसका मृत्यु काल ही उपस्थित समझे ।।१४।।

ऋक्षवानरयानस्थोगायन्योदक्षिणादिशम् ।
स्वप्नेययातितस्यापिनमृत्यु कालमिच्छति ।।१५
रक्तकृष्णाम्बरधरागायन्तीहसतीचयम् ।
दक्षिणाशानयेन्नारीस्वप्नेसोपिनजीवति ।।१६
नग्नक्षपणकस्वप्नेहसमानमहाबलम् ।
एवसवीक्ष्यवल्गन्तविद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ।।१७
आमस्तकतलाद्यस्तुनिमग्नपङ्कसागरे ।
स्वप्नेपश्यत्यथात्मानससद्योम्रियतेनर ।।१८

केशाङ्गारास्तथाभस्मभुजङ्गान्निर्जलानदीम् ।
दृष्ट्वास्वप्नेदशाहात्तु मृत्युरेकादशेदिने ।।१९
करालैर्विकटैः कृष्णैः पुरुषैरुद्यतायुधैः ।
पापाणैस्ताडित स्वप्नेसद्योमृत्यु लभेन्नर ।।२०
सूर्योदयेयस्य शिवाक्रोशन्तीयातिसमुखम् ।
विपरीतपरीतवासद्योमृत्युमृच्छति ।।२१

जो स्वप्नावस्था मे रीछ या बन्दर के यान मे चढ कर गाता हुआ दक्षिण दिशा की तरफ जाय उसका मृत्यु काल आया समझे ।।१५।। जिसे लाल, काले वस्त्र पहिने हुए हास्य मुख से गाती हुई स्त्री स्वप्न मे दक्षिण दिशा मे ले जाय उसकी भी मृत्यु शीघ्र होती है ।।१६।। स्वप्न मे महाबल, नग्न, क्षपणक सन्यासी को एकाकी हँसता हुआ जाता देखे तो मृत्यु काल समीप जाने ।।१७।। तथा जिसे स्वप्न मे अपना शरीर मस्तक तक कीचड मे घुसा हुआ दिखाई दे, उसका मरण काल भी निकट समझे ।।१८।। स्वप्न मे केश, अङ्गार, भस्म' सर्प, शुष्क नदी दिखाई दे तो ग्यारहवे दिन उसकी मृत्यु होती है ।।१९।। स्वप्न मे जिसे कराल तथा विकट आकार वाले कृष्ण वर्ण पुरुष सशस्त्र आकर पत्थर से मारे उसकी मृत्यु शीघ्र ही होने वाली समझो ।।२०।। जिस के सामने, पीछे अथवा चारो ओर सूर्योदय काल मे गीदडी जाय वह शीघ्र ही मरता है ।।२१।।

यस्यवै भुक्तमात्रस्यहृदयवाध्यतेक्षुधा ।
जायतेदन्तघर्षश्चसगतायुर्नसशय ।।२२
दोपगन्धनयोवेत्तित्रस्यत्यह्नितथानिशि ।
नात्मानपरनेत्रस्थवीक्षतेनसजीवति ।।२३
शक्रायुधचार्द्ध रात्रेदिवाग्रहतारास्तथा ।
दृष्ट्वामन्येतसक्षीणमात्मजीवितमात्मवित् ।।२४
नासिकावक्रतामेतिकर्णयोर्नमनोन्नती ।
नेत्रचवामस्रवतियस्यतस्यायुरुद्गतम् ।।२५

आरक्ततामेतिमुखजिह्वावाश्यामतायदा ।
तदाप्राज्ञोविजानीयान्मृत्युमासन्नमात्मनः ॥२६
उष्ट्रासभयानेनय स्वप्नेदक्षिणादिशम् ।
प्रयातितचजानीयात्सद्योमृत्यु नरेश्वर ॥२७
पिधायकर्णौनिर्घोषनश्रृणोत्यात्मसम्भवम् ।
नश्ययेच्चक्षुषोर्ज्योतिर्यस्यसोऽपिनजीवति ॥२८

भोजन करके उठते ही जो तुरन्त भूख से व्याकुल हो जाय तथा दन्त घर्षण होने लगे, उसकी आयु समाप्त ही समझो ॥२२॥ जिसकी नासिका को दीप गन्ध का ज्ञान न हो, जो दिन और रात्रि भय को प्राप्त हो तथा जो अपने प्रतिबिम्ब को दूसरे के नेत्र मे न देख सके उमकी भी आयु समाप्त हुई समझो ॥२३॥ यदि आधी रात मे इन्द्र धनुष और दिन मे तारे दिखाई दे तो उसकी भी आयु को नि शेष हुआ समझे ॥२४॥ जिसकी नाक टेडी हो जाय, दोनो कान ऊँचे नीचे प्रतीत हो अथवा बाँए नेत्र से आँसू गिरते हो, उसकी आयु भी सम्पूर्ण हुई समझिये ॥२५॥ मुख लाल जिह्वा श्याम हो जाय तो अपना काल समीप समझे ॥२६॥ स्वप्न मे ऊँट या गधे के यान मे चड कर दक्षिण की ओर जाय तो शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है ॥२७॥ दोनो कान ढक लेने पर अपना शब्द सुनाई न पडे अथवा जिमके नेत्रो मे कुछ दिखाई न पडे वह शीघ्र ही मरता है ॥२८॥

पततोयस्यवैगर्तेस्वप्नेद्वारपिधीयते ।
नचोत्तिष्ठतिय श्वभ्रात्तदन्ततस्यजीवितम् ॥२९
ऊर्ध्वाचदृष्टिर्नसप्रतिष्ठारक्तापुन सपरिवर्तमाना ।
मुखस्यचोष्माशिशिराचनाभि शसतिपु सामपरशरीरम् ॥३०
स्वप्नेऽग्निप्रविशेद्यस्तुनचनिष्क्रमतेपुन ।
जलप्रवेशादपिवातदन्ततस्यजीवितम् ॥३१
यश्चाभिहन्यतेदुष्टैर्भूतैरात्रावथोदिव ।
समृत्यु सप्तरात्रान्तेनर प्राप्नोत्यसशयम् ॥३२

स्ववस्त्रममलशुक्लं रक्तं पश्यत्यथोसितम् ।
य पुमान्मृत्युमासन्नतस्यापिहिविनिर्दिशेत् ।।३३
स्वभाववैपरीत्यतुप्रकृतेश्चविपर्यय' ।
कथयन्तिमनुष्याणासमासन्नौयमान्तकौ ।।३४

स्वप्न मे जो गढे मे गिरकर उससे निकलने का मार्ग न पा सके या गिरकर उठने मे असमर्थ हो तो भी उसकी आयु नि.शेष समझो ।।२६।। जिसकी दृष्टि ऊर्ध्व भाग मे नही जमती, लाल रग की होकर बारम्बार घूर्णित या चचल हो जाय, तथा जिसका मुख उष्णता से युक्त और नाभि विस्तृत हो जाय वह शरीर त्याग कर अन्य देह धारण करता है ।।३०।। स्वप्न मे जो अग्नि या जल मे घुस कर फिर बाहर न निकले उसका जीवन समाप्त समझो ।।३१।। जो दिन अथवा रात्रि मे दुष्ट भूतो से ताडित हो वह सात दिन मे मर जाता है ।।३२।। जो अपने पहिने हुए श्वेत वस्त्रो को लाल या काले रग के देखता है उसका मरण काल समीप समझो ।।३३।। स्वभाव के विपरीत होने तथा प्रकृति का विपर्यय होने से यम और अन्तक उस पुरुष के समीप होते है ।।३४।।

येपाविनीत सततयेऽस्यपूज्यतमामता ।
तानेवचावजानातितानेवचविनिन्दति ।।३५
देवान्नार्चयतेवृद्धान्गुरून्विप्राश्चनिन्दति ।
मातापित्रोर्नसत्कारजामातृणाकरोतिच ।।३६
योगिनाज्ञानविदुषामन्येषाचमहात्मनाम् ।
प्राप्तेतुकाले पुरुषस्तद्विज्ञेयविचक्षणै ।।३७
योगिनास्ततयत्नादरिष्टान्यवनीपते ।
सवत्सरान्तेतज्ज्ञेयफलदनिशिवासरम् ।।३८
विलोक्याविशदाचैषाफलपक्ति सुभीषणा ।
विज्ञायकार्योमनसिसचकालोनरेश्वर ।।३९
ज्ञात्वाकालचतसम्यनभःस्थानसमाश्रित ।
युञ्जीतयोगीकालोऽसौयथानास्याफलोभवेत् ।।४०

दृष्टारिष्टतथायोगीत्यक्त्वामरणजभयम् ।
तत्स्वभावतदालोक्यकालोयावद्विपाकद ।।४१
तस्यभागेनथैवाह्लोयोगयुञ्जीतयोगवित् ।
पूर्वाह्णेचापराह्णेचमध्याह्नेचापिनद्दिने ।।४२
यत्रवारजनीभागेतदरिष्टनिरीक्षितम् ।
तत्रैवतावद्यु ञ्जीतयावत्प्राप्तहितद्दिनम् ।।४३

काल के प्राप्त होने पर ही मनुष्य पूजनीय पुरुषो का निरादर तथा निंदा करता है ।।३५।। देव–पूजन से विमुख होता, वृद्धो और विप्रो की निन्दा करता तथा माता–पिता और जामाता का सत्कार ।।३६।। नही करता और योगी, ज्ञानी तथा अन्य साधु–सन्तो के सत्कार से विमुख होता है, उसकी भी आयु नि शेष समझे ।।३७।। हे राजन् ! योगियो को यह ज्ञान रखना चाहिये कि यह सभी अरिष्ठ सवत्सर के अन्त मे रात्रि हो या दिन, फल देते है ।।३८।। इन सभी भीषण फलो पर दृष्टि रखे, इनका ज्ञान सहज मे ही होजाता है, इन्हे भले प्रकार जान कर उनके उपस्थित-काल का ध्यान रखे ।।३९।। उनके उपस्थिति काल को जान कर भय रहित स्थान का आश्रय लेकर योग मे निमग्न हो, जिससे काल का वश न चल सके ।।४०।। अरिष्ट को देखकर उससे होने वाले मृत्यु भय को त्याग कर अरिष्ट के स्वभाव पर विचार करे और जब वह समय उपस्थित हो ।।४१।। दिन के उसी भाग मे योगी योग निमग्न हो, दिन के पूर्वाह्ण अथवा अपराह्ण मे ।।४२।। अथवा रात्रि मे, जिस समय भी अरिष्ट दिखायी पडा, उसी समय योग मग्न होना चाहिये, जब तक वह मृत्यु का दिन न आवे, तब तक इसी प्रकार योग क्रिया मे लगा रहे ।।४३।।

ततस्त्यक्त्वाभयसर्वजित्वातकालमात्मवान् ।
तत्रैवावसथेस्थित्वायत्रवास्थैर्यमात्मन ।।४४
युञ्जीतयोगर्निर्जित्यत्रीन्गुणान्परमात्मनि ।
तन्मयश्चात्मनाभूत्वाचिद्वृत्तिमपिसत्यजेत् ।।४५
तत परमनिर्वाणमतीन्द्रियमगोचरम् ।
यद्बुद्धेर्यन्नचाख्यातु शक्यतेतत्समश्नुते ।।४६

एतत्सर्वसमाख्याततवालर्कयथार्थवत् ।
प्राप्स्यसेयेनवद्ब्रह्मसक्षेपात्तन्निबोधमे ।।४७
२.शाङ्करश्मिसयोगाच्चन्द्रकान्तमणि पय ।
समुत्सृजतिनायुक्त सोपमायोगिन स्मृता ।।४८
यथार्करश्मिसयोगादर्ककान्तोहुताशनम् ।
आविष्करोतिनैक सन्नुपमासापियोगिन ।।४९

वह आत्मवान् होकर सम्पूर्ण भय को छोडकर और उस समय को जीतकर उसी गृह मे या जहाँ भी मन स्थिर रह सके।।४४।। निवास करता हुआ तीनो गुणो पर विजय प्राप्त करके, एकान्तिक चित्त से योग युक्त होकर परब्रह्म मे अभिनिविष्ट हो तथा आत्मा की तन्मयता पूर्वक चित्त वृत्ति का सर्वथा त्याग करे ।।४५।। ऐसा करके ही वह इन्द्रियातीत, बुद्धि द्वारा अगम्य और वाणी द्वारा अकथनीय परम निर्वाण को प्राप्त कर सकते है ।।४६।। यह सब यथार्थ रूप से मैने तुम्हे बताया है, अब जिस प्रकार ब्रह्म पदार्थ की उपलब्धि हो सकती है, उसे सक्षिप्त रूप से कहता हूँ, श्रवण करो ।।४७।। चन्द्रमा की किरणो के सयोग से ही चन्द्रकान्त मणि से जल निकलता है योगियो की योग सिद्धि का उपाय भी यही है अर्थात् योग मे मन न लगाने से आनन्द का सञ्चार कभी नही हो सकता ।।४८।। सूर्य रश्मियो के सयोग मे चन्द्रकान्त मणि से जैसे अग्नि निकलती है, वैसे ही योग युक्त न होने से ब्रह्म का साक्षात्कार सम्भव नही ।।४९।।

पिपीलिकाखुनकुलगृहगोधाकपिजला ।
वसन्तिस्वामिवद्गेहेध्वस्तेयान्तिततोऽन्यत ।।५०
दु खतुस्वामिनोध्वसेतस्यतेषानकिचन ।
वेश्मनोयत्रराजेन्द्रसोपमायोगसिद्धये ।।५१
मृद्दे हिकाल्पदेहापिमुखाग्रे णाप्यणीयसा ।
करोतिमृद्भारचयमुपदेश सयोगिन ।।५२
पशुपक्षिमनुष्याद्यै पत्रपुष्पफलान्वितम् ।
वृक्षविलुप्यमानतुदृष्ट्वासिध्यन्तियोगिन ।।५३

रुरुशावविषाणाग्रमालक्ष्यतिलकाकृतिम् ।
सहतेनविवर्द्धन्तयोगीसिद्धिमवाप्नुयात् ।।५४
द्रवपूर्णमुपादायपात्रमारोहतोभुव ।
तुङ्ग विलोक्योच्चैर्विज्ञातकियोगिना ।।५५
सर्वस्वेजीवनायालनिखाते पुरुषभ्ययया ।
चेष्टातालस्त्वतोज्ञात्वायोगिन कृतकृत्यता ।।५६

चीटी, मूपक, नकुल,गोधा,कपिञ्जल और कपोत यह सब गृहस्वामी के समान ही वहाँ रहते है और घर के नप्ट होने पर ही अन्यत्र जाते हे ।।५०।। गृहस्वामी के न रहने से उन्हे कुछ प्रयोजन नही है इसी प्रकार स्वभाव से ही देह के पीछे देह का आविर्भाव और तिरोभाव होता है, इसलिए उसके प्रति ममता के वश मे नही पडना चाहिये, ऐसा जानकर सब छोडकर योग–साधन मे ही चित्त लगावे ।।५१।। सूक्ष्म शरीर वाली चीटी अपने अत्यन्त सूक्ष्म मुख से ही सञ्चय करती है, योगियो के लिए यह भी एक दृष्टान्त है कि ब्रह्म साधन जैसा कठिन कार्य योग रूप साधारण उपाय से वश मे कर लिया जाता है ।।५२।। पशु, पक्षी, मनुष्यादि फल, पुष्प, पत्र से युक्त वृक्ष को नप्ट कर देते है, उसी प्रकार काल के हाथ मे सबको नष्ट होना पडता है, यह जानकर योग–साधन पूर्वक मोक्ष लाभ करे ।।५३।। रुरु मृग के बालक के सींग का अग्र भाग तिलक के आकार का होकर भी उसी के साथ बढता है, इसी प्रकार योगी की कठिन योगचर्या भी अभ्यास से सुलभ हो जाती है ।।५४।। जब मनुष्य द्रव से भरा हुआ पात्र हाथ मे लेकर ऊँचे स्थान मे चढता है, उस समय उसके अग पर दृष्टि डालने से योगी को कोई बात अज्ञात नही रहती ।।५५।। मनु य जीवन के लिए जो अपने सर्वस्व को नष्ट करने मे लगा है, उसे भले प्रकार जानकर योगी कृतकृत्य हो जाता है ।।५६।।

तद्गृहयत्रवसतितद्भोज्ययेनजीवति ।
येनसम्पद्यतचार्थस्तत्सखममतात्रका ।।५७
अभ्यर्थितोऽपितै कार्यकरोतिकरणैर्यथा ।
तथाबुद्ध्यादिभिर्योगीपारक्यै साधयेत्परम् ।।५८

तत प्रणम्यात्रिपुत्रमलर्क समहीपति ।
प्रश्नयावनतोवाक्यमुवाचातिमुदान्वित ।।५९
दिष्टयादेवैरिदब्रह्मन्पराभिभवसम्भवम् ।
उपपादितमत्युग्र प्राणसदेहदभयम् ।।६०
दिष्टयाकाशिपतेभूरिवलसम्पत्पराक्रम ।
यदुच्छेदादिहायात सयुष्मत्सङ्गदोमम ।।६१
दिष्टयामदवलश्चाहदिष्टयाभृत्याश्चमेहता ।
दिष्टयाकोष क्षययातोदिष्टयाहभीतिमागतः ।।६२
दिष्टयात्वत्पादयुगुलममस्मृतिपथगतम् ।
दिष्टयात्वदुक्तय सर्वाममचेतसिसस्थिता ।।६३

जहाँ निवास करे वही गृह, जिससे प्राण धारण हो वह भोज्य और जिससे विषय की निष्पत्ति हो वही सुख है, इसलिये, इस विषय मे ममता क्यो करे ? ।।५७।। जिस प्रकार कारण से कार्य सिद्ध होता है उसी प्रकार योगी पारलौकिक बुद्धि आदि कारण रूप से ब्रह्म को सिद्धि लाभ करते है ।।५८।। जड बोला—इसके पश्चात् राजा अलर्क विनय पूर्वक झुक कर दत्तात्रेयजी को प्रणाम करते हुए आनन्द सहित बोले ।।५९।। हे ब्रह्मन् ! मुझे सौभाग्य से अत्युग्र, प्राणो को सशयप्रद एव भयदायक तिरस्कार शत्रु से मिला है ।।६०।। सौभाग्य से ही काशीराज इतने समृद्धिशील हुए, जिसके कारण मै आपके सत्सग का लाभ कर सका ।।६१।। सौभाग्य से ही मेरा बल क्षीण होगया, सौभाग्य से ही मेरे भृत्य मारे गये है और सौभाग्य से ही मेरा कोप नष्ट होगया और भय का सचार हुआ ।।६२।। सौभाग्य से ही आपके दोनो चरण मेरे स्मृति मार्ग मे उदय हुए है तथा आपके वचन मेरे हृदय मे निवास प्राप्त कर सके है ।।६३।।

दिष्टयाज्ञानममोत्पन्नभवतश्चसमागमात् ।
भवताचैवकारुण्यदिष्टयाब्रह्मन्कृतमयि ।।६४
अनर्थोऽप्यर्थतायातिपुरुपस्यशुभोदये ।
तथेदमुपकारायव्यसनसगमात्तव ।।६५

सुबाहुरुपकारीमेसचकाशिपति प्रभो ।
तयो कृतेऽहसप्रामोयोगीशभवतोऽन्तिकम् ॥६६
सोऽहतवप्रसादाग्निनिर्दग्धाज्ञानकिल्बिष ।
तथायतिष्येयेनेदृड्नभूयोदु खभाजनम् ॥६७
परित्यजिष्येगार्हस्थ्यमार्तिपादपकाननम् ।
त्वत्तोऽनुज्ञासमासाद्यज्ञानदातुर्महात्मन ॥६८
गच्छराजेन्द्रभद्र तेयथातेकथितमया ।
निर्ममोनिरहङ्कारस्तथाचरविमुक्तये ॥६९

सौभाग्य से ही आपका समागम पाकर ज्ञान का मुझ मे उदय हुआ है और सौभाग्य से ही आपने मुझ पर दया की है ॥६४॥ शुभादय हो तो अनर्थ भी अर्थ होजाता है, इस भीषण विपत्ति ने आपसे मिला कर मेरा उपकार ही किया है ॥६५॥ हे प्रभो ! मै जिनके लिये यहाँ आया हूँ,वह सुबाहु और काशी-नरेश दोनो ही मेरे लिए परमोपकारी सिद्ध हुए है ॥६६॥ आपकी कृपा रूप अग्नि ने मेरे अज्ञान रूपो पापो को भस्म कर दिया है, जिसे ऐसे दु खो की प्राप्ति पुन न हो सके, अब मै उसी के अनुष्ठान मे लगूँगा ॥६७॥ आप ज्ञान-दाता महात्मा है, आपकी अनुमति पाकर ही मै गृहस्थाश्रम को छोड़ूँगा, क्योकि यह आश्रम दु ख रूपी वन ही है ॥६८॥ दत्तात्रेयजी ने कहा—हे राजन् ! तुम जाओ, तुम्हारा कल्याण हो, मैने तुम्हे जो उपदेश दिया है, ममता और अहकार छोड कर मोक्ष लाभार्थ उमी पर चलो ॥६९॥

एवमुक्त प्रणम्यैनमाजगामत्वरान्वित ।
यत्रकाशिपतिर्भ्रातासुबाहुश्चास्यसोऽग्रज ॥७०
समुत्पत्यमहाबाहु सोलर्क काशिभूपतिम् ।
सुबाहोरग्रतोवीरमुवाचप्रहसन्निव ॥७१
राज्यकामुककाशीशभुज्यताराज्यमूर्जितम् ।
यथाचरोचतेतद्वत्सुबाहो.सप्रयच्छवा ॥७२
किमलर्कपरित्यक्त राज्यतेसयुगविना ।
क्षत्रियस्यनधर्मोऽयभवाश्चक्षत्रधर्मवित् ॥७३

निर्जितामात्यवर्गस्तुत्यक्त्वामरणजंभयम् ।
सदधीतशरजालक्ष्यमुद्दिश्यवैरिणम् ॥७४
तजित्वानृपतिर्भोगान्यथाभिलषितान्वरान् ।
भुञ्जीतपरमसिद्धचै यजेतचमहामखः ॥७५
एवमीदृशकवीरममाप्यासीन्मन.पुरा ।
साम्प्रतविपरीतार्थश्शृणुचाप्यत्रकारणम् ॥७६

जड ने कहा—दत्तात्रेयजी की यह आज्ञा सुनकर अलर्क ने उन्हें प्रणाम किया और शीघ्रता से अपने भाई सुबाहु और काशीनरेश के पास पहुँचे ॥७०॥ उन्होने काशीनरेश के समीप जाकर सुबाहु के सामने हँसते हुए कहा ॥७१॥ हे काशिराज ! तुमने राज्य की अभिलाषा की है, इसलिए इस समृद्धिशाली राज्य का उपभोग करो या सुबाहु को देदो, जो चाहो, वही करो ॥७२॥ काशिराज बोले—हे अलर्क ! तुम युद्ध के बिना राज्य को क्यो छोडते हो, तुम तो क्षात्रधर्म-विशारद हो, यह क्षत्रियो का धर्म नही है ॥७३॥ अमात्यो को वश मे रखकर राजा मृत्यु के भय को छोडकर शत्रु को लक्ष्य बनाकर बाण सधान करे ॥७४॥ तथा शत्रु को जीत कर सिद्धि के लिए इच्छित भोगो का उपभोग करते हुए श्रेष्ठ यज्ञ का अनुष्ठान करे ॥७५॥ अलर्क बोले—हे वीर ! मै भी पहिले यही सोचता था, किन्तु अब उसके विपरीत सोचता हूँ, उसका कारण सुनो ॥७६॥

यथायभौतिक.सघस्तथान्तःकरणंनृणाम् ।
गुणास्तुमकलास्तद्वशशेषेष्वेवजन्तुषु ॥७७
चिच्छक्तिरेकएवाययदानान्योऽस्मिकश्चन ।
तदाकानृपतेज्ञानान्मित्रारिप्रभुभृत्यता ॥७८
तन्मयादु खमासाद्यत्वद्दयोद्भवमुत्तमम् ।
दत्तात्रेयप्रसादेनज्ञानप्राप्तनरेश्वर ॥७९
निर्जितेन्द्रियवर्गस्तुत्यक्त्वासगमशेषत ।
मनोब्रह्मणिसधास्येतज्जयेपरमोजय ॥८०

ससाध्यमन्यत्तत्सिद्धयै यत किंचिन्नविद्यते ।
इन्द्रियाणिचसयम्यतत सिद्धिनियच्छति ॥८१
सोहनतेऽरिर्नममासिशत्रु सुबाहुरेषोनममापकारी ।
दृष्टमयासर्वमिदयथात्माअन्विष्यतांभूपरिपुस्त्वयान्य. ॥८२
इत्थसतेनाभिहितोनरेन्द्रोहृष्ट समुत्थायततःसुबाहु ।
दिष्टयेतितभ्रातरमाभिनन्द्यकाशीश्वरवाक्यमिदबभाषे ॥८३

जैसे मनुष्य मात्र का सग भौतिक है, उसी प्रकार उनका अन्त करण और गुणगण भी भूत की समष्टि है ॥७७॥ हे राजन् ! केवल चिच्छक्ति रूप ब्रह्म ही सत्य है, अन्य सब असत्य है ऐसा ज्ञान मुझे मिला है तब शत्रु, मित्र, प्रभु या भृत्य की कल्पना ही कैसी ? ॥७८॥ हे नरेश्वर ! तुम्हारे भय से अत्यंत दु खित होकर दत्तात्रेयजी की कृपा से यह ज्ञान प्राप्त कर सका हूं ॥७९॥ अब जितेन्द्रिय होकर समस्त सग का त्याग करके केवल परब्रह्म मे ही मन को लगाऊँगा, ब्रह्म के जीतते ही सबकुछ जीत लिया समझो ॥८०॥ एकमात्र वही विद्यमान है उसके लिए अन्य साधना उचित नही है, जितेन्द्रिय हुए बिना सिद्धि लाभ नहीं हो सकता ॥८१॥ हे राजन् न मैं तुम्हारा शत्रु हूँ, न तुम मेरे शत्रु हो, सुबाहु ने भी मेरा कोई अपकार नही किया, इसलिए अब दूसरे शत्रु की खोज करो ॥८२॥ अलर्क के इन वचनो से काशिराज अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और सुबाहु भी हर्ष से 'परम सौभाग्य' कहते हुए उठकर भाई को अभिनन्दन करते हुए काशिराज से बोले ॥८३॥

३६---अलर्क की योगसिद्धि

यदर्थं नृपशार्दूलत्वामहंशरणागत ।
तन्मयासकलंप्राप्तं यास्यामित्वसुखीभव ॥१
किंनिमित्तभवान्प्राप्तोनिष्पन्नोऽर्थश्चकस्तव ।
सुबाहोतन्ममाचक्ष्वपरकौतूहलहिमे ॥२



समाक्रान्तमलर्केणपितृपैतामहंमहत् ।
राज्यदेहीतिनिर्जित्यत्वयाहमभिचोदित: ॥३
ततोमयासमाक्रम्यराज्यमस्यानुजस्यते ।
एतत्तेबलमानीततद्भुङ्क्ष्वस्वकुलोचितम् ॥४
काशिराजनिबोधत्वयदर्थं मयमुद्यम ।
कृतोमयाभवाश्चैवकारितोऽत्यन्तमुद्यमम् ॥५
भ्रातामभायग्राम्येषुतत्त्ववित् ?भोगतत्पर: ।
विमूढौवोधवन्तौचभ्रातरावग्रजौमम ॥६
तयोर्ममचयन्मात्राबाल्येस्तन्ययथामुखे ।
तथावबोधोविन्यस्त:कर्णयोरवनीपते ॥७
तयोर्गमचविज्ञेया पदार्थायेमतानृभि: ।
प्राकाश्यमनसोनीतास्तेमात्रानास्यपार्थिव ॥८

सुबाहू ने कहा—हे नृपशार्दूल ! जिस लिये मैं आपकी शरण मे गया था, वह सब मुझे मिल गया, अब मैं जाता हू, आप भी सुखी रहे ॥१॥ काशी-नरेश ने कहा—हे सुबाहो ! आप मेरी शरण मे किस लिये आये थे और आपका कौन-सा कार्य सम्पादित होगया, यह बताओ, इसके प्रति मुझे अत्यत कुतूहल हुआ है ॥२॥ अलर्क अपने परपरागत राज्य को भोगता था, आपने उस राज्य को जीतने के लिये मुझे उत्तेजित किया था ॥४॥ सुबाहु बोला—हे काशिराज ! मैंने उद्यम पूर्वक आपको इस कार्य मे क्यो प्रवृत्त किया, उसे सुनो ॥५॥ मेरे यह छोटे भ्राता तत्त्वज्ञानी होकर भी भोगो मे आसक्त थे तथा मेरे दो अग्रज विमूढ होते हुए भी तत्वज्ञानी हुए है ॥६॥ हे राजन् ! मेरी माता ने शिशुकाल मे जैसे हमको दूध पिलाया था, वैसे ही हमारे कानो मे तत्वज्ञान का उपदेश किया था ॥७॥ मनुष्यो के लिए जो-जो विषय ज्ञातव्य है, वह सभी हमारी माता ने हम सब भाइयो के हृदयगत कर दिये थे, किन्तु अलर्क उन्हे भूल गया ॥८॥

यथैकमर्थयातानामेकस्मिन्नवसीदति ।
दुखभवतिसाधूनातथास्माकमहीपते ॥९

गार्हस्थ्यमोहमापन्ने सीदत्यस्मिन्नरेश्वर ।
सम्बन्धिन्यस्यदेहस्यबिभ्रातिभ्रातृकल्पनाम् ।।१०
ततोमयाविनिश्चित्यदुःखाद्वैराग्यभावना ।
भविष्यतीत्यस्यभवानित्युद्योगायसंश्रित ।।११
तदस्यदु.खाद्वैराग्यसबोधादवनीपते ।
समुद्भूतकृतकार्यभद्र तेस्तुव्रजाम्यहम् ।।१२
उष्ठामदालसागर्भेपीत्वातस्यास्तथास्तनम् ।
नान्यनारीसुतैर्यातिवर्त्मयात्वितिपार्थिव ।।१३
विचार्य्यतन्मयासर्वयुष्मत्सश्रयपूर्वकम् ।
कृततच्चापिनिष्पन्नं प्रयास्येसिद्धयेपुन. ।।१४

हे राजन् ! जैसे एक साथ जाने वालो मे एक मनुष्य के दु खित होने से सभी साथी दु.खित होते है, वैसी ही मेरी अवस्था थी ।।९।। क्योकि अलर्क से मेरा सम्बध बधुत्व का है और यह गृहस्थी के मोह मे पड कर दु खित हो रहे थे ।।१०।। इसलिए दु ख होने पर ही विरक्ति होगी, ऐसा विचार करके ही मैने आपकी शरण ग्रहण की थी ।।११।। हे राजन् ! उससे वह दु खी हुआ और उसी दु ख से उसमे तत्त्वज्ञान की उत्पत्ति हुई और विरक्ति का उदय हुआ इसलिए अब मैं अपने कार्य मे सफल हो गया हूँ, आपका मगल हो, मैं जाता हूँ ।।१२।। यह अलर्क मदालसा के गर्भ से उत्पन्न है उसी का इसने दूध पिया है, इसलिए अन्य नारी से उत्पन्न पुत्र जिस मार्ग से नही जा पाते, यह उस श्रेष्ठ मार्ग पर चले ।।१३।। यही विचार कर मैंने आपका आश्रय लिया और तदनुरूप कार्य किया मेरा कार्य पूरा हो गया अब पुन. सिद्धि की प्राप्ति के लिए जा रहा हूँ ।।१४।।

उपेक्ष्यतेसीदमान स्वजनोबान्धव सुहृत् ।
यैर्नरेन्द्रनतान्मन्येसेन्द्रियाविकलाहिते ।।१५
सुहृदिस्वजनेबन्धौसमर्थोयोऽवसीदति ।
धर्मार्थकाममोक्षेभ्योवाच्यास्तेतत्रनत्वसौ ।।१६

एतत्त्वत्सङ्गमाद्भूपमयाकार्यमहत्कृतम् ।
स्वस्तितेऽस्तुगमिष्यामिज्ञानभाग्भवसत्तम ॥१७
उपकारस्त्वयासाधोरलर्कस्यकृतोमहान् ।
ममोपकारायकथ नकरोषिस्वमानसम् ॥१८
फलदायीसतासद्भि सगमोनाफलोयत ।
तस्मात्त्वत्संश्रयाद्युक्तामयाप्राप्तासमुन्नति ॥१६
धर्मार्थकाममोक्षाख्यपुरुषार्थचतुष्टयम् ।
तत्रधर्मार्थकामास्तेसकलोहीयतेऽपर ॥२०
तत्तेसक्षेपतोवक्ष्येतदिहैकमना शृणु ।
श्रुत्वाचसम्यगालोच्ययतेथा·श्रेयसेनृप ॥२१

हे राजन् ! स्वजन, सुहृद्जन और बाँधवो के दु खित होने पर, उनके प्रति उपेक्षा करने वाला मनुष्य मेरे विचार मे विकलेन्द्रिय है ॥१५॥ तथा स्वजन, सुहृद्जन और बाँधवजन के समर्थ होते हुए भी जो दु ख पाता है, उससे वे स्वजनादि निन्दनीय एव धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष से वचित होते है ॥१६॥ आपके सग-लाभ से मैंने इस महान् कार्य को सम्पन्न किया है, आपका कल्याण हो और आप ज्ञान मार्ग पर चलने वाले हो, मैं अब गमन करता हूँ ॥१७॥ काशिराज बोले—आपने अलर्क का अत्यत उपकार किया है, परतु मेरा उपकार करने से विमुख क्यो है ? ॥१८॥ साधु-सग या सत-मिलन फल देने वाला होता है, इसलिये आपका सत्सग होने मे मेरी भी उन्नति ही होगी ॥१६॥ सुबाहु बोले—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष यह चार पदार्थ पुरुषार्थ कहे गये है, इनमे धर्म, अर्थ, काम की सिद्धि तो आपको हो चुकी है, केवल मोक्ष का ही अभाव है ॥२०॥ इसलिए आपसे जो कहता हूँ उसे एकाग्र मन से श्रवण करो और उस पर भले प्रकार विचार करके अपने कल्याणार्थ प्रयत्नशील होओ ॥२१॥

ममेतिप्रत्ययोभूपनकार्य्योऽहमितित्वया ।
सम्यगालोच्यधर्मोहिधर्माभावनिराश्रय ॥२२
कोवाहमितिसज्ञेयमित्यालोच्यत्वयात्मना ।
बाह्यान्तर्गतमालोच्यमालोच्यापररात्रिषु ॥२३

अव्यक्तादिविशेषान्तमविकारमचेतनम् ।
व्यक्ताव्यक्तंत्वयाज्ञेयज्ञाताकश्चाहमित्युत ।।२४
एतस्मिन्नेवविज्ञातेविज्ञातमखिलत्वया ।
अनात्मन्यात्मविज्ञानमस्वेस्वमितिमूढता ।।२५
सोऽहसर्वगतोभूपलोकसव्यवहारतः ।
मयेदमुच्यतेसर्वत्वयापृष्टोव्रजाम्यहम् ।।२६
एवमुक्त्वाययौधीमान्सुबाहु काशिभूमिपम् ।
काशिराजोऽपिसपूज्यसोऽलर्कस्वपुरंययौ ।।२७
अलर्कोऽपिसुतज्येष्ठमभिषिच्यनराधिपम् ।
वनजगामसन्त्यक्तसर्वसङ्ग स्वसिद्धये ।।२८

हे राजन् ! यह मेरा है, यह मैं हूँ इत्यादि ममता और अहंकार पूर्ण विचार के वश मे न पडना और भले प्रकार धर्म की आलोचना करना, क्योकि धर्म नही तो आश्रय भी नही मिलता ।।२२।। विचार करने पर ही 'मै किसका हूँ ?' इसका ज्ञान होता है, रात्रि के शेष भाग मे इस पर भले प्रकार विचार करो ।।२३।। अव्यक्त से प्रकृति तक विकार-रहित, चेतना-रहित, और व्यक्त-अव्यक्त जो कुछ है उसे जानते हुए, ज्ञाता, ज्ञेय और अपने विषय मे भी जाने ।।२४।। इसके जान लेने पर ही आप सब कुछ जान लेंगे शरीरादि आत्मा से पृथक् वस्तु मे आत्मबोध तथा पराये को अपना मानना ही मूर्खता है ।।२५।। हे राजन् ! 'वही मै' सासारिक ज्ञान मे सम्पन्न हूं, जो आपने प्रश्न किया, उसका समाधान कर चुका, अब मै गमन करता हूँ ।।२६।। मेधावी सुबाहु ऐसा कह कर चले गये, तब काशिराज ने अलर्क का भले प्रकार पूजन किया और अपने नगर को गये ।।२७।। अलर्क ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य देकर समस्त सग परित्याग करके आत्म सिद्धि के लिए बनवास किया ।।२८।।

तत कालेनमहतानिर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।
प्राप्ययोगर्द्धिमतुलापरनिर्वाणमाप्तवान् ।।२९
पश्यञ्जगदिदसर्वसदेवासुरमानुषम् ।
पाशैर्गुणमयैर्बद्ध वध्यमानचनित्यशः ।।३०

पुत्रादिभ्रातृपुत्रादिस्वपारक्यादिभवान्वितैः
आकृष्यमाणंकरणैर्दुःखार्त्तभिन्नदर्शनम् ॥३१
अज्ञानपङ्कगर्भस्थमनुद्धारंमहामति. ।
आत्मानचसमुत्तीर्णंगाथामेतामगायत ॥३२
अहोकष्ट यदस्माभिःपूर्वराज्यमनुष्ठितम् ।
इतिपश्चान्मयाज्ञातयोगान्नास्तिपरंसुखम् ॥३३
तातैनत्वसमातिष्ठमुक्तयेयोगमुत्तमम् ।
प्राप्स्यसेयेनतद्ब्रह्मयत्रगत्वानशोचसि ॥३४
ततोऽहमपियास्यामिकियज्ञै किजपेनमे ।
कृतकृत्यस्यकरणब्रह्मभावायकल्पते ॥३५
ततोऽनुज्ञामवाप्याहनिर्द्वन्द्वोनिष्परिग्रह. ।
प्रयतिष्येतथामुक्तौयथायास्यामिनिर्वृतिम् ॥३६

फिर बहुत समय व्यतीत होने पर उन्होने अतुलित योग-ऐश्वर्य को प्राप्त कर परम मोक्ष का लाभ किया ॥२९॥ सुर, असुर, मनुष्यादि से परिपूर्ण यह विश्व गुणमय पाश से बद्ध होकर नित्य ही वध्यमान रहता है ॥३०॥ यह पाश पुत्र आदि, भ्रातृ-पुत्रादि तथा अपने पराये के मोह से बनी हुई है, भिन्न दिखायी पडने वाला विश्व उसी पाश मे आकृष्ट होकर दु ख मे डूब रहा है ॥३१॥ इस पर भी अज्ञान रूपी पक मे फँसने पर मुक्ति का उपाय नही है, बुद्धिमान् अलर्क ने इस पर विचार करके 'मेरा उद्धार हो गया' इस प्रकार गाथा का गान किया ॥३२॥ 'अहो कैसा कष्ट है ? पहिले मैं राज्य भोगता था, परतु अन्त मे मुझे ज्ञान हो गया कि योग की अपेक्षा अन्य कोई परम सुख नही है ॥३३॥ पुत्र ने कहा—हे तात ! मोक्ष लाभ के लिए आप उस श्रेष्ठ योग का आचरण करे तो ब्रह्म को प्राप्त हो सकेगे क्योकि ब्रह्म को प्राप्त होकर पुन शोक मे नही पडना होगा, अब मैं भी जाऊँगा ॥३४॥ मुझे यज्ञ या जप की आवश्यकता नही है, कृतकृत्य मनुष्य का कार्य तो ब्रह्म प्राप्ति के लिये ही है ॥३५॥ इसलिये आपकी आज्ञा पाकर मैं द्वन्द्व और परिग्रह का त्याग कर मोक्ष लाभ के लिए सम्यक् प्रयत्न करूँगा ॥३६॥

एवमुक्त्वासपितरप्राप्यानुज्ञाततश्चस ।
ब्रह्माञ्जगाममेधावीपरित्यक्तपरिग्रह ॥३७
सोऽपितस्यपितातद्वत्क्रमेणसुमहामति. ।
वानप्रस्थसमास्थायचतुर्थाश्रममभ्यगात् ॥३८
तत्रात्मजसमासाद्यहित्वाबन्धगुणादिकम् ।
प्रापसिद्धिपरांप्राज्ञस्तत्कालोपात्तसन्मति ॥३९
एतत्तेकथितब्रह्मन्यत्पृष्टाभवतावयम् ।
सुविस्तरयथावच्चकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥४०
यश्चै तच्छ्रणुयाद्विप्रपठेद्वासुसमाहित ॥४१
यदश्वमेधावभृथस्नात.प्राप्नोतिवैफलम् ।
सकलतदवाप्नोतिश्रुत्वैतन्मुनिसत्तम ॥४२
एतत्ससारभ्रमणपरित्राणमनुत्तमम् ।
अलकत्रियसवादमशुभान्मुच्यतेनरः ॥४३

पक्षियो ने कहा—हे ब्रह्मन् ! वह महामति जड अपने पिता से ऐसा कह कर और उनकी आज्ञा लेकर परिग्रह-रहित होकर चला गया ॥३७॥ उसके पिता ने भी वानप्रस्थ आश्रम का आश्रय लेते हुए चतुर्थ आश्रम मे प्रवेश किया ॥३८॥ वह पुत्र की संगति से गुणादि बन्धन को त्याग कर तत्काल उत्पन्न हुई बुद्धि के बल से परम सिद्धि को प्राप्त हुए ॥३९॥ हे विप्र ! आपका पूछा हुआ सभी विस्तार पूर्वक कह दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो, सो बताओ ॥४०॥ हे ब्रह्मन् ! इस वार्ता को जो सावधानी से पढ़ता अथवा श्रवण करता है ॥४१॥ वह अश्वमेघ के अवभृथ स्नान के फल को पाता है, हे मुनीश्वर ! इसके श्रवण से ही सब कुछ प्राप्त होता है ॥४२॥ संसार मे विचरण करने वालो की श्रेष्ठ रक्षा यही है, इस अलर्क-दत्तात्रेय सवाद को श्रवण करके मनुष्य अशुभ से मुक्त हो जाता है ॥४३॥

३७-ब्रह्माण्ड और ब्रह्मोत्पत्ति

सम्यगेतन्ममाख्यातभवद्भिर्द्विजसत्तमा ।
प्रवृत्त चनिवृत्त चद्विविध कर्मवैदिकम् ।।१
अहोपितृप्रसादेनभवताज्ञानमीदृशम् ।
येनतिर्यक्त्वमप्येतत्प्राप्यमोहस्तिरस्कृत ।।२
धन्याभवन्त ससिद्धचै प्रागवस्थास्थितयत ।
भवताविषयोद्भूतैर्नमोहैश्चाल्यतेमन ।।३
दिष्टचाभगवतातेनमार्कण्डेयेनधीमता ।
भवन्तोवैसमाख्याता सर्वसन्देहहृत्तमा· ।।४
ससारेऽस्मिन्मनुष्याणाभ्रमतामतिसङ्कटे ।
भवद्विधैःसमसङ्गोजायतेनातपस्विनाम् ।।५
यद्यहसङ्गमासाद्यभवद्भिर्ज्ञानदृष्टिभि· ।
नस्याकृतार्थस्तन्नूननमेऽन्यत्रकृतार्थता ।।६।।
प्रवृत्ते चनिवृत्ते चभवताज्ञानकर्मणि ।
मतिमस्तमलामन्येयथानान्यस्यकस्यचित् ।।७

जैमिनी बोले—हे श्रेष्ठ द्विजो ! वैदिक कर्म प्रवृत्ति और निवृत्ति भेद से दो प्रकार का है, आपने वह सब मेरे प्रति भले प्रकार कहा है ।।१।। आपने पिता के अनुग्रह से ऐसा ज्ञान पाया है, उसी ज्ञान के प्रभाव से, तिर्यक् योनि को पाकर भी आप का मोह नष्ट हो चुका है ।।२।। आपका मन सिद्धि लाभ के लिये पूर्वावस्था मे स्थित रहता है, अत. आप धन्य है, आपके मन को विषयों से उत्पन्न मोह चलायमान नही कर सकता ।।३।। महामति मार्कण्डेयजी ने सौभाग्य से ही आपका वृत्तान्त कहा था, आप सब सन्देहो को दूर करने वाले है ।।४।। इस सङ्कटमय विश्व मे जो भ्रमते है, उनके भाग्य मे आप जैसे तपस्वियो से मिलना दुर्लभ ही है ।।५।। आप ज्ञानद्रष्टा है, यदि आपके सग लाभ से भी मेरा मनोरथ पूर्ण न हुआ तो अन्यत्र कही भी नही हो सकता ।।६।। आपको प्रवृत्ति और निवृत्ति के ज्ञान और कर्म मे जो विश्व बुद्धि प्राप्त हुई है,वह मेरे विचार मे अन्य किसी को नही हो सकती, ।।७।।

यदित्वनुग्रहवतीमयिबुद्धिर्द्विजोत्तमा ।
भवतातत्समाख्यातुमर्हतेदमशेषत ।।८
कथमेतत्समुद्भूतजगत्स्थावरजङ्गमम् ।
कथ चप्रलयकालेपुनर्यास्यतिसत्तमा ।।९
कथचवशादेवर्षिपितृभूतादिसम्भवाः ।
मन्वन्तराणिचकथवशानुचरितचयत् ।।१०
यावत्य सृष्टयश्चैवयावन्त प्रलयास्तथा ।
यथाकल्पविभागश्चयाचमन्वन्तरस्थिति ।।११
यथाचक्षितिसस्थानयत्प्रमाणचवैभुव ।
यथास्थितिसमुद्राद्रिनिम्नगा काननानिच ।।१२
भूर्लोकादिश्चलोकानागण: पातालसश्चय ।
गतिस्तथार्कसोमादिग्रहर्क्षज्योतिषामपि ।।१३
श्रोतुमिच्छाम्यहसर्वमेतदाभूतसप्लवम् ।
उपसहृतेचयच्छेषजगत्यस्मिन्भविष्यति ।।१४

हे श्रेष्ठ द्विजो ! यदि आपकी मति मेरे प्रति अधिक अनुग्रह वाली हुई है, तो मेरे प्रश्न का विस्तार सहित समाधान करिये ।।८।। इस स्थावरजगम युक्त विश्व की सृष्टि किस प्रकार हुई और यह प्रलय काल मे किस प्रकार लीन होगी ? ।।९।। देव, ऋषि, पितर, भूतादि की उत्पत्ति किस प्रकार होती है, और मन्वन्तरो का प्राकट्य कैसे होता है ? ।।१०।। सम्पूर्ण सृष्टि, समस्त प्रलय, कल्प का विभाग, मन्वन्तरो की स्थिति ।।११।। पृथिवी का संस्थान और परिमाण पर्वत, शैल, सरिता और वनो का विवरण ।।१२।। मर्त्यलोक, स्वर्ग और पाताल का विवरण तथा सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र इत्यादि की गति ।।१३।। इन सबका प्रलय पर्यन्त वर्णन सुनने की अभिलाषा है तथा प्रलयकाल मे उपसहृति होने पर जो जगत् अवशिष्ट रहता है, वह सुनना चाहता हूँ ।।१४।।

प्रश्नभारोऽयमतुलोयस्त्वयामुनिसत्तम ।
पृष्टस्ततेप्रवक्ष्यामस्तच्छृणुष्वेहजैमिने ।।१५

मार्कण्डेयेनकथितपुराक्रौष्टुकयेयथा ।
द्विजपुत्रायशान्तायव्रतस्नातायधीमते ।।१६

मार्कण्डेयमहात्मानमुपासीनद्विजोत्तमं ।
क्रौष्टुकि परिपप्रच्छयदेतत्पृष्टवान्प्रभो ।।१७

तस्यचाकथयत्प्रीत्यायन्मुनिर्भृगुनन्दन ।
तत्तो प्रकथयिष्याम शृणुत्वं द्विजसत्तम ।।१८

प्रणिपत्यजगन्नाथपद्मयोनिपितामहम् ।
जगद्योनिंस्थितसृष्टौस्थितौविष्णुस्वरूपिणम् ।
प्रलयेचान्तकर्त्ताररौद्र रुद्रस्वरूपिणम् ।।१९

उत्पन्नमात्रस्यपुराब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन ।
पुराणमेतद्वेदाश्चमुखेभ्योऽनुविनि सृताः ।।२०

पुराणसहिताश्चक्रुर्बहुला.परमर्षय ।
वेदानाप्रविभागश्चकृतस्तैस्तुसहस्रशः ।।२१

पक्षियो ने कहा—हे जैमिने ! आपने यह अत्यन्त प्रश्न भार हम पर डाला है, फिर भी हम उसका वर्णन करते हैं, सुनो ।।१५।। मार्कण्डेयजी ने जिस प्रकार क्रौष्टुकी के प्रति कहा था, उसे ही कहते है ।।१६।। आपने जो प्रश्न किया, वही क्रौष्टुकी ने माकण्डेयजी से किया था ।।१७।। हे द्विजवर ! भृगुपुत्र ने प्रसन्न चित्त से जो कुछ कहा था, वही सब कहते है, सुनो ।।१८।। जगत् के कारण कमलयोनि पितामह स्वरूप से जो इस ससार को उत्पन्न करते हैं, विष्णु रूप से स्थित करते और रौद्र रूप से प्रलय काल मे सहार करते है, उन्ही जगन्नाथ को प्रणाम पूर्वक हम सब कहते है ।।१९।। मार्कण्डेयजी ने कहा पुराकाल मे ब्रह्माजी के उत्पन्न होने पर उनके चार मुखो से वेद-पुराण प्रकट हुए ।।२०।। उम पुराण सहिता को ऋषियो ने अनेक अश मे विभाजित किया तथा वेद के भी हजार-हजार विभाग किये ।।२१।।

धर्मज्ञानचवैराग्यमैश्वर्य्यचमहात्मन ।
तस्योपदेशेनविनानहिसिद्ध चतुष्टयम् ।।२२।।

वेदान्सप्तर्षयस्तस्माज्जगृहुस्तस्यमानसा ।
पुराणजगृहुश्चाद्यामुनयस्तस्यमानसा ॥२३
भृगो सकाशाच्च्यवनस्तेनोक्त चद्विजन्मनाम् ।
ऋषिभिश्चापिदक्षायप्रोक्तमेतन्महात्मभि ॥२४
दक्षेणचापिकथितमिदमासीत्तदामम ।
तत्तुभ्यकथयाम्यद्यकलिकल्मषनाशनम् ॥२५
सवमेतन्महाभागश्रूयतामेसमाधिना ।
यथाश्रुतमयापूर्वदक्षस्यगदतोमुने ॥२६
प्रणिपत्यजगद्योनिमजमव्ययमाश्रयम् ।
चराचरस्यजगतोधातारपरमपदम् ॥२७
ब्रह्माणमादिपुरुषमुत्पत्तिस्थितिसयमे ।
यत्कारणमनौपम्ययत्रसर्वप्रतिष्ठितम् ॥२८

उनके उपदेश बिना धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ईश्वरीय भाव सिद्ध नही हो सकते ॥२२॥ उनके मन से सप्तर्षियो की उत्पत्ति हुई, जिनके समस्त वेद पुराण उनके मानसोत्पन्न अन्य ऋषियो ने ग्रहण किये ॥२३॥ भृगु से उस पुराण को लेकर च्यवन ऋषि ने अन्य ऋषियो पर प्रकट किया और उन ऋषियो ने उसे दक्ष के प्रति कहा ॥२४॥ दक्ष ने ही उसे हमे प्रदान किया है, तभी से यह हमारे पास है, इसके प्रभाव से कलियुग मे पाप नष्ट हो जाते है, उसी को तुमसे कहते है ॥२५॥ हे मुने ! हम ने दक्ष से जो सुना, वही दत्तचित्त होकर हम से सुनो ॥२६॥ जो जगत् कारण, अजन्मा, अव्यय, चराचर विश्व के एक मात्र आश्रय, धाता एव परमपद रूप है ॥२७॥ जो सृष्टि स्थिति और प्रलय के कारण, आदि पुरुष, अनुपम है तथा सब कुछ उन्ही मे प्रतिष्ठित रहता है ॥२८॥

तस्मैहिरण्यगर्भायलोकतन्त्रायधीमते ।
प्रणम्यसम्यग्वक्ष्यामिभूतवर्गमनुत्तमम् ॥२९
महदाद्य विशेषान्तसवैरूप्यसलक्षणम् ।
प्रमाणै पचभिर्गम्यस्रोतोभि.षड्भिरन्वितम् ॥३०

पुरुषाधिष्ठितनित्यमनित्यमिवचस्थितम् ।
तच्छ्रूयतामहाभागपरमेणसमाधिना ॥३१
प्राधानकारणयत्तदव्यक्ताख्यमहर्षय· ।
यदाहु प्रकृतिसूक्ष्मानित्यासदसदात्मिकाम् ॥३२
ध्रुवमक्षय्यमजरममेयनान्यसश्रयम् ।
गन्धरूपरसैर्हीनशब्दस्पर्शविवर्जितम् ॥३३
अनाद्यंतजगद्योनित्रिगुणप्रभवाप्ययम् ।
असाम्प्रतमविज्ञेयंब्रह्माग्रेसमवर्त्तत ॥३४
प्रलयस्यानुतेनेदव्याप्तमासीदशेषत ।
गुणसाम्यात्ततस्तस्मात्क्षेत्रज्ञाधिष्ठितान्मुने ॥३५

उन्ही हिरण्य गर्भ को प्रणाम करके अनुपम प्रपच को कहते है ॥२९॥ महत् से विशेष पर्यन्त जो भी भौतिक सृष्टि के विकार और लक्षण है उन सभी को पाँच प्रकार के प्रमाण और षट्स्रोत सहित कहेंगे ॥३०॥ पुरुष से अधिष्ठित होने के कारण यह भूत सृष्टि नित्य होकर भी अनित्य के समान अवस्थान करती है, उसे भी कहते हैं, सावधान चित्त से सुनो ॥३१॥ सत्-असत् वाली अव्यक्त कही जाने वाली को महर्षियो ने नित्य सूक्ष्मा प्रकृति कहा है ॥३२॥ जो नित्य, अक्षय, अजर, अपरिमेय, अनाश्रित, निर्गंध तथा रूप, रस, शब्द और स्पर्श से परे है ॥३३॥ जो अनादि, अनन्त एव विश्व के उत्पत्ति स्थान है, जिनसे तीनो गुणो की उत्पत्ति हुई है, जो अविनाशी, अविज्ञेय, सदा विद्यमान और सर्व कारण है, वही प्रधान स्वरूप ब्रह्म सबके समक्ष विराजमान रहकर ॥३४॥ प्रलय के पश्चात् अखिल विश्व को प्राप्त करके स्थित रहते है उन्ही मे परस्पर अनुकूल और अव्याहत रूप से तीनो गुण विद्यमान रहते है ॥३५॥

गुणभावात्सृज्यमानात्सर्गकालेतत पुन: ।
प्रधानतत्त्वमुद्भूतमहान्ततत्समावृणोत् ॥३६
यथाबीजत्वचातद्वदव्यक्तेनावृतोमहान् ।
सात्त्विकोराजसश्चैवतामसश्चत्रिधोदित ॥३७

सम्भवन्तिततोह्यापश्चासन्वैतारसात्मिका ।
रसमात्रन्तुताह्यापोरूपमात्रसमावृणोत् ।।४४
अपश्चापिविकुर्वत्योगन्धमात्रससर्जिरे ।
सघातोजायततस्मात्तस्यन्धोगुणोमत ।।४५
तस्मिंस्तस्मिंस्तुतन्मात्रतेनतन्मात्रतास्मृता ।
अविशेपवाचकत्वावविशेषास्ततश्चते ।।४६
नशान्तानापिघोरास्तेनमूढाश्चाविशेषत ।
भूततन्मात्रसर्गोऽयमहङ्कारात्तुतामसात् ।।४७
वैकारिकादहकारात्सत्त्वोद्रिक्तात्तुसात्त्विकात् ।
वैकारिक ससर्गस्तुयुगपत्सप्रवर्त्तते ।।४८

स्पर्श मात्र वायु मे रूपमात्र ढका रहता है, इससे ज्योति के विकृत होने पर रसमात्र की उत्पत्ति होती है ।।४३।। इसी के द्वारा रसात्मक जल उत्पन्न होता है जो रूपमात्र से ढका रहता है ।।४४।। फिर रसमात्र जल की विकृति से गन्धमात्र की उत्पत्ति होती है,उसी से गन्धात्मिका पृथिवी उत्पन्न होती है ।।४५। इसी प्रकार जिस–जिस पदार्थ मे जो तन्मात्र है, उस–उस के द्वारा ही तन्मात्र की गणना होती है, इसके लिए कोई विशेष वाचक नही होता, इसलिये यह भी अविशेष है ।।४६।। अविशेष होने के कारण वह शान्त, घोर अथवा मूढ नही है, इस प्रकार भूत तन्मात्र की उत्पत्ति अहङ्कार से ही होती है ।।४७।। सत्वोद्रिक्त सात्विक और वैकारिक अहङ्कार से एक संग ही वैकारिक सृष्टि की प्रवृत्ति है ।।४८।।

बुद्धीन्द्रियाणिपञ्चैवपचकर्मेन्द्रियाणिच ।
तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवावैकारिकादश ।।४६
एकादशंमनस्तत्रदेवावैकारिकाःस्मृताः ।
श्रोत्रत्वक्चक्षुषीजिह्वानासिकाचैवपचमी ।।५०
शब्दादीनामावाप्त्यर्थंबुद्धियुक्तानिवक्ष्यते ।
पादौपायुरुपस्थश्चहस्तौवाक्पचमीभवेत् ।।५१

गतिर्विसर्गोह्यानन्द शिल्पवाक्यचकर्मतत् ।
आकाशशब्दमात्रतुस्पर्शमात्रसमाविशत् ।।५२
द्विगुणोजायतेवायुस्तस्यस्पर्शोगुणोमत· ।
रूपतथैवाविशत शब्दस्पर्शगुणावुभौ ।।५३
त्रिगुणस्तुततश्चाग्नि सशब्दस्पर्शरूपवान् ।
शब्द स्पर्शश्चरूपचरसमात्रसमाविशत् ।।५४
तस्माच्चतुर्गुणाह्यापोविज्ञेयास्तारसात्मिका. ।
शब्द स्पर्शश्चरूपचरसोगन्धसमाविशत् ।।५५
सहतागन्धमात्रेणआवृण्वस्तेमहीमिमाम् ।
तस्मात्पचगुणाभूमि स्थूलाभूतेषुदृश्यते ।।५६

पच ज्ञानेन्द्रिय और पच कर्मेन्द्रिय तैजस इन्द्रिय कही गयी है, यह वैकारिक दश देवता होते है ।।४६।। ग्यारहवॉ मन मिलाकर ग्यारह देवता हुए, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना और नासिका ।।५०।। इनसे शब्दादि का बोध होता है इसीलिये इन्हे बुद्धीन्द्रिय कहा गया है, चरण, गुद, उपस्थ, हाथ और जिह्वा ।।५१।। इत्यादि कर्मेन्द्रिय कही गयी है, इनके द्वारा चलना, मल त्यागना, मैथुन, शिल्प और कथन यह कार्य होते है, शब्द मात्र आकाश स्पर्श मात्र मे समाविष्ट होकर ।।५२।। द्विगुण वायु को उत्पन्न करता है, उसका विशेष गुण वायु ही है, शब्द और स्पर्श यह दोनो गुण रूप मे समाविष्ट होकर ।।५३।। त्रिगुण अग्नि की उत्पत्ति करते है, यह अग्नि, शब्द और रूप गुण से युक्त है, शब्द, स्पर्श और रूप रसमात्र मे समावेश करके ।५४।। चतुर्गुण रसात्मक जल की सृष्टि करते है और अन्त मे शब्द, स्पर्श, रूप और रस के गन्धमात्र मे समावेश करने से ।।५५।। उनके साथ मिलकर इस पृथिवी की आवृत्ति करते है, इसीलिये भूतो मे पचगुणात्मिका स्थूलाकार वाली पृथिवी दिखायी देती है ।।५६।।

शान्ताघोराश्चमूढाश्चविशेषास्तेनतेस्मृता ।
परस्परानुप्रवेशाद्धासयन्तिपरस्परम् ।।५७
भूमेरन्तस्त्विमंसर्वंलोकालोकघनावृतम् ।
विशेषाश्चेन्द्रियग्राह्यानियतत्वाच्चतेस्मृता· ।।५८

गुणपूर्वस्यपूर्वस्यप्राप्नुवन्त्युत्तरोत्तरम् ।
नानावीर्य्या पृथग्भूता सप्तैतेसंहतिविना ।।५९
नाशक्नुवन्प्रजा स्रष्टुमसमागम्यकृत्स्नश ।
संयेत्यान्योन्यसंयोगमन्योन्याश्रयिणश्चते ।।६०
एकसंघातचिह्नाश्चसंप्राप्यैक्यमशेषत ।
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्चअव्यक्तानुग्रहेणच ।।६१
महदाद्याविशेषान्ताह्यण्डमुत्पादयन्तिते ।
जलबुद्बुदवत्तत्रक्रमाद्वै वृद्धिमागतम् ।।६२
भूतेभ्योऽण्ड महाबुद्धे बृहत्तदुदकेशयम् ।
प्रकृतेऽण्डेविवृद्ध सन्क्षेत्रज्ञोब्रह्मसंज्ञित ।।६३

इसी कारण वह शान्त, घोर और मूढ कहे गये है, यह परस्पर एक दूसरे को धारण करते है ।।५७।। यह सभी लोकालोक भूमि के अन्तर मे निविष्ट रह कर, नियतत्व के कारण इन्द्रिय ग्राह्य विशेष' कहे गये है ।।५८।। पहिले-पहिले के गुण उत्तरोत्तर मे प्रविष्ट होते है, जब तक यह अनेक वीर्य वाले सात पदार्थ परस्पर नही मिलते, ।।५९।। तब तक सृष्टि करने मे समर्थ नही होते, जब यह परस्पर मिल कर एक दूसरे के अवलम्बन से ।।६०।। भले प्रकार से एकता को पाते है और जब पुरुष का अधिष्ठान और प्रकृति का अनुग्रह प्राप्त करते है ।।६१।। तभी महत् से विषय तक इन सब मे अण्ड की उत्पत्ति करते है, यह अण्ड जल के बुलबुले के समान जल मे रह कर ही क्रमश बढता रहता है ।।६२।। जल मे स्थित यह अण्ड भूतो से बृहत् है, ब्रह्म संज्ञा वाले क्षेत्रज्ञ भी उस प्राकृत अण्ड मे बढने है ।।६३।।

सवैशरीरीप्रथम सवैपूरुषउच्यते ।
आदिकर्त्ताचभूतानाब्रह्माग्रे समवर्तत ।।६४
तेनसर्वमिदव्याप्त त्रैलोक्यसचराचरम् ।
मेरुस्तस्यानुसभूतोजरायुश्चापिपर्वता ।।६५
समुद्रागर्भसलिलतस्याण्डस्यमहात्मन ।
तस्मिन्नण्डेजगत्सर्वसदेवासुरमानुषम् ।।६६

द्वीपाद्यद्रिसमुद्राश्चसज्योतिर्लोकसग्रह ।
जलानिलानलाकाशैस्ततोभूतादिनाबहि ॥६७
वृतमण्ड दशगुणैरेकैकत्वेनतै पुन ।
महतातत्प्रमाणेनसहैवानेनवेष्टित ॥६८
महास्तैसयुत :सर्वैरव्यक्तेनसमावृत ।
एभिरावरणैरण्ड सप्तभिःप्रकृतैर्वृतम् ॥६९

वही प्रथम देह और पुरुष नाम वाले है, वही भूतो के आदिकर्त्ता ब्रह्मा है, वही इन सब से आगे प्रतिष्ठित होते है ॥६४॥ वही चराचर तीन लोको को व्याप्त कर रहे है, उस बृहद् अण्ड मेरु पर्वत जरायु ॥६५॥ और समुद्र गर्भजल है, सुर असुर, मनुष्यादि से परिपूर्ण सम्पूर्ण विश्व उस अण्ड मे है ॥६६॥ द्वीप, पर्वत, समुद्र, ज्योति आदि के सहित सभी लोक उसमे स्थित है, जल, वायु, अग्नि और आकाश भूतादि के सहित ॥६७॥ प्रत्येक ही उत्तरोत्तर दशगुण के नियम से बाहर के भाग मे उस अण्ड को घेरे रहते है, इसके अति-रिक्त महत्तत्त्व ने इसी प्रमाण से उनके साथ अण्ड का आच्छादन किया हुआ है ॥६८॥ इस महत्तत्त्व के सहित अण्ड को ढक कर प्रकृति सुशोभित होती है, इस प्रकार सात प्राकृतिक आवरणो द्वारा वह अण्ड ढका हुआ है ॥६९॥

अन्योन्यमावृत्यचताअष्टौप्रकृतय स्थिताः ।
एषासाप्रकृतिर्नित्यातदन्त पुरुषश्चस ॥७०
ब्रह्माख्य कथितोयस्तेसमासाच्छ्रु यतापुन ।
यथामग्नोजलेकश्चिदुन्मज्जञ्जलसम्भवम् ॥७१
वलयक्षिपतिब्रह्मासतथाप्रकृतीर्विभु ।
अव्यक्त क्षेत्रमुद्दिष्टब्रह्माक्षेत्रज्ञउच्यते ॥७२
एतत्समस्तजानीयात्क्षेत्रक्षेत्रज्ञलक्षणम् ।
इत्येषप्राकृत सर्ग क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तुस ।
अबुद्धिपूर्व प्रथम प्रादुर्भूतस्तडिद्यथा ॥७३

इसी प्रकार आठ प्रकृति परस्पर को ढक कर विद्यमान है, इन प्रकृतियो को नित्य स्वरूप समझो, इनके अन्त मे वह पुरुष विद्यमान है ॥७०॥ तुमसे

जिस ब्रह्म संज्ञक पुरुष का वर्णन किया, उसका विषय अब संक्षिप्त रूप से कहता हूँ, जल मे डुबा हुआ मनुष्य जैसे जल मे से उठने समय जल मे प्रकट ।।७१।। द्रव्य को फैंकता है, उसी प्रकार ब्रह्मा को प्रकृति का स्वामी समझो, क्योंकि प्रकृति क्षेत्र और ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ है ।।७२।। क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के लक्षण यही है, इसी प्रकार क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठित प्राकृत सृष्टि अबुद्धि सहित प्रथम विद्युत् के समान प्रकट हुई ।।७३।।

३८—ब्रह्माजी की आयु का परिमाण

भगवस्त्वण्डसभूतिर्यथावत्कथितामम ।
ब्रह्माण्डेब्रह्मणोजन्मतथाचोक्तमहात्मन ।।१
एतदिच्छाम्यहश्रोतु त्वत्तोभृगुकुलोद्भव ।
यदानसृष्टिर्भूतानामस्तिकिनुनचास्तिवा ।
कालेवेप्रलयस्यान्तेसर्वस्मिन्नुपसहृते ।।२
यदातुप्रकृतौयातिलयविश्वमिदजगत् ।
तदोच्यतेप्राकृतोऽयविद्वद्भिःप्रतिसचर ।।३
स्वात्मन्यवस्थितेऽव्यक्तेविकारेप्रतिसहृते ।
प्रकृति पुरुपश्चैवसाधर्म्येणावतिष्ठत ।।४
तदातमश्वसत्त्वचसमत्वेनगुणौस्थितौ ।
अनुद्रिक्तावनूनौचओतप्रोतौपरस्परम् ।।५
तिलेषुवायथातैलघृतपयसिवास्थितम् ।
तथातमसिसत्वेचरजोऽप्यनुसृतस्थितम् ।।६

कौष्टुकि ने कहा—हे भगवन् ! आपने अण्ड की सृष्टि और ब्रह्माण्ड मे ब्रह्माजी के जन्म को यथावत् कहा है ।।१।। हे भृगुवंशोत्पन्न ! जब प्रलय के अवमान मे नष्ट हुई सृष्टि अविद्यमान थी, तब फिर भूतो की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? वही सब सुनना चाहता हूँ ।।२।। मार्कण्डेयजी ने कहा—जब यह ससार

प्रकृति मे लीन हो जाता है, उसी अवस्था को विद्वानो ने प्रलय कहा है ।।३।। जब आत्मा मे अवस्थित हो जाती है, तब सब पदार्थ अदृश्य हो जाते है, जब प्रकृति-पुरुष दोनो साधर्म्य मे प्रतिष्ठित होते है ।।४।। उस समय सत्व और तम दो ही गुण समान भाव से अधिष्ठान करते हे, उस समय उनमे से कोई बढता या घटता नही, वे दोनो ताने-बाने के समान समभाव से परस्पर सयुक्त अधिष्ठित रहते है ।।५।। जैसे तिल मे तेल और दूध मे घी विद्यमान है, वैसे ही सतोगुण और तमोगुण मे रजोगुण विद्यमान रहता है ।।६।।

उत्पत्तिर्ब्रह्मणोयावदायुर्वैद्विपरार्द्धिकम् ।
तावद्दिनपरेशस्यतत्समासयमेनिशा ।।७
(अष्टौयुगसहस्राणिअहोरात्रप्रजापते ।
अनेनैवतुमानेनशतब्रह्मासजीवति ।
पितामहशतेनैवविष्णोर्मानविधीयते ।
निमेषार्धेनशभोस्तुसहस्राणिचतुर्दश ।
विनश्यतितथाविष्णोरसख्याता पितामहा ।)
अहमुखेप्रबुद्धस्तुजगदादिरनादिमान् ।
सर्व हेतुरचिन्त्यात्मापर कोऽप्यपरक्रिय ।।८
प्रकृतिपुरुषचैवप्रविश्याशुजगत्पति ।
क्षोभयामासयोगेनपरेणपरमेश्वर ।।९
यथामदोनवस्त्रीणा यथावामाधवानिल ।
अनुप्रविष्ट क्षोभायतथासौयोगमूर्त्तिमान् ।।१०
प्रधानेक्षोभ्यमाणेतुसदेवोब्रह्मसज्ञित ।
समुत्पन्नोऽण्डकोषस्थोयथातेकथितमया ।।११
सएवक्षोभक पूर्वसक्षोभ्य प्रकृते पति ।
ससकोचविकाशाभ्याप्रधानत्वेऽपिसस्थित ।।१२
उत्पन्न सजगद्योनिरगुणोऽपिरजोगुणम् ।
भुञ्जन्प्रवर्ततेसर्गेब्रह्मत्वसमुपाश्रित ।।१३

ब्रह्माजी की आयु का परिमाण द्विपरार्द्ध पर्यन्त है, जो परिमाण उनके दिन का है, उतना ही उनकी रात्रि का है ।।७।। (आठ हजार का प्रजापति का एक अहोरात्र होता है, इसी परिमाण से ब्रह्माजी की आयु सौ वर्ष की है, ब्रह्माजी की सौ आयुओ के बराबर विष्णु की आयु होती है, शिव के अर्द्ध-निमेष मे चौदह हजार विष्णु होजाते है ब्रह्मा कितने होते है ? इसकी सख्या नही है) वह विश्व के आदि है, उनका आदि नही, वह सब के कारण, अचिन्त्यात्मा परमेश्वर और क्रियातीत है ।।८।। वह जगदीश्वर परम योग के निमित्त प्रकृति और पुरुष मे प्रवेश करके उनका विक्षोभ करते है ।।९।। जिस प्रकार मद अथवा वसत समीर नवयुवतियो के हृदय को क्षोभित करते है, वैसे ही ब्रह्माजी प्रकृति और पुरुष को क्षोभित करते है ।।१०।। प्रकृति को क्षोभित कर वह ब्रह्मा सज्ञक देव अण्डकोष मे स्थिर होकर समुत्पन्न होते है, यह मैने तुम्हारे प्रति वर्णन किया है ।।११।। पहिले तो वे क्षोभित करते है फिर प्रकृति के स्वामी होकर स्वय क्षोभित होते है, इस प्रकार सकोच और विकास से वह प्रकृति मे प्रतिष्ठित रहते है ।।१२।। वह जगद्योनि निर्गुण होते हुए भी प्रकट होकर रजोगुण के अवलम्ब से ब्रह्मा के रूप मे आविर्भूत होकर सृष्टि के उद्यम मे लगते है ।।१३।।

ब्रह्मत्वेसप्रजा सृष्ट्वातत सत्त्वातिरेकवान् ।
विष्णुत्वमेत्यधर्मेणकुरुतेपरिपालनम् ।।१४

ततस्तमोगुणोद्रिक्तोरुद्रत्वेचाखिलजगत् ।
उपसहृत्यवैशेतेत्रैलोक्यत्रिगुणोऽगुण ।।१५

यथाप्राग्व्यापक क्षेत्री पालकोलावकस्तथा ।
तथाससज्ञामाप्नोतिब्रह्मविष्णुहरात्मिकाम् ।।१६

ब्रह्मत्वेसृजतेलोकान्रुद्रत्वेसहरत्यपि ।
विष्णुत्वेचाप्युदासीनस्तिस्रोऽवस्था स्वयम्भुव ।।१७

रजोब्रह्मातमोरुद्रोविष्णु सत्त्वजगत्पति ।
एतएवत्रयोदेवाएतएवत्रयोगुणाः ।।१८

अयोन्यमिथुनाह्य ते अन्योन्याश्रयिणस्तथा ।
क्षणवियोगोनह्य पानत्यजन्तिपरस्परम् ॥१९
एवब्रह्माजगत्पूर्वोदेवदेवश्चतुर्मु खः ।
रजोगुणसमाश्रित्यस्रष्टृत्वेसव्यवस्थित ॥२०

ब्रह्मा रूप सृजन कार्य करके सतोगुण के आधिक्य से विष्णु रूप होकर प्रजा-पालन करते है ॥१४॥ फिर तमोगुण का उद्रेग होने पर रुद्र रूप धारण कर सहार करके शयन करते है, इस प्रकार वह निर्गुण ब्रह्म तीनो काल मे तीनो गुणो का अवलम्बन करते है ॥१५॥ सर्व जनक, सर्वव्यापी ईश्वर इस प्रकार, सृष्टि, स्थिति और प्रलय करने के कारण ही उनकी सज्ञा ब्रह्मा, विष्णु और शिव होती है ॥१६॥ वह ब्रह्म रूप मे सब लोको को उत्पन्न, रुद्र रूप मे सहार और विष्णु रूप मे उदासीन होकर रहते है, स्वयभू भगवान् की यह तीन अवस्था है ॥१७॥ ब्रह्मा रजोगुण, रुद्र तमोगुण और विष्णु सतोगुण है ॥१८॥ यह त्रिदेव तीन गुण रूप मे परस्पर के आश्रय पूर्वक स्थित रहते है, यह क्षण भर को भी वियुक्त नही होते ॥१९॥ इस प्रकार जगत् के आदि देव चतुर्मुखी ब्रह्मा रजोगुण के आश्रय मे सृष्टि कार्य मे प्रवृत्त होते है ॥२०॥

हिरण्यगर्भोदेवादिरनादिरुपचारतः ।
भूपद्मकर्णिकासस्थोब्रह्माग्रे समजायत ॥२१
तस्यवर्षशतत्वेकपरमायुर्महात्मन ।
ब्राह्म्य णैवहिमानेनतस्यसख्यानिबोधमे ॥२२
निमेषैर्दशभि काष्ठातथापञ्चभिरुच्यते ।
कलास्त्रिशच्चवैकाष्ठामुहूर्त्तोत्रिशदेवता ॥२३
अहोरात्रमुहूर्त्तानानृणात्रिशत्तुवैस्मृतम् ।
अहोरात्रैश्चत्रिशद्भि पक्षौद्वौमास उच्यते ॥२४
तै षड्भिरयनवर्षद्व यनेदक्षिणोत्तरे ।
तद्दे वानामहोरात्रदिनतत्रोत्तरायणम् ॥२५
दिव्यैर्वर्षसहस्रै स्तुकृतत्रेतादिसज्ञितम् ।
चतुर्यु गद्वादशभिस्तद्विभागश्शृणुष्वमे ॥२६

चत्वारितुसहस्त्राणिवर्षाणाकृतमुच्यते ।
शतानिसन्ध्याचत्वारिसन्ध्याशश्चतथाविध ।
त्रेतात्रीणिसहस्त्राणिदिव्याब्दानाशतत्रयम् ।
तस्यसन्ध्यासमाख्यातामध्याशश्चतथाविध. ॥२८

वह देवताओ के आदि रूप हिरण्य गर्भ एक प्रकार से आदि रहित है ॥२१॥ वह भूपद्मकर्णिका का आश्रय करके मब से पहिले प्रकट होते है॥२२। उनकी परमायु ब्राह्म मान से सौ वर्ष की है, उनकी सख्या का वर्णन करता हूँ, सुनो ॥२२॥ पन्द्रह निमेष की काष्ठा, तीस काष्ठा की एक कला, तीस कला का एक मुहूर्त्त ॥२३॥ और तीम मुहूर्त्त का मनुष्यो का एक अहोरात्र होना है, तीम अहोरात्र अथवा दो पखवा ो का एक माम होना है ॥२४॥ छ मास का एक अयन और दो अयन का एक वर्ष होना है, दक्षिणायन और उत्तरायण के भेद से अयन दो प्रकार का है, इस प्रकार मानव-मान से एक वर्ष का देवताओ का एक अहोरात्र होता है, उसमे उत्तरायण देवताओ का दिन है ।२५। देवताओं के परिमाण से बारह वर्ष की एक चतुर्युगी होती है, अब उन चारो युगो का विभाग वर्णन करता हूँ ॥२६॥ चार हजार दिव्य वर्षो का सत्ययुग तथा उमकी सध्याश के चार-चार सौ वर्ष होने है ॥२७॥ तीन हजार दिव्य वर्षो का त्रेतायुग और उसकी माय तथा सध्याश के तीन-तीन सौ वर्ष होते है ॥२८॥

द्वापरद्वेसहस्त्रेतुवर्षाणाद्वेशतेतथा ।
तस्यसन्ध्यासमाख्याताद्वेशताब्देनदशक ॥२६
कलि सहस्त्र दिव्यानामब्दानाद्विजसत्तम ।
सन्ध्यासन्ध्याशकञ्चैवशनकौमसुदाहृतौ ॥३०
एपाद्वादशसाहस्त्रीयुगाख्याकविभि कृता ।
एतत्सहस्त्रगुणितमहोब्राह्ममुदाहृतम् ॥३१
ब्रह्मणोदिवसेब्रह्मन्मनव स्युश्चतुर्दश ।
भवन्तिभागशस्तेपासहस्त्र तद्विभज्यते ॥३२

देवा सप्तर्षय सेन्द्रामनुस्तत्सूनवोनृपा ।
मनुनासहसृज्यन्तेसह्रियन्तेचपूर्ववत् ॥३३
चतुर्युगानासख्यातासाधिकाह्येकसप्तति: ।
मन्वन्तरतस्यसख्यामानुषाब्दैर्निबोधमे ॥३४
त्रिशत्कोट्यस्तुसम्पूर्णासख्याता सख्यया द्विज ।
सप्तषष्टिस्तथान्यानिनियुतानिचसख्यया ॥३५
विशतिश्चसहस्राणिकालोऽयसाधिकविना ।
एतन्मन्वन्तरप्रोक्तदिव्यैर्वर्षैर्निबोधमे ॥३६

दो हजार दिव्य वर्षो का द्वापर, उसकी सध्या-सध्याश के दो-नो सौ वर्ष होते है ॥२६॥ एक हजार दिव्य वर्ष का कलियुग तथा उसकी सध्या-संध्याश के एक एक सौ वर्ष होते हे ॥३०॥ इस प्रकार से चारो युग का परिमाण कवियो ने बारह हजार दिव्य वर्षो मे विभक्त किया है, इसको सहस्र गुणा करने पर जो समय होता है, वही ब्रह्मा का एक दिन कहा गया है ॥३१॥ ब्रह्मा के इस एक दिन मे चौदह मनु हो जाते है, उनका सहस्र विभाग कहा गया है ॥३२॥ इन्द्रादि देव, सप्तर्षि, मनु और मनुपुत्र राजा मन्वन्तर सहित उत्पन्न होते और पहिले के समान नष्ट होजाते है ॥३३॥ इकहत्तर चतुर्युगियो का एक मन्वन्तर होता है, इसकी सख्या मानव मान के अनुसार कहता हू ।३४। तीस करोड सड़सठ लाख बीस हजार मानव वर्ष का एक मन्वन्तर होता है, अब दिव्य मान के अनुसार सुनो ॥३५-३५॥

अष्टौवर्षसहस्राणिदिव्ययासख्ययायुतम् ।
द्विपञ्चाशत्तथान्यानिसहस्राण्यधिकानितु ॥३७
चतुर्दशगुणोह्येषकालोब्राह्म्यमहस्मृतम् ।
तस्यान्तेप्रलय प्रोक्तोब्राह्मोनैमित्तिकोबुधै ॥३८
भूर्लोकोऽथभुवर्लोक स्वर्लोकस्तन्निवासिन ।
तदाविनाशमायातिमहर्लोकश्चतिष्ठति ॥३९
तद्वासिनोऽपितापेनजनलोकप्रयान्तिवै ।
एकार्णवेचत्रैलोक्येब्रह्मास्वपितिवैनिशि ॥४०

तत्प्रमाणैवसारात्रिस्तदन्तेसृज्यतेपुन ।
एवतुब्रह्मणोवर्षमेकवर्षशततुतत् ॥४१
शतहितस्यवर्षाणापरमित्यभिधीयते ।
पचाशद्भिस्तथावर्षै पराद्धमितिकीर्त्यते ॥४२
एकमस्यपराद्ध तुव्यतीतद्विजसत्तम ।
यस्यान्तेऽभून्महाकल्प पाद्मइत्यभिविश्रुत ॥४३
द्वितीयस्यपराद्धस्यवर्त्तमानस्यवैद्विज ।
वाराहइतिकल्पोऽयप्रथम परिकल्पित ॥४४

आठ लाख बावन सहस्र दिव्य वर्ष का परिमाण एक मन्वन्तर को होता है ॥३७॥ इतने काल को चौदह गुणा करने पर एक करोड उन्नीस लाख अट्ठाईस हजार दिव्य वर्षो का ब्रह्मा का एक दिन होता है, इस ब्रह्म दिवस के अन्त मे जो प्रलय होता है, उसी को ज्ञानीजन नैमित्तिक प्रलय कहते है ॥३८॥ भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक मे निवास करने वाले जीव, इन लोको के नष्ट होने पर महर्लोक मे जाकर निवास करते है ॥३९-४०॥ जो परिमाण ब्रह्माजी के दिन का है, उतना ही उनका रात्रि का है, रात्रि के अन्त मे सृजन कार्य का पुनरारम्भ होता है, इस प्रकार से ब्रह्मा का एक वर्ष होता है ॥४१॥ एक सौ वर्ष का पर और पाच सौ वर्ष का एक पराद्ध होता है ॥४२॥ हे द्विजोत्तम ! इस प्रकार ब्रह्माजी का एक पराद्ध बीत चुका है, उसी के अन्त मे 'पाद्म' सज्ञक महाकल्प उपस्थित हुआ था ॥४३॥ अब यह 'बाराह कल्प' नामक द्वितीय पराद्ध है, यही प्रथम कल्प कहा गया है ॥४४॥

३९—प्राकृत और वैकृत सृष्टि

यथाससर्जवैब्रह्माभगवानादिकृत्प्रजा ।
प्रजापति पतिर्देवस्तन्मेविस्तरतोवद ॥१
कथयाम्येषतेब्रह्मन्ससर्जभगवान्यथा ।
लोककृच्छाश्वत कृत्स्नजगत्स्थावरजगमम् ॥२

पाद्मावसानसमयेनिशासुमोत्थित प्रभुः।
सत्त्वोद्रिक्तस्तदाब्रह्माशून्यलोकमवैक्षत ॥३
इमचोदाहरन्त्यत्रश्लोकनारायणप्रति।
ब्रह्मस्वरूपिणदेवजगत प्रभवाप्ययम् ॥४
आपोनाराइतिप्रोक्ताआपोवैनरसूनव ।
तासुशेतेसयस्माच्चतेननानायण स्मृत ॥५
विबुद्ध सलिलेतस्मिन्विधाग्रान्तर्गतामहीम् ।
अनुमानात्समुद्धारकर्तुं कामस्तदाक्षिते ॥६
अकरोत्सतनूरन्या कल्पादिषूयथापुरा।
मत्स्यकूर्मादिकास्तद्वद्वाराहवपुरास्थित ॥७

क्रौष्टुकि बोले—जिस प्रकार आदि स्रष्टा ब्रह्माजी ने प्रजा की उत्पत्ति की, वह मुझे विस्तार पूर्वक सुनाइये ॥१॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—अनादि भगवान् श्री ब्रह्माजी ने इस स्थावर जगममय विश्व की जिस प्रकार रचना की वह आपके प्रति वर्णन करता हूँ ॥२॥ पाद्म नामक प्रलय के अवसान होने पर सत्वगुण उद्रेक वाले ब्रह्माजी रात्रि के व्यतीत होने पर शयन से जाग्रत हुए तब उन्होंने सम्पूर्ण भुवन को शून्य देखा ॥३॥ उस समय जगत्कारण नारायण के विषय मे यह कहा जाता है ॥४॥ जल शब्द को नार कहा गया है, उस नार मे यह शयन करते है, इस लिये वह नारायण कहे जाते है ॥५॥ नारायण ने जाग कर पृथिवी को जल मे डूबा हुआ जाना और उसे निकालने की इच्छा से ॥६॥ पूर्व कल्पो मे मत्स्य या कूर्म आदि के समान बाराह रूप धारण किया ॥७

वेदयज्ञमयदिव्यवेदयज्ञमयोविभु ।
रूपकृत्वाविवेशाप्सुसर्वग सर्वसम्भवः ॥८
समुद्धृत्यचपातालान्मुमोचसलिलेभुवम्।
जनलोकस्थितै सिद्धैश्चिन्त्यमानोजगत्पति ॥९
तस्योपरिजलौघस्यमहतीनौरिवस्थिता।
विस्तृतत्वात्तुदेहस्यनमहीयातिसप्लवम् ॥१०

ततः क्षितिसमीकृत्यपृथिव्यांसोऽसृजद्गिरीन् ।
प्राक्सर्गेदह्यमानेनुतदासवर्तकाग्निना ॥११
तेनाग्निनाविशीर्णास्तेपर्वताभुविसर्वशः ।
शैलाएकार्णवेमग्नावायुनापस्तुसहता ॥१२
निपक्तायत्रयत्रासस्तत्रतत्राचलाभवन् ।
भूविभागततः कृत्वासप्तद्वीपोपशोभितम् ॥१३
भूराद्याश्चतुरोलोकान्पूर्ववत्समकल्पयत् ।
सृष्टिचिन्तयतस्तस्यकल्पादिषुयथापुरा ॥१४

वह वेदमय प्रभु दिव्य वेदमय स्वरूप को धारण करके बाराह रूप से जल मे घुसे ॥८॥ और पाताल से निकाल कर पृथिवी को जल पर स्थापित किया और फिर देखने लगे ॥९॥ कि वह नौका के समान जल पर डोलती है, विस्तृत होने के कारण स्थिर नही होती ॥१०॥ फिर उन्होने पृथिवी को समान करके पर्वतो की रचना की, पहिले सृष्टि को सम्वर्तक अग्नि से दग्ध किया था ॥११॥ वह सभी पर्वत उस अग्नि के ताप से विशीर्ण हो कर समुद्र मे मग्न हो गये थे, उस समय वहा का जल भी वायु के द्वारा एकत्र हो गया था ॥१२॥ इस लिये पर्वत जहा जहा पडे थे, वहीं-वही अचल हो गये, फिर सप्त द्वीप के रूप मे पृथिवी को विभक्त करके ॥१३॥ पहिले के समान ही भूर्लोक आदि चार लोको का विभाग किया, और पूर्व कल्पो के समान ही सृष्टि विषयक विचार करने लगे ॥१४॥

अबुद्धिपूर्वकस्तस्मात्प्रादुर्भूतस्तमोमयः ।
तमोमोहोमहामोहस्तामिस्रोह्यन्धसज्ञित ॥१५
अविद्यापचपूर्वैषाप्रादुर्भूतामहात्मन ।
पचधावस्थित सर्गोध्यायतोऽप्रतिबोधवान् ॥१६
बहिरन्तश्चाप्रकाश सवृतात्मानगात्मक ।
मुख्यानगायतश्चोक्तामुख्यसर्गस्ततस्त्वयम् ॥१७
तदृष्ट्वासाधकसर्गममन्यदपरपुन ।
तस्याभिध्यायत सर्गतिर्यक्स्रोतोह्यवर्तत ॥१८

यस्मात्तिर्यक्प्रवृत्ति सातिर्यक्स्रोतस्ततःस्मृत ।
पश्वादयस्तेविख्यातास्तम प्रायाह्यवेदिन ॥१६
उत्पथग्राहिरणश्चैवतेऽज्ञानेज्ञानमानिन ।
अहक्कृता अहमानाअष्टाविशद्विधात्मका: ॥२०

तब तमोयुक्त तम, मोह तामिस्र, अन्धतामिस्र नामक ॥१५॥ पाच अविद्या उनसे उत्पन्न हुई , इम प्रकार के चिन्तन से अप्रतिबोध वाली सृष्टि की की पाच प्रकार से स्थिति हुई ॥१६॥ वह सवृत्तात्मक और पर्वत स्वरूप अपने भीतर बाहर सर्वत्र अप्रकाशित थी, पर्वत प्रधान होने के कारण वह सृष्टि मुख्य सर्ग सज्ञा वाली कही गई है ॥१७॥ इस असाधक सृष्टि को देख कर उन्होने अन्य सृष्टि की इच्छा की तो उनके ध्यान से तिर्यक्स्रोत की प्रवृत्ति हुई ॥१८॥ उस तिर्यक्स्रोत के प्रवाहित होने से इसके द्वारा अधिक तमोगुणी सृष्टि अर्थात् पशु आदि अज्ञानी उत्पन्न हुए ॥१६॥ वह उन्मार्गी अज्ञान को ही ज्ञान मानने लगे, अहकारी अहमानी वे अट्ठाईस प्रकार के हुए ॥२०

अन्त प्रकाशास्तेसर्वेआवृतास्तुपरस्परम् ।
तमप्यासाधकमत्वाध्यायतोऽन्यस्ततोऽभवत् ॥२१
ऊर्ध्वस्रोतस्तृतीयस्तुसात्त्विकोद्ध्र्वमवर्तत ।
तेसुखप्रीतिबहुलावहिरन्तस्त्वनावृता ॥२२
प्रकाशाबहिरन्तश्चऊर्ध्वस्रोत समुद्भवः ।
तुष्टात्मनस्तृतीयस्तुदेवसर्गोहिस स्मृतः ॥२३
तस्मिन्सर्गेऽभवत्प्रीतिर्निष्पन्ने ब्रह्मरणस्तदा ।
ततोऽयमतदादध्यौसाधकसर्गमुत्तमम् ॥२४
तथाभिध्यायतस्तस्यसत्याभिध्यायिनस्तत ।
प्रादुर्बभौतदाव्यक्तादर्वाक्स्रोतस्तुसाधक ॥२५
यस्मादर्वाग्व्यवर्तन्तततोऽर्वाक्स्रोतसस्तुने ।
तेचप्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्तारजोऽधिका ॥२६
तस्मात्ते दु खबहुलाभूयोभूयश्चकारिरणः ।
प्रकाशाबहिरन्तश्चमनुष्या साधकाश्चते ॥२७

पञ्चमोऽनुग्रह सर्ग सचतुर्द्धाव्यवस्थित ।
विपर्ययेणसिद्धयाचशान्त्यातुष्ट्यातथैवच ।।२८

यह सब अन्त प्रकाश और एक दूसरे को ढक कर स्थित है, इस सृष्टि को उन्होने असाधक समझ कर और चिन्तन किया तो ।।२१।। ऊर्ध्व पथ गामी तृतीय स्रोत प्रवाहित होने लगा, उससे जिनकी उत्पत्ति हुई, वह सुख और प्रीति की अधिकता वाले तथा बाहर और अन्तर मे अनावृत्त ।।२२।। बाह्याभ्यनर मे प्रकाश वाले और तुष्टात्मा थे, यह तीसरी सृष्टि देव सर्ग कही गयी ।।२३।। इस सृष्टि को उत्पन्न करके ब्रह्माजी अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और फिर उन्होने श्रेष्ठ साधक सर्ग का चिन्तन किया ।।२४।। उनके चिन्तन करने पर अव्यक्त से अर्वाक्स्रोत नामक साधक सर्ग की उत्पत्ति हुई ।।२५।। ऊर्ध्व से उग्र होने के कारण ही इसे अर्वाक्स्रोत सर्ग कहा गया है, इनमे प्रकाश की अधिकता, तम की न्यूनता तथा रजोगुण का आधिक्य है ।।२६।। इस लिये इनमे दु ख की अधिकता है, यह बारम्बार कार्य वाले तथा बाह्याभ्यतर मे प्रकाश वाले साधक मनुष्य रूप है ।।२७।। फिर अनुग्रह नाम की पाँचवी सृष्टि हुई, यह विपर्यय, सिद्धि, शान्ति और सृष्टि रूप चार भागो मे विभाजित है ।।२८।।

निवृत्त वर्तमानचतेऽर्थजानन्तिवैपुन ।
भूतादिकानाभूतानाषष्ठ सर्ग सउच्यते ।।२९
तेपरिग्रहिण सर्वेसविभागरतास्तथा ।
चोदनाश्चाप्यशीलाश्चज्ञेयाभूतादिकाश्चते ।।३०
प्रथमोमहत सर्गोविज्ञेयोब्रह्मणस्तुस ।
तन्मात्राणाद्वितीयस्तुभूतसर्ग सउच्यते ।।३१
वैकारिकस्तृतीयस्तुसर्गश्चैन्द्रियक स्मृत ।
इत्येषप्राकृत सर्ग सभूतोबुद्धिपूर्वक ।।३२
मुख्य सर्गश्चतुर्थस्तुमुख्यावैस्थावरा स्मृता ।
तिर्तक्स्रोतस्तुय प्रोक्तस्तिर्यग्योन्य सपञ्चम ।।३३
तथोर्द्ध्वस्रोतसाषष्ठोदेवसर्गस्तुसस्मृत ।
ततोर्वाक्स्रोतसासर्ग सप्तम सतुमानुषः ।।३४

अष्टमोऽनुग्रह सर्ग सात्त्विकस्तामसश्चस ।
पचैतेवैकृता सर्गा प्राकृतास्तुत्रय स्मृता ॥३५
प्राकृनोवैकृतश्चेवकौमारोनवम स्मृत ।
इत्येतेवैसमाख्यातानवसर्गा प्रजापते ॥३६
प्राकृतावैकृताश्चैवजगतोमूलहेतव ।
सृजतोजगदीशस्यकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥३७

भूत और वर्त्तमान के सब अर्थ को जानने वाले भूतादि तथा अन्य समस्त भूतो की सृष्टि षष्ठ सर्ग कही गयी है ॥२६॥ वह सभी स्त्री युक्त, विषय मे लगे हुए, प्रेरणा मे निपुण, अशील स्वभाव के भूनादि कहे जाते है ॥३०॥ जिससे ब्रह्माजी का अविर्भाव होता है, वह प्रथम महत् सृटि है, ब्रह्मा द्वारा होने वाली सृष्टि द्वितीय है, वह भूत सर्ग कही जाती है ॥३१॥ ऐन्द्रिक वैकारिक जो तृतीय सृष्टि है, वह प्राकृन सर्ग बुद्धि पूर्वक माना गया है ॥३२॥ चतुर्थ सर्ग मुख्य है, स्थावरो को मुख्य कहा है, तिर्यक् योनि रूप तिर्यक्स्रोत जो कहा गया है, वह पञ्चम सर्ग है ॥३३॥ ऊर्ध्व स्रोत की छठी सृष्टि देव सर्ग कही जाती है, इसके पश्चात् सप्तम सृष्टि अर्वाक् स्रोत मानवी सृष्टि है ॥३४॥ आठवाँ अनुग्रह सर्ग सात्विक और तामसिक दो प्रकार का है, यह पाँच वैकृत सर्ग और पहिले कहे हुए तीन प्राकृत सग है ॥३५॥ प्राकृत और वैकृत सयुक्त एक नवम सृष्टि कौमार नाम की है, इस प्रकार प्रजापति की यह नौ सृष्टि कही गयी है ॥३६॥ यह प्राकृत और वैकृत ही समार के मूल कारण है, जिनकी रचना जगदीश्वर ने की है, अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥३७॥

४०–देवादि की सृष्टि

समासात्कथितासृष्टि सम्यग्भगवतामम ।
देवादीनाभवब्रह्मन्विस्तरात्तुब्रवीहिमे ॥१
कुशलाकुशलैर्ब्रह्मन्भावितापूर्वकर्मभि ।
ख्यात्यातयाह्यनिर्मुक्ता प्रलयेह्य पसहृता ॥२

देवाद्या स्थावरान्ताश्चप्रजाब्रह्म श्चतुर्विधा ।
ब्रह्मण कुर्वत सृष्टिजज्ञिरेमानसास्तदा ॥३
ततोदेवासुर पितृन्मानुषाश्चचतुष्टयम् ।
सिसृक्षुरम्भस्येतानिस्वमात्मानमयूयुजत् ॥४
युक्तात्मनस्तमोमात्राउद्रिक्ताभूत्प्रजापते· ।
सिसृक्षोर्जघनात्पूर्वमसुराजज्ञिरेतत ॥५
उत्ससर्जततस्तातुतमोमात्रात्मिकातनुम् ।
सापविद्धातनुस्तेनसद्योरात्रिरजायत ॥६
अन्यातनुमुपादायसिसृक्षु प्रीतिमापस ।
सत्त्वोद्रेकास्ततोदेवामुखतस्तस्यजज्ञिरे ॥७
उत्ससर्जचभूतेशस्तनु तामप्यसौविभु ।
साचापविद्धादिवससत्त्वप्रायमजायत ॥८

क्रौष्टुकि बोले—हे प्रभो ! आपने जिस प्रकार से सृष्टि प्रकरण कहा, वह अति सक्षिप्त है, इसलिए अब देवता आदि की उत्पत्ति विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये ॥१॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे विप्र ! पूर्व जन्म के शुभाशुभ कर्म से ही उत्पत्ति होती है, क्योंकि वह प्रलय मे लीन होते है, मुक्त नही होते ॥२॥ देवतादि से स्थावर तक चार प्रकार की प्रजा जब प्रलय काल मे नष्ट हो गई तब ब्रह्माजी ने उसकी सृष्टि की पुन इच्छा की और अपने मन से ॥३॥ सुर, असुर, पितर और मनुष्य की सृष्टि की इच्छा से उन्होने अपने अश को जल मे डाला ॥४॥ सृष्टिकामी ब्रह्माजी मे तमोगुण का उद्रेक होने से, उनकी जघा से प्रथम असुरो की उत्पत्ति हुई ॥५॥ इसीलिए उन्होंने उन असुरो को तमोगुणी शरीर दिया, वही शरीर त्यागा जाकर तमोगुणात्मिका रात्रि के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥६॥ फिर ब्रह्माजी ने दूसरा शरीर धारण किया, उससे वे प्रसन्न हुए, उसमे सतोगुण का उद्रेक होने से उनके मुख मे देवताओ की उत्पत्ति हुई ॥७॥ उनको सात्विक शरीर दिया, वही व्यक्त देह सत्वगुणात्मक दिवस नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥८॥

सत्त्वमात्रात्मिकामेवतयोऽन्याजगृहेतनुम् ।
पितृवन्मन्यमानस्यपितरस्तस्यजज्ञिरे ॥९
सृष्ट्वापितृनुत्ससर्जतनु तामपिसप्रभु ।
साचोत्सृष्टाभवत्सन्ध्यादिननक्तान्तरस्थिता ॥१०
रजोमात्रात्मिकामन्यातनु भेजेऽथसप्रभु ।
ततोमनुष्या सम्भूतारजोमात्रसमुद्भवा ॥११
सृष्ट्वामनुष्यान्सविभुरुत्ससर्जतनु ततः ।
ज्योत्स्नासमभवत्साचनक्तातेऽहर्मु खेचया ॥१२
इत्येतास्तनवस्तस्यदेवदेवस्यधीमत ।
ख्यातारात्र्यहनीचैवसन्ध्याज्योत्स्नाचवैद्विज ॥१३
ज्योत्स्नासन्ध्यातथैवाह सत्त्वमात्रात्मकत्रयम् ।
तमोमात्रात्मिकारात्रि सावैतस्मात्तमोधिका ॥१४

फिर उन्होने अन्य सत्वमय शरीर धारण कर पितरो की सृष्टि की ॥९॥ पितरो को शरीर देने पर, वह व्यक्त शरीर दिवस रात्रि के भीतर स्थित सन्ध्या रूपात्मक हुआ ॥१०॥ इसके पश्चात् रजोगुण युक्त अन्य देह धारण करके उन्होने रजोगुण की अधिकता वाले मनुष्यो को उत्पन्न किया ॥११॥ मनुष्यो को उत्पन्न करके उस शरीर का भी परित्याग कर दिया, वह व्यक्त शरीर ज्योत्स्ना हुआ, रात्रि के शेष मे और दिवस मे प्रथम भाग मे आविर्भूत होती है ॥१२॥ हे द्विज ! मेधावी देवदेव के यह सब विग्रह ही दिवस, रात्रि, सध्या और ज्योत्स्ना के नाम से प्रसिद्ध हुए है ॥१३॥ ज्योत्स्ना, सध्या और दिवस यह तीन सतोगुणी है और रात्रि तामसिक होने से अधकार मयी है ॥१४॥

तस्माद्देवादिवारात्रावसुरास्तुबलान्विता ।
ज्योत्स्नागमेचमनुजास्सन्ध्यायापितरस्तथा ॥१५
भवन्तिबलिनोऽधृष्याविपक्षाणानसशयः ।
तद्विपर्ययमासाद्यप्रयान्तिचविपर्ययम् ॥१६
ज्योत्स्नारात्र्यहनीसन्ध्याचत्वार्येतानिवैप्रभो ।
ब्रह्मणस्तुशरीराणित्रिगुणोपसृतानितु ॥१७

चत्वार्येतान्यथोत्पाद्यतनुमन्याप्रजापति॑ ।
रजस्तमोमयीरात्रौजगृहेक्षुत्तृडन्वितः ॥१८
तदन्धकारेक्षुत्क्षामामगृह्णाद्भगवानज ।
विरूपाञ्छमश्रुलानत्तुमारब्धास्तेचताततनुम् ॥१९
रक्षामइतितेभ्योऽन्येयउचुस्तेतुराक्षसाः ।
खादामइतियेचोचुस्तेयक्षायक्षणाद्विज ॥२०
तान्दृष्ट्वाह्यप्रियेणास्यकेशाःशीर्यन्तवेधस ।
समारोहणहीनाश्चशिरसोब्रह्मणस्तुते ॥२१
सर्पणात्तेऽभवन्सर्पाहीनत्वादहय स्मृता ।
सर्पान्दृष्ट्वातन क्रोधात्क्रोधात्मानोविनिर्ममे ॥२२

पूर्वोक्त गुणो की अधिकता से दिन मे देवता, रात्रि मे असुर, ज्योत्स्ना मे मनुष्य और सध्या काल मे पितर ॥१५॥ अधिक बलवान् होकर शत्रुओ द्वारा नही जीते जाते, इस प्रकार विपरीत काल मे विपरीत बलवान् हो जाते है ॥१६॥ प्रजापति ने दिवस, रात्रि, सध्या और ज्योत्स्ना रूप जो चार प्रकार के देह उत्पन्न किये, वही ब्रह्माजी का त्रिगुणात्मक देह है ॥१७॥ चारो देहो को प्रजापति ने उत्पन्न करके क्षुधा पिपासा से युक्त रज-तम युक्त रात्रि को ग्रहण किया ॥१८॥ उन अंधेरे मे ब्रह्माजी ने क्षुधा से कृश हुए विरूप दाढी मूँछ वालो की रचना की तब वे उस देह को भक्षण करने को ही प्रवृत्त हुए ॥१९॥ जब वह उस देह को भक्षण करने को उद्यत हुए तब जिन्होने 'रक्षा करो' कहा वे राक्षस और जिन्होने 'खाऊँगा' कहा वह यक्ष कहे गये ॥२० । उन्हे देख कर अप्रसन्नता उत्पन्न हुई इससे ब्रह्माजी के सब केश मस्तक से पतित हुए ॥२१॥ और विचरण करने से सप सज्ञक हुए, हीन होने से यह अहि भी कहे जाते है, सर्पो को देख कर क्रोध युक्त होने स उन्हे क्रोधा मा बनाया ॥२२॥

वर्णेनकपिलेनोग्रास्तेभूता पिशिताशना ।
ध्यायतोगाततस्तस्यगन्धर्वाजज्ञिरेसता ॥२३
जज्ञिरेपिततोवाचगन्धर्वास्तेनतेस्मृता ।
अष्टास्वेतासुसृष्टासुदेवयोविषुसप्रभु ॥२४

तत स्वदेहतोऽन्यानिवयासिपशवोऽसृजत् ।
मुखतोऽजाःससर्ज्जाथवक्षसश्चावयोऽसृजत् ।।२५
गाश्चैवोदरतोब्रह्मापाश्र्वाभ्याचविनिर्ममे ।
पद्भ्याचाश्वान्समातङ्गान्रासभाञ्छशकान्मृगान् ।।२६
उष्ट्रानश्वतराश्चैवनानारूपाश्चजातय ।
ओषध्य फलमूलिन्योरोमभ्यतस्यजज्ञिरे ।।२७
एवपश्वोषधी सृष्ट्वाह्ययजच्चाध्वरेविभु. ।
तस्मादादौतुकल्पस्यत्रेतायुगमुखेतदा ।।२८

कपिल वर्ण से प्रकट कर्कश स्वभाव वाले आमिष भोजी गणो की उत्पत्ति हुई, गौ का चिन्तन करते समय गधर्व उत्पन्न हुए ।।२३।। वाक्य को ग्रहण करते करते उत्पत्ति को प्राप्त होने से उनका नाम गधर्व हुआ, इस प्रकार आठ प्रकार की देवयोनि को प्रकट करके ।।२४।। अपने शरीर से अन्य सभी पशु पक्षी प्रकट किये, मुख से बकरा और हृदय से पक्षी उत्पन्न किये ।।२५।। उदर और पार्श्व से गौ, दोनो चरणो से अश्व, हाथी, गधा, खरगोश, मृग ।।२६।। ऊँट और खच्चर उत्पन्न किये तथा रोम से फल मूल युक्त विभिन्न प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न की ।।२७।। इस प्रकार त्रेतायुग के आरभ मे ब्रह्माजी पशु और औषधियो की रचना करके यज्ञ सृजन मे लगे ।।२८।।

गौरज पुरुषोमेषोअश्वाश्वतरगर्दभा ।
एतान्ग्राम्यान्पशूनाहुराण्याश्चनिबोधमे ।।२९
श्वापदद्विखुरहस्तीवानरा पक्षिपचमा. ।
औदका पशव षष्ठा सप्तमास्तुसरीसृपा ।।३०
गायत्रीश्चतृचचैवत्रिवृत्सामरथन्तरम् ।
अग्निष्टोमचयज्ञानानिर्ममेप्रथमान्मुखात् ।।३१
यजूंषित्रैष्टुभछन्द स्तोमपचदशतथा ।
बृहत्सामतथोक्त चदक्षिणादसृजन्मुखात् ।।३२
सामानिजगतीच्छन्द स्तोमपचदशतथा ।
वैरूपमतिरात्रचनिर्ममेपश्चिमान्मुखात् ।।३३

एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेवच ।
आनुष्टुभसवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥३४
विद्युतोऽशनिमेघाश्चरोहितेन्द्रधनूंषिच ।
वयांसिचससर्ज्जादौकल्पस्यभगवान्विभुः ॥३५

गौ, बकरा, भैंसा, मेढा, घोडा, खच्चर और गधा इन पशुओं को ग्राम्य कहा गया है, अब आरण्य पशुओं का वर्णन करता हूँ ॥२९॥ श्वापद, द्विखुर, हाथी, बन्दर, पक्षी, जल के जीव, पशु और सर्पादि यह सात आरण्य अर्थात् वन के जीव कहे गये है ॥३०॥ ब्रह्मा ने पहिले अपने मुख से गायत्री, त्रिवृत्, साम रथन्तर और अग्निष्टोम की उत्पत्ति की ॥३१॥ दक्षिण मुख से यजुर्वेद, त्रैष्टुभ छंद, पंचदश स्तोम, बृहत् साम और उक्थ को प्रकट किया ॥३२॥ पश्चिम मुख से सामवेद, जगती छन्द, पंचदश स्तोम, वैरूप और अतिरात्र को प्रकट किया ॥३३॥ उत्तर मुख के द्वारा इक्कीस अथर्व, आप्तोर्याम, आनुष्टुभ और वैराज की उत्पत्ति की ॥३४॥ उन विभु ने कल्प के प्रथम विद्युत्, वज्र, मेघ, रोहित इन्द्र धनुष और पक्षियों को उत्पन्न किया ॥३५॥

उच्चावचानिभूतानिगात्रेभ्यस्तस्यजज्ञिरे ।
सृष्ट्वाचतुष्टयपूर्वदेवासुरपितृन्प्रजा ॥३६
ततोऽसृजत्सभूतानिस्थावराणिचराणिच ।
यक्षान्पिशाचान्गन्धर्वास्तथैवाप्सरसागणान् ॥३७
नरकिन्नररक्षांसिवयःपशुमृगोरगान् ।
अव्ययचव्ययचैवयदिदस्थाणुजङ्गमम् ॥३८
तेषांयेयानिकर्माणिप्राक्सृष्टेःप्रतिपेदिरे ।
तान्येवप्रतिपद्यन्तेसृज्यमानाःपुनःपुनः ॥३९
हिंस्राहिंस्रेमृदुक्रूरेधर्माधर्मावृतानृते ।
तद्भाविताःप्रपद्यन्तेतस्मात्तत्तस्यरोचते ॥४०
इन्द्रियार्थेषुभूतेषुशरीरेषुचसप्रभुः ।
नानात्वंविनियोगंचधातैवव्यदधात्स्वयम् ॥४१

नामरूपचभूतानाकृत्यानाचप्रपचनम् ।
वेदशब्देभ्यएवादौदेवादीनाचकारस ।।४२
ऋषीणानामधेयानियाश्चदेवेषुसृष्टयः ।
शर्वर्यन्तेप्रसूतानामन्येषाचददातिसः ।।४३
यथार्त्तावृतुलिङ्गानिनानारूपाणिपर्यये ।
दृश्यन्तेतानितान्येवतथाभावायुगादिषु ।।४४
एवविधा सृष्टयस्तुब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन ।
शर्वर्यन्तेप्रबुद्धस्यकल्पेकल्पेभवन्तिवै ।।४५

फिर सुर, असुर, पितर, मनुष्य उत्पन्न करके विभिन्न प्रकार के अन्य प्राणियो को उत्पन्न किया ।।३६।। फिर स्थावर, जगम, भूतगण, यक्ष, पिशाच, गधर्व और अप्सराएँ ।।३७।। नर, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, मृग, तथा नाग इत्यादि सब नाशवान् और स्थायी स्थावर जगम पदार्थो की उत्पत्ति हुई ।।३८।। सृष्टि के प्रथम ही जिनका जो कर्म है, वह निर्दिष्ट हो गया, इसलिए वह बारबार उत्पन्न होकर भी अपने नियत कर्मो को प्राप्त होते है ।।३९।। पूर्व जन्म मे जीव जिस अहिंसा, मृदुता, क्रूरता, धर्म, सत्य, मिथ्या आदि का आश्रय लेता है, उसे परजन्म मे उसी की प्राप्ति होती है ।।४०।। जीवो मे इन्द्रियो के विषय और देहो मे इंद्रियाँ उनके कर्मानुसार ही उन विभु ब्रह्माजी ने निर्मित की है ।।४१।। उनके नाम, रूप, कृत्य, अकृत्य, प्रपच और देव-कर्म आदि का निर्माण वेद शब्द से किया ।।४२।। प्रलय के पश्चात् पहिले के समान ही उन्होने ऋषियो के नाम और देवताओ की रचना की ।।४३।। जैसे ऋतु परिवर्तन के समय उसके लक्षण दिखाई देने लगते है, वैसे ही युग-युग मे उनके आगामी लक्षण प्रकट होने लगते है ।।४४।। अव्यक्त जन्मा ब्रह्माजी प्रलयान्त के समय इसी प्रकार सृजन कार्य करते है ।।४५।।

४१--मिथुन सृष्टि और स्थान कथन

अर्वाक्स्रोतस्तुकथितोभवतायस्तुमानुषः ।
ब्रह्मन्विस्तरतोब्रूहिब्रह्मासमसृजद्यथा ।।१

यथा चवर्णानसृजद्यद्गुणाश्चमहामते ।
यच्चयेषास्मृतकर्मविप्रादीनावदस्वतत् ।।२
ब्रह्मण मृजत पूर्वसत्याभिध्यायिनस्तथा ।
मिथुनानासहस्र तुमुखात्सोऽथासृजन्मुने ।।३
जातास्तेह्यु पपद्यन्तेसत्त्वोद्रिक्ता स्वतेजसः ।
सहस्रमन्यद्वक्षस्तोमिथुनानाससर्जह ।।४
तेसर्वेरजसोद्रिक्ताःशुष्मिणश्चाप्यमर्षिण. ।
ससर्जान्यत्सहस्र तुद्व द्वानामूरुत पुन ।।५
रजस्तमोभ्यामुद्रिक्ताईहाशीलास्तुते स्मृता ।
पद्भ्यासहस्रमन्यच्चमिथुनानाससर्जह ।।६
उद्रिक्तास्तमसासर्वेनि श्रीकाह्यल्पतेजस ।
तत सघर्षमाणास्तेद्वन्दोत्पन्नास्तुप्राणिन· ।।७

क्रौष्टुकि बोले—हे भगवान् ! आपने अर्वाक्स्रोत वाले मनुष्यो का जो वर्णन किया, उसी विषय को विस्तार पूर्वक कहिये ।।१।। हे महामते ! गुण वाली सब वर्णो की सृष्टि जिस प्रकार हुई तथा ब्राह्मणादि का जो-जो कर्त्तव्य है, वह सभी मुझे बताइये ।।२।। मार्कण्डेयजी ने कहा—सृष्टि के पहिले ही ध्यान शील ब्रह्माजी के मुख से सहस्र मिथुन की सृष्टि हुई थी ।।३।। यह सब तेजस्वी तथा सतोगुण की अधिकता वाले हुए उनके वक्षस्थल से और दूसरे सहस्र मिथुन उत्पन्न हुए ।।४।। वह सब क्रोधमय स्वभाव के तथा रजोगुणी थे, उनके ऊरुदेश से जो सहस्र मिथुन उत्पन्न हुए ।।५।। वह रजोगुण और तमोगुण के उद्रेक से युक्त, ईर्ष्यावान् हुए तथा जो सहस्र मिथुन दोनो चरणो से उत्पन्न हुए ।।६।। वह लक्ष्मीहीन तमोगुणी तथा तेजहीन हुए, तदनन्तर सघर्षण से जो द्वन्द्वरूप जीव उत्पन्न हुए ।।७।।

अन्योन्यहृच्छयाविष्टामैथुनायोपचक्रमु ।
तत प्रभृतिकल्पेऽस्मिन्मिथुनानाहिसम्भव ।।८
मासिमास्यार्तवयत्तुनतदासीत्तुयोषिताम् ।
तस्मात्तदानसुषुवु सेवितैरपिमैथुनै ।।९

आयुषोन्तेप्रसूयन्तेमिथुनान्येवता सकृत् ।
(कुलिककुलिकाचैवउत्पद्य तेमुमूर्षता) ।
तत प्रभृतिकल्पेऽस्मिन्मिथुनानाहिसम्भव ।।१०
ध्यानेनमनसातासाप्रजानाजायतेसकृत् ।
शब्दादिविषय शुद्ध प्रत्येकपचलक्षण ।।११
इत्येषामानुषीसृष्टिर्यापूर्ववैप्रजापते ।
तस्यान्ववायसम्भूतार्थैरिदपूरितजगत् ।।१२
सरित्सर समुद्राश्चसेवन्तेपर्वतानपि ।
तास्तदाह्यल्पशीतोष्णायुगेतस्मिश्चरन्तिवै ।।१३
तृप्तिस्वाभाविकीप्राप्ताविषयेषुमहामते ।
नतासाप्रतिघातोऽस्तिनद्वेषोनापिमत्सर ।।१४
पर्वतोदधिसेविन्योह्यनिकेतास्तुमर्वश ।
तावेनिष्कामचारिण्योनित्यमुदितमानसा ।।१५

वह द्वन्द्व से उत्पन्न प्राणी प्रसन्न चित्त से मैथुन मे प्रवृत्त हुए, इस प्रकार इस कल्प मे मिथुनो की सृष्टि हुई ।।८।। पूर्वकाल मे स्त्रियो को मासिक रजोधर्म का अभाव था, इसलिए वह अन्य समय मे मैथुन करके भी ।।९।। सन्तति उत्पादन मे समर्थ नही थी केवल अवस्था के अन्त मे एक ही बार सन्तति होती थी (अन्त अवस्था मे ही कुलिक और कुलका उत्पन्न होते थे) तब से इसी प्रकार इस कल्प मे मिथुन की उत्पत्ति होती आयी है ।।१०।। ब्रह्माजी ने जब प्रजा का चिन्तन किया, तब उनके मन से पच महाभूत और शब्दादि विषय एक साथ उत्पन्न हुए ।।११।। यही प्रजापति की मानसी सृष्टि कही जाती है, इस समय यह विश्व उसी सृष्टि से परिपूर्ण होरहा है ।।१२।। पहिले युग मे अल्प शीतोष्ण हुए प्रजागण सरित्, सरोवर और समुद्र के निकट अथवा पर्वतो मे घूमते थे ।।१३।। हे महामते ! वह उपभोग मे स्वाभाविक रूप से तृप्त रहते थे, उनमे किसी भी प्रकार का विघ्न, द्वेष और मत्सर नही था ।।१४।। वह पर्वत मे या समुद्र के किनारे रहते हुए सदा कामना रहित आचरण करते थे और प्रसन्न चित्त रहते थे ।।१५।।

पिशाचोरगरक्षासितथामत्सरिणोजना ।
पशव पक्षिण श्चैवनक्रामत्स्या सरीसृपा ॥१६
अवारकाह्यण्डजावातेह्यधर्मप्रसूतय ।
नमूलफलपुष्पाणिनार्तवावत्सराणिच ॥१७
सर्वकालसुख कालोनात्यर्थघर्मशीतता ।
कालेनगच्छनातेषापित्रासिद्धिरजायत ॥१८
ततश्चतेषापूर्वाह्णे मध्याह्ने चवितृनता ।
पुनस्तथेच्छतातृप्तिरनायासेनसाभवत् ॥१९
इच्छताचतथाथायासोमनस समजायत ।
अपासौक्ष्म्यततस्तासासिद्धिर्नाम्नारसोल्लसा ॥२०
समजायतचैवान्यासर्वकामप्रदायिनी ।
असस्कार्यैं शरीरैश्चप्रजास्ता स्थिरयौवना ॥२१

पिशाच, उरग, राक्षस, मत्सर युक्त मनुष्य पशु, पक्षी, नक्र, मत्स्य, बिच्छू ॥१६॥ अवारक और अण्डज प्राणियो की उत्पत्ति अधर्म से हुई है, उस समय मूल, फल, पुष्प, ऋतु और वर्ष इत्यादि कुछ भी नही था ॥१७॥ उस समय उष्णता या शीत भी नही था, सब काल अत्यन्त सुख ही था, काल क्रम से उन्हे अद्भुत सिद्धि प्राप्त थी ॥१८॥ पूर्वाह्न या मध्याह्न मे उनको तृप्ति नही होती थी तो वह इच्छा करके सहज मे ही तृप्ति को प्राप्त कर लेते थे ॥१९॥ तथा इच्छा करते ही जल के सूक्ष्म होने के कारण उनकी विभिन्न प्रकार की रस और उल्लास वाली अन्य सिद्धि ॥२०॥ उपस्थित होकर सब इच्छा पूर्ण कर देती, वह सस्कार-हीन होते हुए भी स्थिर यौवन से सम्पन्न थे ॥२१॥

तासाविनातुसकल्पजान्तेमिथुना प्रजाः ।
समजन्मचरूपचम्रियन्तेचैवता समम् ॥२२
अनिच्छाद्वेषसयुक्तावर्तन्तेतुपरस्परम् ।
तुल्यरूपायुष.सर्वाअधमोत्तमताविना ॥२३
चत्वारितुसहस्राणिवर्षाणामानुपाणितु ।
आयु प्रमाणजीवन्तिनचक्लेशाद्विपत्तय ॥२४

क्वचित्क्वचित्पुनःसाभूत्क्षितिर्भाग्येनसर्वश ।
कालेनगच्छतानाशमुपयान्तियथाप्रजा ।।२५
तथाताःक्रमशोनाशजग्मु सर्वत्रसिद्धय ।
तासुसर्वासुनष्टासुनभस प्रच्युतारसा ।।२६
पयस कल्पवृक्षास्तेसभूतागृहसस्थिता ।
सर्वप्रत्युपभोगाश्चतासातेभ्य प्रजापते ।।२७
वर्तयन्तिस्मतेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखेतदा ।
तत कालेनवैरागस्तथासामाकस्मिकोऽभवत् ।।२८

बिना सकल्प ही उनकी मिथुन प्रजा जैसे एक साथ उत्पन्न होती वसे ही रूप आदि मे समता प्राप्त करके एक साथ ही मृत्यु को प्राप्त होती थी ।।२२।। उनमे पारस्परिक इच्छा या द्वेष न था, सभी समान भाव से समय को व्यतीत करते थे, उनमे कोई ऊँच-नीच भी न था, क्योकि सभी आयु और रूपादि मे समान होते थे ।।२३।। यह मिथुन सृष्टि चार हजार मानवी वर्ष तक जीवित रहती थी और बिना विपत्ति अथवा क्लेश के ही प्राण छोडती थी ।।२४।। कही कही पृथिवी दैववशात् ऐसी होजाती थी, जिसके कारण प्रजा को क्रमानुसार जीवन समाप्त करना होता था ।।२५।। वह सभी सिद्धियाँ क्रमानुसार नाश को प्राप्त होगयी और उनके समाप्त होते ही आकाश से रस बरसने लगे ।।२६।। तब जल और दुग्ध की प्राप्ति हुई, गृहो मे कल्पवृक्षो की उत्पत्ति हुई और उन कल्पवृक्षो से ही सम्पूर्ण भोगो की उपलब्धि होने लगी ।।२७।। त्रेता के प्रारम्भ मे अपने जीवन का निर्वाह मनुष्य इस प्रकार किया करते थे, फिर समय पाकर उनमे आकस्मिक राग की उत्पत्ति हुई ।।२८।।

मासिवास्यार्तवोत्पत्त्यागर्भोत्पत्ति पुन पुन ।
रागोत्पत्त्याततस्तासावृक्षास्तेगृहसस्थिता ।।२९
प्रणेगुरपरेचासश्चतु शाखामहीरुहाः ।
वस्त्राणिचप्रसूयन्तेफलेष्वाभरणानिच ।।३०
तेष्वेवजायतेतेषागन्धवर्णरसान्वितम् ।
अमाक्षिकमहावीर्यपुटकेपुटकेमधु ।।३१

तेनतावर्तयन्तिस्ममुखेत्रेतायुगस्यवै ।
तत कालान्तरेणैवपुनर्लोभान्वितास्तुता ॥३२
वृक्षास्ता पर्यगृह्णन्तममत्वाविष्टचेतस ।
नेशुस्तेनापचारेणतेहितासामहीरुहा ॥३३
(मूलेषुचापरवासचक्रु शालामहीरुहाम् ।)
ततोद्वन्द्वान्यजायन्तशीतोष्णक्षुन्मुखानिवै ।
तास्तद्द्वन्द्वोपघातार्थचक्रु पूर्वपुराणितु ॥३४

इस प्रकार राग के उत्पन्न होने से ही मासिक ऋतुकाल और बारबार गर्भधारणादि होने लगा और उनके गृह मे स्थित कल्पवृक्ष भी रागयुक्त हो गये ॥२६॥ इससे वह कल्पवृक्ष नाश को प्राप्त हुए और चार शाखो वाले अन्य वृक्षो की उत्पत्ति हुई, उनके फलो मे वस्त्राभरण प्रकट होते थे ॥३०॥ फलो के प्रत्येक पुट मे श्रेष्ठ गन्ध और वर्ण वाला बलप्रद मधु मक्खियो के बिना ही उत्पन्न होता था ॥३१॥ त्रैता के प्रारभ काल की प्रजा इस मधु को पीकर ही जीवन धारण करती थी, फिर वह कालक्रम से लोभान्वित होकर ॥३२॥ ममता वाले मन से उन वृक्षो के ग्रहण किये जाने के कारण सभी वृक्ष नष्ट होगये।३३। (वृक्षो की निवास योग्य शाला बनाली थी) फिर शीत, उष्णता क्षुधा आदि सभी द्वन्द्व उत्पन्न हुए, तब उन्हे निवारण करने के लिये पुरो का निर्माण किया ॥३४॥

मरुधन्वसुदुर्गेषुपर्वतेषुदरीषुच ।
सश्रयन्तिचदुर्गाणिवार्क्षपार्वतमौदकम् ॥३५
कृत्रिमचतथादुर्गमित्वामित्वात्मनोऽगुलै ।
मानार्थानिप्रमाणानितास्तुपूर्वप्रचक्रिरे ॥३६
परमाणु परसूक्ष्मत्रसरेणुर्महीरज ।
वालाग्र चैवलिक्षाचयूकाचाथयवोदरम् ॥३७
क्रमादष्टगुणान्याहुर्यवानष्टौतथागुलम् ।
षडगुलपदतच्चवितस्तिर्द्विगुणंस्मृतम् ॥३८

द्वे वितस्तीतथाहस्तोब्राह्म्यतीर्थादिवेष्टित ।
चतुर्हस्तधनुर्दण्डोनाडिकायुगमेवच ।।३९
क्रोशोधनु सहस्रे द्वौगव्यूतिस्तच्चतुर्गु णम् ।
प्रोक्त चयोजनप्राज्ञै सख्या नार्थमिदपरम् ।।४०
चतुर्णामथदुर्गाणास्वसमुत्थानित्रीणितु ।
चतुर्थकृत्रिमदुर्गतच्चक्रुर्यत्नतस्तुवै ।।४१

तब मरुभूमि, पर्वत, गुफा इत्यादि मे दुर्ग आदि के बनने पर वह उन वृक्षो, पर्वतो और जल आदि मे बने दुर्गो मे रहने लगे ।।३५।। तथा अपनी अँगुली आदि के परिणाम से सब कृत्रिम दुर्ग बना कर परिमाण निश्चित करने के लिये प्रमाण बनाया ।।३६।। अति सूक्ष्म प्रमाण के लिये परमाणु जाली के छेदो मे किरण पडने से सूक्ष्म रज दिखायी देती है, उसके तृतीयाश को परमाणु कहते है, त्रसरेणु और धूल तथा स्थूल: प्रमाण के लिये केशाग्र, निष्क, यूका और यव निश्चित किया ।।३७।। आठ यव मे एक अगुल, छ अगुल मे एक पद, दो पद मे एक वितस्ति ।।३८।। दो वितस्ति मे एक हाथ, ब्राह्मतीर्थ तक चार हाथ मे धनुर्दण्ड अथवा नाडिका युग ।।३९।। दो हजार धनु मे एक गव्यूति और चार गव्यूति मे एक योजन होता है, सख्या निरूपणार्थ पडितजनो ने इस प्रकार निर्धारित किया है ।।४०।। पहिले कहे हुए चार प्रकार के दुर्ग मे तीन स्वाभाविक और अन्य कृत्रिम है, दुर्ग कर्म यही है ।।४१।।

पुरचखेटकचैवतद्वद्द्रोणीमुखद्विज ।
शाखानगरकचापितथाखर्वटकद्रमी ।।४२
ग्रामसघोषविन्यासतेषुचावसथान्पृथक् ।
सोत्सेधवप्रणारचसर्वत परिखावृतम् ।।४३
योजनार्द्धार्द्ध विष्कम्भमष्टममायतपुरम् ।
प्रागुदक्प्रवणशस्तशुद्धवशबहिर्गमम् ।।४४
तदर्द्धे नतथाखेटतत्पादेनचखर्वटम् ।
न्यूनद्रोणीमुखतस्मादष्टभागेनचोच्यते ।।४५

प्राकारपरिखाहीनपुरखर्वटमुच्यते ।
शाखानगरकचान्यन्मन्त्रिसामन्तभुक्तिमत् ।।४६
तथाशूद्रजनप्राया स्वसमृद्धकृषीवला ।
क्षेत्रोपभोग्यभूमध्येवसतिर्ग्रामसज्ञिता ।।४७
अन्यस्मान्नगरादेर्याकार्यमुद्दिश्यमानवै ।
क्रियतेवसति सावैविज्ञेयावसतिर्नरै ।।४८
दुष्टप्रायोविनाक्षेत्रै परभूमिचरोबली ।
ग्रामएवद्रमीसज्ञोराजवल्लभसश्रय ।।४९

फिर उन्होने उन स्थानो मे पुर, खेटक, द्रोणीमुख, शाखानगर, खर्वटक, द्रमी ।।४२।। ग्राम सघोष की रचना की और उनमे पृथक् पृथक् आवास गृह बनाये, जिनके चारो ओर प्राचीर और खाइयाँ थी ।।४३।। लम्बाई मे दो कोश और उसके अष्टाश चौडे को पुर कहते है, इसका पूर्व और उत्तर भाग जल प्लावित होने के कारण उसमे बाहर जाने का मार्ग (पुल) होना चाहिये ।।४४।। पुर के अर्ध लक्षण वाले को खेटक, उससे अर्ध लक्षण वाले को खर्वटक तथा पुर के अष्टमाश लक्षण वाले को द्रोणमुखी कहते है ।।४५।। जिस पुर मे दीवार तो है, परन्तु खाई नही है, उसे खर्वट कहा गया है, जिसमे मन्त्रिगण और सामन्तादि रहते हो, उस विभिन्न प्रकार के भोग पदार्थ वाले को शाखानगर कहते है ।।४६।। जहाँ शूद्र अथवा अपनी-अपनी समृद्धि वाले कृषक रहते हो और जिसके चारो ओर खेत आदि है, उसे ग्राम कहा गया है ।।४७।। किसी कार्य मे अन्यान्य नगरादि से जहाँ आकर लोग रहते है, उसे वसति कहते है ।।४८।। जिस ग्राम के मनुष्य दुष्ट प्रकृति के बलवान् और अपना खेत न होने पर पराये खेत पर अधिकार कर लेते है और जहाँ राजा के प्रिय लोग रहते है, वह ग्राम द्रमी कहा गया है ।।४९।।

शकटारूढभाण्डैश्चगोपालैर्विपणविना ।
गोसमूहैस्तथाघोषोयत्रेच्छाभूमिकेतन. ।।५०
तएवनगरादीस्नुकृत्वावासार्थमात्मन. ।
निकेतनानिद्वद्वानाचक्रुश्चोपशमायवै ।।५१

गृहाकारायथापूर्वंतेषामासन्महीरुहा ।
तथासस्मृत्यतत्सर्वंचक्रुर्वेश्मानिता प्रजा ॥५२
वृक्षयस्यैवङ्गता:शाखास्तथैवचपरागता ।
नताश्चैवोन्नताश्चैवतद्वच्छाखा प्रचक्रिरे ॥५३
या शाखा कल्पवृक्षाणापूर्वमासन्द्विजोत्तम ।
ताएवशाखागेहानाशालात्वतेनतासुतत् ॥५४
कृत्वाद्व द्वोपघाततेवार्तोपायमचितयन् ।
नष्टेषुमधुनासार्द्धंकल्पवृक्षेष्वशेषत ॥५५

जहाँ ग्वाले अपने बर्तन आदि को गाडी पर लाद कर रखते है, जहाँ गौएँ अधिक रहती है, जहाँ बाजार न हो और भूमि धन के बिना ही मिल जाती हो, उसे घोष कहते है ॥५०॥ इस प्रकार इन्होने अपने निवासार्थ स्थान बना कर द्वन्द्वो का शमन करने और व्यापार आदि के लिए गृहो का निर्माण किया, पहिले जो वृक्ष घरो के समान थे, उन्ही के आधार पर घर बनाये गये ॥५१-५२॥ जैसे वृक्ष की शाखाएँ एक के पीछे दूसरी तथा ऊँची नीची होती है, उसी प्रकार घरो की रचना की गई ॥५३॥ पहिले जो कल्प वृक्ष की शाखाएँ थी, उन शाखाओ ने सब घरो का शालात्व प्राप्त किया ॥५४॥ जब इन शालाओ द्वारा उनके शीत उष्ण आदि दु:ख नष्ट हुए, तब वह अपनी जीविका के निर्वाहार्थ चिन्ता करने लगे, उस समय मधु के सहित सब कल्पवृक्ष नष्ट हो गये ॥५५॥

विषादव्याकुलास्तावैप्रजास्तृष्णाक्षुधार्दिता ।
तत प्रादुर्बभौतासासिद्धिस्त्रेतामुखेतदा ॥५६
वार्त्तास्वसाधिताह्यन्यावृष्टिस्तासानिकामत: ।
तासावृष्ट्युदकानीह्यानिनिम्नगतानिवै ॥५७
वृष्ट्यावरुद्धैरभवन्स्रोत खातानिनिम्नगा ।
येपुरस्तादपास्तोकाआपन्ना पृथिवीतले ॥५८
ततोभूमेश्चसयोगादोषध्यस्तादाभवन् ।
अफालकृष्टाश्चानुप्ताग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥५९

ऋतुपुष्पफलाश्चैववृक्षागुल्माश्चजज्ञिरे ।
प्रादुर्भावस्तुत्रेतायामाद्योऽयमौषधस्यतु ॥६०
तेनौषधेनवर्तन्तेप्रजास्त्रेतायुगेमुने ।
रागलोभौसमासाद्यप्रजाश्चाकस्मिकौतदा ॥६१
ततस्ता.पर्यगृह्णन्तनदीक्षेताणिपर्वतान् ।
वृक्षगुल्मौषधीश्चैवमात्सर्याच्चयथाबलम् ॥६२
तेनदोषेणतानेशुरोषध्योमिषताद्विज ।
अग्रसद्भूर्युगपत्तास्तदौषध्योमहामते ॥६३

तब वह सम्पूर्ण प्रजा विषाद और क्षुधा, पिपासा से अत्यन्त व्याकुल हो गई, क्यो कि त्रेता के प्रारम्भ मे ही उनमे इस प्रकार की सिद्धि थी ॥५६॥ उस समय उनके इच्छा करते ही वृष्टि होती और वर्षा का जल नीचे को गमन करता था ॥५७॥ वर्षा का रुका हुआ जल स्रोत द्वारा गहराई करता हुआ नदी स्वरूप होगया तथा प्रथम जो सामान्य जल पृथिवी मे गिरा ॥५८॥ उस समय वह जल मिट्टी से मिल कर निर्दोष हो गया, इसमे ग्राम्य और आरण्य जो चौदह वृक्ष थे, वे सभी स्वय उत्पन्न हुए थे ॥५९॥ वह सब ऋतु मे फल, पुष्प उत्पन्न करते थे, इस प्रकार त्रेता के प्रारम्भ मे सब औषधियाँ उत्पन्न हुई ॥६०॥ हे मुने ! अकस्मात् राग और लोभ से युक्त हुए प्रजागण उन औषधियो से उत्पन्न हुए पदार्थो से ही त्रेता के प्रारम्भ मे जीवन धारण करते थे ॥६१॥ फिर जिससे देह अधिक बलशाली हो सके, इस लिये नदी, खेत, पर्वत, वृक्ष, गुल्म एव सब औषधियो का अवलम्बन करने लगे ॥६२॥ इसी दोष के कारण वह सभी औपधिया नष्ट हो गई अर्थात् एक सयय मे ही वह सब औपधियाँ पृथिवी द्वारा ग्रास कर ली गई ॥६३

पुनस्तासुप्रणष्टासुविभ्रान्तास्ता.पुन प्रजा ।
ब्रह्माणंशरणंजग्मु क्षुधार्त्ता:परमेष्ठिनम् ॥६४
सचापितत्त्वतोज्ञात्वातदाग्रस्तावसुन्धराम् ।
वत्सकृत्वासुमेरुंतुदुदोहभगवान्विभु ॥६५

दुग्धेयगौस्तदातेनसस्यानिपृथिवीतले ।
जज्ञिरेतानिबीजानिग्राम्यारण्यास्तुताःपुनः ॥६६
ओषध्य फलपाकान्तागणा सप्तदशस्मृता ।
व्रीहयश्चयवाश्चवगोधूमाअणवस्तिला ॥६७
प्रियङ्गव कोविदारा कोरदूषासतीनका ।
मापामुद्गामसूराश्चनिष्पावा सकुलत्थका ॥६८
आढक्यश्चणकाश्चैवशणा सप्तदशस्मृता ।
इत्येताओषधीनातुग्राम्याणाजतय पुरा ॥६९

इस प्रकार सब औषधियो के ग्रसित होने पर सम्पूर्ण प्रजा भ्रान्त हुई और क्षुधातुर हो कर ब्रह्माजी की शरण मे गयी ॥६४॥ तब उन ब्रह्माजी ने पृथिवी को ग्रास करने वाली जान कर सुमेरु पर्वत को बछडा बना कर दोहन किया ॥६५॥ तब पृथिवी अपने तल मे समस्त धान्यो का दोहन कराने लगी, उसमे सब बीजो की उत्पत्ति हुई और ग्राम तथा वन के वृक्ष उत्पन्न हुए ॥६६॥ फल पकने पर सूखने वाली सत्रह प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न हुईं उनके नाम व्रीहि, जौ, गेहूँ, तिला कोदो ॥६७॥ प्रियगुफल, राई, कोविदार, लाल कचनार, मटर, उडद, मूँग, मसूर, लोबिया, कुलथी ॥६८॥ अरहर और चना इन सत्रह जातियो की यह ग्राम्यौषधि उत्पन्न हुई ॥६९॥

औषध्योयज्ञियाश्चैवग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ।
व्रीहयश्चयवाश्चैवगोधूमाअणवस्तिला ॥७०
प्रियगुप_ावैह्येतेसप्तमास्तुकुलत्थकाः ।
श्यामाकास्त्वथनीवारायत्तिला सगवेधुका ॥७१
कुरुविन्दामर्कटकास्तथावेणुयथाश्चये ।
ग्राम्यारण्या स्मृताह्येताओषध्यश्चचतुर्दश ॥७२
यदाप्रसृष्टाओषध्योनप्ररोहन्तिता पुनः ।
तत सतासावृद्धयर्थवार्त्तोपायचकारह ॥७३
ब्रह्मास्वयम्भूर्भगवान्हस्तसिद्धिचकर्मजाम् ।
तत प्रभृत्यथौषध्य कृष्टपच्यास्तुजज्ञिरे ॥७४

ससिद्धायानुवार्त्तायाततस्तासास्वयप्रभु ।
मर्यादास्थापयामासयथान्यायययथागुणम् ।।७५
वर्णानामाश्रमाणाचधर्मान्धिर्मभृतावर ।
लोकानासर्ववर्णानासम्यग्धमर्थिपालिनाम् ।।७६

जो चौदह प्रकार की ग्राम्य और आरण्यक औषधियाँ है, वह यज्ञ मे व्यवहृत होती है, ब्रीहि, जौ, गेहूँ, अणु, तिल ।।७०।। प्रियगु, कुलथी, श्यामक, अलसी, तिल तथा गवेधुक ।।७१।। कुलथी, मर्कटक, वेणु, यव, चावल यह चौदह प्रकार की औषधिया ग्राम्यारण्यक मानी गई है ।।७२।। इस प्रकार जब उन श्रेष्ठ औषधियो का उत्पादन रुक गया तब ब्रह्माजी उनके जीवन यापन का उपाय सोचने लगे ।।७३।। तब उन्होने कर्म द्वारा सिद्ध होने वाली हस्त-सिद्धि को उत्पन्न किया, तभी से जोतने से उत्पन्न होने वाली औषधियो की उत्पत्ति हुई ।।७४ इस प्रकार उनके जीवन का साधन हो जाने पर स्वय ब्रह्मा जी ने न्याय और गुण के अनुसार उनकी मर्यादा बनायी ।।७५।। उस समय सब वर्णाश्रमो का धर्म तथा धर्म और अर्थ का पालन करने वाले लोक-धर्म का निरूपण किया ।।७६।।

प्राजापत्यब्राह्मणानान्मृतस्थानक्रियावताम् ।
स्थानमैन्द्र क्षत्रियाणासग्रामेष्वपलायिनाम् ।।७७
वैश्यानामारुतस्थानस्वधर्ममनुवतताम् ।
गन्धर्व शूद्रजातीनापरिचर्यानुवर्तिनाम् ।।७८
अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणामूर्ध्व रेतसाम् ।
स्मृततेषान्तुयत्स्थानतदेवगुरुवासिनाम् ।७९
सप्तर्षीणातुयत्स्थानस्मृततद्वै वनौकसाम् ।
प्राजापत्यगृहस्थानान्यासिनाब्रह्मण क्षयम् ।
योगिनाममृतस्थानमितिवै स्थानकल्पना ।।८०

कर्मवान् ब्राह्मणो के लिये उन्होने प्राजापत्य स्थान की कल्पना की और युद्ध से विमुख न होने वाले क्षत्रियो के लिये ऐन्द्र स्थान नियत किया ।।७७।। स्वधर्म परायण वैश्यो के लिये मारुत स्थान और सेवा करने वाले शूद्रो के लिए

गाधर्व स्थान बनाया ।।७८।। अट्ठासी महस्र ऊर्ध्वरेता ऋषियो के लिये जो स्थान नियत किये गये, वही स्थान गुरु-गृह मे निवास करने वाले ब्राह्मणो के लिये निश्चित हुए ।।७९।। सप्तऋषियो के लिये जिन स्थानो की कल्पना हुई वही स्थान बनवासियो के लिये नियत किये गये, गृहस्थ के लिये प्राजापत्य, सन्यासियो के लिये अक्षय ब्राह्मपद तथा योगियो को अमृत स्वरूप मोक्ष स्थान कल्पित किया गया ।।८०।।

४२—यज्ञानुशासन

ततोऽभिध्यायस्तस्यजज्ञिरेमानसी प्रजा. ।
तच्छीपसमुत्पनै कार्यैस्तै कारणै सह ।।१
क्षेत्रज्ञा समवर्तन्तगात्रेभ्यस्तस्यधीमत. ।
तेसर्वेसमवर्त्तन्तयेमयाप्रागुदाहृता ।।२
देवाद्या स्थावराताश्चत्रैगुण्यविषया स्मृता ।
एव भूतानिसृष्टानिस्थावराणिचराणिच ।।३
यदास्यता प्रजा सर्वानिव्यवर्द्धतधीमतः ।
अथान्यान्मानसान्पुत्रान्सदृशानात्मनोऽसृजत् ।।४
भृगु पुलस्त्यपुलहक्रतुमङ्गिरसतथा ।
मरीचिदक्षमत्रिचवसिष्ठंचैवमानसम् ।।५
नवब्रह्मण इत्येतेपुराणेनिश्चयङ्गता. ।
ताऽसृजत्पुनर्ब्रह्मारुद्रंक्रोधात्मसम्भवम् ।।६
सङ्कल्पचैवधर्मचपूर्वेषामपिपूर्वजम् ।
सनन्दनादयोयेचपूर्वसृष्टा स्वयभुवा ।।७
नतेलोकेषुसज्जन्तौनिरपेक्षा समाहिता ।
सर्वेतेऽनागतज्ञानावीतरागाविमत्सरा. ।।८

मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर ब्रह्माजी के दुबारा चिन्तन करने पर उन के देह से कार्य कारण वाली मानसी प्रजा की उत्पत्ति हुई ॥१॥ उन ब्रह्माजी के शरीर से सब क्षेत्रज्ञ उत्पन्न हुए और जो इनके अतिरिक्त उत्पन्न हुए उनका उल्लेख पहिले ही किया जा चुका है ॥२॥ देवताओ से स्थावर तक सभी जीव त्रिगुणात्मक है, इस प्रकार स्थावर जगम चराचर प्राणियो की ब्रह्माजी ने उत्पत्ति की ॥३॥ परन्तु जब ब्रह्माजी ने अपनी समस्त प्रजा की वृद्धि होती हुई न देखी, तब उन्होने अपने जैसे ही मानस पुत्रो की सृष्टि की ॥४॥ उन्होने भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अगिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ इन मानस पुत्रो को उत्पन्न किया ॥५॥ ब्रह्माजी के यह नौ मानस पुत्र माने गये है, फिर उन्होने क्रोधात्मक रुद्र की उत्पत्ति की ॥६॥ फिर सङ्कल्प और धर्म को उत्पन्न किया, जो कि पहिले से ही प्रकट है, उन्होने पूर्व सृष्टि मे ही सनन्दनादि तथा स्वायभुव को उत्पन्न किया ॥७॥ यह सभी भविष्य के जानने वाले, राग-रहित मात्सर्यहीन, निरपेक्ष और समाधि युक्त होकर प्रजा-सृजन के विषय मे लगे ॥८॥

तेष्वेवनिरपेक्षेषुलोकसृष्टौमहात्मन. ।
ब्रह्मणोऽभून्महाक्रोधस्तत्रोत्पन्नोऽर्कसन्निभः ॥६
अर्द्धनारीनरवपु पुरुषोऽतिशरीरवान् ।
विभजात्मानमित्युक्त्वासतदान्तर्दधेततः ॥१०
सर्च.त्तोवैपृथक्स्त्रीत्व पुरुषत्व तथाकरोत् ।
विभेदपुरुषत्व चदशधाचैकधातुसः ॥११
सौम्यासौम्यैस्तथाशान्तै पु स्त्व स्त्रीत्व चसप्रभु ।
विभेदबहुधादेव.पुरुषैरमितै शितैः ॥१२
ततोब्रह्मात्मसम्भूतपूर्व स्वायम्भुव प्रभु ।
आत्मनःसदृशकृत्वाप्रजापाल्येमनु द्विज ॥१३
शतरूपाचतानारीतपोनिर्धूतकल्मषाम् ।
स्वायम्भुवोमनुर्देव पत्नीत्वेजगृहेविभु ॥१४

सृष्टि कार्य मे उनके इस प्रकार लग जाने पर ब्रह्माजी अत्यन्त क्रोधित हुए और उस क्रोध से सूर्य के समान तेजस्वी एक पुरुष आविर्भूत हुआ ॥६॥

उसके शरीर का अर्द्धाङ्ग पुरुष और अर्द्धाङ्ग स्त्री था, फिर ब्रह्माजी उससे 'अपने देह को विभाजित कर' कहते हुए अन्तर्धान हो गये ॥१०॥ ब्रह्माजी की ऐसी आज्ञा पाकर उस पुरुष ने अपने शरीर के दो विभाग किये, जिससे स्त्रीत्व और पुरुषत्व पृथक्-पृथक् हो गये, उसमे पुरुषाकार भाग को सौम्य, असौम्य, शान्त, असित, सित आदि के भेद से ग्यारह भागो मे बाटा ॥११-१२॥ फिर ब्रह्माजी ने अपने समान पूर्वोत्पन्न उस पुरुष का नाम स्वायभुव मनु रखा और उसे प्रजा पालक बनाया ॥१३॥ और जिस स्त्री ने तप के द्वारा अपने पापो का क्षय किया था, उसका नाम 'शतरूपा' रखा, तब देव एव विभु स्वाय भुव मनु ने उस शतरूपा को अपनी भार्या बनाया ॥१४॥

तस्माच्चपुरुषात्पुत्रौशतारूपाव्यजायत ।
प्रियव्रतोत्तानपादौप्रख्याताव्रात्मकर्मभि: ॥१५
कन्येद्वे चतथाकूतिप्रसूतिचतत पिता ।
ददौप्रसूतिदक्षायतथाकूतिरुचे पुरा ॥१६
प्रजापति सजग्राहतयोर्यज्ञ सदक्षिरण ।
पुत्रोजज्ञे महाभागदम्पतोमिथुनतत. ॥१७
यज्ञस्यदक्षिरणायान्तुपुत्राद्वादशजज्ञिरे ।
यामाइतिसमाख्यातादेवा स्वायभुवेऽन्त रे ॥१८
तस्यपुत्रास्तुयज्ञस्यदक्षिणायासुभास्वरा ।
प्रसूत्याचतथादक्षश्चतस्रोविशतिस्तथा ॥१९
ससर्ज्जकन्यास्तासाचसम्यड्नामानिमेश्रृगु ।
श्रद्धालक्ष्मीधृ तिस्तुष्टि.पुष्टिर्मेधाक्रियातथा ॥२०
बुद्धिर्लज्जावपु शान्ति.सिद्धि कीर्तिस्त्रयोदशी ।
पत्न्यर्थेप्रपिजग्राहधर्मोदाक्षायणी.प्रभु ॥२१

उस पुरुष के द्वारा शतरूपा के दो पुत्र हुए, उनमे से एक का नाम प्रियव्रत और दूसरे का नाम उत्तानपाद हुआ, इन दोनो की प्रसिद्धि अपने-अपने कर्म से हुई ॥१५॥ और शतरूपा के दो कन्याएँ आकूती और प्रसूती नाम की हुई, स्वयभुव मनु ने प्रसूती को दक्ष के लिए और आकूती तो प्रजापति रुचि

के लिये ॥१६॥ अर्पण कर दिया, उनके एक पुत्र और एक पुत्री हुई उनका नाम यज्ञ और दक्षिणा रखा गया, वे दोनो दाम्पत्य सूत्र मे बँध गये ॥१७॥ उस दक्षिणा से यज्ञ के जिन बारह पुत्रो की उत्पत्ति हुई, वह स्वायभुव मन्वन्तर मे 'याम' देवता के नाम से प्रसिद्ध हुए ॥१८॥ उसी दक्षिणा से भास्वर आदि अन्य अनेक पुत्र उत्पन्न हुये थे, उधर दक्ष ने प्रसूती के गर्भ से चौबीस ॥१९॥ कन्याएँ उत्पन्न की, उनके नाम सुनो—श्रद्धा, लक्ष्मी, वृत्ति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया ॥२०॥ बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि इन तेरह दक्षसुताओ को धर्म ने अपनी पत्नी बना डाला ॥२१॥

ताभ्य शिष्टायवीयस्यएकादशसुलोचना ।
ख्याति सत्यथसम्भूति स्मृति.प्रीतिस्तथाक्षमा ॥२२
सन्ततिश्चानसूयाचऊर्जास्वाहास्वधातथा ।
भृगुर्भवोमरीचिश्चतथाचैवाङ्गिरामुनि ॥२३
पुलस्त्य.पुलहश्चै वक्रतुश्चऋषयस्तथा ।
वसिष्ठोऽत्रिस्तथावह्नि पितरश्चयथाक्रमम् ॥२४
ख्यात्याद्याजगृहु कन्यामुनियोमुनिसत्तमा. ।
श्रद्धाकामश्रीश्चदर्पनियमधृतिरात्मजम् ॥२५
सन्तोषचतथातुष्टिर्लोभंपुष्टिरजायत ।
मेधाश्रुतक्रियादण्डंनयविनयमेवच ॥२६
बोधंबुद्धिस्तथालज्जाविनयवपुरात्मजम् ।
व्यवसायप्रजज्ञे वैक्षेमशान्तिरसूयत ॥२७
सुखंसिद्धिर्यश.कीर्तिरित्येतेधर्मयोनयः ।
कामादतिमुदहर्षधर्मपौत्रमसूयत ।।२८

और ग्यारह—ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा ॥२२॥ सन्तति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा नाम से प्रसिद्ध थी, उन्हे भृगु इत्यादि ने क्रमश- ग्रहण किया ।।२३।। भृगु, शङ्कर, मरीचि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, अत्रि, वह्नि और पितर गण ॥२४॥ इन मुनियो, मुनिसत्तमो और ऋषियो ने ख्याति इत्यादि ग्यारह दक्ष सुताओ को यथाक्रम ग्रहण

किया, श्रद्धा ने काम को उत्पन्न किया, लक्ष्मी ने दर्प को, धृति ने नियम को ॥२५॥ तुष्टि ने सन्तोष को, पुष्टि ने लोभ को, मेधा ने श्रुत को, क्रिया ने दण्ड को ॥२६॥ बुद्धि ने बोध को, लज्जा ने विनय को, वपु ने व्यवसाय को, शान्ति क्षेम को ॥२७॥ सिद्धि ने सुख को और कीर्ति ने यश को जन्म दिया, धर्म की यही सन्तान है, काम से हर्ष नामक धर्म के पौत्र की उत्पत्ति हुई ॥२८॥

हिंसाभार्यात्वधर्मस्यतस्याजज्ञेतथानृपम् ।
कन्याचनिर्ऋतिस्तस्यासुतौद्वौनरकभयम् ॥२९
मायाचवेदनाचैवमिथुनद्वयमेतयोः ।
तयोजज्ञेऽथवैमायामृत्यु भूतापहारिणम् ॥३०
वेदनात्मसुतचापिदुःखजज्ञेऽथरौरवात् ।
मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधश्चजज्ञिरे ॥३१
दुःखोद्भवा स्मृताह्येतेसर्वेवाधर्मलक्षणाः ।
नैषाभार्यास्तिपुत्रोवासवतेह्यूर्ध्वरेतस ॥३२
निर्ऋतिश्चतथाचान्यामृत्योर्भार्याभिवन्मुने ।
अलक्ष्मीर्नामतस्याचमृत्यो पुत्राश्चतुर्दश ॥३३
अलक्ष्मीपुत्रकाह्येतेमृत्योरादेशकारिण ।
विनाशकालेषुनरान्भजन्त्येतेश्रृणुष्वतान् ॥३४

अधर्म की पत्नी का नाम अहिंसा हुआ, उससे अनृत की उत्पत्ति हुई, अनृत ने निर्ऋत नाम की पत्नी के गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम 'नरक' और 'भय' हुए ॥२९॥ तथा माया और वेदना नामक दो कन्याएँ हुई, इन पुत्र पुत्रियो मे परस्पर मिथुन भाव की सृष्टि हुई, माया के गर्भ से जीवो का सहारक 'मृत्यु' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥३०॥ तथा वेदना के गर्भ से नरक ने दुःख नामक पुत्र उत्पन्न किया, मृत्यु से व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोध की उत्पत्ति हुई ॥३१॥ दुःख के यह सभी पुत्र महा अधर्मी हुए, यह सब ऊर्ध्व रेता है, इसलिये इनके पत्नी या पुत्र नही है ॥३२॥ हे मुने ! मृत्यु की निर्ऋति नामक जो पत्नी थी, वह अलक्ष्मी भी कही जाती है, उससे मृत्यु ने चौदह पुत्रो की उत्पत्ति की ॥३३॥ मृत्यु की आज्ञा मे रहने वाले सब पुत्र 'अलक्ष्मी' ही

कहे जाते है, मृत्यु के समय यह मनुष्यों के जिस-जिस अंग में स्थित रहते है, उनके नाम बताता हूँ ॥३४॥

इन्द्रियेषुदशस्वेतेतथामनसिचस्थिता ।
स्वेस्वेनरस्त्रियवापिविषयेयोजयन्तिहि ॥३५
अथेन्द्रियाणिचाक्रम्यरागक्रोधादिभिर्नरान् ।
योजयन्तियथाहानियान्त्यधर्मादिभिर्द्विज ॥३६
अहङ्कारगताश्चान्येतथान्येबुद्धिसस्थिताः ।
विनाशायनरस्त्रीणायतन्तेमोहसश्रिता ॥३७
तथैवान्योगृहेपु सादु सहोनामविश्रुतः ।
क्षुत्क्षामोऽधोमुखोनग्नश्चीरीकाकसमस्वन ॥३८
ससर्वान्खादितु सृष्टोब्रह्मणातमसोनिधि. ।
दष्ट्राकरालमत्यर्थविवृतास्यसुभैरवम् ॥३९
तमत्तुकाममाहेदब्रह्मालोकपितामह ।
सर्वब्रह्ममयःशुद्ध कारणजगतोऽव्ययः ॥४०
नात्तव्यतेजगदिदजहिकोपशमव्रज ।
त्यजैकातामसीवृत्तिमपास्यरजसःकलाम् ॥४१
क्षुत्क्षामोऽस्मिजगन्नाथपिपासुश्चापिदुर्बल ।
कथतृप्तिमियानाथभवेयबलवान्कथम् ।
कश्चाश्रयोममाख्याहिवर्तेययत्रनिवृ तः ॥४२

इनमे से प्रथम दश तो दसो इन्द्रियो मे निवास करते है, ग्यारहवाँ मन के ऊपर रहता है और स्त्री-पुरुषो को अपने-अपने विषय मे सयुक्त करता है ॥३५॥ फिर रागादि के द्वारा सब इंद्रियो को आक्रान्त कर अधर्म आदि से मिला देता है, जिससे उनकी अत्यत हानि होती है ॥३६॥ मृत्यु का बारहवाँ पुत्र अहकार मे रहता है, तेरहवाँ पुत्र जीवो की बुद्धि पर रहता है इससे मोहित हुए मनुष्य स्त्रियो को नष्ट करने का प्रयत्न करते है ॥३७॥ और चौदहवाँ अलक्ष्मी-पुत्र जिसे दु सह करते है, यह घर-घर मे रह कर सदा क्षुधातुर, अधो-मुख, नग्न, चीरधारी और कौए के समान शब्द करता है ॥३८॥ प्रतीत होता है

कि ब्रह्माजी ने इस तपोनिधि को सर्व पदार्थों का भक्षण करने के लिए ही उत्पन्न किया है, फिर उस दु.सह को कराल दष्ट्रा, फैले हुए मुख से भयकर शब्द करते हुए ।।३६।। तथा सबको भक्षण करने के लिये तत्पर देख कर जगत् के कारण रूप अविनाशी पितामह ब्रह्माजी बोले ।।४०।। ब्रह्माजी ने कहा—हे दु सह ! संसार को भक्षण करना तुम्हारे लिए अनुचित है, तुम क्रोध को छोड कर शान्त होओ, इस तमोगुणी वृत्ति और रजोगुण के अ श का परित्याग करो ।।४१।। दु सह ने कहा—हे जगन्नाथ ! मैं क्षुधा के कारण अत्यन्त कृश और पिपासा के कारण दुर्बल हो गया हूं, मै किस प्रकार तृप्त, तथा बलवान् होऊँ और किसके आश्रय मे सुख पूर्वक रहू, यह कृपा पूर्वक बताइये ।।४२।।

तवाश्रयोगृहपु साजनश्चाधार्मिकोबलम् ।।
पुष्टिर्नित्यक्रियाहान्याभवान्वत्सगमिष्यति ।।४३।।
लूता स्फोटाश्चतेवस्त्रमाहारचददामिते ।
क्षुतकीटावपन्न चतथाश्वभिरवेक्षितम् ।।४४
भग्नभाण्डगतंतद्वन्मुखवातोपशामितम् ।
उच्छिष्टापक्कमस्विन्नमवलीढमसस्कृतम् ।।४५
भग्नासनस्थितंभु क्तमासन्नागतमेवच ।
विदिङ्मुखंसन्ध्ययोश्चनृत्यवाद्यस्वनाकुलम् ।।४६
उदक्योपहतमुक्तमुदक्यादृष्टमेवज ।
यच्चोपघातवर्त्किचिद्भक्ष्यपेयमथापिवा ।।४७
एतानितवपुष्ट्यर्थमन्यच्चापिददामिते ।
अश्रद्धयाहुतदत्तमस्नातैर्यदवज्ञया ।।४८
यन्नाम्बुपूर्वकक्षिप्तमनात्मीकृतमेवच ।
त्यक्तुमाविष्कृतयत्तुदत्तंचैवातिविस्मयात् ।।४६

ब्रह्माजी ने कहा—हे वत्स ! पुरुषो का घर तुम्हारा आश्रय स्थान, अधर्मी मनुष्य तुम्हारा बल तथा नित्यकर्म की हानि ही तुम्हारे लिए पुष्टि होगी ।।४३।। मकडी के जाले और सब स्फोट तुम्हारे वस्त्र है, अब मैं तुम्हे आहार देता हूँ, जिस घाव मे कीड़े उत्पन्न हो गये और जिसे कुत्ते ने देख लिया है, ऐसे

व्रण का स्वामी तुम्हारे आहार स्वरूप है ।।४४।। फूटे पात्र में रखा हुआ पदार्थ अथवा जो पदार्थ अथवा मुख की फूँक से ठडा किया गया हो, उच्छित या या कच्चा अथवा सस्कार रहित हो ।।४५।। अथवा जो मनुष्य फटे आसन पर बैठ कर या अतिथि को भोजन दिये बिना अथवा दक्षिण की ओर मुख करके या सध्या के समय, नृत्य, के समय, गायन-वादन के समय जो पदार्थ खाया जाय ।।४६।। अथवा रजस्वला स्त्री द्वारा देखा या छुआ, किसी का झूठा अथवा दोष युक्त पका हुआ भोजन ।।४७।। यह सब पदार्थ तुम्हारे खाने के योग्य और पुष्टि करने वाले होंगे, तुम्हारी पुष्टि के लिये और भी प्रदान करता हू, जो स्नान किये बिना अश्रद्धा से हवन किया जाय या अज्ञानी मनुष्यो के द्वारा दान किया जाय ।।४८।। जो वस्तु जल स्पर्श के बिना दी गयी हो, व्यर्थ पडी हुई हो, जो विस्तार की गयी हो या भय से दी गयी हो ।।४९।।

दुष्टक्रुद्धार्तदत्तंचयक्ष्मन्प्राप्स्यसितत्फलम् ।
यच्चपौनर्भव.किंचित्करोत्यामुष्मिकक्रमम् ।।५०
यच्चपौनर्भवायोषित्तद्यक्ष्मतवतृप्तये ।
कन्याशुल्कोपधानायसमुपास्तेधनक्रिया ।।५१
तथैवयक्ष्मपुष्ट्यर्थमसच्छास्त्रक्रियाश्चया ।
यच्चार्थनिर्वृ तौकिंचिद्धीतयन्नसत्यत ।।५२
तत्सर्वंतवकामाश्चददामितवसिद्धये ।
गुर्विण्यभिगमेसन्ध्यानित्यकार्यव्यतिक्रमे ।।५३
असच्छास्त्रक्रियालापदूषितेषुचदु सह ।
तवाभिभवसामर्थ्यंभविष्यतिसदानृषु ।।५४
पङ्क्तिभेदेवृथापाकेपाकभेदेतथाकृते ।
नित्यचगेहकलहेभवितावसतिस्तव ।।५५
अपोष्यमाणेचतथाभृत्यगोवाहनादिके ।
असन्ध्याऽयुक्षितागारेकालेत्वत्तोभयनृणाम् ।।५६

दुष्ट, क्रोधित या आर्त्त मनुष्यो द्वारा दी गयी हो, ऐसी सब वस्तुओ का भोग करो, हे यक्ष ! यह तुम्हारे वश मे की गयी, जो कार्य दूसरी बार विवाहित

हुई स्त्री के पुत्र द्वारा परलोक की सिद्धि के लिये किया गया हो ।।५०।। अथवा दूसरी बार विवाहित स्त्री जो कर्म करे, उससे तुम्हारी ही तृप्ति होगी अथवा जो कन्या पर द्रव्य लेने मे जो धर्म-कार्य किया जाय ।।५१।। या जो क्रिया मिथ्या धर्मशास्त्र द्वारा संपादन की जाय, वह भी तुम्हारी ही पुष्टि के लिये दिया, असत्यता से पढा हुआ अर्थ प्राप्ति के लिए जो कार्य है ।।५२।। वह भी तुम्हारी पुष्टि का कारण बनेगा, अब तुम्हारी सिद्धि का समय कहता हूं—जब गर्भवती नारी से समागम किया जाता है, तब संध्या और नित्य कर्म का व्यतिक्रम होता है ।।५३।। तथा जब मिथ्या शास्त्र द्वारा कहे गये कार्य द्वारा मनुष्य दोष युक्त होते है, तब उनका तिरस्कार करने मे तुम समर्थ होगे ।।५४।। जहाँ पक्ति मे भेद किया जाय, जहाँ वृथा पाक बनाया जाय और जहाँ सदैव क्लेश रहता हो तुम्हारा निवास वही होगा ।।५५।। जिन गृहो मे गौ अश्वादि अन्न तृण के बिना भूखे बधे रहते है और सूर्यास्त से पहिले बुहारी नही लगती, उन घरो के मनुष्य तुम से डरेगे ।।५६।।

नक्षत्रग्रहपीडासुत्रिविधोत्पातदर्शने ।
अशान्तिकपरान्यक्ष्मन्नरानभिभविष्यसि ।।५७
वृथोपवासिनोमत्र्याद्यूतस्त्रीषुसदारता ।
त्वद्भाषणोपकर्त्तारोबैडालव्रतिकाश्चये ।।५८
अब्रह्मचारिणाधीतमिज्याचाविदुषाकृता ।
तपोवनेग्राम्यभुजातथैवानिर्जितात्मनाम् ।।५९
ब्राह्मणक्षत्रियविशाशूद्राणांचस्वकर्मत ।
परिच्युतानांयाचेष्टापरलोकार्थमीप्सताम् ।।६०
तस्याश्चयत्फलसर्वतत्तोयक्ष्मन्भविष्यति ।
अन्यच्चतेप्रयच्छामिपुष्टयर्थसनिबोधतत् ।।६१
भवतोवैश्वदेवान्तेनामोच्चारणपूर्वकम् ।
एतत्तवेतिदास्यन्तिभवतोबलिमूर्जितम् ।।६२
य सस्कृताशीविधिवच्छुचिरन्तस्यथाबहि ।
अलोलुपोजितस्त्रीकस्तद्गेहमपवर्जय ।।६३

नक्षत्र या ग्रह की पीडा या त्रिविध उत्पातों के दिखायी देने पर जो उनकी शान्ति का उपाय नही करते, तुम उन मनुष्यो को घेरे रहोगे ।।५७।। वृथा उपवास करने वाले, द्यूत और स्त्री में आसक्ति रखने वाले तुम्हारे ही उपकारी है, जो बिल्ली के समान अपने प्रयोजन मे लगे रहते है ।।५८।। या जो ब्रह्मचर्य के बिना ही वेदपाठ करते है, मूर्ख होते हुए भी यज्ञ करते हैं तथा तपोवन मे गृहस्थ धर्म जैसा आचरण करते है, चचल चित्त और असयम पूर्वक अध्ययन ।।५९।। तथा अपने कर्म से भ्रष्ट होकर पारलौकिक सुख की इच्छा वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रो द्वारा तपोवन मे किये जाने वाले कर्म ।।६०।। तथा इन कार्यों का जो फल है, वह सभी तुम्हारे वश मे है, तुम्हारी पुष्टि के लिये और भी प्रदान करता हूँ ।।६१।। जो वैश्वदेव के अन्त मे तुम्हारा नाम लेकर 'यह तुम्हारा है' ऐसा कहते हुए तुम्हे अर्जित बलि देते है ।।६२।। परन्तु जो मनुष्य संस्कार युक्त पदार्थों का भोजन करते और बाहर भीतर से पवित्र तथा निर्लोभ हैं, जिन्हे स्त्रियाँ अपने वश मे नही कर सकती, उनके घरो को तुम छोड दो ।।६३।।

पूज्यन्तेहव्यकव्याभ्यादेवताःपितरस्तथा ।
जामयोऽतिथयश्चापितद्गेहयक्ष्मवर्जय ।।६४
यत्रमैत्रीगृहेबालवृद्धयोषिन्नरेषुच ।
तथास्वजनवर्गेषुगृहतच्चापिवर्जय ।।६५
योषिताऽभिमतायत्रनबहिर्गमनोत्सुका ।
लज्जान्विता सदागेहयक्ष्मतत्परिवर्जय ।।६६
वय सम्बधयोग्यानिशयनान्यशनानिच ।
यत्रगेहेत्वयायक्ष्मतद्वर्ज्यवचनान्मम ।।६७
यत्रकारुणिकानित्यसाधुकर्मण्यवस्थिता ।
सामान्योपस्करैर्युक्तास्त्यजेथायक्ष्मतद्गृहम् ।।६७
यत्रासनस्थास्तिष्ठत्सुगुरुवृद्धद्विजातिषु ।
नतिष्ठन्तिगृहतच्चवर्ज्यंयक्ष्मत्वयासदा ।।६९

तरुगुल्मादिभिर्द्वारनविद्धंयस्यवेश्मन ।
मर्मभेदोनवापुंसस्तस्थ्योभवनन्नते ।।७०

जिस घर मे देवता और पितर सदा हव्य कव्य द्वारा तृप्त रहते है और जहाँ अतिथियो की पूजा है, उस घर का भी परित्याग कर दो ।।६४।। जिस घर मे बालक, वृद्ध, युवक, युवती और स्वजन आदि सदा मैत्री भाव से रहते है, उस घर को भी छोड दो ।।६५।। जिस गृह की नारिया अनुरक्ता है तथा घर से बाहर जाने की इच्छा नही करती और सदा लज्जावती रहती है, वह घर भी तुम्हारे रहने योग्य नही ।।६६।। हे यक्ष्म ! जिस घर के लोग अपनी अवस्था और वैभव के अनुसार ही शयन या भोजन करते हो, वह घर भी तुम्हारे लिये त्याज्य है ।।६७।। जिस घर के मनुष्य करुणा युक्त, सत्कार्य मे तत्पर और सामान्य सामग्री से परिपूर्ण है, वह भी तुम्हे त्याग देना चाहिये ।।६८।। जहाँ के मनुष्य गुरु, वृद्ध, और ब्राह्मणो के आसन पर बैठ जाने पर भी आसन ग्रहण नही करते उस घर को सदा के लिये छोड दो ।।६९।। जिस गृह का द्वार वृक्ष गुल्मादि के द्वारा अवरुद्ध न हो और जहाँ कोई किसी के प्रति मर्मभेदी वाक्यो का उच्चारण न करता हो, उस श्रेष्ठ गृह मे भी तुम्हे न जाना चाहिये ।।७०।।

देवतापितृभृत्यानामतिथीनाचवर्तनम् ।
यस्यावशिष्टेनान्नेनपुंसस्तस्यगृहत्यज ।।७१

सत्यावाक्यान्क्षमाशीलानहिंस्रान्नानुतापिनः ।
पुरुषानीदृशान्यक्ष्मत्यजेथाश्चानसूयकान् ।।७२

भर्तृशुश्रूषणेयुक्तासमत्स्त्रीसङ्गवर्जिताम् ।
कुटुम्बभर्तृशेषान्नपुष्टाचत्यजयोषितम् ।।७३

यजनाध्ययनाभ्यासदानासक्तमतिसदा ।
याजनाध्यापनादानकृतवृत्तिद्विजत्यज ।।७४

दानाध्ययनयज्ञेषुसदोद्युक्तचदुःसह ।
क्षत्रियत्यजसच्छुल्कशस्त्राजीवात्तवेतनम् ।।७५

त्रिभि पूर्वगुणैर्युक्त पाशुपाल्यवणिज्ययोः ।
कृषेश्चावाप्तवृत्तिचत्यजवैश्यमकल्मषम् ॥७६

दानेज्याद्विजशुश्रूषातत्परंयक्ष्मसंत्यज ।
शूद्रचब्राह्मणादीनाशुश्रूषावृत्तिपोषकम् ॥७७

जो पुरुष देव, पितर, मनुष्य और अतिथि को भोजन कराकर ही शेष अन्न का भोजन करता है, उसका घर भी तुम्हे त्याग देना चाहिये ॥७१॥ हे यक्ष्म ! जो सत्यभाषी, क्षमावान्, अहिंसक, अनुतापहीन तथा असूयारहित हैं, उन मनुष्यो के यहाँ मत जाना ॥७२॥ जो नारी सदैव पतिसेवा में तत्पर है और असती स्त्री के सग मे नही रहती और कुटुम्ब तथा पति के अन्न से पुष्टि को प्राप्त होती है ऐसी स्त्री के पास कभी मत जाना ॥७३॥ जो ब्राह्मण यजन, अध्ययन, अभ्यास और दानादि के विषय मे दत्तचित्त है तथा यज्ञ, अध्यापन और दान के प्रतिग्रह से जीविकोपार्जन करते है, उन ब्राह्मणो को भी परित्याग करो ॥७४॥ जो क्षत्रिय सदा दान, अध्ययन और यज्ञ मे तत्पर रहते हैं तथा शस्त्रजीविका से प्रजा रक्षण करते हुए वेतन मात्र ग्रहण करते है, वे भी तुम्हारे द्वारा त्याज्य हैं ॥७५॥ जो वैश्य पहिले कहे गये तीन प्रकार के गुणो से युक्त है, पशुपालन, व्यापार और कृषि कर्म द्वारा अपना जीविकोपार्जन करते है, उन निष्पाप वैश्यो का भी परित्याग करो ॥७६॥ जो शूद्र, दान, यज्ञ और ब्राह्मण-सेवा मे तत्पर और ब्राह्मणादि की सेवा-वृत्ति से निर्वाह करने वाले है, उन शूद्रो को भी त्याग दो ॥७७॥

श्रुतिस्मृत्यविरोधेनकृतवृत्तिर्गृहेगृही ।
यत्रयत्रतत्पत्नीचतस्यैवानुगतात्मिका ॥ ७८

यत्रपुत्रोगुरो पूजादेवानाचतथापितु ।
पत्नीचभर्तु कुरुतेतत्रालक्ष्मीभयकुत ॥७९

सदानुलिप्तसन्ध्यासुगृहमम्बुसमुक्षितम् ।
कृतपुष्पवलियक्ष्मनत्वशक्नोषिवीक्षितुम् ॥८०

भास्कराद्दृष्टशय्यानिनित्याग्निसलिलानिच ।
सूर्यावलोकदीपानिलक्ष्म्यागेहानिभाजनम् ॥८१

यत्रोक्षाचन्दनवीणाआदर्शोमधुसर्पिषी ।
विषाज्यताम्रपात्राणितद्गृहनतवाश्रय ॥८२
यत्रकण्टकिनोवृक्षायत्रनिष्पाववल्लरी ।
भार्यापुनर्भूर्वल्मीकस्तद्यक्ष्मतवमन्दिरम् ॥८३
यस्मिन्गृहेनरा पचस्त्रीत्रयतावतीश्चगा ।
अन्धकारेन्धनाग्निश्चतद्गृहवसतिस्तव ॥८४

जो मनुष्य घर मे रह कर श्रुति स्मृति सम्मत जीवन निर्वाह करते हैं और उनकी भार्या भी उन्ही का अनुसरण करती है ॥७८॥ जिस गृह मे पुत्र अपने देवता, पितर और गुरु की पूजा तथा स्त्रियाँ पति सेवा करती है, वहाँ अलक्ष्मी का भय किस प्रकार हो सकता है ? ॥७९॥ तीनो सध्याओ के समय जो घर लीपा जाय या जल छिडक कर पवित्र किया जाय और जहाँ सुगधित पुष्पो द्वारा देवताओ को बलि दी जाय, तुम उस गृह को देख भी न सकोगे ।८०। जिस घर की शय्या को सूर्य न देखते हो अर्थात् सूर्योदय के समय तक जहाँ कोई शयन न करता हो, तथा जो घर सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित रहता हो और जिस घर मे अग्नि और जल विद्यमान रहते हो, वह घर लक्ष्मी का ही निवास स्थान है ॥८१॥ जिस घर मे चन्दन, वीणा, दर्पण, मधु, घृत, विष और ताम्रपात्र विद्यमान हो वह घर तुम्हारा आश्रय स्थान कदापि नही हो सकता ॥८२॥ जिस घर मे काँटेयुक्त वृक्ष, निष्पाववल्लरी, दुबारा व्याही हुई पत्नी और वल्मीक (बाँबी) हो, उस घर को तुम अपना ही समझो ॥८३॥ जिस घर मे पाँच पुरुष और तीन स्त्री तथा तीन गौ, अँधेरा, काष्ठ और अग्नि हो, वही घर तुम्हारा निवास स्थान होगा ॥८४॥

एकच्छागद्विबालेयत्रिगवपञ्चमाहिषम् ।
षडश्वसप्तमातङ्ग गृहयक्ष्माशुशोषय ॥८५
कुद्दालदात्रपिटकतद्वत्स्थाल्यादिभाजनम् ।
यत्रतत्रैवक्षिप्तानितवदद्यु प्रतिश्रयम् ॥८६
मुशलोलूखलेस्त्रीणामास्यातद्वदुदुम्बरे ।
अवस्करेमन्त्रणाचयक्ष्मतदुपकृत्तव ॥८७

लंघ्यन्तेयत्रधान्यानिपक्वानिवेश्मनितथा ।
तद्वच्छास्त्राणितत्रत्वयथेष्टचरदु सह् ।।८८
स्थालीपिधानेयत्राग्निर्दत्तोदर्व्वीफलेनवा ।
गृहेतत्रह्यरिष्टानामशेषाणासमाश्रय ।।८६
मानुषास्थिगृहेयत्रदिवारात्रमृतस्थिति ।
यत्रयक्ष्मतववासस्तथान्येषाचरक्षसाम् ।।६६
अदत्त्वाभुञ्जतेयेवैवन्धोःपिड तथोदकम् ।
सपिण्डान्सोदकाश्चैवतत्कालेतान्नरान्भज ।।६१

हे यक्ष्म ! जिस घर मे एक बकरी दो स्त्री, तीन गौ, पाँच भैंस, छ अश्व, सात हाथी हो, उस घर का शीघ्र ही शोषण करो ।।८५।। जिस घर मे कुदाल, दराँत, पीढा, थाली इत्यादि वस्तुएँ-इधर-उधर बिखरी पडी रहती हो, वहाँ के मनुष्य तुम्हे निवास देना चाहते है ।।८६।। जिस घर मे स्त्री मूसल या ओखली पर बैठ कर या आँगन मे गूलर के नीचे बैठ कर घर के पीछे रहने वाली स्त्री से बाते करने मे लगी रहती है, उसके वे कार्य तुम्हारा उपकार करने वाले है ।।८७।। जिस घर मे पक्के या कच्चे धान का अनादर और सत्शास्त्र का तिरस्कार होता है, उस घर मे स्वेच्छा पूर्वक भ्रमण करो ।।८८।। जिस घर मे थाली, ढकना अथवा करछुली से स्त्री किसी को अग्नि देती हो, वह घर सम्पूर्ण अरिष्ट का निवास स्थान है ।।८६।। जिस घर मे मृत पदार्थ या मनुष्य की हड्डी रातदिन विद्यमान रहे,वहाँ सभी राक्षसो का निवास होगा ।।६०।। जब मनुष्य बन्धु, सपिंड या सामानोदक पुरुषो को पिण्ड या जल नही देते, तुम उस समय उनकी कामना करो ।।६१।।

यत्रपद्ममहापद्मौसुरभिर्मोदकाशिनी ।
वृषभैरावतौयत्रकल्प्यतेतद्गृहत्यज ।।६२
अशस्त्रादेवतायत्रसशस्त्राश्चाहवविना ।
कल्प्यन्तेमनुजैरच्यस्तित्परित्यजमन्दिरम् ।।६३
पौरजानपदैर्यत्रप्राक्प्रसिद्धमहोत्सवा ।
क्रियन्ते पूर्ववद्गेहेनत्वतत्रगृहेचर ।।६४

शूर्पवातघटाम्भोभि स्नानवस्त्राम्बुविप्रुषै ।
पखाग्रसलिलैश्चैवतानाहिहतलक्षणान् ॥९५
देशाचारान्समयाञ्ज्ञातिधर्मजपहोममङ्गलदेवतेष्टिम् ।
सम्यक्छौचविधिवल्लोकवापान्पु सस्त्वयाकुर्वतोमाऽस्तुसङ्ग ।९६
इत्युक्त्वादु सहब्रह्मातत्रैवान्तरधीयत ।
चकारशासनसोऽपितथापकजजन्मन ॥९७

जिस घर मे पद्म और महापद्म विद्यमान है, स्त्रियाँ सदा मोदक खाती है तथा जहाँ बैल और ऐरावत भी है, तुम उस घर को छोड दो ॥९२॥ जहाँ अशस्त्र देवता बिना युद्ध के ही सशस्त्र देवता के समान पूजे जाते है, तुम उस मन्दिर को भी छोड दो ॥९३॥ जिन घरो या पुरो मे तथा जनपदो मे सदा महोत्सव होते रहते हैं, वहाँ तुम कभी मत जाना ॥९४॥ जो मनुष्य सूप की वायु, कलश के जल, वस्त्र के निचोडे हुए जल तथा पादाग्र से स्पर्श जल से स्नान करते हैं उन हीनलक्षणो के पास जाओ ॥९५॥ जो मनुष्य देशाचार, समय, जाति, धर्म, जप, हवन, मङ्गल कार्य, देव पूजन विधिवत् शौच अथवा सब लोकाचार का पालन करते हैं, उनसे तुम्हारा सग नही हो सकता ॥९६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे विप्रवर ! इस प्रकार दु सह को आदेश देकर ब्रह्माजी वही पर अन्तर्धान होगये और वह दु सह भी उनकी आज्ञा को उसी प्रकार पालने लगा ॥९७॥

४३—दौःसहोत्पत्ति

दु सहस्याभवद्भार्यानिर्माष्टिर्नामनामत ।
जाताकलेस्तुभार्यायामृतौचाण्डालदर्शनात् ॥१
तयोरपत्यान्यभवञ्जगव्द्यापीनिषोडश ।
अष्टौकुमारा.कन्याश्चतथाष्टावतिभीषणा. ॥२
दन्ताकृष्टिस्तथोक्तिश्चपरिवर्तस्तथापरः ।
अङ्गध्रुक्छकुनिश्चैवगण्डप्रान्तरतिस्तथा ॥३

गर्भहाशस्यहाचान्यःकुमारास्तनयास्तयोः ।
कन्याश्चान्यास्तथैवाष्टौतासानामानिमेश्रृणु ॥४
नियोजिकावौप्रथमातथैवान्याविरोधिनी ।
स्वयहारकरीचैवभ्रामणीऋतुहारिका ॥५
स्मृतिबीजहरेचान्येतयो कन्येसुदारुणे ।
विद्वेषण्यष्टमीनामकन्यालोकभयावहा ॥६
एतासांकर्मववक्ष्यामिदोषप्रशमनंचयत् ।
अष्टानाचकुमाराणाश्रूयताद्विजसत्तम ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—दु सह की पत्नी निर्मार्ष्टि थी, वह यम की पुत्री थी, जब यमपत्नी ऋतुमती हुई, उस समय उसने चाण्डाल को देखा, उस गर्भ से निर्मार्ष्टि उत्पन्न हुई ॥१॥ फिर निर्मार्ष्टि के गर्भ से दु सह के द्वारा अत्यन्त भीषण आकार वाली सोलह सन्ताने हुई, जिनमे आठ पुत्र, आठ कन्याएँ हुई ॥२॥ दन्ताकृष्टि, तथोक्ति, परिवर्त्त, अङ्गधुक्, शकुनि, गड, प्रान्तरति ॥३॥ गर्भहा, और शस्यहा नामक आठ पुत्र हुए, अब आठ कन्याओ के नाम सुनो ।४। नियोजिका, विरोधिनी, स्वयहारकरी, भ्रामणी, ऋतुहारिका ॥५॥ स्मृतिहरा और बीजहरा यह दोनो अत्यन्त भयङ्कर हुई तथा आठवी विद्वेषिणी थी, वह लोको के लिये अत्यन्त भयावह थी ॥६॥ हे द्विजोत्तम ! अब उन आठ पुत्रो के कर्म और उनकी दोष-शक्ति का उपाय कहता हू, उसे सुनो ॥७॥

दन्ताकृष्टि प्रसूतानाबालानादशनस्थित ।
करोतिदंतसघर्षचिकीर्षुर्दुःसहागमम् ॥८
तस्योपशमनकार्य्यसुप्तस्यसितसर्षपैः ।
शयनस्योपरिक्षिप्तैर्मनुषैर्दशनोपरि ॥९
सौवर्चलोषधीस्नानात्तथासच्छास्त्रकीर्त्तनात् ।
उष्ट्रगण्टकगात्रास्थिक्षौमवस्त्रविधारणात् १०
तिष्ठत्यन्यकुमारस्तुतथास्त्वियसकृद्ब्रुवन् ।
शुभाशुभेनृणाँयुङ्क्तेतथोक्तिस्तच्चनान्यथा ॥११

तस्मादद्दुष्टमङ्गल्यमुक्त्वायपण्डितै सदा ।
दुष्टेश्रुते तथैवोक्ते कीर्त्तनीयोजनार्दन ॥१२
चराचरागुरुर्ब्रह्मायामस्यकुलदेवता ।
अन्यगर्भपरान्गच्छन्सदैवपरिवर्तयन् ॥१३
रतिमाप्नोतिवाक्यचविवक्षोरन्यदेवयत् ।
परिवर्त्तकसज्ञोऽयतस्यापिसितसर्षपै ॥१४

दन्ताकृष्टि उत्पन्न हुए बालक के दाँतो को किडकिडाता है और दु मह भी दन्ताकृष्टि के आश्रय से वहाँ आजाता है ॥८॥ इसकी शान्ति का उपाय कहते है—सोते हुए बालक के दाँतो और शय्या पर सरसो डाले ॥६॥ अथवा औषधि-जल से स्नान करावे, सत् शास्त्रो का कीर्तन करावे तथा ऊँट या गेंडे की अस्थि का यत्र बना कर बालक के कठ मे डाले अथवा रेशमी वस्त्र धारण करावे ॥१०॥ दूसरा पुत्र तथोक्ति 'यही हो' कहता हुआ सब मनुष्यो के शुभ अशुभ मे लगता है, इसमे असत्य नही है ॥११॥ इसकी शान्ति के लिये श्रेष्ठत्व और मङ्गल का प्रकाश करते हुए भगवान् जनार्दन का नाम-सकीर्तन करे ॥१२॥ अथवा चराचर विश्व के गुरु श्री ब्रह्माजी का नाम-कीर्तन अथवा अपने कुल-देवता का ही स्मरण करे, परिवर्त्तक नामक तृतीय पुत्र अन्य गर्भ मे अपर गर्भ स्थापन ॥१३॥ और एक प्रकार के वचनो को अन्य प्रकार से कहने से प्रसन्न होता है, उसकी शान्ति के लिये भी श्वेत सरसो बिखेरनी चाहिये ॥१४

रक्षोघ्नमन्त्रजप्यैश्चरक्षाकुर्वीततत्त्ववित् ।
अन्यश्चानिलवन्नृणामङ्गेषुस्फुरणोदितम् ॥१५
शुभाशुभसमाचष्टेकुशैस्तस्याङ्गताडनम् ।
काकादिपक्षिसस्थोऽन्य श्वादेरगगतोऽपिवा ॥१६
शुभाशुभचशकुनि कुमारोऽन्योब्रवीतिवै ।
तत्रापिदुष्टेव्यक्षेप प्रारम्भत्यागएवच ॥१७
शुभेद्रुततरकार्यमितिप्राहप्रजापति ।
गण्डान्तेषुस्थितश्चान्योमुहूर्तार्द्धं द्विजोत्तम ॥१८

सर्वारभान्कुमारोऽस्तिशमंतस्यनिशामय ।
विप्रोक्त्यादेवतास्तुत्यामूलोत्खातेनचद्विज ॥१६
गोमूत्रसर्षपस्नानैस्तद्दृक्षग्रहपूजनै ।
पुनश्चधर्मोपनिषत्करणै शास्त्रदर्शनै ॥२०
अवज्ञयाजन्मनश्चप्रशमयातिगण्डवान् ।
गर्भस्त्रीणातथाऽन्यस्तुकललाशीसुदारुण ॥२१

अथवा ज्ञानीजन रक्षोघ्न मत्र के जप से रक्षा करे, चौथा अंगधुक् नामक पुत्र मनुष्य के अंग मे वायु के समान स्पंदन ॥१५॥ और लोम-हर्षण करके शुभाशुभ बताता है, उसकी शान्ति के लिये शरीर मे कुशा से आघात करे, पाँचवाँ पुत्र शकुनी काकादि पक्षी तथा श्वान या गीदड के देह मे प्रविष्ट रह कर ॥१६॥ मनुष्य के शुभ-अशुभ को व्यक्त करता है, यदि अशुभ लक्षण प्रकाशित हो तो सभी कार्य का आरम्भ छोड दे ॥१७॥ और यदि शुभ लक्षण दिखायी पडे तो कार्यारम्भ मे अत्यत शीघ्रता करे, छटवाँ पुत्र गण्डान्तरित आधे मुहूर्त्त गण्डान्त मे निवास कर ॥१८॥ सभी मंगलमय कार्य, अनिन्द्यता आदि को नष्ट कर देता है, उसके शमनार्थ ब्राह्मण का आशीर्वाद, देव-स्तुति या मूल नक्षत्र की शान्ति ॥१६॥ गोमूत्र और श्वेत सरसो से स्नान, नक्षत्र और ग्रह का पूजन, धर्मोपनिषद का श्रवण और शास्त्रो का दर्शन ॥२०॥ तथा जन्म का तिरस्कार करे इस गण्डदोष का शमन होता है, तथा सातवाँ गर्भहा नामक भयकर पुत्र, स्त्रियो के गर्भस्थ कलल को नष्ट करता है ॥२१॥

तस्यरक्षासदाकार्यानित्यशौचनिषेवणात् ।
प्रसिद्धमन्त्रलिखनाच्छ्स्तमाल्यादिधारणात् ॥२२
विशुद्धगेहावसनादनायासाच्चवैद्विज ।
तथैवशस्यहाचान्य शस्यर्द्धिमुपहन्तियः ॥२३
तस्यापिरक्षाकुर्वीतजीर्णोपानद्धिधारणात् ।
तथापसव्यगमनाच्चण्डालस्यप्रवेशनात् ॥२४
बहिर्बलिप्रदानाच्चसोमाम्बुपरिकीर्तनात् ।
परदारपरद्रव्यहरणादिषुमानवान् ॥२५

नियोजयतिचैवान्यान्कन्यासाचनियोजिका ॥२७
नियोजयत्येनमितिनगच्छेत्तद्वशबुध ।
परदारादिससर्गेचित्तमात्मानमेवच ॥२८
नियोजयत्यत्रसामामितिप्राज्ञोविचिन्तयेत् ।
विरोधकुरुतेचान्यादम्पत्यो प्रीयमाणयोः ॥२६
बन्धूनासुहृदापित्रो पुत्रै सावर्णिकैश्चया ।
विरोधिनीसातद्रक्षाकुर्वीतबलिकर्मणा ॥३०

उसके शमनार्थ सदैव पवित्र भाव से रहे, प्रसिद्ध मत्र लिख कर माल्यादि धारण पूर्वक ॥२२॥ शुद्ध गृह मे निवास करे तथा आयास को त्यागे, हे विप्र ! इसी प्रकार आठवाँ शस्यहा नामक पुत्र सम्पूर्ण शस्य का नाश करता है ॥२३॥ खेत मे पुराना जूता रखे और बॉई ओर से खेत मे जाकर चण्डाल का प्रवेश करावे ॥२४॥ बहिर्बलि प्रदान तथा सोमाम्बु के पाठ से उसका शमन होता है, प्रथम पुत्री नियोजिका मनुष्यो को परनारी गमन और पराये द्रव्य के हरण आदि मे नियोजित करती है, इसके शमनार्थ पुण्य ग्रन्थो का पाठ और क्रोध लोभादि का त्याग करे ॥२५-२६॥ किसी के द्वारा दुवर्चन कहने पर भी क्रोधित न हो और नियोजिका के उपर्युक्त कर्म का चिन्तन करके उस असत् वृत्त से अपने को रोके, जो विरोधिनी नाम वाली द्वितीय पुत्री है, वह अत्यत प्रेम युक्त दम्पति मे ॥२७-२८-२६॥ तथा सुहृद बधु, पिता, माता, पुत्र आदि मे विवाद उत्पन्न कराती है, उसके शमनार्थ बलि कर्म करे ॥३०॥

तथातिवादसहनाच्छास्त्राचारनिषेवणात् ।
धान्यखलाद्गृहाद्गोष्ठात्पय सर्पितथापरा ॥३१
समृद्धिमृद्धिमद्द्रव्यादपहन्तिचकन्यका ।
सास्वयहारिकेत्युक्तासदान्तर्धानतत्परा ॥३२
महानसादर्द्ध सिद्धमन्नागारस्थितततथा ।
परिविष्यमाणचसदासार्द्ध भुङ्क्तेचभुञ्जता ॥३३
उच्छेषणमनुष्याणाहरत्यन्न चदुर्हरा ।
कर्मान्तागारशालाभ्य सिद्धयृद्धिहरतिद्विज ॥३४

गोस्त्रीस्तनेभ्यश्चपय क्षीरहारीसदैवसा ।
दध्नोघृततिलात्तैलसुरागारात्तथासुराम् ।।३५

इस प्रकार सब प्रकार के अतिवाद को परित्याग कर शास्त्रानुसार पवित्र कर्मो को करे, और जो तीसरी खरिहान नाम की पुत्री है, वह घर के अन्न, गौ दूध, घी ।।३१।। तथा द्रव्यादि की हानि और समस्त ऋद्धि सिद्धि का हरण करती है और जिसका नाम स्वयहारिणी है, वह सदा छिपे रूप मे रहती है ।।३२।। तथा रसोई की वस्तुओ या अन्य वस्तुओ मे प्रविष्ट होकर अन्न का सचय नही होने देती तथा खाने वालो के साथ स्वय भी खाती है ।।३३।। जिस घर मे अन्न के ढेर मे से जो चोरी होती है उस अन्न के चुराने वाली वही है, जिस घर मे श्रेष्ठ कर्म नही होते, उस घर की ऋद्धि-सिद्धि का वही हरण करती है ।।३४।। गौओ और स्त्रियो के स्तन से दूध, दही मे से घी, तिल मे से तेल और सुरा की भट्टी मे से सुरा को वही पीती है ।।३५।।

रागकुसुम्भकादीनांकार्पासात्सूत्रमेवच ।
सास्वयहारिकानामहरत्यविरतद्विज ।।३६
कुर्याच्छ्रिखण्डिनोद्वन्द्वं रक्षार्थंकृत्रिमास्त्रियम् ।
रक्षाश्चैवगृहेलेख्यावर्ज्याचोच्छिष्टतातथा ।।३७
होमाग्निदेवताधूपभस्मनाचपरिष्क्रिया ।
कार्याक्षीरादिभाण्डानामेवतद्रक्षणस्मृतम् ।।३८
उद्वगजनयत्यन्याएकस्थाननिवासिन. ।
पुरुषस्यतुयाप्रोक्ताभ्रामणीसातुकन्यका ।।३९
तस्याथरक्षाकुर्वीतविक्षिप्तै सितसर्षपै ।
आसनेशयनेचोर्व्यायत्रास्तेसतुमानवः ।।४०
चिन्तयेच्चनर पापामामेषादुष्टचेतना ।
भ्रामयत्यसकृज्जप्यभुवःसूक्त समाधिना ।।४१
स्त्रीणांपुष्पंहरत्यन्याप्रवृत्तसातुकन्यका ।
तथाप्रवृत्तंसाज्ञेयादु सहात्र्ऋतुहारिका ।।४२

कुसुम्भादि पुष्प से रंग तथा कपास से सूत्र को हरती है, इसलिये इसे स्वय-हारिका कहा गया है ।।३६।। इसका शमन करने के लिये अपने घर मे एक स्त्री और दो मोरो के चित्र बनावे, वे चित्र सदा व्यक्त रहे, मिटे नही ।।३७।। होम करे, देवताओ के लिए धूप दिखावे फिर उसी अग्नि की भस्म को दुग्धादि के पात्रो पर लगावे, स्त्री अपने स्तनो पर मले, इससे सब दोषो की शान्ति होती है ।।३८।। तथा भ्रामणी नामक चौथी कन्या एक स्थान पर रहने वाले मनुष्यो के हृदय मे प्रविष्ट होकर उद्वेग उत्पन्न करानी है ।।३९।। इसका शमन करने के लिये आसन, शय्या और पृथिवी मे श्वेत सरसो बिखेरे, किसी पाप कर्म मे चित्त के लगने पर उसी दुष्टात्मा की प्रेरणा समझ कर समाधि युक्त होकर भूमि सूक्त का जप करे ।।४१।। पाँचवी कन्या ऋतु-हारिका ऋतुमती स्त्रियो के रज का हरण करती है ।।४२।।

कुर्वीततीर्थदेवौकश्चैत्यपर्वतसानुषु ।
नदीसगमखातेषुस्नपनतत्प्रशान्तये ।।४३
मन्त्रविद्भूततत्त्वज्ञ पर्वसूषसिचद्विज ।
तेषातुपूजनकार्यधूपवत्युपहारकै ।
चिकित्साज्ञश्चवैवैद्य सप्रयुक्तैर्वरौषधै ।।४४
स्मृतिचापहरत्यन्याप्रवृत्तासातुकन्यका ।
अथाप्रवृत्तासाज्ञेयानृणासास्मृतिहारिका ।।४५
विविक्तदेशसेवित्वात्तस्याश्चोपशमोभवेत् ।
वीजापहारिणीचान्यास्त्रीपु सोरतिभीषणा ।
मेध्यान्नभोजनै स्नानैस्तस्याश्चोपशमोभवेत् ।।४६
दारुणासादुराचारादारुणकुरुतेभयम् ।
तत्प्रशांत्यैप्रकुर्वीतद्विजानामर्चनशुभम् ।।४७
अष्टमीद्वेषणीनामकन्यालोकभयावहा ।
याकरोतिजनद्विष्ट नरनारीमथापिवा ।।४८
मधुक्षीरघृताक्तास्तुशान्त्यर्थहोमयेत्तिलान् ।
कुर्वीतमित्रविन्दाचतथेष्टितत्प्रशान्तये ।।४९

इसके शमनार्थ तत्त्वज्ञानी पंडित पर्वत की कन्दराओ और तीर्थो में मन्दिर बनवावे तथा नदी के संगम स्थल पर स्नान करे ।।४३।। मंत्रविद् इन सब कर्मों को प्रातः काल करे तथा धूपादि से उपहार का पूजन और चतुर वैद्य से चिकित्सा करावे ।।४४।। छटवी कन्या स्मृति हारिका स्त्रियो और पुरुषो की स्मृति को हर लेती है ।।४५।। इसके शमन के लिये श्रेष्ठ, परिष्कृत और रमणीक स्थान का सेवन करे, सातवी पुत्री बीजाप-हारिणी स्त्री-पुरुषो की रति को विनष्ट करती है, इसकी शान्ति के लिये पवित्र अन्न का भोजन और स्नान करे ।।४६।। यह दुराचारिणी घोर भय को उत्पन्न करने वाली है, उसकी शान्ति के लिये ब्राह्मण-पूजन श्रेष्ठ कर्म है ।।४७।। आठवीं पुत्री द्वेषिणी स्त्री-पुरुषो मे द्वेष कराने वाली है ।।४८।। इसका शमन करने के लिये मधु, दुग्ध, घृत और तिल की आहुति देकर मित्रविन्दा नामक यज्ञ करे ।।४९।।

एतेषांतुकुमाराणाकन्यानाद्विजसत्तम ।
अष्टत्रिंशदपत्यानितेषांनामानिमेश्रृणु ।।५०
दन्ताकृष्टेरभूत्कन्याविजल्पाकलहातथा ।
अवज्ञानृतदुष्टोक्तिर्विजल्पातत्प्रशान्तये ।।५१
तामेवचिन्तयेत्प्राज्ञ प्रयतश्चगृहीभवेत् ।
कलहाकलहगेहेकरोत्यविरतंनृणाम् ।।५२
कुटुम्बनाशहेतु सातत्प्रशान्तिनिशामय ।
दूर्वांकुरान्मधुघृतक्षीराक्तान्बलिकर्मणि ।।५३
विक्षिपेज्जुहुयाच्चैवानलमित्रचकीर्तयेत् ।
भूतानामातृभि साद्धं बालकानांतुशान्तये ।।५४
विद्यानांतपसांचैवसयमस्ययमस्यच ।
कृष्यावाणिज्यलाभेचशांतिकुर्वन्तुमेसदा ।।५५
पूजिताश्चयथान्यायतुष्टिगच्छन्तुसर्वश ।
कूष्माण्डायातुधानाश्चयेचान्येगणसंज्ञिता ।।५६

इन सब पुत्र पुत्रियो की अडतीस सताने हुई, उनके नाम बताता हूं, सुनो ।।५०।। दन्ताकृष्टि के विजल्पा और कलहा नाम की दो कन्याएँ हुईं, विजल्पा

अवज्ञा करने वाली तथा मिथ्या और दुष्ट भाषिणी हैं, उसके शमनार्थ ॥५१॥ गृहस्थ को सयत चित्त होकर उसी का चिन्तन करना चाहिये और कलहा सदा घरो मे कलह कराती है ॥५२॥ तथा उनके कुटुम्ब का नाश कराने वाली है, इसकी शान्ति के लिये दूब के अकुर, मधु, दूध की बलि देकर ॥५३॥ अग्नि में होम करे तथा सम्पूर्ण गृह मे जल छिडके, मित्रविन्दा का जप करे और यश वर्णन तथा विनती सहित भूतो का पूजन करे, इससे बालको की शान्ति हो जायगी ॥५४॥ फिर कहे कि विद्या, तप, सयम, यम, कृषि और व्यापार मे तुम लाभार्थ हमारी सहायता करो ॥५५॥ तथा सभी कूष्माण्ड और यातुधान आदि गण है वे सब भी मेरे इस पूजन को स्वीकार कर सतुष्टि को प्राप्त हो ॥५६॥

महादेवप्रसादेनमहेश्वरमतेनच ।
सर्वएतेनृणांनित्यतुष्टिमायुव्रजन्तुते ॥५७
तुष्टा:सर्वनिरस्यन्तुदुष्कृतदुरनुष्ठितम् ।
महापातकजसर्वयच्चान्यद्विघ्नकारणम् ॥५८
तेषामेवप्रसादेनविघ्नानश्यन्तुसर्वश ।
उद्वाहेषुचसर्वेषुवृद्धिकर्मसुचैवहि ॥५९
पुण्यानुष्ठानयोगेषुगुरुदेवार्चनेषुच ।
जपयज्ञविधानेषुयात्रासुचचतुर्दश ॥६०
शरीरारोग्यभोग्येषुसुखदानधनेषुच ।
वृद्धबालातुरेष्वेवशांतिकुर्वतुमेसदा ॥६१
सोमाम्बुपौतथाम्भोभि सविताचानिलानलौ ।
तथोक्तं:कलिजिह्वोऽभूत्पुत्रस्तालनिकेतन ॥६२
सयेषारनासस्थस्तानसाधूनविवादयेत् ।
परिवर्तसुतौद्वौतुविरूपविकृतौद्विज ॥६३
तौतुवृक्षाद्रिपरिखाप्राकाराभोधिसश्रयौ ।
गुर्विण्या परिवर्ततौकुरुत पादपादिषु ॥६४

महादेव के प्रसाद और महेश्वर की अनुमति के अनुसार सब मनुष्यों पर शीघ्र प्रसन्न होकर नित्य ही रक्षा करो ॥५७॥ तथा संतुष्ट होकर मेरे सब

पाप, दूषित कर्म तथा महापाप जनित सब कष्टो और विघ्न के कारणो को विनष्ट करो ।।५८।। यदि विवाहादि शुभ कार्यो की वृद्धि मे विघ्न उपस्थित हो तो वह सब भी आपके प्रसाद से नष्ट हो जाय ।।५९।। पुण्य कार्य के अनुष्ठान, गुरु-देवता के पूजन, जप, यज्ञ, कर्त्तव्य और चौदह यात्रा मे ।।६०।। शारीरिक आरोग्य, भोग, सुख, दान, धन के विषय मे तथा वृद्ध, बालक और पीडित व्यक्ति के विपय मे भी सदैव शान्ति की स्थापना करो ।।६१।। सोम, वरुण, सूर्य, सागर, वायु, अग्नि आदि भी मेरी रक्षा करे, तथोक्ति का कालजिह्व नामक तालवृक्ष मे रहने वाला एक पुत्र है ।।६२।। वह कालजिह्व जिस स्त्री की जिह्वा पर बैठ जाता है, उसके बालक को अत्यन्त पीडाप्रद होता है, परिवर्त्तक के दो पुत्र विरूप और विकृत नामक हुए ।।६३।। वह वृक्ष के अग्रभाग मे, खाई मे, प्राचीर मे निवास करके गर्भिणी का परिवर्तन किया करते है ।६४।।

क्रोष्टुकेपरिवर्तःस्याद्गर्भस्यान्योदरात्तत ।
नवृक्षचैवनैवाद्रिनप्राकारमहोदधिम् ।।६५
परिखावासमाक्रामेदवलागर्भधारिणी ।
अङ्गध्रुक्तनयंलेभेपिशुननाम नामत. ।।६६
सोऽस्थिमज्जागत.पु सांबलमत्यजितात्मनाम् ।
श्येनकाककपोतांश्चगृध्रोलूकौचवैसुतान् ।।६७
अवापशकुनिःपचगृहुस्तान्सुरासुराः ।
श्येनजग्राहमृत्युश्चकाकंकालोगृहीतवान् ।।६८
उलूकनिऋ तिश्चै वजग्राहातिभयावहम् ।
गृध्र ंव्याधिस्तदीशोऽथकपोतचस्वययमः ।।६९
एतेषामेवचैवोक्ताभूता पापोपपादने ।
तस्माच्छयेनादयोयस्यनिलीयेयु.शिरस्यथ ।।७०
तेनात्मरक्षणायालशातिकुर्य्याद्द्विजोत्तम ।
गेहे प्रसूतिरेतेषातद्विन्नीडनिवेशनम् ।।७१
नरस्तबर्जयेद्गेहकपोताक्रांतमस्तकम् ।
श्येन कपोतोगृध्रश्चकाकोलूकौगृहेद्विज ।।७२

प्रविष्ट कथयेदंतंवसतांतत्रवेश्मनि ।
ई ट्टकुपरि त्यजेद्गेहशातिकुर्याच्चपण्डित ।।७३

हे क्रौष्टुकि ! गर्भिणी स्त्री को वृक्षो मे, कोठे पर, नदी तट पर न जाना चाहिये ।।६५।। तथा खाई मे भी न जाय, अगध्र्क के पिशुन नामक पुत्र हुआ ।।६६।। वह अज्ञान मे अन्धे हुए मनुष्यो की हड्डी और मज्जा मे घुस कर बल का भक्षण करता है श्येन, काक,कपोत, गृध्र और उलूक ।।६७।। यह पाच पुत्र शकुनि के हुए, इनको सुर, असुर ने ग्रहण किया है, श्येन को मृत्यु ने, काक को काल ने, ।।६८।। उलूक को नैऋति ने, गृध्र को व्याधि ने और कपोत को स्वय यम ने ग्रहण किया ।।६९।। यह सभी पापो के उत्पन्न करने वाले है, इस लिए बाज इत्यादि के सर पर बैठने से ।।७०।। आत्मरक्षा के निमित्त शाँति कर्म करे, जिस घर मे यह घोसला बनावे अथवा शिशु उत्पादन करे ।।७१।। उस घर का भी मनुष्य परित्याग कर दे, श्येन, कपोत, गृध्र, काक और उलूक ।।७२।। घर मे प्रविष्ट हो कर उस घर मे रहने वाले के अन्त की सूचना देते है, इसलिये ज्ञानियो को ऐसे घर को छोड कर शान्ति कर्म करना उचित है ।।७३।।

स्वप्नेऽपिहिकपोतस्यदर्शननप्रशस्यते ।
षडपत्यानिकथ्यन्तेगण्डप्रातरतेस्तथा ।।७४
स्त्रीणांरजस्यवस्थानतेषांकालाश्चमेशृणु ।
चत्वार्य्यहानिपूर्वाणितथैवान्यत्त्रयोदशम् ।।७५
एकादशंतथैवान्यदपत्यतस्यवैदिने ।
द्दिनाभिगमनेश्राद्धदानेतथापरे ।।७६
पर्व्वस्वथान्यत्तस्मात्तुवर्ज्यान्येतानिपण्डितैं ।
गर्भहन्तु सुतोर्निघ्नोमोहनीचापिकन्यका ।।७७

कबूतर का स्वप्न मे देखना भी अमङ्गल जनक है, गण्ड प्रान्तरिक के जो छः पुत्र कहे गये ।।७४।। वह स्त्रियो के रज मे रहते है, उनका समय सुनो, पहिले चार दिन, तेरहवाँ दिन ।।७५।। ग्यारहवा दिन, दिन का अन्त समय, श्राद्ध का दिन अथवा दान कर्म का दिन ।।७६।। और पर्व दिवस यह सब उनके रहने का समय समझो, इन सब दिनो का ज्ञानियो को परित्याग करना

चाहिये, गर्भहन्ता के एक विघ्न नामक पुत्र और मोहिनी नामक एक कन्या उत्पन्न हुई ॥७७॥

प्रविश्यगर्भमत्त्येक्तोभुक्त्वामोहयतेऽपरा ।
जायन्तेमोहनात्तस्या सर्पमण्डूककच्छपा ॥७८
सरीसृपाणिचान्यानिपुरीषमथावापुनः ।
षण्मासाद्गुर्विणीमासमश्नुवानामसयताम् ॥७९
वृक्षच्छायाश्रयारात्रावथवात्रिचतुष्पथे ।
श्मशानकटभूमिष्टामुत्तरीयविवर्जिताम् ॥८०
रुद्यमानानिशीथेऽथआविशेत्तामिमौस्त्रियम् ।
शस्यहन्तुस्तथैवैक क्षुद्रकोनामनामतः ॥८१
सस्यर्द्धिससदाहन्तिलब्ध्वारध्र शृणुष्वतत् ।
अमङ्गल्यदिनारम्भेसुतृप्तोवपतेचयः ॥८२
क्षेत्रेष्वनुप्रवैशवैकरेत्यन्तोपसगिषु ॥८३

यह कन्या गर्भ मे प्रविष्ट होती है और विघ्न स्वच्छ गर्भ का आहार करता है, मोहिनी मोह को उत्पन्न करती है, उसी मोह से सर्प भेड, कछुए ॥७८॥ तथा बिच्छू आदि जन्तु और पुरीष उत्पन्न होते है, गर्भवती छ महीने मास भक्षण से, असयम से ॥७९॥ रात्रि मे वृक्ष के नीचे, तिराहे या चौराहे पर जाने से अथवा श्मशान मे जाने से या नग्न होने से ॥८०॥ अथवा रात्रि के समय रोने से उस स्त्री मे विघ्न प्रविष्ट होता है, शस्यहन्ता के क्षुद्रक नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥८१॥ वह छिद्र मिलते ही धान्य की वृद्धि को रोक देता है, जो मनुष्य मङ्गल रहित दिवस मे तृप्त रह कर धान्य का बीजारोपण करता है उसके खेत मे क्षुद्रक घुस जाता है ॥८२—८३॥

अमङ्गल्यादिनारंभमंगलानाचवर्जयेत् । (महद्भयप्रयच्छतियत्र वैतत्प्रसगिषु ।) तस्माकल्पःसुप्रशस्तेदिनेऽभ्यर्च्यनिशाकरम् ॥८४
कुर्यादारम्भमुप्तिचहृष्टस्तुष्ट सहायवान् ।
नियोजिकेतियाकन्यादुःसहस्यमयोदिता ॥८५

जातप्रचोदिकासञ्ज्ञंतस्या कन्याचतुष्टयम् ।
मत्तोन्मत्तप्रमत्तास्तुनरान्नारीस्तुता सदा ।।८६
समाविशन्तिनाशायचोदयन्तीहृदारुणम् ।
अधर्मधर्मरूपेणकामचाकामरूपिणम् ।।८७
अनर्थचार्थरूपेणमोक्षचामोक्षरूपिणम् ।
दुर्विनीतान्विनाशौचदर्शयन्तिपृथङ्नरान् ।।८८
अशत्याभि प्रविष्टाभि पुरुषार्थात्पृथङ्नराः ।
तासाप्रवेशश्चगृहेसन्ध्यृक्षेषुद्दुम्बरे ।।८९
धात्रेविधात्रेचबलिर्यत्रकालेनदीयते ।
भुञ्जतापिबतावापिसगिभिर्जलविप्रुषैः ।।९०
नरनारीषुसङ्क्रान्तिस्तासामाश्वभिजायते ।
विरोधिन्यास्त्रय पुत्राश्चोदकोग्राहकस्तथा ।।९१

वह मगलो को बाधा देकर अमगल का आरम्भ करता है (घोर भय प्रस्तुत करता है) इसकी शान्ति के लिये शुभ पवित्र दिन मे चन्द्रमा का पूजन करके ।।८४।। प्रसन्न चित्त होकर कृषि कार्य का आरम्भ करे, दु सह की जिस नियोजिका नाम वाली कन्या का पहिले वर्णन कर चुका हूँ ।।८५।। उसके प्रचोदिका नाम की चार कन्याएँ हुईं, वे अत्यन्त मद मत्त यौवन सम्पन्न स्त्री पुरुषो मे प्रवेश करके ।।८६।। उनको नष्ट करने के लिये बुरे रूप से प्रेरित करती है और धर्म और अधर्म तथा अकाम मे काम को ।।८७।। अर्थ मे अनर्थ को, अमोक्ष मे मोक्ष को प्रेरणा पूर्वक पृथक्–पृथक् भावो का दर्शन कराती और अत्यन्त दारुण रूप उनके विनाशार्थ प्रविष्ट होती है ।।८८।। पूर्वोक्त आठ कन्याओ द्वारा पुरुषार्थ हत हो कर पुरुष घूमते फिरते है, यह गृहो मे स्थित गूलर मे नक्षत्र के सधिकाल मे प्रविष्ट होती है ।।८९।। जब धाता विधाता का पूजन नही किया जाता, उसी समय घर मे घुसती है, साथियो सहित भोजन, जलपान या कुल्ला करने के समय ।।०९।। स्त्री पुरुषो को उनका संक्रमण होता है, विरोधिनी के तीन पुत्र उत्पन्न हुए—एक का नाम चोदक, दूसरे का ग्राहक ।।९१।।

तम प्रच्छादकश्चान्यस्तत्स्वरूपंशृणुष्वमे ।
प्रदीपतैलससर्गदूषितेलघितेखले ॥६२
मुसलोलूखलेयत्रपादुकेवासनेस्त्रिय ।
शूर्पदात्रादिकयत्रपदाकृष्टतथासनम् ॥६३
यत्रोपलिप्तेनाभ्यर्च्यविहार क्रियतेगृहे ।
दर्वीमुखेनयत्राग्निराहृतोऽन्यत्रनीयते ॥६४
विरोधिनीसुतास्तत्रविजृम्भन्तेप्रचोदिता ।
एकोजिह्वागत पु सास्त्रीणाचालीकसत्यवान् ॥६५
चोदकोनामसप्रोक्त पैशुन्यकुरुतेगृहे ।
अवधानगतश्चान्य श्रवणस्थोऽतिदुर्मति ॥६६
करोतिग्रहणतेषावचसाग्राहकस्तुसः ।
आक्रम्यान्योमनोनृणांतमताच्छाद्यदुर्मति ॥६७
क्रोधजनयतेयस्तुतम प्रच्छादकस्तुस ।
स्वयहार्यास्तुचौर्येणजनितत्तनयत्रयम् ॥६८

-- - तीसरे तामाच्छादक पुत्र का स्वरूप सुनो, जहा मूसल या ओखली दीपक के तेल से दूषित की जाती अथवा उलाँघी जाती है ॥६२॥ अथवा जहा मूसल और ओखली स्त्रियो की चरण पादुका अथवा आसन होता है, जहा स्त्रिया पैरो से सूप दराती, आसन आदि को हटाती है ॥६३॥ लिपे हुए स्थान मे जहाँ पूजन किये बिना ही बिहार किया जाता है, अथवा जहाँ करछुली से अग्नि निकाल कर दी जाती है ॥६४॥ उन सभी स्थानो मे विरोधिनी के पुत्र अपना विक्रम दिखाते है और जो स्त्री पुरुषो की रसना पर बैठ कर झूठ-सत्य कहलवाता है ॥६५॥ उसे चोदक कहते हैं, वही कुटिलता तथा अन्य नीच कर्म कराने वाला है, अति दुर्मति कानो मे रह कर ॥६६॥ उन सब वाक्यो को ग्रहण करता है तथा तमाच्छादक मनुष्यो के मन पर अधिकार करके ॥६७॥ तम से आच्छादित कर क्रोध को उत्पन्न करता है, स्वयहारी के तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥६८॥

सर्वहार्यर्द्ध हरीचवीर्यहारीतथैवच ।
अनाचान्तगृहेष्वेतेमन्दाचारगृहेषुच ॥९९
अप्रक्षालितपादेषुप्रविशत्सुमहानसम् ।
खलेषुगोष्ठेषुचवैदोहोयेषगृहेषुवै ॥१००
तेषुसर्वेयथान्यायविहरन्तिरमन्तिच ।
भ्रामण्यास्तनयस्त्वेक काकजघइतिस्मृत ॥१०१
तेनाविष्टोरतिसर्वोनैवप्राप्नोतिवैमुने ।
भुञ्जन्योगायतेमैत्रेगायतेहसतेचयः ॥१०२
सन्ध्यामैथुनिनचैवनरमाविशतिद्विज ।
कन्यात्रयप्रसूतासायाकन्याऋतुहारिणी ॥१०३
एकाकुचहराकन्याअन्याव्यञ्जनहारिका ।
तृतीयातुसमाख्याताकन्यकाजातहारिणी ॥१०४
यस्यानक्रियतेसर्वःसम्यग्वैवाहिकोविधि ।
कालातीतोऽथवातस्याहस्त्येकाकुचद्वयम् ॥१०५

सर्वाहारी, अर्द्धाहारी और वीर्यहारी, यह अपवित्र अथया मन्द आचरण वाले घर मे ॥९९॥ बिना चरण धोये पाकशाला मे घुसने वालो के घर या खलियान मे विद्रोह उपस्थित करता है ॥१००॥ यह उन सभी स्थानो मे विभिन्न रीति से बिहार करते है, भ्रामणी के काकजङ्घ नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई ॥१०१॥ वह जिस घर मे घुस जाता है, उसमे कोई प्रसन्न नही रहता, जो जो मनुष्य भोजन के समय गाते और मित्रो से वार्त्तालाप, हास-परिहास करते है ॥१०२॥ अथवा जो सन्ध्या काल मे मैथुन करते, उन पर काकजङ्घ का आक्रमण होता है, ऋतुहारिणी के तीन कन्याएँ उत्पन्न हुई ॥१०३॥ प्रथम कन्या का नाम कुचहरा, द्वितीय का व्यञ्जनहारिका तथा तृतीय का जातहारिणी नाम हुआ ॥१०४॥ जिस कन्या का विवाह सम्यक् विधि विधान से नही होता या विवाह की लग्न व्यतीत होने पर होता है, उस कन्या के स्तनद्वय को यह कचहरा हरण कर लेती है ॥१०५॥

सम्यक्श्राद्धमदत्त्वाचतथानभ्यर्च्यमातृका ।
विवाहिताया कन्यायाहरतिव्यञ्जनतथा ।।१०६

अग्न्यम्बुशून्येचतथाविधूपेसूतिकागृहे ।
अदीपशस्त्रमुसलेभूतिसर्षपवर्जितः ।।१०७
अनुप्रविश्यसाजातमपहृत्यात्मसम्भवम् ।
क्षणप्रसविनीबालतत्रैवोत्सृजतेद्विज ।।१०८

साजातहारिणीनामसुघोरापिशताशना ।
तस्मात्सरक्षणकार्ययत्नतःसूतिकागृहे ।।१०६
स्मृतिचाप्रयतानाचशून्यागारनिषेवणात् ।
अपहन्तिसुतस्तस्या प्रचण्डोनामनामत. ।।११०

पौत्रेभ्यस्तस्यसम्भूतालीकाशतसहस्रश ।
चण्डालयोनयश्चाष्टौदण्डपाशातिभीषरगा. ।।१११
क्षुधाविष्टास्तोलीकास्ताश्चचण्डालयोनयः ।
अभ्यधावन्तचान्योन्यमत्तुकामा.परस्परम् ।।११२

श्राद्धादि कर्म और मातृका के अर्चन बिना जिस कन्या का विवाह किया जाता है, व्यञ्जनहारिका उसका हरण कर लेती है ।।१०६।। सूतिकागृह मे अग्नि, जल, धूप, दीपक, शस्त्र, मूशल, भस्म, सरसो आदि के न होने से ।।१०७।। जातहारिणी वहाँ प्रविष्ट हो कर तत्काल उत्पन्न हुए बालको का हरण करती है और उनके स्थान पर अन्य बालक रख देती है ।।१०८।। इस लिये उस जातिहारिणी से सूतिकागृह मे बालक की यत्न पूर्वक रक्षा करनी चाहिये ।।१०६।। उसका प्रचण्ड नाम का पुत्र है जो निर्जन घर मे रहने वाले असंयत चित्त वाले मनुष्यो की स्मृति का हरण कर लेता है ।।११०।। उसके पौत्रो के द्वारा सौ सहस्र लोको की उत्पत्ति हुई, दण्ड और पाश को धारण करने वाली अत्यन्त भयकर चाण्डालो की आठ योनियाँ भी इसी के वंश से हुई है ।।१११।। जब तोलीका और चाण्डाल जातिया क्षुधातुर हो कर परस्पर के भक्षणार्थ दौड़ी ।।११२।।

प्रचण्डोवारयित्वातुयास्ताश्चण्डालयोनय ।
समयेस्थापयामासयादृशेतादृशच्छृणु ॥११३
अद्यप्रभृतिलोकानामावासयोहिदास्यति ।
दड तस्याहमतुलपातयिष्येनसशय ॥११४
चण्डालयोन्यावसथेलीकायाप्रसविष्यति ।
तस्याश्चसन्तति पूर्वासाचसद्योनशिष्यति ॥११५
प्रसूतेकन्यकेद्वे तुस्त्रीपु सोर्वीजहारिणी ।
वातरूपामरूपाचतस्या प्रहरणातुते ॥११६
वातरूपानिशेकान्तेसायस्मै क्षिपतेसुतम् ।
सपुमान्वातशुक्रत्वप्रयातिवनितापिवा ॥११७
तथैवगच्छत:सद्योनिर्बीजत्वमरूपया ।
अस्नाताशीनरोयोऽसौतथाचापिवियोगिन. ॥११८
विद्वे षिणीतुयाकन्याभृकुटीकुटिलानना ।
तस्यद्वौतनयौपु सामपकारप्रकाशकौ ॥११६

तब प्रचण्ड ने उन्हे निवारण किया और जिस समय मे स्थापित किया, उसे सुनो ॥११३॥ आज से जो पुरुष लीको को स्थान देगा, उसे मै घोर दुख दूँगा ॥११४॥ चाण्डाल के घर मे या पराये घर मे रह कर जो स्त्री सन्तान को जन्म देती है, वह लीक उसकी सब सन्तानो को नष्ट करने वाली होती है ॥११५॥ स्त्री-पुरुपो के वीर्य को हरण करने वाली बीजापहारिणी के वातरूपा और अरूपा नाम की दो कन्याएँ हुई ॥११६॥ उनमे वातरूपा सिचन के समय शुक्र को जिसमे गिराती है, वह पुरुष या स्त्री वातशुक्रत्व के रोग से पीडित होते है ॥११७॥ जो पुरुष बिना स्थान, बिना भोजन करे नारी समागम करता अथवा किसी अन्य योनि मे भोग करता है, उमे अरूपा शीघ्र ही वीर्य रहित कर देती है ॥११८॥ कुटिल मुख वाली, जिसकी भौहे सदा तनी रहती है, उस विद्वेषिणी के दो पुत्र उत्पन्न हुए, वह सदा ही पुरुषो का अपकार करते रहते है ॥११९॥

निर्बीजत्वनरोयातिनारीवाशौचवर्जिता ।
पैशुन्याभिरतलोलमसज्जलनिषेवणम् ॥१२०
पुरुषद्वेषिणाचैतौनरमाक्रम्यतिष्ठतः ।
मात्राभ्रात्रातथामित्रैरभीष्टे स्वजने परै ॥१२१
विद्विष्टोनाशमायातिपुरुषोधर्मतोऽर्थत ।
एकस्तुस्वगुणाल्लोकेप्रकाशयतिपापकृत् ॥१२२
द्वितीयस्तुगुणान्मैत्रीलोकस्थामपकर्षति ।
इत्येतेदौ सहा सर्वेयक्ष्मण सन्ततावथ ॥२३

अपबित्र स्त्री-पुरुष ही निर्वीयत्व को प्राप्त होते है, विद्वेषिणी के दोनी पुत्र परनिन्दा मे लगे, चञ्चल, अशुद्ध एव जलसेवी ॥१२०॥ तथा पुरुष द्वेषी पुरुष मे अवस्थित होते है, माता भ्राता, मित्र, प्रियजन या आत्मीयजन के ॥१२१॥ विद्वेषी होने पर धर्म और अर्थ को नष्ट कर देते है, इस प्रकार एक पापाचारी पुत्र ने अपने गुणो को प्रकाशित किया हुआ है ॥१२२॥ दूसरा पुत्र लोको के गुणो और मैत्री भाव का आर्कषण करने मे समर्थ है, इस प्रकार पाप का आचरण करने वाले दु सह के गणो ने सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त किया हुआ है ॥१२३॥

४४--रुद्रादिसृष्टि

इत्येषतामस सर्गोब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन ।
रुद्रसर्गप्रवक्ष्यामितन्मेनिगदत· श्रृणु ॥१
तनवश्चतथै वाष्टौपत्न्य पुत्राश्चतेतथा ।
कल्पादावात्मनस्तुल्यसुतप्रध्यायत प्रभो. ॥२
प्रादुरासीदथाकेऽस्यकुमारोनीललोहितः ।
रुरोदसुस्वरसोऽथद्रवश्चद्विजसत्तम ॥३
किरोदिषीतितब्रह्मारुदन्तप्रत्युवाचह ।
नामदेहीतितसोऽथप्रत्युवाचजगत्पतिम् ॥४

रुद्रस्त्वदेवनाम्नासिमारोदीर्धैर्य्यमावह ।
एवमुक्तस्तत सोऽथसप्तकृत्वोरुरोदह ।।५
ततोऽन्यानिददौतस्मैसप्तानामानिवैप्रभु ।
स्थानानिचैषामष्टानापत्नी पुत्राश्चवैद्विज ।।६

मार्कण्डेयजी ने कहा—अव्यक्त जन्मा ब्रह्माजी की तामसी सृष्टि का यह वर्णन हुआ, अब रुद्रसर्ग का विषय वर्णन करते है, श्रवण करो ।।१।। आठ पुत्र, उनकी पुत्री और सब पुत्र कल्प के आदि मे अत्मतुल्य सुत का चिन्तन करने के कारण उसी प्रकार के हुए ।।२।। हे द्विजवर ! उन आठ पुत्रो मे जो एक नीललोहित वर्ण वाला पुत्र ब्रह्माजी की देह से उत्पन्न हुआ था, वह उनकी गोदी मे ही सुस्वर पूर्वक रोने लगा ।।३।। उसे रुदन करता हुआ देखकर ब्रह्माजी ने प्रश्न किया 'तू क्यो रोता है ?' तो उस बालक ने कहा 'हे जगत्पते ! मुझे नाम दीजिये ।।४।। ब्रह्माजी ने कहा—'तुम्हारा नाम रुद्र हुआ, अब तुम रुदन बन्द करके धैर्य धारण करो, ब्रह्माजी के ऐसा कहने पर भी वह बालक सात बार पुन रोया ।।५।। हे द्विज ! तब उन्होने उसे क्रमश सात नाम और दिये, तदनन्तर इन आठो को आठ स्थान, पत्नी और पुत्र भी दिये ।।६।।

भवशर्वतथेशानतथापशुपतिप्रभु ।
भीममुग्र महादेवमुवाचसपितामहः ।।७
चक्रेनामान्यथैतानिस्थानान्येषाचकारह ।
सूर्य्योजलमहीवह्निर्व्वायुराकाशमेवच ।।८
दीक्षितोब्रह्मणःसोमइत्येतास्तनव क्रमात् ।
सुवर्चलातथैवोमाविकेशीचापरास्वधा ।।९
स्वाहादिशस्तथादीक्षारोहिणीचयथाक्रमम् ।
सूर्य्यादीनाद्विजश्रेष्ठरुद्राद्यैर्नामभि सह ।।१०
शनैश्चरस्ताशुक्रोलोहिताङ्गोमनोजव ।
स्कन्द सर्गोऽथसन्तानोबुधश्चानुक्रमात्सुता ।।११
एवम्प्रकारोरुद्रोऽसौसतीभार्य्यामविन्दत ।
दक्षकोपाच्चतत्याजसासतीस्वकलेवरम् ।।१२

शभोरवज्ञायत्रास्तेस्थातव्यंनैवसूरिभि· ।
(एतेचब्राह्मणा· सर्वेयेद्विषतोमहेश्वरम् ।
भवतुतेवेदबाह्या पापोपहतचेतसः ।
पाखडाचारनिरता सर्वेनिरयगामिनः ।
कलौयुगेतुसप्राप्तेदरिद्रा शूद्रजापका ।
हिमवद्दुहितासाभून्मेनाताद्विजसत्तमः ।)
तस्याभ्रातातुमैनक सखाम्भोधेरनुत्तमः ।।१३
उपयेमेपुनश्चैनामनन्याभगवान्भव ।
देवौधाताविधातारौभृगो:ख्यातिरसूयत ।।१४

ब्रह्माजी ने रुद्र, भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव ।।७।। यह आठ नाम देकर आठो स्थान का निर्देश किया—सूर्य, जल, पृथिवी, वह्नि, वायु आकाश ।।८।। दीक्षित ब्राह्मण और सोम तथा सुवर्चला, उमा विकेशी, स्वधा ।।९।। स्वाहा, दिक्, दीक्षा और रोहिणी यह नाम उनकी भार्याओ के हुए, अब रुद्रादि के नामो के सहित उनके पुत्रो के नामो का वर्णन करता हूँ, उसे सुनो ।।१०।। रुद्रादि के क्रमशः शनैश्चर, शुक्र, लोहिताङ्ग, मनोजव, स्कन्द, सर्ग, सन्तान और बुध यह आठ पुत्र है ।।११।। इन रुद्र ने पत्नी रूप से सती को प्राप्त किया था और दक्ष कोप के कारण सती ने अपने शरीर का परित्याग कर दिया था ।।१२।। (क्यो कि जहाँ शिवजी का तिरस्कार हो वहाँ न रहे, महेश्वर से द्वेष करने वाले यह ब्राह्मण पाप से नष्टचेता हो, वेद से बहिर्मुख तथा पाखडी और नारकी हो, कलियुग के आने पर दरिद्र और शूद्रो का जप करें) इस प्रकार शाप देकर वह मेनका के गर्भ से हिमवान् सुता बनी, उसका भाई मैनका सागर का सखा है ।।१३।। उस पार्वती से भगवान् भव ने विवाह किया, भृगुजी की पत्नी ख्याति के धाता विधाता नामक दो पुत्र हुए थे ।।१४।।

श्रियचदेवदेवस्यपत्नीनारायणस्यया ।
आयातिर्नियतिश्चैवमेरोःकन्येमहात्मन ।।१५

भार्येधाताविधात्रोस्तेतयोजातौसुताशुभौ ।
प्राणश्चैवमृकण्डुश्चपितामममहायशा ॥१६
मनस्विन्यामहतस्मात्पुत्रोवेदशिरामम ।
धूम्रवत्यासमभवत्प्राणस्यापिनिबोधमे ॥१७
प्राणस्यद्यु तिमान्पुत्रउत्पन्नस्तस्यचात्मज ।
अजराश्चतयो.पुत्रा पौत्राश्चबहवोऽभवन् ॥१८
पुत्रीमरीचे सभूति पौर्णमासमसूयत ।
विरजा पर्वतश्चैवतस्यपुत्रौमहात्मन. ॥१९
तयो पुत्रास्तु वक्ष्येहवशसकीर्त्तनेद्विज ।
स्मृतिश्चाङ्गिरस पत्नीप्रसूताकन्यकास्तथा ॥२०
सिनीवालीकुहूश्चैवराकाचानुमतिस्तथा ।
अनसूयातथैवात्रेर्जज्ञेपुत्रानकल्मषान् ॥२१
सोमदुर्वाससचैवदत्तात्रेयचयोगिनम् ।
प्रीत्यापुलस्त्यभार्यायादत्तोन्यस्तत्सुतोऽभवत् ॥२२

लक्ष्मीजी भगवान् नारायण की भार्या हुई और महात्मा मेरु की आयति नियति नाम की दो कन्याएँ थी ॥१५॥ वे दोनो धाता-विधाता की पत्नी हुई, इन दोनो के एक-एक पुत्र हुआ, धाता ने आयति के पुत्र का नाम प्राण और विधाता ने नियति के पुत्र का नाश मृकण्डु रखा, महायशस्वी मुझ मार्कण्डेयजी के यही पिता है ॥१६॥ मेरे पिता मृकण्डु का विवाह मनस्विनी से हुआ, वही मेरी माता है, मैंने अपने पुत्र का नाम वेदशिरा रखा, प्राण की भार्या धूम्रवती थी,अब उसके पुत्रो का वर्णन करताहूँ ॥१७॥ धूम्रवती के द्युतिमान् और अराजक नामक दो पुत्र हुए,इनके अनेक पुत्र पौत्र हुए॥१८॥मरीचिकी पत्नी सम्भूति से पौर्णमास का जन्म हुआ, उसके विरजा और पर्वत नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥१९॥ हे द्विज ! इनके पुत्रो के वश का वर्णन करता हूँ, अगिरा-पत्नी स्मृति ने ॥२०॥ चार कन्याएँ उत्पन्न की, उनका नाम सिनीवाली, कुहू, राका अनुमति था, अत्रि से अनसूया ने निष्पाप ॥२१॥ सोम, दुर्वासा और दत्तात्रेय

नामक तीन योगी पुत्रो को उत्पन्न किया, पुलस्त्य-पत्नी प्रीति ने दत्त को जन्म दिया ।।२२।।

पूर्वजन्मनिसोऽगस्त्य स्मृत स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
कर्दमश्चार्ववीरश्चसहिष्णुश्चसुतत्रयम् ।।२३
क्षमातुसुषुवेभार्यापुलहस्यप्रजापते ।
क्रतोस्तुसन्नतिर्भार्यावालखिल्यानसूयत ।।२४
षष्ठिर्यानिसहस्राणिऋषीणामूर्द्ध्वरेतसाम् ।
ऊर्जायान्तुवसिष्टस्यसप्ताजायन्तवैसुताः ।।२५
रजोगात्रोर्ध्वबाहुश्चसवलश्चानघस्तथा ।
सुतपाःशुक्लइत्येतेसर्वेसप्तर्षय स्मृता ।।२६
योसावग्निरभीमानीब्रह्मणस्तनयोऽग्रज. ।
तस्मात्स्वाहासुताँल्लेभेत्रीनुदारौजसोद्विज ।।२७

यही दत्त पूर्व जन्म मे अगस्त्य नाम से प्रसिद्ध थे, प्रजापति पुलह की पत्नी क्षमा के कर्दम, अर्ववीर और सहिष्णु नामक तीन पुत्र हुए, ऋतु की पत्नी सन्नति ने ।।२३-२४।। साठ हजार ऊर्ध्वरेता वाल्यखिल्यो की उत्पत्ति की, वसिष्ठ के द्वारा ऊर्जा के प्रसव से सात पुत्रो की उत्पत्ति हुई ।।२५।। यही सप्तर्षि रज, गात्र, ऊर्धबाहु, सवल, अनघ सुतपा और शुक्र नाम से प्रसिद्ध हुए ।।२६।। हे द्विजोत्तम ! ब्रह्माजी के ज्येष्ठ पुत्र अग्नि हुए, उनका विवाह स्वाहा के साथ हुआ तथा उनके अत्यन्त प्रतापी और बली तीन पुत्र हुए ।।२७।।

पावकपवनचैवशुचिचापिजलाशिनम् ।
तेषातुसन्ततावन्येचत्वारिशच्चपञ्चच ।।२८
कथ्यन्तेबहुशश्चैतेपितापुत्रत्रयचयत् ।
एवमेकोनपचाशद्द् जंया परिकीर्तिता ।।२९
पितरोब्रह्मणासृष्टायेव्याख्याता मयातव ।
अग्निष्वात्ताबर्हिषदोऽनग्नय साग्नयश्चये ।।३०
तेभ्य स्वधासुतेजज्ञे मेनांवैधारिणीतथा ।
तेउभेब्रह्मवादिन्यौयोगिन्यौचाप्युभेद्विज ।।३१

पावक पवमान और शुचि, यह सदैव जल पीते रहते है, उनके पैंतालीस पुत्र हुए ॥२८॥ जो अन्य तीन पुत्र पिता पुत्र नाम से कहे है, वह अग्नि के पौत्र है, अग्नि के यह उनचास पौत्र दुर्जय कहे जाते है ॥२९॥ पहिले मैने इन्ही को, पितरो के नाम से बताया था, अग्निष्वात्ता, बर्हिषद, अनग्नि और साग्नि ॥३०॥ स्वधा ने पितरो से मेना और वैधारिणी नाम की दो कन्याएँ प्राप्त की, यह दोनो ही परम ब्रह्मवादिनी और योगाभ्यास परायणा हुई ॥३१॥

४५—स्वायम्भुव मन्वन्तर कथन (१)

स्वायम्भुवत्वयाख्यातमेतन्मन्वन्तरचयत् ।
तदहभगवन्सम्यक्श्रोतुमिच्छामिकथ्यताम् ॥१
मन्वन्तरप्रमाणचदेवादेवर्षयस्तथा ।
येचक्षितीशाभगवन्देवेन्द्रश्चैवयस्तथा ॥२
मन्वन्तराणासख्यातासाधिदाह्यकसप्तति. ।
मानुषेणप्रमाणेनशृणुमन्वन्तरचमे ॥३
त्रिशत्कोट्यस्तुसख्याता सहस्राणिचविशति ।
सप्तषष्टिस्तथान्यानिनियुतानिचसख्यया ॥४
मन्वन्तरप्रमाणचइत्येतत्साधिकांविना ।
अष्टौशतसहस्राणिदिव्ययासख्ययास्मृतम् ॥५
द्विपचाशत्तथान्यानिसहस्राण्यधिकानिच ।
स्वायम्भुवोमनुःपूर्वमनु स्वारोचिषस्तथा ॥६
औत्तमस्तामसश्चैवरैवतश्चाक्षुषस्तथा ।
षडेतेमनवोऽतीतास्तथावैवस्वतोऽधुना ॥७

क्रौष्टुकि बोले—हे भगवन् ! आपने जिस स्वायभुव मन्वन्तर का विषय कहा है, उसे भले प्रकार से सुनना चाहता हूँ ॥१॥ मन्वन्तर का प्रमाण, देवता, देवर्षि, राजा तथा देवेन्द्र के वृत्तान्त को विस्तार सहित कहिये ॥२॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—मन्वन्तर की संख्या कुछ अधिक इकहत्तर चतुर्युगी है, मैं इसे मानव-मान से कहता हूँ ।।३।। एक मन्वन्तर मे तीस करोड सडसठ लाख बीस हजार मानवी वर्ष व्यतीत होते है ।।४।। मन्वन्तर का यह प्रमाण आधिक्य रहित है, दिव्य आठ लाख ।।५।। बावन हजार वर्ष एक मन्वन्तर मे होते है, प्रथम मनु स्वायभुव, स्वारोचिष ।।६।। औत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष इस प्रकार छ. मनु व्यतीत हो चुके है, इस समय वैवस्वत मनु है ।।७।।

सावर्णा पचरौच्याश्चभौत्याश्चागामिनस्त्वमी ।
एतेषाविस्तरभूयोमन्वतरपरिग्रहे ।।८
वक्ष्येदेवानृषीश्चैववेन्द्रा.पितरश्चये ।
उत्पत्तिसग्रहब्रह्मन्श्रूयतामस्यसतति ।।९
यच्चतेषामभूत्क्षेत्रतत्पुत्राणामहात्मनाम् ।
मनो.स्वायम्भुवस्यासन्दशपुत्रास्तुतत्समा: ।।१०
यैरियपृथिवीसर्वासप्तद्वीपासपर्वता ।
ससमुद्राऽऽकरवतीप्रतिवर्षनिवेशिता ।।११
स्वायम्भुवेऽन्तरेपूर्वमाद्ये त्रेतायुगेतथा ।
प्रियव्रतस्यपुत्रैस्तै पौत्रैःस्वायम्भुवस्यच ।।१२
प्रियव्रतात्प्रजावत्यावीरात्कन्याव्यजायत ।
कन्यासातुमहाभागाकर्द्दमस्यप्रजापते ।।१३
कन्येद्वे दशपुत्राश्चसम्राट्कुक्षीचतेउभे ।
तयोर्वैभ्रातर.शूरा प्रजापतिसमादश ।।१४

पचसावर्णि, रौच्य और भौत्य भविष्य मे होगे, इन सब का पूरा वृत्तान्त मन्वन्तरो का वर्णन करने मे कहूँगा ।।८।। हे विप्र ! मन्वन्तरो मे जो जो देवता, ऋषि, इन्द्र, पितर होते है, उन सब की उत्पत्ति आदि का वर्णन उनकी सन्तति सहित करूँगा ।।९।। उन महात्माओ के जो जो सन्तति हुई, उसे कहता हूँ, स्वायभुव के दश पुत्र उन्ही के उत्पन्न हुए ।।१०।। उन्होने इस सप्त द्वीप, पर्वत, समुद्र और खान से सम्पन्न पृथिवी को वर्षो मे विभाजित किया था ।।११।। पहिले भी स्वायभुव मन्वन्तर मे अर्थात् त्रेता के आरम्भ मे स्वायभुव के पौत्रो

अर्थात् प्रियव्रत के पुत्रो ने भी इसी प्रकार किया था ।।१२।। प्रजापति कर्दम की प्रजावती नाम की अत्यन्त सौभाग्यवती कन्या के गर्भ से ।।१३।। दश पुत्र और दो कन्याएँ उत्पन्न हुई, इन दोनो कन्याओ का नाम सम्राट् और कुक्षि हुआ और उनके दशो भाई भी अत्यन्त शूर और प्रजापति के तुल्य थे ।।१४।।

आग्नीध्रोमेधातिथिश्चवपुष्माश्चतथापर ।
ज्योतिष्मान्द्युतिमान्भव्य.सवनःसप्तएवते ।।१५
मेधाग्निबाहुमित्रास्तुत्रयोयोगपरायणा ।
जातिस्मरामहाभागानराज्यायमनोदधु ।
प्रियव्रतोऽभ्यषिचत्तान्सप्तसप्तसुपार्थिवान् ।
द्वीपेषुतेनधर्मेणद्वीपाश्चैवनिबोधमे ।।१६
जम्बुद्वीपेतथाग्नीध्र राजानकृतवान्पिता ।
प्लक्षद्वीपेश्वरश्चापितेनमेधातिथि कृत ।।१७
शाल्मलेस्तुवपुष्मन्तज्योतिष्मन्तकुशाह्वये ।
क्रौंचद्वीपेद्युतिमन्तभव्यशाकाह्वयेश्वरम् ।।१८
पुष्पकराधिपतिचापिसवनकृतवान्सुतम् ।
महावीतोधातकिश्चपुष्कराधिपते सुतौ ।।१९
द्विधाकृत्वातयोर्वर्षपुष्करेसन्यवेशयत् ।
भव्यस्यपुत्रा सप्तासन्नामतस्तान्निबोधमे ।।२०
जलदश्चकुमारश्चसुकुमारोमणीवक ।
कुशोत्तरोऽथमेधावीसप्तमस्तुमहाद्रुमः ।।२१

उन दशो के नाम अग्नीध्र, मेधातिथि, वपुष्मान्, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, भव्य और सशन(यह सात)।।१५।। तथा सब से छोटे मेधा,अग्निबाहु और मित्र हुए यह तीनो जन्म से ही योगपरायण हुए और उन सातो को राजा प्रियव्रत नें सात द्वीपो का राज्य प्रदान किया, जहाँ यह धर्मपूर्वक राज्य करने लगे, अब उन द्वीपो के विषय मे कहता हूँ ।।१६।। अर्थात् राजा ने अग्नीध्र को जम्बू द्वीप का तथा मेधातिथि को प्लक्ष द्वीप का राज्य दिया ।।१७।। वपुष्मान् को शाल्मलि द्वीप, ज्योतिष्मान् को कुश द्वीप, द्युतिमान् को कौंचद्वीप और भव्य को शाकद्वीप

का राजा बनाया ॥१८॥ और सवन को पुष्पकर द्वीप दिया, इसी सवन के दो पुत्र उत्पन्न हुए,जिनका नाम मेधावी और धातकी हुआ ।१९। राजा सवन ने अपने दोनो पुत्रो के लिए पुष्कर द्वीप को दो भागो मे विभक्त कर दिया, शाक-के राजा भव्य के सात पुत्र हुए, अब उनके नाम कहता हूँ ॥२०॥ जो क्रमशः जलद कुमार सुकुमार, मनीवक, कुशोत्तर, मेधावी और महाद्रुम नाम के हुए ॥२१॥

तन्नामकानिवर्षाणिशाकद्वीपेचकारसः ।
तथाद्यु तिमतःसप्तपुत्रास्तास्तुनिबोधमे ॥२२
कुशलामनुगश्चोष्णः प्राकारश्चार्थकारकः ।
मुनिश्चदुन्दुभिचैवसत्तम परिकीर्तित ॥२३
तेषास्वनामधेयानिक्रौचद्वीपेतथाभवन् ।
ज्योतिष्मतः कुशद्वीपेपुत्रनामाङ्कितानिवै ॥२४
(तत्रापिसप्तवर्षाणितेषानामानिमेश्रृणु) ।
तस्यापिसप्तपुत्रास्तुज्ञेयास्तेपिमहौजसः ।
उद्भिदवैणवचैवसुरथंलम्बनंतथा ॥२५
धृतिमत्प्राकरचैवकापिलचापिसत्तमम् ।
वपुष्मत सुता सप्तशाल्मलेशस्यचाभवन् ॥२६
श्वेतश्चहरितश्चैवजीमूतोरोहितस्तथा ।
वैद्युतोमानसश्चैवकेतुमानन्सप्तमस्तथा ॥२७
तथैवशाल्मलेस्तेषासमनामानिसप्तवै ।
सप्तमेधातिथे पुत्रा प्लक्षद्वीपेश्वरस्यवै ॥२८

उस राजा ने अपने शाकद्वीप को सात भागो में विभक्त करके सातों पुत्रों मे बाँट दिया, वह सात भाग ही सप्त वर्ष कह कर इन्हीं के नाम से प्रख्यात हुए, इसी प्रकार क्रौच द्वीप के राजा द्युतिमान् के सात पुत्र उत्पन्न हुए, उनके भी नाम बताता हूँ ॥२२॥ वे क्रमश कुशल, मनुग, उष्ण, आकार, अर्थकारक मुनि और दुदुभि नामक हुए ॥२३॥ क्रौवद्वीप को भी सात भागो मे बाँटा गया, ज्योतिष्मान् ने सात पुत्रो के नामानुसार ही कुश द्वीप का विभाग किया ॥२४॥

उनके नाम पर भी सात बने, जिनके नाम सुनो उद्भिद, वैष्णव, सुरथ, लम्बन ॥२५॥ धृतिमान्,प्रभाकर और कपिल यह सात नाम हुए तथा शाल्मलि द्वीप के राजा वपुष्मान् के भी सात ही पुत्र हुए ॥२६॥ उनके नाम क्रमश श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत्, मानस और केतुमान् ॥२७॥ उस द्वीप के भी सात भाग होकर इन्ही के नामो पर सप्त वर्ष हुए तथा प्लक्ष द्वीप के राजा मेधातिथि के भी सात पुत्र हुए ॥२८॥

येषानामाङ्कितैर्वर्षैं प्लक्षद्वीपस्तुसप्तधा ।
पूर्वशाकभववर्षशिशिरतुसुखोदयम् ॥२९
आनन्दचशिवचैवक्षेमकचध्रुवतथा ।
प्लक्षद्वीपादिभूतेषुशाकद्वीपान्तिमेषुवै ॥३०
ज्ञेय.पचसुधर्मश्चवर्णाश्रमविभागजः ।
नित्य स्वाभाविकश्चैवअहिसाविधिवर्जितः ॥३१
(यानिकिंपुरुषाद्यानिवर्जयित्वाहिमाह्वयम् ।
सुखमायुश्चरूपचबलधर्मश्चनित्यशः) ।
पचस्वैतेषुवर्षेषुसर्वसाधारण स्मृत ।
अग्नीध्रायपितापूर्वंजम्बूद्वीपददौद्विज ॥३२
तस्यपुत्राबभूवुर्हिप्रजापतिसमानव ।
ज्येष्ठोनाभिरितिख्यातस्तस्यकिंपुरुषोऽनुज. ॥३३
हरिवर्षस्तृतीयस्तुचतुर्थोऽभूदिलावृतः ।
वश्यश्चपचम पुत्रोहिरण्य षष्ठउच्यते ॥३४
कुरुस्तुसप्तमस्तेषांभद्राश्वश्चाष्टम स्मृत ।
नवम केतुमालश्चतन्नाम्नावर्षसस्थितिः ॥३५

उन्होने भी प्लक्ष द्वीप को सात भागो मे विभक्त किया, वह भी उनके नाम से वर्ष प्रसिद्ध हुए, उनके नाम थे—शाकभव, शिशिर. सुखोदय ॥२९॥ आनन्द, शिव, क्षेमक और ध्रुव तथा प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौच और शाक इन पाँच द्वीपो में ॥३०॥ और इनके विभागो मे वर्णाश्रम धर्म सदा स्थित रहता है और स्वँभाव से ही वहाँ हिंसा नही होती ॥३१॥ (हिमालय के अति-

रिक्त किम्पुरुपादि वर्ष मे सुख, पूर्णायु, बल और धर्म सदैव स्थित रहता है) हे विप्रवर ! इन पाँचो द्वीपो मे सम्पूर्ण धर्म साधारण रूप से विद्यमान है, जिन आग्नीध्र को अपने पिता से जम्बू द्वीप मिला था ॥३२॥ उनके प्रजापति तुल्य नौ पुत्र उ पन्न हुए थे, सबसे बडा नाभि, उससे दूसरा किम्पुरुष ॥३३॥ तीसरा हरि, चौथा इलावृत्त, पाँचवा रम्य, छटवाँ हिरण्य ॥३४॥ सातवाँ कुरु, आठवाँ भद्र और नौवाँ केतुमाल हुआ, इन सबके नामो पर ही वर्ष बने ॥३५॥

यानिकिपुरुषाद्यानिवर्जंयित्वाहिमाह्वयम् ।
तेषास्वभावत सिद्धि सुखप्रायाह्ययत्नत ॥३६
विपर्ययोनतेष्वस्तिजरामृत्युभयनच ।
धर्माधर्मौनतेष्वास्तानोत्तमाधमध्यमा ॥३७
नवैचतुर्युगावस्थानाश्रमाऋतवोनच ।
आग्नीध्रसूनोर्नाभेस्तुऋषभोऽभूत्सुतोद्विज ॥३८
ऋषभाद्भरतोजज्ञेवीर. पुत्रशताद्वर. ।
सोऽभिषिच्यर्षभ पुत्रमहाप्राव्राज्यमास्थित ॥३९
तपस्तेपेमहाभाग पुलहाश्रमसश्रयः ।
हिमाह्व दक्षिणंवर्षभरतायापितादद‍ौ ॥४०
तस्मात्तुभारतवर्षतस्यनाम्नामहात्मन. ।
भरतस्यान्वभूत्पुत्रः सुमतिर्नामधार्मिक ॥४१
तस्मिन्राज्यसमावेश्यभरतोऽपिवनययौ ।
एतेषापुत्रपौत्रैस्तुसप्तद्वीपावसुन्धरा ॥४२
प्रियव्रतस्यपुत्रैस्तुभुक्तास्वायम्भुवेऽन्तरे ।
एषस्वायम्भुव सर्ग कथितस्तेद्विजोत्तम ।
पूर्वमन्वन्तरेसम्यक्किमन्यत्कथयामिते ॥४३

हिमालय के अतिरिक्त जो किम्पुरुष है, उनको सिद्ध स्वभाव से ही तथा सुख बिना यत्न के ही उपलब्ध है ॥३६॥ उनको विपर्यय अथवा वृद्धावस्था और मृत्यु से उत्पन्न होने वाला भय उपस्थित नही होता, वहाँ धर्म, अधर्म श्रेष्ठ मध्यम या निम्न रूप मे विभाग ॥३७॥ और चारो युग की भिन्न अवस्था नहीं

होती, ऋतु विभाग भी नही है, आग्नीध्र के पुत्र नाभि के ऋषभ नामक पुत्र हुआ ।।३८।। ऋषभ के पुत्र भरत हुए, ऋषभ ने अपने पुत्र भरत को राज्य देकर सन्यास ग्रहण कर लिया ।।३९।। इन महाभाग ने पुलहाश्रम मे निवास पूर्वक तप किया था, हिम नामक दक्षिण वर्ष को उनके पिता ने भरत को दिया था ।।४०।। इसलिये उन्हीं के नाम पर भारत वर्ष हुआ है, भरत के एक पुत्र हुआ, जिसका नाम सुमति था ।।४१।। भरत ने भी सुमति को राज्य देकर वन गमन किया, इस प्रकार इनके पौत्रो तथा प्रियव्रत के पुत्रो ने स्वायभुव मन्वन्तर मे इस सप्तद्वीपा पृथिवी का निरन्तर भोग किया ।।४२।। पूर्व मन्वन्तर मे यह स्वायभुव सर्ग का सम्यक् वर्णन हुआ, अब और क्या कहूँ ? ।।४३।।

४६—जम्बूद्वीप वर्णन

कतिद्वीपाःसमुद्रावापर्वतावाकतिद्विज ।
कियन्तिचैववर्षाणितेषानद्यश्चकामुने ।।१
महाभूतप्रमाणचलोकालोकतथैवच ।
पर्य्यासिपरिमाणचगतिचन्द्रार्कयोरपि ।।२
एतत्प्रब्रूहिमेसर्वविस्तरेणमहामुने ।।३
शतार्द्धकोटिविस्तारापृथिवीकृत्स्नशोद्विज ।
तस्या सस्थानमखिलकथयामिश्रृणुष्वतत् ।।४
येतेद्वीपामयाप्रोक्ताजम्बुद्वीपादयोद्विज ।
पुष्करान्तामहाभागश्रृण्वेषाविस्तरपुनः ।।५
द्वीपात्तुद्विगुणोद्वीपोजम्बु प्लक्षोऽथशाल्मलिः ।
कुश क्रौंचस्तथाशाक पुष्करद्वीपएवच ।।६
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिक्षीरजलाब्धिभि ।
द्विगुणैर्द्विगुणैर्वृद्धयासर्वत परिवेष्टिता ।।७

क्रौष्टुकी ने कहा—हे मुने ! द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष और नदियाँ

कितनी है ? ।।१।। महाभूत एव लोकालोक का प्रमाण कितना है तथा चन्द्रमा और सूर्य के व्यास का परिमाण और गति का प्रकार क्या है ? ।।२।। हे महा-मुने ! विस्तार सहित इनका वर्णन करिये ।।३।। मार्कण्डेयजी ने कहा—यह सम्पूर्ण पृथिवी पचास करोड योजन विस्तार वाली है, उन सभी के स्थानो का विषय वर्णन करता हूँ, उसे सुनो ।।४।। हे महाभाग ! जम्बू इत्यादि जिन सप्त-द्वीपो का वर्णन किया है, उसका पुन विस्तार सहित वर्णन करता हूँ ।।५।। जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौच, शाक और पुष्कर यह सातो द्वीप क्रमश. एक से दूसरा विस्तार मे दुगुना है ।।६।। लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दही, दूध और जल समुद्र के द्वारा दुगुने-दुगुने भाव से बढते हुए है ।।७।।

जम्बुद्वीपस्यसस्थानप्रवक्ष्येऽहनिबोधमे ।
लक्षमेकयोजनानावृत्तोविस्तारदैर्घ्यत· ।।८
हिमवान्हेमकूटश्चनिषधोमेरुरेवच ।
नील श्वेतस्तथशृङ्गीसप्तद्वर्षपर्वता ।।९
द्विलक्षयोजनायामौमध्येतत्रमहाचलौ ।
तयोर्दक्षिणतोयौतुयौतथोत्तरतोगिरी ।।११
दशभिर्दशभिन्यूनै सहस्रै स्तेपरस्परम् ।
द्विसाहस्रोच्छ्राया सर्वेतावद्विस्तारिणश्चते ।।११
समुद्रान्त प्रविष्टाश्चषडस्मिन्वर्षपर्वता ।
दक्षिणोत्तरतोनिम्नामध्येतुङ्गायथाक्षिति· ।।१२
वेद्यर्द्धे दक्षिणेत्रीणित्रीणिवर्षाणिचोत्तरे ।
इलावृततयोर्मध्येचन्द्रार्द्धाकारसत्स्थितम् ।।१३
तत पूर्वेणभद्राश्वकेतुमालचपश्चिमे ।
इलावृतस्यमध्येतुमेरु कनकपर्वत ।।१४

जम्बू द्वीप का आकार परिमाण बताता हू, यह विस्तार, दीर्घता और व्यास मे यह एक लाख योजन का है ।।८।। उसके वर्ष पर्वत हिमवान्, हेमकूट ऋषभ, मेरु, नील, श्वेत और शृङ्गी यह सात हैं ।।९।। मध्य मे दो लाख योजन विस्तार वाले दो महान् पर्वत है, उनके दक्षिण और उत्तर मे दो-दो

पर्वत है ।।१०।। वह परस्पर दस-दस हजार न्यून सख्यक है तथा अन्य पर्वत दो हजार योजन ऊँचे और इतने ही विस्तार वाले है ।।११।। इसके मध्य समुद्र मे स्थित छ वर्प पर्वत है, यह भूमि उत्तर दक्षिण की ओर नीची और मध्य मे ऊँची तथा विस्तृत है ।।१२।। उत्तर और दक्षिण मे तीन–तीन वर्ष हैं, इन दोनो के मध्य इलावृत्त वर्ष अर्द्धचन्द्र के आकार मे स्थित है ।।१३।। उसके पूर्व मे भद्राश्व और पश्चिम मे केतुमाल है, इलावृत्त के मध्य मे ही सुमेरु पर्वत है ।।१४।।

चतुराशीतिसाहस्रस्त स्योच्छ्रायोमहागिरे ।
प्रविष्टःषोडशाधस्ताद्विस्तार गुडशैवत् ।।१५
शरावसंस्थितत्वाच्चद्वात्रिंशन्मूर्ध्निविस्तृत ।
शुक्लपोतोऽसितोरक्त प्राच्यादिषुयथाक्रमम् ।।१६
विप्रोवैश्यस्तथाशूद्र क्षत्रियश्चस्ववर्णत ।
तस्योपरितथैवाष्टौपुर्योदिक्षुयथाक्रमम् ।।१७
तस्योपरिसभादिव्या पूर्वादिषुक्रमेणतु ।
इ द्रादिलोकपालानातन्मध्येब्रह्मण सभा ।
योजनानासहस्राणिचतुर्दशसमुच्छ्रिता ।।१८
अयुतोच्छ्रायास्तस्याधस्तथाविष्कम्भपर्वतः ।
प्राच्यादिषुक्रमेणैवमन्दरोगन्धमादन ।।१९
विपुलश्चसुपार्श्वश्चकेतुपादपशोभिता ।
कदम्बोमन्दरेकेतुर्जम्बुर्वैगन्धमादने ।।२०
विपुलेचतथाश्वत्थ सुपार्श्वेचवटोमहान् ।
एकादशशतायामायोजनानामिमेनगा ।।२१

यह महापर्वत चौरासी सहस्र योजन ऊँचा है, सोलह हजार योजन धरती मे घुमा हुआ और वहाँ से सोलह सहस्र योजन विस्तार वाला है ।।१५।। इसकी शिखर बत्तीस सहस्र योजन चौडी है, यह पूर्व की ओर श्वेत वर्ष का दक्षिण की ओर पीला, पश्चिम मे नीला तथा उत्तर मे लाल वर्ण का है ।१६। इसकी दिशाओ मे पूर्वादि के क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं

।।१७।। उसके ऊपर उक्त दिशा क्रम से ही इन्द्रादि लोकपालो तथा मध्य मे ब्रह्माजी की चौदह सहस्र योजन विस्तार वाली सभा सुशोभित है ।।१८।। इसके नीचे पूर्वादि दिशाओ मे दश सहस्र योजन ऊँचे चार विष्कम्भ पर्वत है, उनके नाम मन्दार, गधमादन ।।१९।। विपुल और सुपार्श्व है, इन चारो पर्वतो पर चार वृक्ष क्रमश कदम्ब, जामुन ।।२०।। पीपल और वरगद केतु के समान स्थित है, यह पर्वत एकादश सहस्र योजन परिमाण के है ।।२१।।

जठरोदेवकूटश्चपूर्वस्यादिशिपर्वतौ ।
आनीलनिषधायातौपरस्परनिरन्तरौ ।।२२
निषघ पारियात्रश्चमेरो पार्श्वेतुपश्चिमे ।
यथापूर्व्वौतथाचैतावानीलनिषधायतौ ।।२३
कैलासोहिमवाश्चैवदक्षिणेनमहाचलौ ।
पूवपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ।।२४
शृंगवाञ्जारुधिश्चैवतथैवोत्तरपर्वतौ ।
यथैवदक्षिणेतद्वदर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ।।२५
मर्यादापर्वताह्य तेकश्यन्तेऽष्टौद्विजोत्तम ।
हिमवद्धेमकूटादिपर्व्वतानापरस्परम् ।।२६
नवयोजनसाहस्र प्रागुदग्दक्षिणोत्तरम् ।
मेरोरिलावृतेतद्वदन्तरवैचतुर्दिशम् ।।२७

पूर्व मे जठर और देवकूट पर्वत स्थित है, वह परस्पर नील से निषध तक विस्तृत है ।।२२।। मेरु के पश्चिम पार्श्व मे निषध और पारियात्र स्थित है, पूर्व दिशा के ही समान यह भी नील से निषध तक विस्तार युक्त है ।।२३।। दक्षिण मे कैलाश और हिमवान् नामक महान् पवत है यह पूर्व पश्चिम मे लम्बे होकर समुद्र मे प्रवेश किये हुए है ।।२४।। उत्तर मे शृङ्गवान् और जारुधि है, यह भी दक्षिण दिशा के ही समान ही समुद्र तक विस्तार किये हुए है ।।२५।। हे विप्र श्रेष्ठ ! आठो पर्वतो का मान यही है, जो तुम्हारे प्रति कहा है तथा हिमवान् और हेमकूट आदि पर्वत परस्पर मे ।।२६।। नौ सहस्र योजन

तक विस्तृत है, यह सभी पर्वत मेरु के चारो ओर तथा इलावृत्त के मध्य मे है ॥२७॥

फलानियानितेजम्ब्वागन्धमादनपर्वते ।
गजदेहप्रमाणानिपतन्तिगिरिमूर्द्धनि ॥२८
तेषास्त्रावात्प्रभवतिख्याताजम्बूनदीतिवै ।
यत्रजाम्बूनदनामकनकसम्प्राजायते ॥२९
सापरिक्रम्यवैमेरुजम्बूमूलपुनर्नदी ।
विशतिद्विजशार्दूलपीयमानाजनैश्चतैः ॥३०
भद्राश्वेऽश्वशिराविष्णुर्भारतेकूर्मसस्थिति ।
वराहकेतुमालेचमत्स्यरूपस्तथोत्तरे ॥३१
तेषुनक्षत्रविन्यासाऋष समवस्थिता ।
चतुर्ष्वपिद्विजश्रेऽग्रहाभिभवपाठका ॥३२

गधमादन पर्वत से गजदेह जैसे जामुन के फल शिखर से नीचे गिरते है ॥२८॥ उनके रस से उत्पन्न होने वाली नदी जम्बू नदी कही जाती है, इसी नदी से जाम्बूनद नामक स्वर्ण उत्पन्न हुआ है ॥२९॥ सुमेरु पर्वत की चारो ओर परिक्रमा करती हुई वह नदी, उसी जामुन के वृक्ष के नीचे प्रवाहमान है, वहाँ रहने वाले मनुष्य उसी का जल पीते है ॥३०॥ भद्राश्व मे अश्वशिरा, भारत मे कूर्माकृति, विष्णुकेतु माल मे वराह और उत्तर मे मत्स्य के स्वरूप मे भगवान् नारायण प्रतिष्ठित है ॥३१॥ इन चारो पर्वतो मे नक्षत्र और ऋषि स्थित है तथा नक्षत्रो का जाना-आना रहता है और उन ग्रहो का श्रेष्ठ या निकृष्ट फल भी होता रहता है ॥३२॥

४७--जम्बूद्वीप के वन पर्वतादि

शैलेषुमन्दराद्येषुचतुर्ष्वपिद्विजोत्तम ।
वनानियानिचत्वारिसरासिचनिबोधमे ॥१

पूर्वे चैत्ररथनामदक्षिणेनन्दनवनम् ।
वै भ्राजपश्चिमेशैलेसावित्रंचोत्तराचले ॥२
अरुणोदसर पूर्वे मानसदक्षिणेतथा ।
शीतोदपश्चिमेमेरोर्महाभद्र तथोत्तरे ॥३
शीतार्तश्चक्रमु जश्चकुलीरोऽश्वश्चकङ्कवान् ।
मणिशैलोऽथवृषवान्महानीलीभवाचल ॥४
सुबिन्दुर्मन्दरोवेणुस्तामसोनिषधस्तथा ।
देवशैलश्चपूर्वेणमन्दरस्यमहाचल ॥५
त्रिकूट शिखराद्रिश्चकलिङ्गोऽथपतङ्गक. ।
रुचक सानुमाश्चाद्रिस्ताम्रकोऽथविशाखवान् ॥६
श्वेतादर समूलश्चवसुधारश्चरत्नवान् ।
एकश्रृङ्गोमहाशलोराजशैल पिपाठक ॥७
पचशैलोऽथकैलासोहिमवाश्चाचलोत्तम ।
इत्येतेदक्षिणेपार्श्वे मेरो प्रोक्तामहाचला ॥८

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! मन्दरादि पर्वतो मे चार वन तथा सरोवर है, अब उनका वर्णन करता हूँ, सो सुनो ॥१॥ पूर्व मे चैत्ररथ, दक्षिण मे नन्दन, पश्चिम मे वैभ्राज और उत्तर मे सावित्र नामक वन मे स्थित है ॥२॥ सुमेरु के पूर्व मे अरुभेद, दक्षिण मे मानस, पश्चिम मे शीतोद तथा उत्तर मे महाभद्र नामक सरोवर है ॥३॥ मदर के पूर्व मे शीतार्त, चक्रमु ज, कुलीर, सुककवान्, मणिशैल, वृषवान्, महानीली, भवाचल ॥४॥ बिन्दु, मन्दर, वेणु, तामस, निषध और देवशैल नामक पर्वत स्थित है ॥५॥ त्रिकूट, शिखर, कलिग, पतगक, रुचक, सानुमान्, ताम्रक, विशाखवान् ॥६॥ श्वेतोदर, समूल, वसुधार, रत्नवान्, एक श्रृङ्ग, महाशैल, पिपाठक ॥७॥ पचशैल, कैलास तथा हिमवान् यह सभी महापर्वत सुमेरु के दक्षिण ओर अवस्थित है ॥८॥

सुरक्ष शिशिराक्षश्चवैदूर्य पिगलस्तथा ।
पिजरोऽथमहाभद्र सुरस कपिलोमधु ॥९

अञ्जन कुक्कुट कृष्ण पाण्डुरश्चाचलोत्तम. ।
सहस्रशिखरश्चाद्रिपारियात्र.सश्रृ गवान् ।।१०
पश्चिमेनतथामेरोर्विष्कम्भात्पश्चिमाद्बहि ।
एतेऽचला समाख्याता श्रृणुष्वान्यास्तथोत्तरान् ।।११
शङ्खकूटोऽथवृषभोहंसनाभस्तथाचलः ।
कपिलेन्द्रस्तथाशैल सानुमान्नीलएवच ।।१२
स्वर्णश्रृङ्ग शातश्रृ ग पुष्पकोमेघपर्वत ।
विरजाक्षोवराहाद्रिर्मयूरोजारुधिस्तथा ।।१३
इत्येतेकथिताब्रह्मन्मेरोरुत्तरतोनगाः ।
एतेषापर्वतानानुद्रोण्योतीवमनोहराः ।।१४

सुराक्ष, शिशिराक्ष, वैदूर्य, पिंगल, पिंजर, महाभद्र, सुरस, कपिल, मधु ।।९।। अजन, कुक्कुट, कृष्ण, पाण्डुर, सहस्र शिखर, पारियात्र और श्रृङ्गवान् ।।१०।। यह सुमेरु और विष्कम्भ के पश्चिम और बहिर्भाग मे अवस्थित है, अब उत्तर दिशा के पर्वतो के विपय मे कहता हूँ, उसे सुनो ।।११।। शखकूट, वृषभ, हंसनाभ, कपिलेन्द्र, सानुमान्, नील ।।१२।। स्वर्ण श्रृङ्गी, शातश्रृङ्गी, पुष्पक, मेघ पर्वत, विरजाक्ष, वराहाद्रि, मयूर और जारधि ।।१३।। हे विप्र ! यह सभी पर्वत सुमेरु के उत्तर भाग मे स्थित बताये गये है, इन पर्वतो की गुफाएँ अत्यन्त रमणीक है ।।१४।।

वनैरमलपानीयैःसरोभिरुपशोभिता ।
तासुपुण्यकृताजन्ममनुष्याणाद्विजोत्तम ।।१५
एतेभौमाद्विजश्रेष्ठस्वर्गा स्वर्गगुणाधिकाः ।
नतासुपुण्यपापानामपूर्वाणामुपार्जनम् ।।१६
पुण्योपभोगएवोक्तोदेवानामपितास्वपि ।
शीतान्ताद्येषुचेतेषुशैलेषुद्विजसत्तम ।।१७
विद्याधराणायक्षाणाकिन्नरोरगरक्षसाम् ।
देवानाचमहावासागन्धर्वाणाचशोभना. ।।१८

सभा पुर्योमनोज्ञाश्चसदैवोपवनैर्युता ।
सरासिचमनोज्ञानिसर्वर्तु सुखदोनिल ।।१९
नचैतेषुक्लमोबाधावैमनस्यचकुत्रचित् ।
तदेतत्पार्थिवपद्म चतुष्पत्रमयोदितम् ।।२०
भद्राश्वभारताद्यानिपत्राण्यस्यचतुर्दिशम् ।
भारतनामयद्वर्षदक्षिणेनमयोदितम् ।।२१
तत्कर्मभूमिर्नान्यत्रसप्राप्ति.पुण्यपापयो. ।
एतत्प्रधानविज्ञेययत्रसर्वप्रतिष्ठितम् ।।२२
अस्मात्स्वर्गापवर्गौचमानुष्यनारकावपि ।
तिर्यक्त्वमथवाप्यन्यन्नरा प्राप्नोतिवैद्विज ।।२३

यह सभी पर्वत वन तथा निर्मल जल से परिपूर्ण सरोवरो से सुशोभित है, इस परम पुण्य स्थल मे पुण्यात्मा मनुष्य ही उत्पन्न होते है ।।१५।। हे द्विजवर ! यह सब स्थान स्वर्ग से भी गुणवत भौम स्वर्ग के नाम से प्रसिद्ध है, यहाँ अपूर्व पाप अथवा पुण्य सचित नही होता ।।१६।। इन सभी शीतान्तादि पर्वतो का उपभोग हो सकना देवगणो के लिए भी पुण्य भोग स्वरूप है ।।१७।। यहाँ विद्याधर, यक्ष, किन्नर, उरग, राक्षस, देवता, गधर्व आदि का अत्यन्त सुशोभित निवास है ।।१८।। यह भूमि अत्यन्त पुण्यरूपा, सुरम्य और देवोद्यान एव मनोहर सरोवरो से युक्त है, यहाँ की समीर सभी ऋतुओ मे सुखदायी है ।।१९।। यहाँ कही भी मनुष्य मे विद्वेष भाव दिखायी नही देता, इसीलिये इसे मैंने चतुष्पत्र पार्थिव पद्म कहा है ।।२०।। भद्राश्व और भारत आदि इसके चारो ओर चार पत्ते है तथा जो दक्षिण दिशा मे भारतवर्ष कहा है ।।२१।। वह कर्मभूमि है, अन्य किसी स्थान मे पाप-पुण्य की उपलब्धि नही है, सबके अवस्थान करने से भारतवर्ष को ही प्रधान माना गया है ।।२२।। कर्मभूमि होने के कारण ही इससे मनुष्यो को स्वर्ग, मोक्ष, मनुष्य योनि, नरक, खगयोनि अथवा अन्यान्य योनियो की प्राप्ति होती है ।।२३।।

४८—गंगावतार

धराधरजगद्योनेःपादंनारायणस्यच ।
तत.प्रवृत्तायादेवीगगात्रिपथगामिनी ॥१
साप्रविश्यसुधायोनिसोममाधारमम्भसाम् ।
तत सवर्द्धमानार्करश्मिसङ्गतिपाविनी ॥२
पपातमेरुपृष्ठेचसाचतुर्द्धाततोययौ ।
मेरुकूटतटान्तेभ्योनिपतन्तीविवर्तिता ॥३
विकीर्यमाणसलिलानिरालम्बापपातसा ।
मन्दराद्येषुपादेषुप्रविभक्तोदकासमम् ॥४
चतुर्ष्वपिपपाताम्बुविभिन्नाङ्घ्रिशिलोच्चया ।
पूर्वासीतेऽतिविख्याताययौचैत्ररथवनम् ॥५
तत्प्लावयित्वाचययौवरुणोदसरोवरम् ।
शीतान्तचगिरितस्मात्ततश्चान्यान्गिरीन्क्रमात् ॥६
गत्वाभुवसमासाद्यभद्राश्वेजलधिगता ।
तथैवालकनन्दाख्यादक्षिणेगन्धमादने ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—जगद्योनि नारायण के ध्रुवाधार पद से ही त्रिपथगामिनी भगवती गगा की उत्पत्ति हुई है ॥१॥ वह समस्त जल की आधार रूपिणी सुधायोनि चन्द्रमण्डल मे प्रवेश करके वहाँ सम्बद्ध सूर्य-रश्मियो से सयुक्त हो कर अत्यन्त पवित्र हो कर ॥२॥ सुमेरु पर गिरी है और वहाँ के सब कूट प्रान्त से गिरती हुई चार धाराओ मे वहाँ से निकली है ॥३॥ इस प्रकार जल से विस्तृत और आलम्ब से रहित गगा मन्दरादि पर्वत मे विभाजित हो कर समान भाव से निपतित हुई है ॥४॥ और पर्वत-शिखाओ को काटती हुई बढी, उनमे जो जल धारा पूर्व मे बहती हुई चैत्ररथ वन की ओर गई है, उसे सोता कहते है ॥५॥ वह सीता नामक गंगा चैत्ररथ वन को जलयुक्त करती हुई वरुणोद सरोवर मे पहुँची है, वहाँ से शीतान्त पर्वत एवं अन्य पर्वतो का अतिक्रमण करती हुई ॥६॥ पृथिवी पर उतर कर भद्राश्व वर्ष मे हो कर समुद्र तक

गई है तथा सुमेरु के दक्षिण ओर से जो गगाजल गधमादन पर्वत में निपतित हुआ है, उस धारा नाम अलकनन्दा है ।।७।।

मेरुपादेवनगत्वानन्दनदेवनन्दनम् ।
मानसञ्चमहावेगात्प्लावयित्वासरोवरम् ।।८
आसाद्यशैलराजानरम्यत्रिशिखरगता ।
तस्माच्चपर्वतान्सर्वान्दक्षिणेयेक्रमोदिताः ।।९
तान्प्लावयित्वासप्राप्ताहिमवन्तमहागिरिम् ।
दधारतत्रताशम्भुर्नमुमोचवृषध्वजः ।।१०
भगीरथेनोपवासै स्तुत्याचाराधितोविभुः ।
तत्रमुक्ताचशर्व्वेणसप्तधादक्षिणोदधिम् ।।११
प्रविवेशत्रिधाप्राच्याप्लावयन्तीमहानदी ।
भगीरथरथस्यानुस्रोतसैकेनदक्षिणम् ।।१२
तथैवपश्चिमेपादेविपुलेसामहानदी ।
सुचक्षुरितिविख्यातावैभ्राजसावनंययौ ।।१३
शीतोदचसरस्तस्मात्प्लावयन्तीमहानदी ।
तस्मात्क्रमेणचाद्रीणांशिखरेषुनिपत्यसा ।
सुचक्षु.पर्वतप्राप्ताततश्चत्रिशिखंगता ।।१४

अलकनन्दा ने सुमेरु के समीपवर्ती देवताओ को प्रसन्नताप्रद नन्दनवन मे जाकर अत्यन्त वेग से मानस सरोवर को जल से परिपूर्ण किया है ।।८।। इस मानस सरोवर को भर कर पर्वतराज के मरम्य शिखर स्थान से तथा वहाँ से सब पर्वतो का अतिक्रमण करती हुई ।।९।। और उन्हे जल से परिपूर्ण करती हुई हिमालय मे निपतित हुई है, वहा भगवान् शकर ने उस गगा को धारण कर उन्हे किसी प्रकार भी नही छोडा ।।१०।। फिर जब महाराज भगीरथ ने भगवान् शिव की उपवास और स्तुति पूर्वक आराधना की तब उन्होंने गंगा को छोडा और वहा से छूठते ही गगा सात धाराओ मे विभक्त हो कर दक्षिण समुद्र मे प्रविष्ट हुई ।।११।। उनमे तीन भाग पूर्व की ओर प्लावित करती हुई ससुद्र मे गई और एक धारा भगीरथ के रथ के पीछे-पीछे जाकर समुद्र मे

जा मिली ॥१२॥ सुमेरु के पश्चिम मे विपुलपाद के रूप से जो धारा निर्गत हुई उसका नाम सुचक्षु हुआ, उसने वैभ्राज पर्वत एव वन को पवित्र करते हुए ॥१३॥ शीतोद सरोवर को प्लावित किया और वहा से सब पर्वतो के शिखरो पर और सुचक्षु पर्वत पर हो कर त्रिशिखर पर्वत को प्राप्त हुई ॥१४॥

केतुमालसमासाद्यप्रविष्टादक्षिणोदधिम् ॥१५
(गत्वोत्तरादिशगङ्गादिव्यासाचमहानदी ।
तस्माच्चऋषभादीश्चक्रमादुत्तरजान्नगान् ॥)
सुपार्श्वं तुतथैवाद्रिमेरुपादहिसागता ।
भद्रसोमेतिविख्यातासाययौसवितुर्वनम् ॥१६
तत्पावयन्तीसप्राप्तामहाभद्र सरोवरम् ।
ततश्चशङ्खकूटसाप्रयातावैमहानदी ॥१७
तस्माच्चवृषभादीन्साक्रमात्प्राप्यशिलोच्चयाम् ।
महार्णवमनुप्राप्ताप्लावयित्वोत्तरान्कुरून् ॥१८
एवमेषामयागगाकथितातेद्विजर्षभ ।
जम्बूद्वीपनिवेशश्चवर्षाणिचयथातथम् ॥१९
बसन्तितेषुसर्वेषुप्रजा किंपुरुषादिषु ।
सुखप्रायानिरातङ्कान्यूनतोत्कर्षवर्जिता ॥२०
नवस्वपिचवर्षेषुसप्तसप्तकुलाचला ।
एकैकस्मिन्यथादेशेनद्यश्चाद्रिविनि सृता ॥२१

फिर केतुमाल बर्ष मे प्रवेश करती हुई समुद्र मे सयुक्त हुई है ॥१५॥ (फिर यह दिव्य महानदी उत्तर दिशा मे होती हुई ऋषभादिक उत्तर पर्वतो को प्राप्त हुई) यह चतुर्थ धारा सुपार्श्व और सुमेरु से सविता वन मे गई, वहाँ भद्र सोमा के नाम से प्रसिद्ध हुई, उस सविता वन को ॥१६॥ पवित्र करके उसने महाभद्र सरोवर को प्लावित किया, फिर शखकूट पर्वत मे गई ॥१७॥ वहा से वृषभादि पर्वतो मे हो कर उसने समस्त उत्तर कुरु देश को पवित्र किया और फिर महा सागर मे जा मिली ॥१८॥ हे द्विजवर ! मैंने तुम्हारे प्रति गगाजी का विषय कहा, तथा जम्बूद्वीप के निवेश मे ॥१९॥ जिन किम्पुरुषादि